आधुनिक कवि पंत

लेखक

श्री कृष्ण कुमार सिन्हा, एम० ए०

प्रकाशक

नोवेल्टी एण्ड कम्पनी

अशोक राजपथ : पटना-४

मूल्य ४-५० रु०

तृतीय संशोधित और परिवर्द्धित संस्करण, १९५९

लेखक का आलोचनात्मक साहित्य

१. गुप्तजी की यशोधरा
२. प्रसादजी की ध्रुवस्वामिनी
३. प्रसादजी का चन्द्रगुप्त
४. प्रसादजी का अजातशत्रु
५. ब्रजभाषा के नवरत्न
६. हिन्दी कवियों की आलोचना
७. हरिऔध और उनका प्रियप्रवास
८. प्रेमचन्द और उनकी निर्मला
९. सुदामा चरित (संपादित)
१०. सत्य हरिश्चन्द्र नाटक (संपादित)
११. स्वर्ण काव्य-मंजूषा संपादित)
१२. ब्रजभाषा के प्रतिनिधि कवि
१३. पंत और उनकी ग्रन्थि
१४. समीक्षात्मक निबन्ध

मुद्रक
वैशाली प्रेस
एनी बेसेन्ट रोड, पटना - ४

भूमिका

हिन्दी के पाठक श्रीकृष्ण कुमार सिन्हा से सुपरिचित हैं। प्रसादजी के नाटकों और गुप्तजी के काव्यों की आलोचना उन्होंने अत्यन्त ही गंभीर दृष्टि से की है—इसके सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते हैं। 'आधुनिक कवि पंत' श्रीयुत् सिन्हाजी की नवीन कृति है। इस रचना में वे एक नवीन आलोचनात्मक दृष्टि लेकर आते हैं। मेरा विश्वास है कि 'पंत-साहित्य' पर जिज्ञासा रखने वाले व्यक्तियों के लिए यह रचना उपादेय है।

प्रस्तुत रचना में विद्वान लेखक ने युग कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत के काव्य-साहित्य की समस्त प्रवृत्तियों पर विचार प्रकट किया है। कवि की नारी-भावना, जीवन-दर्शन, प्रतीक-योजना, छन्द-योजना, भावधारा का विकास, प्रणय गीत, सौन्दर्यानुभूति, भाषा-शैली, जीवन, प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य, रससिद्धान्त और पंत, इस ग्रन्थ के बड़े उपयोगी और सुन्दर परिच्छेद हैं। ग्रन्थ में पंतजी के काव्य के अंतरंग और बहिरंग दोनों पर ही लेखक की विवेचना पठनीय है।

श्री सिन्हा परिश्रमी और चिंतनशील व्यक्ति हैं। इस ग्रन्थ के प्रणयन में उन्होंने प्रचुर परिश्रम किया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता है उपयुक्त स्थलों पर प्रामाणिक और सर्वमान्य लेखकों की कृतियों के उद्धरणों के प्रचुर संकलन, जिसका पंत-साहित्य संबंधी अन्य पुस्तकों में सर्वथा अभाव खलता रहा है। इस ग्रन्थ की दूसरी विशेषता है स्पष्टता और सूक्ष्म विवेचना। व्यर्थ के दुरूह शब्द-जाल में पाठकों को भरमाने का प्रयत्न कहीं नहीं किया गया

है। इसीलिए पंत के रहस्यवादी, छायावादी और प्रगतिवादी पक्ष इस ग्रन्थ में सरल और रोचक बन गए हैं।

हिन्दी के पाठकों को सिन्हाजी से बड़ी आशाएँ हैं। विश्वास है कि इसी प्रकार विद्वान लेखक साहित्य-सेवा में संलग्न रहेगा। मैं उसका हृदय से अभिनन्दन करता हूँ।

हिन्दी विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय
११-११-१९५३

—(डा०) त्रिलोकी नारायण दीक्षित
[एम० ए०, डी० लिट्०]

श्री कृष्ण कुमार और उसकी कृति

'आधुनिक कवि-पंत' श्री कृष्ण कुमार सिन्हा की सर्वोत्कृष्ट कृति है। आप 'प्रसाद'-साहित्य के अत्यन्त ही सुबोध समीक्षक हैं—पाठकवृन्द से यह बात छिपी नहीं। किन्तु हर्ष का विषय है कि आपने इधर पंत'-साहित्य का भी गंभीर अध्ययन किया है जिसके फलस्वरूप यह पुस्तक लिखी गई और आज आपके सामने प्रस्तुत है। आपकी समीक्षा-पद्धति स्वतंत्र और मौलिक है। पंत की प्रतिभा का लेखक ने जिस व्यापक दृष्टि से उद्‌घाटन किया है, वह दर्शनीय है। पंत-साहित्य पर अनेक आलोचनात्मक पुस्तकें हिंदी-संसार में उपलब्ध हैं। यह रचना किसी एक अभाव की पूर्त्ति नहीं करती, वरन् अनेक दिशाओं की ओर पाठकों का ध्यान ले जाती है और उन्हें एक नवीन दृष्टि प्रदान करती है। लेखक का यह प्रयत्न स्तुत्य है। पुस्तक के कुछ परिच्छेद बड़े ही-आकर्षक और महत्त्वपूर्ण हैं; जैसे, पंत पर बाह्य प्रभाव, पंत की सौन्दर्यानुभूति, जीवन, प्रकृति, प्रेम और सौन्दर्य, पंत की प्रतीक-योजना, पंत की भाषा-शैली, प्रकृति-चित्रण और पंत, पंत की छंद-योजना, आदि-आदि। इस ग्रंथ की सबसे बड़ी विशेषता है—एक ही स्थान पर हिंदी के मान्य आलोचकों की विभिन्न सम्मतियों का प्रसंगानुसार अधिकाधिक संकलन। हिंदी के आधुनिक कवियों पर इतनी ठोस सामग्री एक ही स्थल पर सुसम्पादित ढंग से यों संकलित की गई अबतक देखने में नहीं आई। इस प्रकार की समालोचनात्मक पुस्तकों का अपना मूल्य है और यह प्रयत्न प्रोत्साहन योग्य है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है इसके चलते लेखक की मौलिक दृष्टि और निर्णय में कोई अंतर नहीं आता। अधिकतर देखा गया है कि अध्ययनशील व्यक्ति की मौलिकता जाती रहती है

और वह दूसरे विचारकों से प्रभावित होता रहता है; लेकिन श्री कृष्ण कुमार इसके अपवाद हैं। आपकी भाषा मँजी और सुलझी हुई है। इसलिए आप अन्य विद्वान लेखकों के विचारों के साथ-ही-साथ अपने विचारों से भी पाठकों को सहज ही परिचित कराने में समर्थ हैं।

सिन्हाजी की तीक्ष्ण बुद्धि, इनका कठिन परिश्रम और विशाल अध्ययन देखकर हम विस्मित रह जाते हैं। कृष्ण कुमारजी की इस रचना के सम्बंध में अधिक क्या लिखा जाय ? हाथ-कंगन को आरसी क्या ? पुस्तक पाठकों के हाथ में है। लेखक का व्यक्तित्व उसकी कृति से अभिन्न है। अतः इनका परिचय देना भी पाठकों का समय खोना है। कृष्ण कुमारजी ने इस अल्प आयु में ही प्रसाद, गुप्त, हरिऔध तथा व्रजभाषा के प्रमुख कवियों के सम्बन्ध में जो समीक्षाएँ प्रकाशित की हैं, वे अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं। इसी कारण हिंदी-संसार में उनका एक विशिष्ट स्थान अपने आप बनता जा रहा है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उनके अपने पाठकों से हम इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि वे उनकी इस नवीन कृति में पहले से कुछ अधिक ही ज्ञान लाभ करने में समर्थ होंगे; क्योंकि इसमें उनकी प्रतिभा विकासोन्मुख है। इतना कह कर हम एक बार कृष्ण कुमार जी का अभिनन्दन करते हैं और उनके पाठकों के बीच से विदा लेते हैं।

पटना विश्वविद्यालय
पटना
१२-११-१९५३

कपिलदेव सिंह
हिन्दी-विभाग
बी. एन. कालेज, पटना

श्रद्धेय

डा० विश्वनाथ प्रसाद, एम० ए०, पी-एच० डी० (लंदन)

अध्यक्ष, हिन्दी विभाग

पटना विश्वविद्यालय

के

चरणों में मौन प्रणति

—कृष्ण कुमार सिन्हा

आभार-संभार

छायावाद के प्रहरियों में पंत का अन्यतम स्थान है और उनकी चिन्तन-धारा एवं अनुभूतियों को स्पष्ट कर देना मेरा काम रहा है। प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन के पश्चात् पंत पर और भी पुस्तकें निकलीं फिर भी विद्वान पाठकों ने इस पुस्तक को विशेष रूप से अपनाया। फलतः प्रथम दो संस्करणों की समाप्ति और तृतीय संस्करण के प्रकाशन के अवसर पर मैं अपने पाठकों के प्रति हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। इसमें अनेक नये निबन्ध जोड़े गए हैं और शेष निबन्धों में काफी परिवर्तन एवं परिवर्द्धन हुआ है।

पुस्तक-रचना में जिन आलोचकों की सामग्रियों का उपयोग हुआ है, उसके आधारादि निर्दिष्ट हैं, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ। मुझे पूरा विश्वास है कि इस पुस्तक से पंत - साहित्य के पाठकों को अत्यधिक सहायता मिलेगी।

अंत में अपनी त्रुटियों की क्षमा-याचना करते हुए मैं, इस आशा के साथ कि 'छिमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई', अपनी इस पुस्तक को फिर सहृदय पाठकों को समर्पित कर रहा हूँ।

६० तूतबाड़ी, गया
जुलाई, १९५९

—कृष्ण कुमार सिन्हा

विषय-सूची

सुमित्रानन्दन पंत

युग-प्रवर्तक पंत हिन्दी की नई धारा के एक जागरूक कवि एवं कलाकार हैं और हिन्दी कविता की उस नवीन धारा की संज्ञा है 'छायावाद'। वस्तुतः छायावाद अत्यन्त ही भ्रामक संज्ञा है। यों तो इस संबंध में यह कहा जाता है कि श्री जयशंकर 'प्रसाद' ही इस काव्य के प्रवर्त्तक हैं जिसकी गंध 'झरना' की कविताओं में विद्यमान है। परन्तु पंत ने ही 'शोभा-सुषमावाली वन-माली की तरह' छायावाद की कला को अधिक निखारा है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार छायावाद के चार ज्योति-स्तम्भ हैं और वे हैं—महादेवी, प्रसाद, पंत और निराला और इन्हीं चारों के चरण-चिन्हों पर तत्कालीन हिन्दी कवियों ने अपने काव्यात्मक पग बढ़ाए। महादेवी ने इस कविता में 'करुणा', प्रसाद ने 'माया' (नारी), पंत ने 'प्रकृति' और निराला ने 'परुषता' का स्वर भरा तथा इन चारों ने काव्य को एक नई शैली दी और नवीन भाव प्रदान किये जिसके फलस्वरूप वे शीर्ष आसन पाने के अधिकारी हुए। साहित्य में इस 'वाद' (Ism) का अधिक विरोध हुआ, किन्तु विरोध की ज्वाला अधिक दिनों तक न जल सकी। छायावाद की कोमलता से वह ज्वाला शान्त हो उठी। धीरे-धीरे लोग इस प्रकार की कविताओं के रसास्वादन में अभ्यस्त हो गए। अब उन्हें आनन्द की भी प्राप्ति होने लगी क्योंकि इन लोगों ने काव्य-भाषा को मृदुता एवं माधुर्य के साथ वह भावाभिव्यंजकता दी जो उनके पहले की कविताओं में नहीं थी। अपनी इन्हीं विशिष्टताओं के कारण ये छायावादी कवि साहित्याकाश के जाज्वल्यमान नक्षत्र सिद्ध हुए। इस कोटि के कवियों में पंत को अधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई और उनका अनुकरण सभी दृष्टियों से सर्वाधिक हुआ।

काव्य की नई धारा के चार स्तंभों में पंत

पंत हिन्दी के सुकुमार कवि हैं। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त ही कोमल एवं आकर्षक है। उनके कौशल से काढ़े घुँघराले बाल तथा उनकी सज्जा, वेशभूषा, मुद्राएँ और रुचिपूर्ण भंगिमाएँ—पंत के व्यक्तित्व को सुघर, प्रभावशाली और कलात्मक बना देती हैं।

रेखाएँ

आज वे साठ वर्ष के हो चुके हैं, पर 'बच्चन' जी के शब्दों में—"जब मैं उनकी पचीस वर्ष पहले की तस्वीर याद करता हूँ तो अक्सर मेरे दिमाग में उर्दू का एक शेर चक्कर काट जाता है—

मैंने पूछा अब कहाँ है आपका हुस्नो जमाल,
हँस के बोला वह सनम शाने खुदा थी, मैं न था।

लेकिन पचास वर्ष की उम्र के लोगों में—इसमें आप चाहें तो औरतों को भी शामिल कर सकते हैं—अगर आप पंतजी को खड़ा कर दें तो आज भी मैं उन्हें उनकी सुन्दरता के लिए सबसे ज्यादा नम्बर दूँगा। थोड़े दिन हुए, एक विदेशी चित्रकार ने उनसे कहा था कि यदि आप योरप में होते तो आपको केवल 'मॉडेल' बनाने के लिए लोग हजारों रुपये देने को तैयार होते। पंतजी के बालों में अब वह सुनहलापन नहीं है, वे भूरे और सफेद भी हो चले हैं, पर आज भी वे घुँघराले हैं और कंघी के क्षणिक स्पर्श से इच्छित आकार-प्रकार से उनके सिर पर शोभायमान हो जाते हैं। पंतजी को इन बालों से बड़ा मोह है। लोगों से बातचीत करते, चलते-फिरते उनकी अंगुलियाँ उन्हें ठीक करने में व्यस्त रहती हैं। और इन बालों की सुन्दरता के लिए वे नाई के ऋणी नहीं हैं। अपने जीवन में नाई को उन्होंने बहुत कम ही पैसे दिये होंगे। अपने बाल वे खुद काटते-छाँटते हैं, जैसे अपनी कविता की पंक्तियों को। सरस्वती के भूतपूर्व सम्पादक पण्डित देवीदत्त शुक्ल कहा करते थे कि पंतजी के बालों में भी कवित्व है।"[१] इन बालों की कलात्मकता के पीछे एक इतिहास छिपा हुआ है। सन् १९१३-१४ की बात है। जब वे सातवें वर्ग के विद्यार्थी थे तब एक रोज उनकी नजर संसार-विजेता नेपोलियन की

---

१. डा० हरिवंश राय 'बच्चन' : प्रतीक

तस्वीर पर जा टँगी। उस तस्वीर में नेपोलियन के लम्बे बाल थे जिसे देखकर उन्होंने लम्बे बाल रखना शुरू कर दिया। बालों के अलावे उन्हें पहनावा का भी बहुत शौक है। उनका पहनावा अंग्रेजी ढंग का होते हुए भी निराला है। 'अंग्रेजी कोट को कुछ अपनी रुचि के अनुसार काट-छाँट दिया गया है। टाई भी है, पर खुली कमीज के ऊपर।' 'कपड़े अब भी वे अपनी विचित्र काट-छाँट के पहनते हैं। जिस दर्जी की शामत आई होती है वही उनके कपड़ों को सीने के लिए फँसता है। पैंट को छोड़कर शायद ही कोई ऐसा कपड़ा हो जिसमें उन्होंने कुछ परिवर्तन नहीं किया। उन्हें कपड़े सिलने को देते हुए मैंने देखा है—देखो, इसको यहाँ से ऐसा काटो कि यहाँ से ढीला हो, यहाँ से फिर ऐसा गोल आये, फिर यहाँ से ऐसा आड़ा आये, आदि कई बार कपड़ों का ट्रायल होता है तब उन्हें अपनी पसन्द की चीज मिलती है। यह मानना पड़ेगा कि उनकी पसंद और उनके डिजाइनों में सुरुचि और सुविधा दोनों का ख्याल रहता है। अगर पंतजी राजनीतिक नेता होते तो गांधी-टोपी और जवाहर-जैकेट के समान पंत-कुर्त्ता और पंत-कोट तो जरूर चल पड़ते। संस्कृतमयी हिन्दी का आन्दोलन अगर कभी चला तो संभव है, लोग पंत-कोट को अपना लें। मैं कविवर को सलाह दूंगा कि वे अपने डिजाइनों को पेटेंट करा लें।'[1]

पंत की वेश-भूषा की-सी ही मौलिकता इनके नामकरण में भी मिलती है। 'नाम तो अपना कोई नहीं रखता, जो नाम माता-पिता दे देते हैं उसी को लेकर चलता है। पंतजी ने स्वयं अपना नामकरण किया। गत वर्ष उनके बड़े भाई श्री हरिदत्त पंत, मेरे मेहमान थे। उन्होंने बताया कि पंत जी का दिया हुआ नाम था गोसाईंदत्त पंत, और दो भाइयों के नाम थे रघुवरदत्त पंत और देवीदत्त पंत। श्री हरिदत्त पंत के कोई बिहारी मित्र थे सुमित्रानन्दन सहाय; उनके पत्र अक्सर आया करते थे, बस गोसाईंदत्तजी को यह नाम पसंद आ गया और उन्होंने अपने को सुमित्रानन्दन कहना शुरू किया।'[2]

---

१. डा० हरिवंश राय बच्चन : प्रतीक। २. वही

हिन्दी के प्रियदर्शी कवि पंत का जन्म भारतवर्ष के स्विजरलैंड अल्मोड़ा के कौसानी गाँव में २० मई सन् १९०० को, दिन के आठ-नौ बजे में हुआ और सिर्फ छः घंटे के उपरान्त उनकी माता का देहान्त हो गया :

जन्म

नियति ने ही निज कुटिल कर से, सुखद
गोद मेरे लाड़ की थी छीन ली,
बाल में ही हो गई थी लुप्त हा!
मातृ अंचल की अभय छाया मुझे।

पंतजी के पिता पं० गंगादत्त पंत जमींदार थे और कौसानी राज्य में कोषाध्यक्ष थे। उनकी माता का नाम था श्रीमती सरस्वती देवी। पंत अपने चार भाइयों में सबसे छोटे हैं और इनके यहाँ जमीन्दारी का काम अब भी होता है।

माँ की मृत्यु से पंत टूअर बन गये थे, परन्तु उनकी फूफी ने उन्हें पाला-पोसा, जो अपने भाई के यहाँ कौसानी में रहा करती थीं। उनकी फूफी का स्वभाव अत्यन्त नम्र एवं उदार था। पंत की स्मृति-शक्ति तीव्र है और उनकी सब से पुरानी स्मृति उस समय की है जबकि वे करीब-करीब तीन वर्ष के थे। एक दिन वे अपने भाई के साथ रस्सी खींचा-खींची का खेल खेल रहे थे। भाई ने रस्सी छोड़ दी, पंत अंगीठी में जाकर गिर पड़े जिसके फलस्वरूप उनका कोमल शरीर झुलस गया। जब वे पांच पर्ष के हुए तब मन्दिर की स्लेटी खपरैल उनके पैर के अंगूठे पर गिरी जिसके कारण काफी चोट पहुँची। उन्हें अपने भाई के विवाह की घटना भी याद है, जबकि वे अपने नौकर की पीठ पर चढ़कर बारात गये थे। माता की मृत्यु हो जाने के कारण पंत को माँ के दूध से वंचित होना पड़ा, पर, हाँ, उनका कोमल गात मिलिन्स फूड (डब्बेवाले दूध) पर पाला गया। कौसानी में जहाँ पर उनका घर था, वहाँ से एक-दो मील की दूरी के अन्दर कोई घर बसा हुआ नहीं था। पर एक मील की दूरी पर किसी अंग्रेज का एक बँगला था और 'बगीचे में काम करने वाले १॥-२ हजार कुली वहाँ पास

बाल्य

में रहा करते थे। यद्यपि सुमित्रानन्दन को बदहजमी की शिकायत ग्यारह साल तक रही, मगर और तरह से स्वास्थ्य अच्छा और शरीर गोल-मटोल था। चचेरे भाई भी कुछ थे, मगर सुमित्रानन्दन सदा घरघुस्सा था। राक्षसों की कहानियाँ, भूतों की कहानियाँ तो बड़े शौक से वह सुनता ही था, लेकिन उनके लिए सुन्दर कहानियाँ थीं बर्फ की परियों की। जब बर्फ गिर जाती है तब देवदार और चीड़ की सदाहरित पत्रों पर सफेद गोले की तरह छाकर धरती पर चारों ओर रुपहला फर्श बिछा देती है, उस समय परियाँ अपने घरों से निकलती हैं, फिर उनका नाच शुरू होता है। सुमित्रानन्दन को इन परियों के देखने का बड़ा शौक था, लेकिन कुछ-कुछ डरता भी था ; क्योंकि बुआ और दादी ने कह रखा था कि परियाँ छोटे-छोटे बच्चों को उड़ा ले जाती हैं। कौसानी में लाल-सफेद रंग के सुन्दर गोल-मटोल पत्थरों की कमी नहीं थी। सुमित्रानन्दन पंत ऐसे पत्थरों को जमा कर फूल-मिठाई से खूब पूजता। घर की स्त्रियों में गाने का शौक था। कभी बहनें गातीं, और कभी दादी देवकी बुढ़ापे के कंपित स्वर में गुनगुनाती—'माई के मन्दिरवा में दीपक बारो'; जिसे सुनकर सुमित्रानन्दन पंत भी गुनगुनाने की कोशिश करता। मकान के पास विशाल देवदारों का उपवन-सा लगा था, उन्हें निहारना और उनसे गिरते पीले चूर्ण को देखना सुमित्रानन्दन को बहुत पसन्द आता था। कौसानी (कत्यूर घाटी) और हिमालय के बीच में कोई व्यवधान नहीं है, और बालक सुमित्रानन्दन पंत हिमालय के रौप्य-शिखरों को प्रातः-सायं सुवर्णमय होते देख बहुत चकित होता था। कौसानी में साधु अक्सर आया करते थे। पं० गंगादत्त पंत साधुसेवी थे। एक बार पूछने पर गंगादत्तजी ने सुमित्रानन्दन के बारे में बतलाया—'यह मेरा सबसे छोटा बेटा है।' साधु ने कहा—'सबसे छोटा या सबसे बड़ा?' हाँ, सुमित्रानन्दन ने पीछे अपने को सबसे बड़ा बेटा साबित किया। सुमित्रानन्दन को न खेलने का शौक था न कूदने का, न वह लड़ता-झगड़ता था।'[1]

---

१ राहुल सांकृत्यायन

चार-पाँच वर्ष की अवस्था में पंत को खल्ली धराई गई। गाँव में एक छोटा-सा स्कूल था जहाँ उनके फुफेरे भाई अध्यापक थे। वे प्रतिदिन नियमित रूप से स्कूल जाया करते थे। पढ़ने में मन लगता था।

शिक्षा

उनके बड़े भाई अपनी नवविवाहिता पत्नी के मनबहलाव के लिए गा-गाकर मेघदूत (हिन्दी अनुवाद) पढ़ते थे जिसे पंत एकाग्रचित हो सुनते थे। जबकि पंत को काव्य के मर्मों का ज्ञान नहीं था फिर भी उसके छन्द, राग और अर्थ को मन लगाकर समझने की चेष्टा करते। लम्बी छुट्टियों में उनके भाई और मित्र कौसानी आया करते थे, जो इश्क-भरे गजल गाया करते जिसके लय को वे बड़े मनोयोग से सुना करते थे। गजल की लय से वे वाकिफ हो चुके थे। अतएव सात वर्ष की उम्र में उन्होंने भी एक गजल लिखा। सन् १६०६—नौ वर्ष की उम्र—में उन्होंने अपर प्राइमरी (वर्ग ४) की परीक्षा पास कर ली। तब उनके पिता को इच्छा हुई अंग्रेजी पढ़ाने की, परन्तु अंग्रेजी स्कूल गाँव के पास न था। अतएव नौ वर्ष की उम्र में उनके पिता ने उन्हें बाहर भेजना उचित न समझा, इसलिए उन्हें अंग्रेजी की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही पिता और भाई से प्राप्त हुई। पंत को उनके बड़े भाई हरदत्त पंत बहुत मानते थे। ग्यारह वर्ष की अवस्था में (सन् १६११) अंग्रेजी पढ़ने के लिए अल्मोड़ा के गवर्नमेंट हाई स्कूल में भर्ती किये गए। यहाँ उनके मँझले भाई रघुवरदत्त पंत नवें वर्ग में पढ़ते थे और दोनों अल्मोड़ा में साथ रहा करते थे। नवीं कक्षा तक उन्होंने वहाँ शिक्षा पाई। फिर वे काशी चले आये और वहाँ जयनारायण हाई स्कूल में दाखिल किये गए। यह संकेत किया जा चुका है कि पंत के पिता धार्मिक प्रवृत्तिवाले थे और उनका प्रभाव पंत पर भी पड़ा जिसके फलस्वरूप वे नियमित रूप से प्रातःकाल ध्यान किया करते। अतएव साधु-संतों के प्रति अनुराग पंत में होना अनिवार्य था। सन् १६१५ में उन्हें स्वामी सत्यदेव के प्रवचन सुनने का अवसर प्राप्त हुआ। वहाँ स्वामीजी के द्वारा एक हिन्दी पुस्तकालय की स्थापना हुई जिसके फलस्वरूप पंत में हिन्दी-प्रेम और देशभक्ति की भावना प्रस्फुटित हुई। उस समय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के सम्पादकत्व में

प्रयाग से 'सरस्वती' पत्रिका प्रकाशित होती थी जिसमें श्री मैथिलीशरण गुप्त की कवितायें निकला करती थीं और गुप्तजी की कविताओं को वे बड़े शौक से पढ़ा करते थे। उस नन्हें-से बालक के मन पर गुप्तजी की काव्य-साधना का प्रभाव पड़ा और पंतजी ने अपने ऊपर द्विवेदी-युग के सर्वश्रेष्ठ कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त का प्रभाव अपनी काव्य-साधना के शैशव में स्वीकार किया है और इसीलिए गुप्तजी तथा द्विवेदीजी दोनों की गीति-प्रशस्तियाँ आपने लिखी हैं। कहा जाता है कि पंत ने पन्द्रह वर्ष की उम्र में रोला छंद में एक पत्र अपने फुफेरे भाई को लिखा था। यहीं से उनकी काव्य-प्रतिभा की किरणें फूटती हैं। सन् १९१६ में उन्होंने एक पंजाबी साधु को देखा जिसके काषाय वस्त्र उन्हें अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़े। साधु की बाह्य-वेशभूषा को ही उन्होंने ज्ञान-वैराग्य का बाह्य रूप समझा। साधु का यह जीवन उन्हें अत्यन्त प्रिय मालूम पड़ा। उसी समय से उन्होंने रामायण, महाभारत, गीता आदि पढ़ना आरंभ कर दिया। एक ओर उनका हृदय ज्ञान-वैराग्यमयी भावनाओं की ओर आकृष्ट हुआ तो दूसरी ओर साहित्य की ओर। पंत की पहली कविता 'अल्मोड़ा अखबार' (सन् १९१६) में छपी। इस समय की कविता का छंद था हरिगीतिका, जो छंद 'भारत-भारती' में प्रयुक्त हो पाया था। उन्हीं दिनों 'सुधाकर' (सन् १९१६-१७) नाम की एक हस्तलिखित पत्रिका श्यामाचरण पंत (साहित्यिक गोविन्दवल्लभ पंत के भतीजे) के सम्पादकत्व में निकली जिसमें उनकी कवितायें प्रकाशित होने लगीं। उनका उत्साह बढ़ने लगा। अतएव अपनी काव्यकला को सँवारने के लिए उन्होंने पूर्ववर्ती साहित्यकारों की कृतियों के साथ-साथ 'छंद-प्रभाकर', 'काव्य-प्रभाकर' आदि का अध्ययन किया। पंत के प्रिय कवियों में थे मतिराम और पद्माकर, बाद में रससिद्ध कवि बिहारी भी। उनके अत्यन्त अप्रिय कवि थे केशवदास। सन् १९१६ में 'तम्बाकू का धुआँ' शीर्षक कविता 'अल्मोड़ा अखबार' में प्रकाशित हुई, जिसकी दो पंक्तियाँ ये हैं—

पंत की सर्वप्रथम कविता

सप्रेम पान करके मानव तुझे हृदय में।
रखता जहाँ बसे हैं भगवान विश्व-स्वामी॥

—इस प्रकार पंत अबाध रूप से लिखने लगे और अपनी कविताओं का प्रकाशन भी कराते रहे। उस समय उनकी कविताएँ 'सुधाकर' में बराबर निकला करती थीं। उनकी एक मित्र-मंडली थी जिसमें लेखों और कविताओं पर तर्क-वितर्क, खंडन-मंडन, वाद-विवाद होता था। इलाचंद्र जोशी और श्यामाचरण पंत उन्हें गुप्तजी का नकलची कहा करते थे। अतएव उनके द्वारा आरोपित आक्षेपों का उत्तर वे 'सुधाकर' के माध्यम से देते थे। फिर भी अपने हृदय में उन आरोपित आक्षेपों को सच मानते थे। इसीलिए 'उनकी प्रतिभा स्वच्छंद होने की फिक्र में रहती थी।' नकलची के दोष से मुक्त होने के लिए उन्होंने साहित्य का गंभीर अध्ययन आरंभ किया जिसके फलस्वरूप उनका ज्ञान और शब्द-भाण्डार बढ़ा। उसका परिणाम यह हुआ कि स्कूल के निबन्धों में उन्होंने अप्रचलित एवं क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग करना आरंभ कर दिया जिसे अध्यापकगण भी पूर्णरूपेण समझ न पाये, अतएव उन अध्यापकों ने पंत को यह कहा कि वह हिंदी में भी उत्तीर्ण न हो सकेगा।

सन् १९१६ से पंत नियमित रूप से कविता लिखने लगे। कभी-कभी तो वे एक ही दिन में दो-तीन कविताएँ लिख लिया करते थे। पंत आरंभ से ही खड़ी बोली में कविता लिख रहे थे, व्रजभाषा को बे-मौसम की शहनाई मानते थे। इसी सयय उन्होंने 'हार' नामक एक उपन्यास लिखा, जो प्रकाशित नहीं हुआ। सन् १९१७ ई० में उन्होंने मैट्रिक की परीक्षा पास की। जुलाई १९२० में वे म्योर सेंट्रल कालेज में भरती हुए। उन दिनों वे हिन्दू बोर्डिंग हाउस में रहते थे। उन्होंने अपने लिए विषय चुना था—संस्कृत, इतिहास और तर्कशास्त्र। इसी वर्ष बोर्डिंग हाउस में एक कवि-सम्मेलन हुआ था जिसमें पंत ने 'स्वप्न' कविता पढ़ी—

बालक के कंपित अधरों पर,
किस अतीत स्मृति का मृदु हास ?
जग के इस अविरत निद्रा का,
करता नित रह-रह उपहास ?

उन स्वप्नों की स्वर्ण सरित का,
सजनि ! कहाँ शुचि जन्मस्थान ?
मुस्कानों में उछल उछल मृदु,
बहती वह किस ओर अजान ?

आगत विद्वानों ने पंत की काव्य-प्रतिभा की प्रशंसा की। उस समय पंत एक नौसिखुए कवि नहीं, वरन् हिन्दी कविता के यशस्वी कवि हो चुके थे। यहाँ प्रो० शिवाधार पाण्डेय के सम्पर्क में उनकी काव्य-प्रतिभा को पनपने का सुयोग्य अवसर प्राप्त हुआ। प्रो० शिवाधारजी उनकी प्रतिभा से विशेष प्रभावित हुए, अतः उन्होंने पंत को शेक्सपीयर-ग्रंथावली और लफ-काडियो हर्न की पुस्तकें भेंट की। इनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से पंत ने उन्नीसवीं सदी के रोमाण्टिक साहित्य का अध्ययन, मनन और चिंतन किया। निरन्तर अध्ययन के फलस्वरूप इनकी काव्य-प्रतिभा परिष्कृत हो उठी। सन् १९२५ में पंत आई० ए० के आखिरी साल के विद्यार्थी थे और उसी वर्ष असहयोग-आन्दोलन देश में आरम्भ हुआ था। उन दिनों महात्मा गाँधी प्रयाग आए थे और आनन्द भवन में ठहरे थे। यों तो पंत को राजनीति के प्रति कोई अभिरुचि नहीं थी, लेकिन विद्यार्थियों पर गाँधीजी के भाषणों का व्यापक प्रभाव पड़ा और सभी विद्यार्थियों के साथ उन्होंने भी कालेज छोड़ दिया। इस प्रकार उनकी शिक्षा वहीं समाप्त हो गई। 'असहयोग करके एकाध सप्ताह पंत 'इण्डिपेण्डेण्ट' के साईक्लोस्टाईल पर छापने के लिए जाते रहे। इसके बाद उनके लिए फिर राजनीति दूसरे लोक की चीज हो गई। उनके असहयोग का असली मतलब हुआ, विश्वविद्यालय की पढ़ाई से संन्यास ले कविता-सरस्वती की एकान्त आराधना।' असहयोग-आन्दोलन के तीन-चार साल तक प्रो० शिवाधार पाण्डेय के साथ पंत का घनिष्ठ सम्पर्क रहा। उन्होंने हिन्दी-संस्कृत के प्राचीन कवियों और अंग्रेजी साहित्यकारों की कृतियों के अध्ययन में ही मदद नहीं की, वरन् सदा प्रोत्साहन भी दिया। पंत ने सन् १९२२ के सितम्बर में 'उच्छवास' शीर्षक कविता लिखी जो अजमेर से प्रकाशित हुई। प्रो० शिवाधार पाण्डेय ने इसी

असहयोग-आन्दोलन और पंत

कविता से नये युग का आरंभ माना और हिन्दी के कुछ मान्य विद्वानों ने इसे नयी वस्तु मानी। बहुत-से विद्वानों ने इस कविता की मखौल उड़ाई। बख्शीजी ने इसे शब्दाडम्बर कहा। दो साल तक पंत ने साहित्य का विशेष अध्ययन किया। अब उनका जीवन साहित्य के लिए हो गया था। सन् १६२२ में कायस्थ पाठशाला में कवि-सम्मेलन था। वहाँ पंत ने 'बादल' शीर्षक कविता सुनाई जिसे सुनकर विरुद्ध सम्मति देनेवाले बख्शी भी अत्यन्त प्रसन्न हुए और बधाई दी। उस समय से बख्शीजी उनके प्रशंसक हो गए और उनकी कविताओं को आग्रहपूर्वक छापना प्रारंभ किया। सन् १६२४ में उनका झुकाव दर्शन की ओर रहा जिसके चिन्ह 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में विद्यमान हैं। सन् १६२४-२८ के बीच उन्होंने कुछ भी नहीं लिखा। इस

दैहिक, दैविक और भौतिक दुःख

अर्से में उन्हें पारिवारिक संकटों का सामना करना पड़ा। 'सन् १६२६ में मंझले भाई मर गए। उन्होंने बहुत भारी कारबार शुरू किया था। कारबार की देखभाल में उतना ख्याल नहीं था और ऊपर से अंधाधुन्ध खर्च। वे ६२००० रुपये का कर्ज छोड़कर मरे थे। पिता ने जायदाद वेचकर कर्ज को अदा किया, लेकिन अगले साल (सन् १६२७) वे भी चल बसे। परिवार का सारा आर्थिक ढाँचा टूटकर गिर पड़ा। पहले पंत को पैसे की कभी कमी नहीं होती थी। अब एक ओर यह भीषण आर्थिक परिवर्तन और दूसरी ओर दिमागी परेशानी। १६२६ के आते-आते चिंता के बोझ ने पंत के स्वास्थ्य को चौपट कर दिया। उस समय फारसी के एक विद्वान की सहायता से इंडियन प्रेस के लिए वे उमर खैय्याम की रुबाइयों का अनुवाद कर रहे थे। दो बजे दिन की गर्मी में वाहर निकले। लू लग गई। १४-१५ दिन बहुत कष्ट में रहे। उस समय दिल्लीवाले डा० जोशी भरतपुर में रहते थे। वह सम्बन्धी भी लगते थे। पंत उनके पास पहुँचे। डा० जोशी ने परीक्षा की और पूर्ण विश्राम करने की सलाह दी। डा० जोशी ने यह भी कहा कि अगर आहार-विहार का ध्यान न रखोगे, तो तपेदिक को सर पर आया ही समझो। उन्होंने मांस खाने के लिए जोर दिया। पंत चौदह साल से मांस छोड़े हुए थे। अब मांस खाना

शुरू किया और तीन मास तक डा० जोशी ही के पास रहे और उनका वजन ६८ पौंड से १३६ पौंड हो गया। १६३० के शुरू में पंत बिजनौर में चचेरी बहन के पास चले आये और अप्रैल तक वहीं रहे। यहीं उन्होंने कुछ कहानियाँ लिखीं जो 'मधुवन' के नाम से प्रकाशित हुईं। स्वास्थ्य के अच्छे होने के साथ पंत का दुःखवाद भी कम होने लगा और जल्दी ही वह पूर्ण आशावादी बन गन गए।"[1]

सन् १६३० के ग्रीष्म में पंत अल्मोड़ा लौट आये। वहाँ कालाकाँकर के महाराज अवधेश सिंह के छोटे भाई सुरेश सिंह से परिचय ही नहीं हुआ, वरन मित्रता भी हो गई। उनके आग्रह पर पंत कालाकाँकर चले आये। सन १६३०-३३ के बीच वे वहीं रहे। कुँवर साहब ने उन्हें सभी प्रकार की सुविधाएँ दीं। इसका संकेत पंत ने 'नौका-विहार' शीर्षक कविता में किया है—

कालाकाँकर का राजभवन सोया जल में निश्चिंत, प्रमन,
पलकों में वैभव-स्वप्न सघन।

मार्क्सवाद का अध्ययन

यहीं उन्होंने मार्क्सवाद की पुस्तकें पढ़नी शुरू की। 'तीन-चार साल तक वे मार्क्सवाद और रूसी लेखकों के ग्रन्थों को पढ़ते रहे। रहस्यवाद ने पूरी तौर से पिण्ड तो नहीं छोड़ा, लेकिन मार्क्सवाद ने अंतस्तल तक अपना प्रभाव जरूर डाला। भौतिकवाद को कोरा यांत्रिक जड़वाद समझकर उन्हें जो कुछ विरक्ति-सी आती थी, वह मार्क्सवादी भौतिवाद के 'गुणात्मक परिवर्तन' से जाती रही।' गुंजन और ज्योत्स्ना की रचना वहीं हुई। सन् १६३८ में उन्होंने 'रूपाभ' निकाला जो पीछे जाकर बंद हो गया।

उपसंहार

सभी प्रकार से पंत मुक्त हो गए। अब उनके लिए जीवन एक नया जीवन था। उनके जीवन का दृष्टिकोण बदल चुका था। अतएव सन् १६३४-३५ की प्रणीत कविताएँ 'युगान्त' के नाम से प्रकाशित हुईं। इस बीच वे कभी अल्मोड़ा में रहे और

---

१. राहुल सांकृत्यायन

कभी प्रयाग। सन् १९४३ में वे अल्मोड़ा में ही थे। सन् १९४३ में उन्होंने कानपुर, लखनऊ, आगरा, बड़ौदा, बम्बई आदि स्थानों का भ्रमण किया। 'कल्पना' चित्र के निर्माण के सिलसिले में वे पांडीचेरी भी गए थे। सन् १९४५-४६ में उन्होंने 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' की कविताएँ लिखीं। इसके बाद की उनकी काव्य-पुस्तक है 'उत्तरा', जिसमें पंत ने एक लम्बी भूमिका दी है। तदुपरान्त उनका एक गीति नाट्य-प्रकाशित हुआ—'शिल्पी' और हाल में उनका एक काव्य-संग्रह प्रकाशित हुआ है 'वाणी', यह उनकी आधुनिकतम कविताओं का संकलन है। राजकमल प्रकाशन, दिल्ली के अनुरोध पर पंतजी ने अपनी सुन्दर एवं श्रेष्ठ कविताओं का एक संग्रह 'रश्मिबंध' नाम से निकाला है जिसमें 'वीणा' से लेकर 'वाणी' तक की कविताएँ संकलित हैं और इसमें आरंभ से लेकर अब तक की काव्य-धारा पर लम्बी टिप्पणी भी है। वस्तुतः यह उनकी कविताओं का सुन्दर संकलन है। भविष्य में पंत से बहुत आशा है।

पंत रचनात्मक साहित्य के मर्मस्पर्शी कलाकार हैं और सम्प्रति वे आल इंडिया रेडियो में हिन्दी कार्य-क्रमों का संचालन एवं निर्देशन कर हैं। इस कार्य में भी उनकी प्रतिभा और मौलिकता दीख पड़ती है। सुतरां, पंत उत्तरोत्तर विकास के पथ पर हैं।

आधुनिक हिन्दी काव्य की रूपरेखा

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र (सन् १८५०-८५) से वर्त्तमान हिन्दी-काव्य का आरंभ होता है, परन्तु एक प्रकार से उनका काव्य संक्रान्तिकाल का काव्य है। उन्हीं से रीतिकाल की परम्पराओं का अन्त और नवीन प्रवृत्तियों का प्रादुर्भाव होता है। रीतिकाल में जो शृंगार की धारा बिहारी, देव, पद्माकर आदि कवियों के द्वारा 'बहायी' गई थी वह क्रमशः क्षीण होने लगी, क्योंकि उसमें हृदय की सच्ची अनुभूति न रही। रीतिकालीन कवियों ने हिन्दी कविता को मनोरंजन का माध्यम बना लिया था। अब लोगों का मन ऐसी कविताओं से उचट चुका था। साहित्य की इसी विषम परिस्थिति में अंग्रेजी राज्य की स्थापना हुई। प्रकृति के नियमानुसार अपने अतीत के गौरव का स्मरण कर बदला लेने की भावना से विजित राष्ट्र में एक नयी चेतना आती है, और साहित्यिक, सामाजिक तथा राजनीतिक—सभी परिस्थितियों में परिवर्त्तन और क्रान्ति होती है। मानव-जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हलचल का समगाम होता है। ऐसा ही भारतवर्ष में भी हुआ। यहाँ की जनता को भी जब यह परिज्ञान हो गया, कि अंग्रेज केवल राजनीतिक प्रभुत्व को ही पाकर संतुष्ट नहीं हैं, प्रत्युत् वे सांस्कृतिक विजय के लिए भी उद्योगशील हैं, तो वह नागिन की तरह फुफकार उठी, जिसके फलस्वरूप सभी क्षेत्रों में आंदोलन हुआ और उसका प्रभाव साहित्य पर भी पड़ा। पहले हमारा साहित्य कामिनी और कंचन के रेशमी बंधन में बँधा था, पर शासन की बागडोर के परिवर्तन ने साहित्य को जीवन से सम्बद्ध कर दिया। भारतेन्दु के पहिले कविता के विषय हैं—राष्ट्रीयता, वैराग्य, भक्ति और शृंगार, परन्तु वर्त्तमान हिन्दी-काव्य में इन परम्परागत भावनाओं

रीतिकाल का अंत और भारतेन्दु युग का प्रादुर्भाव

का रूप ही बदल गया। इस युग की सबसे बड़ी विशेषता एक सार्वदेशीय राष्ट्रीयता का विकास है। भारतेन्दु-युग में काव्य-विषय का परिवर्तन हुआ तो जरूर; परन्तु कला-पक्ष परम्परागत ही रहा।

द्विवेदी युग में खड़ीबोली में काव्य-रचना

इसके बाद दूसरे समर्थ साहित्यिक आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी हुए। उन्होंने अपने युग के साहित्य को प्रभावित किया और उन्हीं के नाम पर इस युग का नाम द्विवेदी-युग (सन् १९००-१५) पड़ा। भारतेन्दु-युग में राजभक्ति और देशभक्ति का समन्वय पाया जाता है तो द्विवेदी-युग में देशभक्ति की भावना प्रबल रही और राजभक्ति दूर भाग गई। यह ठीक है कि भारतेन्दु ने हिन्दी-काव्य को नए-नए विषयों की ओर उन्मुख किया, परन्तु उनकी काव्य-भाषा ब्रजभाषा ही रही। द्विवेदी-युग में काव्य-भाषा बनी खड़ी बोली। यों तो खड़ी बोली का आन्दोलन मुजफ्फरपुर के बाबू अयोध्या प्रसाद खत्री द्वारा खड़ा किया जा चुका था, पर महावीर प्रसाद द्विवेदी के सहयोग के कारण खड़ी बोली को अप्रतिम बल मिला। सुतरां, द्विवेदीजी ने काव्य के क्षेत्र में एक नई भाषा दी—खड़ी बोली, जो अंतःसलिला के रूप में कविता में बह रही थी। और उस युग के कविगण—सर्वश्री मैथिलीशरण गुप्त, नाथूराम शंकर शर्मा, गोपालशरण सिंह, हरिऔध, रामनरेश त्रिपाठी, गया प्रसाद शुक्ल, 'सनेही' आदि—खड़ीबोली में काव्य का प्रणयन करने लगे। 'हिन्दी में परम्परा से व्यवहृत छंदों के स्थान पर संस्कृत के वृत्तों का चलन हुआ जिसके कारण संस्कृत पदावली का समावेश बढ़ने लगा। भक्तिकाल और रीतिकाल की परिपाटी के स्थान पर पिछले संस्कृत साहित्य की पद्धति की ओर लोगों का ध्यान बँटा। द्विवेदीजी 'सरस्वती' द्वारा बनाबर कविता में बोलचाल की सीधी-सादी भाषा का आग्रह करते रहे जिससे इतिवृत्तात्मक (Matter of fact) पद्यों का खड़ी बोली में ढेर लगने लगा।' इस प्रकार इस युग की कविताओं में हृदय का स्पन्दन नहीं है; भाव, भाषा, छन्द की वह अन्विति नहीं है, जो काव्य में अतीन्द्रिय झंकार भर देती है।

प्रथम महायुद्ध (सन् १९१४-१८) से वर्त्तमान हिन्दी कविता की धारा एक नई दिशा की ओर बहती है जो सन् १९३५ तक एक ही धारा में गुम्फित रही। इस युग का नामकरण किसी व्यक्ति विशेष पर नहीं हुआ, क्योंकि भारतेन्दु या द्विवेदीजी के ऐसा कोई समर्थ व्यक्ति नहीं रहा, वरन् प्रमुख प्रवृत्ति को दृष्टिपथ में रखते हुए साहित्यिक महारथियों ने इस काल को 'छायावाद-काल' के नाम से विभूषित किया। वास्तव में 'यह काल खड़ी बोली की कविता का स्वर्णकाल है। राजनीति के क्षेत्र में महात्मा गांधी का अवतरण इस युग की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण घटना है। इसी युग में असहयोग-आन्दोलन और सविनय अवज्ञा-आन्दोलन चले, जिन्होंने आगे बल पाकर ब्रिटिश साम्राज्य की नींव हिला दी। महात्मा गांधी का व्यक्तित्व इतना महान था कि उनके राजनीतिक मंच पर आने के बाद का युग गांधीयुग कहलाता है। इस युग को कविता में श्री मैथिलीशरण गुप्त ने और गद्य में स्वर्गीय प्रेमचन्द ने प्रतिबिंबित किया। बीसवीं शताब्दी के साहित्य में गांधीयुग के ये दो गगन-चुम्बी आलोक-स्तंभ हैं। गांधीजी को केवल राजनीतिक मानना उसी प्रकार का भ्रम होगा जिस प्रकार मार्क्स को केवल अर्थशास्त्री मानना। मार्क्स के समान ही गांधीजी ने जीवन को देखने के लिए एक विराट दृष्टि दी—एक जीवन-दर्शन दिया। उनका प्रभाव राजनीति, धर्म, समाज सभी पर पड़ा। इतना होते हुए भी गांधीवादी कवि इस युग में बहुत थोड़े हुए—उदाहरण के लिए माखनलाल चतुर्वेदी, सियारामशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान, सोहनलाल द्विवेदी आदि। मैथिलीशरणजी को छोड़कर इस युग ने जिन महान् कवियों को उत्पन्न किया वे और ही थे। उनका व्यक्तित्व एक भिन्न ही दिशा में विकसित हो रहा था। उन्हीं के कारण यह युग 'छायावादी युग' कहलाया। गांधीवादी के प्रति उनकी सहानुभूति थी, किन्हीं अंशों में वे उसके समर्थक और पोषक रहे, परन्तु उन्हें गांधीवादी नहीं कहा जा सकता। गांधीवाद अपनी सीमा में उन्हें बाँधकर नहीं रख सका। वे थे जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानंदन पंत, सूर्यकान्त त्रिपाठी

छायावाद-युग

'निराला' और महादेवी वर्मा। इनमें से कोई एक भी उन चार कवियों से जिनके नाम ऊपर गिनाये गये हैं, मिलाकर तौल में भारी बैठेगा।' [1]

सन् १६३५ से प्रगतिवाद-युग आरंभ होता है। भारतवर्ष में इसका सर्वप्रथम सम्मेलन स्वर्गीय प्रेमचन्द के सभापतित्व में सन् १६३६ में हुआ।

प्रगतिवाद-युग

प्रगतिवाद मार्क्सवाद का सहोदर भाई है। इसका जन्म छायावाद की अत्यधिक कल्पनाशीलता, भावुकता और आदर्शवादिता की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ। 'प्रगतिवादी काव्य के मूल में जीवन और साहित्य के अनन्य संबंध की भावना ही है' यद्यपि इस विषय में वह भी छायावाद की तरह प्रगतिवाद से ग्रसित है। छायावाद जीवन से भागकर साहित्य, प्रकृति, दर्शन, धर्म और सौन्दर्य में आश्रय ग्रहण करता है, प्रगतिवाद केवल जीवन की अन्न-वस्त्र और यौन की समस्याओं में ही उलझ कर रह जाता है। उसके लिए न पूर्ववर्ती साहित्य का अस्तित्व है, न प्रकृति के मनोरम चित्र हैं। दर्शन उसके लिए वितंडावाद है और धर्म पाखण्ड। इस प्रकार इस नए विद्रोह में भी एक प्रकार की अस्वस्थता आ गई।' चाहे जो भी हो, प्रगतिवाद ने वर्त्तमान हिन्दी कविता को धरती पर ला छोड़ा है और उसने भू-जीवन को नई श्रद्धा से अलंकृत किया है।

प्रगतिवाद अपनी शैशवावस्था में था ही, कि हिन्दी कविता-कानन में प्रयोगवाद आ धमका। हिन्दी-कविता में प्रयोगवाद ठीक उसी प्रकार है,

प्रयोगवाद

जिस प्रकार कविता में कवितावाद। हिन्दी-साहित्य के अध्ययनशील पाठक तो यह जानते ही हैं कि साहित्य में प्रयोग तो आरंभ से ही होता रहा है और जब भी साहित्य में कोई नवीन वस्तु प्रवेश करती है तो वह अपनी प्रयोगावस्था में रहती है। 'प्रयोगों की यह परम्परा नई नहीं है, वह आज के मस्तिष्क की उपज भी नहीं है, हाँ—उसे 'वाद' बनाने का दुराग्रह नया कहा जा सकता है। सबसे बड़ी दिक्कत प्रयोगवादी रचनाओं की सीमा-रेखा निर्धारित करने में होती है। प्रगतिवाद

---

१ विश्वम्भर 'मानव'।

और प्रयोगवाद दोनों में इतना सूक्ष्म भेद है कि पार्थक्य कभी-कभी कठिन-सा हो जाता है और अनेक प्रगतिवादी रचनाएँ प्रयोगवाद के अन्तर्गत परिगणित की जा सकती हैं। प्रयोगवादियों ने अब तक साहित्य-क्षेत्र में कुछ अछूते विषयों पर दृग्पात किया है सही, किन्तु उनका अपना कोई स्वतंत्र दर्शन नहीं है। अभी उनकी कविता का कोई रूप भी स्पष्ट नहीं हो पाया है। अधिकांश प्रयोगवादी रचनाओं में जो मिलता है वह है गहरी अस्पष्टता, धुँधलापन, वैचित्र्य और प्रत्येक वस्तु को एक नवीन दृष्टिकोण से देखने का गहरा मोह। जबसे साहित्य में यथार्थ के चरित्रांकन की प्रवृत्ति बढ़ी है, सारा साहित्य वैयक्तिक वास्तविकता की दुरूह एवं कल्पनात्मक अभिव्यक्तियों से भरता जा रहा है। वह जिन्दगी के किसी भी पहलू, किसी भी पक्ष का दिग्दर्शक और कहीं से भी मसाला बटोरने की ताक में रहता है। मनोगत द्वन्द्व-संघर्ष, अन्दरूनी आवेग-प्रवेगों को समझने का उसके पास न अवकाश है और न उत्साह। निष्ठुर व्यक्तिवादिता पनप रही है, सहज तत्व गौण पड़ गए हैं। अन्तर्जगत् की प्रहेलिकाओं में उलझा कवि नहीं समझ पा रहा है कि वह लिखना क्या चाहता है और लिख क्या रहा है। उसके तर्क बाहर से सत्य प्रतीत होते हुए भी भीतर से थोथे और बेजान हैं। उसकी लेखनी राह-बेराह रेंगती है और निराधार, अलक्ष्य तारों को झनझना देती है। हमें कोई आपत्ति न होगी यदि प्रयोगवादी कवि जीवन के विराट सपनों को अपने कृतित्व में अधिकाधिक साकार करें, अपनी निश्छल और बिखरी स्वानुभूति को आकर्षक और नूतन ढंग से दूसरों के सामने रखें, उनकी अभिव्यक्ति में जनवादी स्वर हो, उनकी पुकार में मर्म को कचोटनेवाली संवेदना हो और सबसे बड़ी बात उनमें व्यापक सत्य, सर्वांगपूर्णता और राग-तत्वों को उद्वेलित करने की शक्ति हो।' (शचीरानी गुर्टू)

पहुँचावाद

इस प्रयोगवादी कविता से जब हमारे कवि ऊब गए तो वे इसकी प्रतिक्रिया स्वरूप पहुँचावाद कविताओं का सृजन करने लगे। उन्होंने इस प्रकार की कविताओं का नाम रखा पहुँचवाद,

जो दीर्घसूत्री कविता है। 'प्रयोगवाद' और 'पहुँचावाद' का भविष्य क्या है? अंधकार ही जानता है, प्रकाश नहीं।

कविता का भविष्य

'वादों' के चक्कर ने हिंदी कविता को अपने वाग्जाल से आच्छादित कर लिया है। पत्रों में कोई कविता प्रकाशित हुई कि नहीं, लोगों ने उसे 'वादों' के कठघरे में बन्द करना शुरू कर दिया, जिसके फलस्वरूप कविता कविता नहीं रह जाती, प्रत्युत् कुछ और हो जाती है। अगर साहित्य में इस प्रकार की प्रवृत्ति बनी रही तो कविता मर जायगी और हिन्दी कविता का आरंभ फिर आदि-काल से होगा।

पंत पर बाह्य प्रभाव

विश्व-साहित्य के महान साहित्यकारों के अंतरंग और बहिरंग जीवन पर बाह्य वतावरण का प्रभाव अवश्य पड़ता है। यह सृष्टि का नियम है, तो भला पंत कैसे बचे रह जाते! यह तो मालूम ही है कि पंत हिन्दी के सुकुमार कवि हैं और वे दो प्रकार से अत्यधिक प्रभावित हैं—सब से पहली बात है भौतिक वातावरण और दूसरी बात है साहित्यिक अध्ययन। इन दोनों प्रकार का प्रभाव उनके कोमल हृदय पर पड़ा जिसकी अभिव्यक्ति उनकी कविताओं में हुई है। किसी प्रकार के प्रभाव से कवि की महत्ता घट नहीं जाती है और न ही उनका गौरव कम जाता है। जीवन के आरंभिक दिनों में पंत पर बाह्य सृष्टि के स्वच्छन्द वातावरण का अमिट प्रभाव पड़ा है। पंत अपनी साहित्य-साधना में कई ढंग से प्रभावित हुए हैं, जिनकी चर्चा निम्नांकित पंक्तियों में की जाती है—

भौतिक वातावरण और साहित्यिक अध्ययन का प्रभाव

कवि का जन्म प्रकृति की गोद में हुआ था। कवि की जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश (अल्मोड़ा, जिसे गाँधीजी ने 'भारतवर्ष का स्विटजरलैंड' की संज्ञा प्रदान की है) में हुआ था और वहीं के प्रकृति-निरीक्षण से उन्हें काव्य-प्रणयन की प्रेरणा मिली। इस बात का संकेत पंत ने कई स्थानों पर किया है। आधुनिक कवि की भूमिका में कवि ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि 'कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है, जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है।' कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा

प्राकृतिक सौन्दर्य से काव्य-प्रणयन की प्रेरणा

करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुन कर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था, तो वह दृश्यपट चुपचाप, मेरी आँखों के सामने घूमा करता था। अब मैं सोचता हूँ कि क्षितिज में सुदूर तक फैली, एक के ऊपर एक उठी, ये हरित नील धूमिल, कूर्मांचल की छायांकित पर्वत-श्रेणियाँ, जो अपने शिखरों पर रजत-मुकुट हिमालय को धारण किए हुई हैं, और अपनी ऊँचाई से आकाश की अवाक् नीलिमा को और भी ऊपर उठाए हुई हैं, किसी भी मनुष्य को अपनी महान् नीरव संमोहन के आश्चर्य में डुबा कर, कुछ काल के लिए, भुला सकती हैं! और यह शायद पर्वत प्रान्त के वातावरण ही का प्रभाव है कि मेरे भीतर विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर आश्चर्य की भावना, पर्वत ही की तरह, निश्चित रूप से, अवस्थित है। प्रकृति के साहचर्य ने जहाँ एक ओर मुझे सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया, वहाँ दूसरी ओर जनभीरु भी बना दिया। मेरा विचार है कि वीणा से ग्राम्या तक मेरी सभी रचनाओं में प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेम किसी रूप में वर्त्तमान है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
'बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?'

—आदि वीणा के चित्रण, प्रकृति के प्रति, मेरे अगाध मोह के साक्षी हैं। प्रकृति-निरीक्षण से मुझे अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में अधिक सहायता मिली है, कहीं उससे विचारों की भी प्रेरणा मिली है। प्राकृतिक चित्रणों में प्रायः मैंने अपनी भावनाओं का सौन्दर्य मिलाकर उन्हें ऐन्द्रिक चित्रण बनाया है, कभी-कभी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौन्दर्य का लिवास पहना दिया है।···प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखनेवाली, नारी के रूप में देखा है। साधारणतः प्रकृति के सुन्दर रूप ही ने मुझे अधिक लुभाया है।' [आधुनिक कवि : पर्य्यालोचन, पृ० सं० १—३]। इस कथन से उनके काव्य के मर्मों को समझने में बहुत सहायता मिलती है।

पंत का कवि चिन्तनशील और अध्ययनप्रिय है। पंत पर धार्मिक प्रवृत्तियों का प्रभाव परोक्ष रूप से पड़ चुका था जब कि वे ग्यारह वर्ष के थे; क्योंकि उनके पिता धार्मिक प्रवृत्तिवाले थे। उनमें साधु-संतों के प्रति अनुराग था और सोलह वर्ष की अवस्था में उन्होंने रामायण, महाभारत, गीता आदि का विशेष अध्ययन किया था। कालेज-जीवन में उन्होंने अपना प्रिय विषय चुना था तर्कशास्त्र, जिसके फलस्वरूप उन्हें दर्शन की ओर अग्रसर होना जरूरी था। अतएव उन्होंने भारतीय दर्शन और उपनिषद् का गंभीर अध्ययन किया जिसके फलस्वरूप उनकी काव्य-भावनाओं में दर्शन की ऊर्मियाँ लहराने लगीं। वे अपने युग के दार्शनिकों से प्रभावित हुए जिसका उल्लेख 'आधुनिक कवि' में कवि ने स्वयं किया है—'स्वामी विवेकानन्द और रामतीर्थ के अध्ययन से, प्रकृति-प्रेम के साथ ही, मेरे प्राकृतिक दर्शन के ज्ञान और विश्वास में भी अभिवृद्धि हुई। 'परिवर्तन' में इस विचारधारा का काफी प्रभाव है।....दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रभाव की दिशा बदल दी। मेरी निजी इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई।...किन्तु दर्शन का अध्ययन, विश्लेषण की पैनी धार से, जहाँ जीवन के नाम, रूप गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि में भटकाता है वहाँ वह छिलके में फल के रस की तरह व्याप्त एक ऐसे सूक्ष्म संश्लेषणात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्र को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने मेरे मन को अस्थिर कर दिया।

भारतीय दर्शन और उपनिषद् का प्रभाव

'जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन,

बरसो लघु-लघु तृण तरु पर हे चिर अव्यक्त चिर नूतन !'

इसी सविशेष कल्पना के सहारे, जिसने 'ज्योत्स्ना' को और गुंजन की 'अप्सरा' का जन्म दिया है।....दर्शन मनुष्य के वैयक्तिक संघर्ष का इतिहास है।' इससे स्पष्ट होता है कि पंत भारतीय दर्शन की विचारधाराओं से विशेष

प्रभावित रहे हैं। इस कोटि की कविताओं में परिवर्त्तन, सुख-दुःख, अनित्य जग, नित्य जग, प्रार्थना, तप, उर की डाली, नौका-विहार आदि हैं। युग के दार्शनिकों ने ही पंत की दार्शनिक विचारधाराओं को पुष्ट बनाया।

कवि पंत की काव्य-प्रतिमा को प्रो० शिवाधार पाण्डेय के सम्पर्क से फलने-फूलने का अवकाश मिला। इनकी प्रेरणा और प्रोत्साहन से कवि ने

देशी-विदेशी साहित्यकारों का प्रभाव

उन्नीसवीं सदी के रोमाण्टिक साहित्य का अध्ययन, मनन और चिंतन किया। उसका प्रभाव पंत पर पूरा पड़ा। इस प्रभाव से प्रतिविम्बित होकर कवि में सौंदर्य-चेतना जागी जिसके कारण उनकी कविताओं में सौंदर्य की सुन्दर झाँकी मिलती है। इस सम्बन्ध में पंत का कहना है—'पल्लव-काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों—मुख्यत: शेली, वर्ड्सवर्थ, कीट्स और टेनिसन—से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौन्दर्य बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीनयुग की, सौन्दर्य-कल्पना ही में परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का नारा (slogan) भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ। और यदि लिखना एक unconscious-conscious process है तो मेरे उपचेतन ने इन कवियों की निधियों का यत्र-तत्र उपयोग भी किया है, और उसे अपने विकास का अंग बताने की चेष्टा की है।' सुतरां, इन पंक्तियों से यह स्पष्ट होता है कि पंत 'पल्लव-काल' की रचनाओं में इन देशी-विदेशी कलाकारों से प्रेरित या प्रभावित थे। सच तो यह है कि इन कवियों का प्रभाव कुछ-न-कुछ बाद की रचनाओं में भी परिलक्षित होता है। विद्यार्थी-जीवन के पहले प्रभात में पंत द्विवेदी-युग के प्रतिनिधि कवि मैथिलीशरण गुप्त से प्रभावित थे और उन्होंने उनका प्रभाव अपनी काव्य-साधना के शैशव में स्वीकार किया है। पंत की प्रारंभिक कविताओं में हरिगीतिका छंद है जो उन्हें गुप्तजी के द्वारा प्राप्त हुआ है। यही कारण है कि इलाचन्द्र जोशी और श्यामाचरण पंत उन्हें गुप्तजी का नकलची कहा

करते थे। इसके बाद उन्होंने रोमाण्टिक साहित्य का प्रभाव बँगला साहित्य से ग्रहण किया। भारतीय साहित्य में कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' की चर्चा चली हुई थी। फलतः पंत ने उसके रस का आस्वादन किया और जी खोल-कर उनकी कला को अपनाया। पंत की प्रार्थना-विषयक कविताओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव है। निराला ने पंत और रवि बाबू की कविताओं की पंक्तियों को उद्धृत कर और साम्य दिखलाकर उन्हें 'चौरकला में निपुण' की संज्ञा प्रदान की। इस प्रकार उन्होंने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि पंत के काव्य में मौलिक तत्वों का नितान्त अभाव है। अगर किसी के प्रभाव पड़ जाने से किसी कवि की मौलिकता नष्ट हो जाती है तो हम कहेंगे कि कवीन्द्र रवीन्द्र की कविता में भी मौलिकता नहीं है। वास्तव में कलाकार की मौलिकता उसकी अभिव्यक्ति में निहित है। पंत ने तो स्वयं स्वीकार किया है कि वे कवीन्द्र रवीन्द्र से विशेषतया प्रभावित हैं। कुछ उदाहरण देखिये —

(१) 'तोमार मंदिर गंध अंध वायु बहे चारिभिते'—रवीन्द्र
'गंध-मुग्ध हो अंध समीरण लगा थिरकने विविध प्रकार'—पंत

(२) 'अतल रहस्य जेन चाय बलिवारे'—रवीन्द्र।
'......................अतल के बतलाती जो भेद अपार'—पंत।

(३) 'नीरव सुरेर शंख बाजे'—रवीन्द्र।
'नीरव-घोष-भरे शंखों में'—पंत।

(४) 'गेंथेछि अश्रु मालिका'—रवीन्द्र।
'मेरे आँसू गूँथ'—पंत।

(५) 'शस्य शीर्षे शिहरिया काँपि ऊठे धरार अंचल'—रवीन्द्र।
'शस्यशीर्षराशि धरार अंचलतल भरि'—रवीन्द्र।
'शस्य-शून्य बसुधा का अंचल—पंत।

(६) 'विकसित विश्व वासनार अरविंद'—रवीन्द्र।
'विपुल-वासना-विकच विश्व का मानस शतदल'—पंत।

(७) 'आपन रूपेर राशे
आपनि लुकाए हासे'—रवीन्द्र।
'रूप का राशि राशि वह रास दृगों की यमुना श्याम'—पंत।

(८) 'द्विधाय जड़ितपदे कंप्रवक्षे नम्रनेत्रपाते
स्मितहास्ये नईं चल सलज्जित वासरशय्याते
स्तब्ध अर्द्धराते'—रवीन्द्र : उर्वशी।

प्रिये, प्राणों की प्राण !
अरे, वह प्रथम मिलन अज्ञात,
विकंपित-मृदु-उर, पुलकित गात;
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद; नमित-पलक-दृक्-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण,
मधुरता में सी छिपी अजान;
लाज की छुई-मुई-सी म्लान !
प्रिये, प्राणों की प्राण !
—पंत : गुंजन।

(९) 'तोमार सोनार थालाय साजाबो आज
दुखेर अश्रु-धार।
जननी गो, गांथबो तोमार
गलार मुक्ताहार।
....
तोमार बुके शोभा पावे आमार
दुखेर अलंकार।'— रवीन्द्र
'मा, मेरे जीवन की हार
तेरा मंजुल हृदय हार हो अश्रुकणों का यह उपहार;
... ...
तेरे मस्तक का हो उज्ज्वल श्रम-जलमय मुक्तालंकार।'—पंत।

(१०) 'तरंगित महासिंधु मंत्र-श्रांत, भुजंगेर-मत
पड़ेछित पद-प्रान्ते, उच्छ्वसित फणलक्ष शतकरि अवनता।'

—रवीन्द्र : उर्वशी।

'अहे वासुकि सहस्रफन!
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरंतर
छोड़ रहे हैं जग के, विक्षत वक्षस्थल पर
शत-शत फेनोच्छ्वसित स्फीत फूत्कार भयंकर।'—पंत।

—यों तो निरालाजी ने उन्हें 'चौरकला में निपुण' कहा है [1] जो उपयुक्त नहीं है। कवि ने तो स्वयं इनकी भावनाओं के प्रभाव को unconscious-conscious process कहा है।

पंत ने यह भी स्वीकार किया है कि उनपर १६वीं सदी के अंग्रेजी के रोमाण्टिक कवियों का भी प्रभाव पड़ा है; क्योंकि उन्होंने अपने प्रो० शिवाधार पाण्डेय के प्रोत्साहन और प्रेरणा से उन कवियों के साहित्य का अध्ययन विशेष रूप से किया। अतएव उनका प्रभाव पड़ना अनिवार्य था। 'वीणा' और 'ग्रन्थि' की कविताओं पर महाकवि कालिदास और कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव पड़ा है और उसके बाद की कृतियों (पल्लव से ज्योत्सना) पर रोमाण्टिक साहित्य का। इस सम्बन्ध में डा० नगेन्द्र ने 'सुमित्रानन्दन पंत' नामक आलोचनात्मक पुस्तक में लिखा है कि जिन दिनों पंतजी प्रयाग विश्वविद्यालय में पढ़ रहे थे, वहाँ के अंग्रेजी वातावरण ने उनको पश्चिमी कवियों की ओर आकृष्ट किया। अब पंतजी पर रोमाण्टिक कवि शेली, कीट्स और विक्टोरियन कवि टेनीसन का प्रभाव स्पष्ट रूप से पड़ा। उनपर सबसे अधिक ऋण कविवर शेली का है—भारत के अन्य कवियों पर भी—जैसे डा० टैगोर, देवी सरोजिनी, श्रीमती वर्मा आदि पर उनका प्रभाव सर्वाधिक है, क्योंकि उनका आदर्शवाद और रंगीन कल्पना भारतीय हृदय के अनुकूल है। पंतजी में प्रारंभ से ही एक प्लैटोनिज्म के दर्शन होते हैं, जो गुंजन, ज्योत्स्ना और पाँच कहानियाँ में आकर अधिक

---

१ पंत और पल्लव—सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पृष्ठ ११-१२

परिपुष्ट हो गया है। यह प्लैटोनिज्म, अगर मैं भूल नहीं करता, उनको शेली से ही प्राप्त हुआ है। कल्पना और स्वप्न की सहायता से एक आदर्श साम्राज्य-स्थापन की भावना जिसमें स्नेह, सौंदर्य और सहानुभूति का प्रचार एवं प्रेम का नवीन स्वर्ग, सौन्दर्य का नवीन आलोक और जीवन का नवीन आदर्श होगा, शेली की आदर्श भावना (Idealism) से पूर्णतया मिलती है। शेली ने भी अपने प्रोमीथियस अनबाउण्ड में एक ऐसे जीवन का सन्देश दिया है जिसमें मानवता की मुक्ति, भ्रातृत्व, प्रेम, समानता, स्वतंत्रता, आध्यात्मिक पवित्रता, एवं रूढ़ि-मुक्तता का प्रचार होगा। यह संसार एकान्त सुन्दर और मानव के अनुकूल होगा। फिर भी शेली और पंत दो व्यक्ति हैं, शेली का-सा पंत में आवेश कहाँ, साथ ही पंतजी का-सा चिन्तन और शान्ति शेली में अप्राप्य है। कला की दृष्टि से, पंतजी की रंगीन कला और सस्वर ढुलकते हुए पदों में शेली के शिष्यत्व का आभास मिलता है। इसके अतिरिक्त कुछ कविताओं पर शेली का स्पष्ट प्रभाव है—पंतजी के बादल को शेली के 'Cloud' से प्रेरणा मिली है। उन दोनों की प्रथम पुरुषवाली शैली, प्रवाह और कहीं-कहीं भाव और शब्दावली भी एक-सी है। फिर भी पंतजी ने 'बादल' में शेली के 'Cloud' के विरुद्ध ही अपना दृष्टिकोण रखा है—अर्थात्—शेली का बादल स्वर्ण और रजत-रश्मियों से, सूर्य और चन्द्रमा से खेलनेवाला बादल है, उनकी चित्र-सामग्री भी सभी रम्य है; परन्तु पंतजी ने बादल का धूमधुआँरा रूप अधिक ग्रहण किया है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि शेली ने उसका 'विकट महा आकार' नहीं अपनाया है अथवा पंतजी ने बादल के कोमल स्वरूप का सर्वथा वहिष्कार किया है, परन्तु विशेषता एक में कोमल स्वरूप की और दूसरे में भयंकर की है।"[१] हम अंग्रेजी कवियों से समता-प्राप्त पंक्तियों का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हैं, यथा—

1. While I sleep in the arms of the blast. —Shelley

---

१ सुमित्रानंदन पंत—डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ११११-१२।

जगत प्राण के भी सहचर।

2. The Sanguine Sunrise, with his meteor eyes,
And his burning plumes outspread,

—Shelley

उदयाचल से बाल-हंस फिर उड़ता अम्बर में अवदात
फैल स्वर्ण पंखों से हम भी......................

3. When I widen the rent in my wind-built tent

—Shelley

कभी हवा में महल बनाकर सेतु बाँध कर कभी अपार।

4. And laugh as I pass in thunder.— —Shelley

कड़क-कड़क कर हँसते हम सब थर्रा उठता है संसार।

5. The one remains, the many change and pass
Heavens, light for ever shines, earth's.

—Shelley

एक ही तो असीम उल्लास—विश्व में पाता विविधाभास
तरल जलनिधि में 'हरित विलास' शान्त अम्बर में नील।

6. Spirit of Beauty, that dost consecrate, with thine own hues all thou dost shine upon of human thought or form, where art thou gone.

—Shelley

एक वीणा की मृदु झंकार कहाँ है सुन्दरता का सार ?
तुम्हें किस दर्पण में सुकुमारि दिखाऊँ मैं साकार ?

7. That garden sweet; that lady fair
And all sweet shapes and odours there
In truth, have never passed away
It is we, it is ours, are changed, not they.

—Shelley

इस धारा-सा ही जग का क्रम—शाश्वत इस जीवन का उद्गम।
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत शशि का यह रजत हास ।।

8. And the tremulous lips dare not speak
What is told-by the soul—felt eye.

—Shelley

आओ सखि हम बाँह खोलकर, मिलकर गले जुला लें प्राण।
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में हो जायें द्रुत अंतर्धान ।।

9. Spouse ! Sister ! Angel ! Pilot of the Fate !

(Epipsychidion—Shelley)

देवि मा, सहचरि प्राण !

10. All the earth and air
With thy voice is loud,

(To A Skylark—Shelley)

मधुर मुखरित हो उठा अपार, जीर्ण जग का विषण्ण उद्यान।

11. Teach me half the gladness
That thy brain must know,
Such harmonious madness
From my lips would flow,

सिखादो ना हे मधुपकुमारि !
मुझे भी अपना मीठा गान।

12. Unfathomable sea ! whose waves are years,
Ocean of time, whose waters of deep woe
And brackish with salt of human tears !
Thou shoreless flood, which in the ebb and flow
Claspest the limits of mortality.
And sick of prey, yet howling on for more
Vomitest thy wrecks on its inhospitable shore
Trecherous in calm and terrible in storm
Who shall put forth on thee
Unfathomable sea ?

अहे महाम्बुधि ! लहरों से शत लोक चराचर,
क्रीड़ा करते सतत तुम्हारे स्फीत वक्ष पर ;
तुंग तरंगों से शत युग, शत-शत कल्पान्तर,
उगल महोदर में विलीन करते तुम सत्वर ;
शत सहस्र रवि-शशि, असंख्य ग्रह, उपग्रह, उडुगण,
जलते बुझते हैं स्फुलिंग से, तुम में तत्क्षण ;
अचिर विश्व में अखिल, दिशावधि, कर्म वचन मन,
तुम्हीं चिरन्तन, अहे विवर्तनहीन विवर्तन !

13. Then, sing ye birds, sing, sing a joyous song
—Wordsworth

'गाओ, गाओ, विहग-बालिके, तरुवर से मृदु मंगल गान'

14. Ring out the old, ring in the new

नष्ट-भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन ।

15. Ring out……cause
And ancient forms of party strife
Ring out the false pride in place and blood,
The civic slander and the spite

झरें जाति कुल वर्ण-पर्ण धन
अंध नीड़ से रूढ़ि-रीति छन,
व्यक्ति-राष्ट्रगत राग-द्वेष रण
झरें मरें विस्मृति में तत्क्षण,

16. Thou best philosopher, seer blest !
—Wordsworth

कौन तुम गूढ़ गहन अज्ञात ।

—इन अवतरणों से स्पष्ट होता है कि पंत एक अध्ययनशील कवि हैं। विश्व-साहित्य में जो भी सजग कवि होगा, वह किसी-न-किसी रूप में अपने पूर्ववर्ती साहित्यकारों से प्रभावित रहेगा, वह बच नहीं सकता है; तो पंत

के कवि-यश पर स्याही पोतना हमारी मूर्खता है। इनकी कविताओं पर उन विदेशी कवियों का प्रभाव है पर इनकी आत्मा भारतीय है।

पंत अध्ययन और अनुशीलन से तो प्रभावित हैं ही, साथ-साथ वे युग की समस्याओं से भी प्रभावित हैं; क्योंकि वह एक सामाजिक प्राणी हैं।

युग की समस्याओं का प्रभाव

सामाजिक प्राणी होने के कारण वह समाज के बीच फैली हुई समस्याओं के प्रभाव से वंचित नहीं रह सकते। पंत को विद्यार्थी-जीवन में स्वामी विवेकानंद और रामतीर्थ के विचारों से साक्षात्कार हो चुका था तो बाद में सन् १९२१-२२ में गांधी के विचारों से। यह सच है कि पंत को राजनीति के प्रति कोई झुकाव नहीं रहा फिर भी उनपर परोक्ष रूप से इसका प्रभाव पड़ा। गांधीवादी सिद्धांतों के पश्चात् उनपर समाजवादी सिद्धांतों का भी प्रभाव पड़ा। 'वीणा' और 'वाणी' तक की कविताओं में पंत के परिवर्तन होनेवाले विचारों का समन्वय है। पंत के विचार स्थिर नहीं रहे हैं, वरन् समयानुसार गतिशील रहे हैं; अतएव पंत की कविता को किसी 'वाद' के कठघरे में बाँधना दुर्वार है। उनकी प्रगति स्वाभाविक है। पंत में न तो गांधीवादी की सम्पूर्णता के प्रति आस्था है और न समाजवाद की इकाई में। पंत दोनों में समन्वय चाहते हैं। इसीलिए वे कहते हैं—

'मनुष्यत्व का तत्व दिखाता निश्चय हमको गांधीवाद ;
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य योजना है अविवाद।

उपर्युक्त संदर्भ से स्पष्ट हो जाता है कि पंत में किसी विशेष वाद का विशुद्ध रूप नहीं है और कोई 'वाद' है तो समन्वयवाद। उनकी रचनाओं में सभी वादों का 'सु' पक्ष रहता है, 'कु' पक्ष नहीं। पंत ने स्वयं कहा है—"मैं, आध्यात्मिक और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धांतों से प्रभावित हुआ हूँ। ...ऐतिहासिक भौतिकवादी और भारतीय आध्यात्म-दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा, क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया। मार्क्सवाद के अन्दर श्रमजीवियों के संगठन, वर्ग-संघर्ष आदि से संघर्ष रखनेवाले बाह्य-दृश्य को जिसका वास्तविक

निर्णय आर्थिक और राजनीतिक क्रांतियाँ कर सकती हैं, मैंने अपनी कल्पना का अंग नहीं बनने दिया है। इस दृष्टि से मानवता एवं सर्वभूतहित की जितनी विशद भावना मुझे वेदान्त में मिली, उतनी ही ऐतिहासिक दर्शन में भी।" इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि पंत ने पाश्चात्य साम्यवाद के सिद्धांतों को ग्रहण किया, परन्तु उसमें भारतीय आत्मा को समाहित किया। इसकी पुष्टि के लिये युगान्त, युगवाणी और ग्राम्या की कविताएँ काफी हैं। उदाहरण-स्वरूप कुछेक काव्य-संदर्भ देखिये—

(१) मुखियों के कुलपति सामंत महंतों के वैभव क्षण
बिला गए बहु राजतंत्र, सागर में ज्यों बुंद-बुंद कण।

(२) जन-युग की स्वर्णिम-किरणों से होगी भू आलोकित।

(३) श्रेणि-वर्ग में मानव नहीं विभाजित
धनबल से हो जहाँ न जन-श्रम शोषण
पूरित भव-जीवन के निखिल प्रयोजन !

(४) कर्षक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित
सामूहिक कृषि काय-कल्प अन्यथा कृषक मृत।

इसका कारण भी है—

विश्व विवर्तनशील अपरिवर्तित वह निश्चल !
वही खेत, गृह-द्वार, वही वृष, हँसिया औ, हल !

(५) कहाँ खोजने जाते हो सुन्दरता औ आनन्द अपार;
इस मांसलता में है मूर्तित—अखिल भावानाओं का सार।

उपर्युक्त पंक्तियों में पंतजी के ऊपर जिन-जिन साहित्यकारों, संस्कृतियों एवं सिद्धांतों का प्रभाव पड़ा है, निर्देश किया गया है। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने अपनी कविताओं में सिर्फ इन्हीं को अभिव्यक्ति प्रदान की है,

उपसंहार

वरन् यह कवि की चिंतना, अध्ययनशीलता आदि के द्योतक हैं। इन प्रभावों ने कवि की प्रतिभा पर कालिमा का रंग नहीं चढ़ाया है, वरन् जिस प्रकार पीले चाँद पर धब्बा रहने से उसका

सौंदर्य निखर उठा है उसी प्रकार कवि की प्रतिभा भी पुष्पित, सुगन्धित हो उठी है। इन प्रभावों के बावजूद भी कवि की कविता में मौलिकता की ध्वनि निहित है। उन प्रभावों में कवि की कल्पना इतनी सजग हो उठी है कि यह पहचानना अत्यन्त दुर्वार हो उठता है कि यह कहीं से ली हुई वस्तु है। सुतरां, यह स्पष्ट है कि पंत ने अपनी अभिव्यंजना से उन्हें मौलिक बना दिया है। अस्तु !

पंत की भावधारा का क्रमिक विकास

आरम्भ-काल

पंत उस समय से कविता लिखने लगे थे, जबकि वे अष्टम वर्ग के विद्यार्थी थे। तत्कालीन रचनाएँ अब प्रायः नष्ट हो चुकी हैं, अब प्राप्य नहीं हैं। उसी समय से उन्होंने नियमित रूप से कविता लिखना प्रारंभ कर दिया था और उस समय उनके आदर्श थे—द्विवेदी-युग के प्रतिष्ठित कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त—

> **योग्य नहीं कुछ भेंट : आप चिर मैथिलीशरण**
> **गीत मैथिली के गा छूता स्नेह से चरण !**
> **शैशव से ही रहा आप के प्रति आकर्षण**
> **सलिल भणिति का किया प्रीतिवश चपल अनुकरण।**

इस प्रकार उनकी रचनाओं एवं शैली से प्रेरणा ग्रहण कर [illegible] हा[illegible] का सृजन किया। उस समय [illegible] जिनमें नवीन भाव-विन्यास एवं शैली का धुआँ', 'कागज-कुसुम' आदि, वे रचनाएँ कदाचित् उस समय के हस्त-अपनी शैशवावस्था में मुखर है। लिखित सुधाकर एवं तत्कालीन पत्रों—हिमालय, अलमोड़ा अखबार, मर्यादा आदि—में कुछ मिल सकती हैं। उस युग की कविताओं के एक दो उदाहरण बानगी के तौर पर देखिये—

(क) **सप्रेम पान करके मानव तुझे हृदय में।**[1]
रखता जहाँ बसे हैं भगवान विश्वस्वामी॥

—तम्बाकू का धुआँ

---

1. **अलमोड़ा अखबार।**

(ख) कागज कुसुम बता तू छविहीन क्यों बना है।
तू रूप रंग में तो उपवन कुसुम सदृश है॥ —कागज कुसुम

—इसी समय उन्होंने 'अरुण', 'हिमाचल' आदि कविताएँ लिखीं और 'हार' नामक एक छोटा-सा उपन्यास लिखा, जो छपा नहीं। उस लघु उपन्यास की पाण्डुलिपि नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी में सुरक्षित है। सन १९१९ में प्रयाग के म्योर कालेज के हिन्दू होस्टल में उन्होंने 'इस विस्तृत होस्टल में' शीर्षक कविता लिखी थी—

इस विस्तृत होस्टल में मैं सुनती हूँ
मेरा भी है सखि ! छोटा-सा रूम
जहाँ मेरी आकांक्षा—सूम
गूँजती है प्रतिकूल को तूम !

—इस युग की कविता में पंत की भावी कला का आभास मिलता है जो क्रमशः विकसित होकर वृक्ष की फुनगी पर जा बैठी, जिसके आगे राह नहीं। विद्यार्थी-जीवन से ही काव्य-रचना में प्रवृत्त होने के कारण उनकी रचनाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया। उनकी रचनाएँ रचना-काल की दृष्टि से इस प्रकार हैं—

[illegible] (१९२२-२६), [illegible] -२६), युगवाणी (१९३७-३९), [illegible] (१९२९-४४), स्वर्ण-किरण (१९४०), स्वर्ण-धूलि (१९४७), युगांतर (१९४८), मधुज्वाल (१९४८), उत्तरा (१९४९), अतिमा (१९५५), शिल्पी और वाणी।

इसके अतिरिक्त इन्हीं संग्रहों (वीणा से ग्राम्या तक) में से दो संग्रह कवि ने स्वयं सम्पादित किये हैं जो 'पल्लविनी' और 'आधुनिक कवि' के नाम से प्रकाशित हुई हैं और हाल में 'रश्मि बंध' (वीणा से वाणी तक) नामक एक और संग्रह प्रकाशित हुआ है। कवि ने पद्य के अलावा गद्य-साहित्य का भी सृजन किया है। 'ज्योत्स्ना' नाटिका की रचना सन् १९३४ में हुई और भिन्न-भिन्न अवसरों पर लिखे

हुई कहानियों का संग्रह 'पाँच कहानियाँ' के नाम से सन् १९३६ में प्रकाशित हुआ। सुतरां, यह स्पष्ट है कि पंत आज पिछले ३५ वर्षों से लगातार काव्य-साधना कर रहे हैं।

'वीणा' और उसकी विशेषताएँ

'वीणा' पंत की प्रथम कृति है। यों तो 'वीणा' का प्रकाशन 'पल्लव' के प्रकाशन के बाद हुआ है, फिर भी 'वीणा' की कविताओं का रचना-काल 'पल्लव' के रचना-काल के पूर्व है। कवि ने इस कृति को 'दुधमुहाँ प्रयास' और 'बाल-कल्पना' की संज्ञा से अभिहित किया है और 'वीणा' की भूमिका में लिखा है—'इस संग्रह में दो-एक को छोड़कर अधिकांश रचनाएँ सन् १९१८-१९ की लिखी हुई हैं। उस कवि-जीवन के नवप्रभात में नवोढ़ा कविता की मधुर नूपुर-ध्वनि तथा अनिर्वचनीय सौंदर्य से एक साथ ही आकृष्ट हो, मेरा 'मन्द कवि-यशः-प्रार्थी निर्बोध, लज्जाभीरु कवि वीणावादिनी के चरणों के पास बैठ, स्वर-साधना करते समय, अपनी आकुल उत्सुक हृत्तन्त्री से, बार-बार चेष्टा करते रहने पर, अत्यन्त असमर्थ अँगुलियों के उल्टे-सीधे आघातों द्वारा जैसी कुछ भी अस्फुट अस्पष्ट अंक में जागृति कर सका है, वे इस वीणा [illegible] आपके सम्मुख उपस्थित हैं।'³ [illegible]
ने हिन्दी कविता-कानन [illegible] आतंकमय स्पंदन भर दिया। इसमें उन
द्विवेदी-युग के कलावंतों के हृदय में [illegible] (Romanticism) की गंध पायी जिससे
महारथियों ने स्वच्छंदतावाद[4] [illegible] में कविता
'छायावाद' की नयी रागिनी बजनेवाली थी। उस 'द्विवेदी-युग' में कविता की एकमात्र कसौटी थी भाषा की शुद्धता और अर्थ की सफाई, जिसके फल-स्वरूप हिन्दी-कविता-कानन में म्यूनिसिपैलिटी के कूड़े-कर्कट की भाँति इतिवृत्तात्मक कविताओं का ढेर लग गया था। इस कसौटी को अपने पास

---

३. वीणा : सुमित्रानंदन पंत की भूमिका से।

४. 'जब कविता की भावधारा परम्परागत रूढ़ियों में जकड़ जाती है, और जब उसके प्राण घुटने लगते हैं, तब वह उन्मुक्त होने की चेष्टा करती है। यही 'स्वच्छन्दतावाद' है।

संजोये रखनेवाले हिन्दी के महारथी स्वच्छंद कल्पना और नयी अभिव्यंजना को कैसे देख सकते; क्योंकि उनके द्वारा प्रचालित एवं प्रसारित मान्यताओं को पदच्युत होना पड़ता था। अतएव 'छायावाद की नयी शिंजनी' को बजते देखकर पं० पद्म सिंह शर्मा ने हाथ में हथौड़ा लेकर कोमल एक सुमधुर 'वीणा' पर चोट करते हुए कहा कि 'कवितावल्लरी को प्रतिभा के वारि से सींच कर पल्लव निकालिये, खुशी से उसकी छाया में बैठ कर 'वीणा' बजाइये; पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षों की जड़ पर—कुमति कुठार न चलाइए। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी गंध नहीं भाती, शिकायत नहीं, अपनी पसंद, अपनी रुचि—कीजै कहा करता से न चारों—पर इसकी महक के मतवाले मधुप भी हैं, उन वृक्षों पर न सही, इन पर दया कीजिये—'पल्लव' के नोकीले और जहरीले काँटे इनके दिल में न चुभाइये, 'वीणा' में सोहनी स्वर छेड़िए, 'मारू राग' न बजाइए।'

यों तो 'छायावाद' के जनक 'प्रसाद' जी हैं और जनश्रुति है कि इस 'वाद' विशेष का नाम श्री मुकुटधर पाण्डेय द्वारा प्रदत्त है तथा इसकी लोक-प्रियता बढ़ाने में पंतजी को सेहरा हासिल है। इस नये 'वाद' को लेकर साहित्या- ... इस युद्ध में ... नैपादी मोर्चे पर खड़े होकर लड़ रहे ... निराला' जी के पीछे-पीछे रहे। आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी-जी ने छायावादी कवियों को 'कवित्व-हंसा छोकरे' के नाम से पुकारा तो 'निराला' ने इन आलोचकों को 'दुर्वासा' की संज्ञा से विभूषित किया और पंत द्वारा उन परम्परावादी आलोचकों को 'वीणा' की भूमिका में 'रणकुशल कठ-फोरे' की डिग्री मिली और कहा कि—'संत हंसों को तो वैसे भी चिन्ता नहीं रहती; हाँ, वारि-विकार के प्रेमियों के कठोर आघात से बचने के लिए एक बार मैंने सोचा था कि इस भूमिका में अत्यन्त विनीत तथा शिष्ट शब्दों की चाटु-कारिता का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोरों की-सी ठोंठ को बाँध दूँ। किन्तु 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' वाली किंवदंती के याद आते ही मेरे

अभिमानी कवि ने निर्ममता का कवच पहन कर मुझे, उनकी लम्बी चोंच के लिए 'शोरवा' तैयार करने से हठात् रोक दिया।'

इस काव्य-संग्रह में हमें पंत के कवि की भावधारा का प्रथम परिचय मिलता है। कवि बाह्य-जगत् के सौन्दर्य से प्रभावित है, परन्तु उसका वस्तु-सौन्दर्य अंकित न कर भाव-सौन्दर्य की सृष्टि करने का प्रयास करता है। इस भाव-सौन्दर्य ने कहीं प्रार्थना का, कहीं आत्म-निवेदन का, कहीं विश्व-प्रेम का, कहीं आत्मनिष्ठ प्रकृति-अंकन का रूप सँवारा है, परन्तु सभी स्थलों पर भाव-सौन्दर्य की प्रधानता है और रूप-सौन्दर्य का स्थान गौण। समस्त सृष्टि सौन्दर्यानुभूति से परिपूर्ण है। कवि के मानस-पटल पर आशावादी लहरें किल्लोल कर रही हैं, उल्लास नाच रहा है। उसने कहीं भी यथार्थ जीवन की कठोरता को नहीं देखा है जिसके कारण वह समस्त संसार में प्रेम का सुनहला प्रकाश देखता है। जैसे—

मम जीवन की प्रमुदित प्रात सुंदरि ! नव आलोकित कर !
विकसित कर नव सुरभित कर ! गुंजित कर कल कुंचित कर,
खिला प्रेम का नव जलजात, बढ़ा कनक-कर निज मृदुतर !

\+ \+ \+

[illegible] !

इसके अतिरिक्त, अनेक कविताओं में कवि के आत्मोत्सर्ग और आत्म-निवेदन के भाव समाहित हैं। निम्नांकित काव्य-संदर्भ में आत्म-निवेदन और प्रार्थना-भाव को देखिए—

कुमुद कला बन कल-हासिनि,
अमृत प्रकाशिनि, नभ वासिनि,
तेरी आभा को पाकर माँ !
जग का तिमिर त्रास हर दूँ,
नीरव रजनी में निर्भय !

[वीणा, पृ० सं०]

इस प्रकार हम देखते है कि कवि का दृष्टिकोण सिर्फ प्रेम के क्षेत्र में ही नहीं प्रत्युत जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आशावादी है। इस प्रकार की कविताओं में इस कोटि के गीत ही सबसे अधिक कोमल एवं भाव-समन्वित हैं। 'वीणा' की प्रार्थनापरक कविताओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' का प्रभाव है।

प्रार्थना-विषयक कविताओं के अलावा, इसमें प्रकृति-विषयक कविताएँ भी हैं; परन्तु कवि की प्रकृति जड़ नहीं, वरन् चेतन है। इस संग्रह की रचनाओं में चिंतन नहीं, वरन् भाव ही मुख्य हैं। 'वीणा' की 'प्रथम रश्मि का आना रंगिनि' कविता उनकी सर्वोत्कृष्ट कविताओं में से एक है। इसमें अनुभूति, कल्पना, सौन्दर्यानुभूति एवं संगीत का संतुलित समन्वय है। इस प्रकार पंत की 'वीणा' में हम निम्नांकित विशेषताओं को समाहित पाते हैं—

(क) वीणा एक भावप्रधान रचना है। (ख) इसमें अभिव्यक्ति पायी हुई भावनाओं की आधारभूमि है बाह्य सौन्दर्य। (ग) कवि ने बाह्य-सौन्दर्य को अंकित न कर भाव-सौन्दर्य का चारु चित्र उतारा है। (घ) प्रेम के क्षेत्र ही में नहीं, वरन् जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में कवि का दृष्टिकोण आशावादी है। वह निष्कलुष प्रेम की सफलता पर आशा रखता है। (ङ) कहीं-कहीं दार्शनिक उक्तियों की छाया है (जो आगे की रचनाओं में मुखर है)। (च) इस संग्रह की रचनाओं पर कवीन्द्र रवीन्द्र का प्रभाव है। (छ) भाषा अभी बालरूप में है, प्रौढ़ नहीं।

ग्रन्थि और उसकी कथा

... स गर्मियों की छुट्टी में घर गया ... की रचना हुई। यह प्रेम पर रचित पंत का पहला काव्य है। 'ग्रन्थि' एक प्रेम-कहानी के साथ-साथ एक विरह काव्य भी है। इसमें एक खण्डकाव्य की कथावस्तु मिलती है। ग्रन्थि की कथावस्तु इस प्रकार है—संध्या समय कवि एक सरोवर में नौका खेता हुआ जा रहा था कि एकाएक नाव जलमग्न होकर डूब गई। भाग्यवश एक बालिका ने कवि के प्राणों की रक्षा की। वह मूर्च्छित हो गया था। जब उसने आँखें खोली तो अपने आप को एक बालिका की गोद में सर रखकर लेटा हुआ पाया। कवि सचेत हो उठा।

क्षणभर के लिए दोनों की नजरें लड़ गईं। धीरे-धीरे दोनों एक दूसरे का परिचय प्राप्त करते हैं और एक दूसरे के प्रेमपाश में बँध जाते हैं। बालिका भी इससे प्रेम करने लग जाती है। संयोग-वियोग के अनेक अवसरों के पश्चात् कवि को यह ज्ञात होता है कि समाज उसके प्रेम को स्वीकार नहीं करता। उस बालिका का ग्रन्थि-बन्धन कवि के देखते-देखते किसी अन्य व्यक्ति से कर दिया जाता है और उसके वियोग से कवि के हृदय में जो गाँठ पड़ जाती है वह कदाचित् कभी खुल नहीं पाती। इसी दुर्घटना का आधार लेकर कवि विप्रलंभ-शृंगार में 'ग्रंथि' की रचना करता है। इसमें कवि के विरह-दग्ध हृदय के उद्‌गार प्रस्फुटित हुए हैं। 'वीणा' में पंत का कवि आशा-वादी था, लेकिन 'ग्रन्थि' में निराशावादी बन गया यद्यपि ग्रन्थि की कथा तो एकदम काल्पनिक है।[१] फिर भी इसमें 'जो भावात्मक सचाई (Emotional Sincerity) है, उसके कारण 'ग्रन्थि' की काव्यवस्तु आत्मकथा-जैसी प्रतीत होती है। जगह-जगह प्रेम और अन्य विषयों पर जो उक्तियाँ हैं उनमें कवि का आत्मानुभव भरा हुआ है। यह आत्मानुभव अत्यन्त कटु है। कवि का सपना मानों टूट गया है। जीवन अब वेदनामय, निराशाजनक और निष्फल लगता है। इस परिस्थिति में कवि अपने हृदय के मर्मोद्‌गार प्रकट करता है। उसके हृदय का सम्पूर्ण रस आँसू बनकर बहने लगता है, लेकिन साथ-साथ ठेस लगने से कवि का मस्तिष्क भी सजग हो जाता है। वह कुछ सोचने भी लगता है। इसी से 'ग्रन्थि' में जगह-जगह हम जीवन और जगत के सम्बन्ध में कवि के दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति पाते हैं जो सिद्धान्त-कथन-सा प्रतीत होता है।[२] इसमें प्रकृति का भी अंकन हुआ है, पर वह है घटना की पृष्ठभूमि के रूप में।

'ग्रंथि' में कवि की मनःस्थिति को हम परिवर्तित रूप में देखते हैं—(क) इसमें कवि की दृष्टि प्रकृति की ओर नहीं है, प्रत्युत उसकी समस्त भावनाएँ,

---

१. पंतजी का कथन

२. डा० शिवनन्दन प्रसाद

कल्पनाए नायिका के साकार आलंबन को पाकर साकार हो उठी हैं।

'ग्रन्थि' की विशेषताएँ

(ख) 'वीणा' का आशावादी दृष्टिकोण 'ग्रन्थि' में आकर निराशावादी बन गया है। इसमें कवि को यथार्थ जगत् का कटु अनुभव प्राप्त हुआ है। (ग) इसकी कथावस्तु की पृष्ठभूमि तैयार करने में सिर्फ कल्पना का ही संयोग है, परन्तु वह वास्तविक घटना की तरह लगती है। (घ) सम्पूर्ण काव्य का सौन्दर्य वेदनामय अश्रु में बिखरा हुआ है। (ङ) इसकी रचना-शैली पर संस्कृत-काव्य-शैली का प्रभाव है। (च) इसमें छायावाद की शैलीगत विशेषताओं का प्रयोग अल्पमात्रा में हुआ है, क्योंकि यह एक वर्णनात्मक काव्य है। (छ) वेदना के फलस्वरूप कवि ने जीवन और जगत् के सम्बन्ध में कुछ अपनी मान्यताएँ स्थिर की हैं, जिनका विकसित रूप आगे की रचनाओं में मुखर है।

'ग्रंथि' के बाद 'पल्लव' प्रकाशित हुआ। इसमें पतजी की सन् १९१८-१९ की कुछ विशिष्ट रचनाएँ (जो फिर 'वीणा' में संगृहीत नहीं हुई) और पीछे की सन् १९२५ तक की चुनी हुई कविताएँ संगृहीत हैं। इस प्रकार कवि के सन्

पल्लव की कविताओं का विवेचन

१९२५ तक के विकास का यह अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण है। सर्वप्रथम इसी संग्रह में पंत की प्रतिभा को पूर्ण उन्मेष प्राप्त हुआ है। आलोचकों की दृष्टि में पंत की रचनाओं में यह एक सर्वश्रेष्ठ कृति है। एक विशेष प्रकार की कला इस संग्रह की कविताओं में पूर्णता को प्राप्त है, क्योंकि यह अनेक वर्षों की साधना का फल है। इस काल में वह अंगरेजी के रोमाण्टिक कवियों से प्रभावित रहे हैं। यही कारण है कि हम इस कृति की कविताओं में टेनीसन की स्वर-साधना, शेली की कल्पना, कीट्स की मादकता और वर्डस्वर्थ का प्रकृति-निदर्शन पाते हैं। इसकी कविताओं में शब्द-रचना और ध्वनि-सौन्दर्य के विशेष दर्शन होते हैं। "वीणा की रहस्यप्रिय बालिका अधिक मांसल, सुरुचि-सुरङ्गपूर्ण बनकर प्रायः मुग्धा युवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील हो गई है। 'सोने का गान', 'निर्झर गान', 'मधुकरी', 'निर्झरी', विश्ववेणु', 'वीचि-विलास' आदि रचनाओं में वह प्रकृति के रंगजगत् में अभिनय करती-

सी दिखाई देती है। अब उसे तुहिन-वन में छिपे स्वर्ण-जाल का आभास मिलता है, उषा की मुस्कान कनक-मन्दिर लगने लगी है। वह अब इस रहस्य को नहीं छिपाना चाहती कि उसके हृदय में कोमल बाण लग गया है। निर्झरी का अंचल अब आँसुओं से गीला जान पड़ता है, उसकी कल-कल ध्वनि उसे मूक व्यथा का मुखर भुलावा प्रतीत होती है। वह मधुकरी के साथ फूलों के कटोरों से मधुपान करने को व्याकुल है। सरोवर की चंचल लहरें उससे आँख-मिचौनी खेलकर उसके आकुल हृदय को दिव्य प्रेरणा से आश्वासन देने लगी है।"

'पल्लव' छायावाद युग का मेनिफेस्टो है, क्योंकि इस पुस्तक में पहले-पहल छायावाद के बहिरंग की परीक्षा हुई। 'पल्लव' की पहली कविता से ही कवि का स्वच्छंदतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है, वह अपनी कविता के संबंध में कहता है—

न पत्रों का मर्मर संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग,
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत;
सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान;
सरल शिशुओं के शुचि अनुराग,
वन्य विहगों के गान !
हृदय के प्रणय-कुंज में लीन,
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन-मन बंधन हीन
मधुरता से अपनी अनजान
खिल उठी रोओं की तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल !

—इन पंक्तियों से स्पष्ट होता है कि पंत एक भावना-प्रधान कवि हैं। इसमें संकलित कविताओं की आधार-भूमि है कवि की भावुकता, जिसके कारण कहीं-

कहीं विषय अस्पष्ट ही रहे हैं। इसमें 'हृदय का प्राधान्य है और वह शिशुओं का शुचि अनुराग न होकर युवक का उन्मुक्त प्रणय-गान ही है।'

'पल्लव' की 'उच्छ्वास' और 'आँसू' शीर्षक कविताएँ प्रेम-भावना की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इन दोनों कविताओं का आधार है कवि की विशेष आत्मानुभूति। फलतः वे दोनों रचनाएँ अत्यन्त ही मर्मस्पर्शी हैं। 'पल्लव' के कवि का दूसरा विषय है—प्रकृति। इसमें प्रकृति के यत्र-तत्र अत्यन्त ही सुन्दर खण्ड-चित्र मिलते हैं। प्रकृति के प्रति कवि का आकर्षण बचपन से ही रहा है, परन्तु कभी-कभी नारी-सौन्दर्य उसके हृदय को आकृष्ट करने का प्रयास करती है, पर वह अपने-आपको नारी को पूर्णरूपेण समर्पण नहीं करता। प्रकृति और नारी के बीच द्वन्द्व चलता है और अंत में प्रकृति की ही विजय होती है।[७] प्रकृतिपरक कविताओं में वीचि-विलास, मौन-निमंत्रण, बादल, नक्षत्र, वसंतश्री, मधुकरी आदि हैं।

इसके अतिरिक्त इसमें कल्पना-प्रधान और भाव-प्रधान उत्कृष्ट कविताओं का भी समावेश हुआ है। कल्पना-प्रधान कविताओं के अन्तर्गत वीचि-विलास, विश्ववेणु, निर्झर-गान, नक्षत्र, निर्झरी आदि और भाव-प्रधान कविताओं में मोह, विसर्जन, मुस्कान, मधुकरी, स्मृति आदि हैं। विसर्जन और मुस्कान गीतिकाव्य की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। इसमें कुछ कविताएँ ऐसी हैं जिनमें भावतत्त्व के साथ-साथ कल्पना-तत्त्व भी समाहित हैं, तथा—मौन-निमंत्रण, बादल, स्वप्न,

---

७. छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को,
तज कर सरल तरंगों को
इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रूभंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन ?
भूल अभी इस जग को —मोह

छाया और बालापन आदि। कुछ ऐसी कविताएँ भी देखने को मिलती हैं जिनमें कवि की चिंतना-शक्ति मुखर हो उठी है जैसे—विश्व-व्याप्ति, जीवन-यान, नारी और शिशु। भाषा और भाव की दृष्टि से 'पल्लव' एक प्रौढ़ रचना है, इसमें कवि का दार्शनिक पक्ष और विचारधारा पूर्व रचनाओं से अधिक जागरूक है। पंत के शब्दों में—'पल्लव' युग का मेरा मानसिक विकास एवं जीवन की संग्रहणीय अनुभूतियाँ तथा राग-विराग का समन्वय बिजलियों से भरे बादल की तरह प्रतिबिम्बित है।'

'पल्लव' की 'परिवर्तन' शीर्षक रचना हिन्दी-साहित्य की एक प्रमुख रचना मानी जाती है और उसकी श्रेष्ठता में किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता है। परिवर्तन में युग की विशेषताओं, युग की वाणी और कटु सत्य

'परिवर्तन' शीर्षक कविता में पंत का दृष्टिकोण और निष्कर्ष

एक ही साथ मुखरित हो उठे हैं। परिवर्तन के एक-एक सत्य को लेकर कवि बड़ी ही गम्भीरता से उसकी कटुता का अनुभव करता है। भारतीय दर्शन का खुला प्रतिपादन कवि ने 'परिवर्तन' नामक कविता में किया है। उसका विश्वास है कि एक अनन्त शक्ति—चिरन्तन शक्ति निरंतर क्रीड़ा कर रही है। कोमल, बीभत्स तथा कठोर सभी उसमें मिलकर, उस तक पहुँचकर, एक हो जाते हैं। फिर भी, वह चिरन्तन शक्ति भौतिकता से सर्वदा अछूती रहती है। इसके अतिरिक्त, 'परिवर्तन' की दूसरी विशेषता उसकी भाषागत विशेषता है, जहाँ कवि के स्वतंत्र चिंतन तया अध्ययन के फलस्वरूप भावना की समकक्ष भाषा हो गई है। मेरा तो यह मत है कि परिवर्तन की विशेष परिस्थितियों में पंत का सम्पूर्ण जीवन निहित है। भाषा एक गंभीरता लिए हुए है जिसकी पृष्ठभूमि प्रतीकात्मकता तथा चित्रात्मकता की द्योतक है। जिस प्रकार पंत की आन्तरिक प्रवृत्तियाँ क्रमशः गम्भीर से गंभीरतम की ओर विकासोन्मुखी हुई हैं, पंत की भाषा भावानुकूल परिवर्तित होती गई है। इतना ही नहीं, शब्दों का मनोविज्ञान इस रूप में प्रतिपादित किया गया है जहाँ आकर आलोचकों की 'समझदारी' भूल-सी जाती है। उदाहरण के लिए विवर्तन और परिवर्तन प्रायः एक ही अर्थ के द्योतक हैं।

परन्तु विवर्तन का शब्द-मनोविज्ञान मानव की विवशता है और पविर्तन का मनोविज्ञान साधारण गति में सीमित है। इसी प्रकार विश्व, संसार, जगत् के पीछे अलग-अलग मनोविज्ञान हैं। परिवर्तन की विशेषता प्रकृति-चिंतन तथा आकर्षण से जीवन-चिंतन की ओर मुड़ने की है। कवि पथ में आयी हुई वस्तुओं के प्रभाव से ही केवल प्रभावित नहीं हुआ है, वरन् उसका व्यक्तिगत चिंतन भी प्रस्फुटित हो गया है। तथ्य के प्रतिपादन की शैली भी कवि ने बदल दी है। वीणा में कवि कुछ भावप्रधान होने के कारण जो देखता था उसके आध्यात्मिक पक्ष की ओर झुक जाता था; परन्तु परिवर्तन में कवि ने सापेक्षिक दृष्टिकोण (तुलनात्मक) अपनाया है। वह अपने पैरों की जमीन को देखता है और फिर पीछे की ओर। उसके मन में एक गहरी और गंभीर विवशता आ जाती है। वह सर्वदा वर्तमान की तुलना अतीत से करता चलता है। उसे अतीत अधिक आकर्षक भी लगता है। अतीत और वर्तमान का विवेचन ही उसकी साधना की सीमा नहीं है, वरन् अतीत और वर्तमान से आगामी की भी कल्पना करता है। अतीत का आकर्षण, सौन्दर्य, सुख-वैभव आज नहीं है और आज का जीवन भविष्य की गोद में सीमित हो जायगा। हम विकास-प्रिय मानव नित्य-प्रति पतनोन्मुखी हैं। प्रभात संध्या में, प्रणय-चुम्बन आँसुओं में, मधुऋतु पतझड़ में, जीवन मृत्यु में परिवर्तित होता ही रहता है और यही जड़ विश्व का चेतन रहस्य है। सभी वस्तुएँ, एक-एक कण—अस्थिर हैं, परिवर्तन-शील हैं"—

अचिरता देख जगत् की आप
शून्य भरता समीर निःश्वास,
डोलता पत्तों पर चुपचाप
ओस के आँसू नीलाकाश,
सिसक उठता समुद्र का मन
सिहर उठते उडुगन !

जगत् का अविरल हृत्कम्पन
तुम्हारा ही भय सूचन;
निखिल पलकों का पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !
विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल कृति-से घुल पल-पल;
तुम्हीं स्वेद सिंचित संस्थिति के स्वर्ण शस्य दल
दल मल देते, वर्षोत्पल बन, वांछित कृषि फल !
अये सतत ध्वनि स्पन्दित जगती का दिङ् मण्डल !
नैश गगन-सा सकल
तुम्हारा ही समाधिस्थल

अथवा

एक सौ वर्ष, नगर उपवन
एक सौ वर्ष विजन वन !
यही तो असार संसार
सृजन, सिंचन, संहार ।

'संसार की असारता उल्लेख करते हुए कवि सुख-दुःख का चिंतन करता है। कवि स्पष्ट कहता है कि यदि संसार का सुख सर्वदा दुःख में परिवर्तित होता रहता है तो दुःख भी तो सुख में परिवर्तित हो जाता है। हमें किसी भी वस्तु की उपयोगिता का केवल एक पक्ष ही नहीं देखना चाहिए। कवि केवल परिस्थितियों और परिवर्तनगत जीवन का विवेचन एवं विश्लेषण ही नहीं करता, वरन् वह इस ओर भी संकेत करता है कि परिवर्तन की आवश्यकता संसार में नवीनता ले आने के लिए है; क्योंकि नवीनता ही आकर्षण की जननी है और इस प्रकार सृष्टि में कोई भी वस्तु अनावश्यक नहीं है; क्योंकि आकर्षण तो हृदय के आनन्द का विरामस्थल है। 'परिवर्तन' नामक कविता में पंत का जीवन-चिंतन है और उन्होंने अपने अनुभव, अध्ययन और

अध्यवसाय के आधार पर जीवन के कुछ निष्कर्ष निकाले हैं—(१) विश्व का द्वन्द्वात्मक रूप है। इसलिए हमें तुलनात्मक दृष्टिकोण से ही इसका अध्ययन करना चाहिए। (२) परिवर्तन अनादिकाल से आये हुए नियम के कारण होता है—

हाय री दुर्बल भ्रान्ति !
कहाँ नश्वर जगती में शान्ति ?
सृष्टि ही का तात्पर्य अशान्ति !
जगत् अविरल जीवन संग्राम,
स्वप्न है यहाँ विराम—

(३) विश्व सुखों का संचित ढेर नहीं है। परिवर्तन के नियम के कारण सुख दुःख में और दुःख सुख में बदला करता है। दुःख का एक पक्ष सर्वदा व्यक्तिगत चेतना के विकास में सहायक होता है और दूसरा पक्ष चेतना को ढँक देता है। जब चेतना जाग्रत रहती है, दुःख भी सुख में परिवर्तित होता रहता है और जब चेतना दबी रहती है, सुख दुःख में परिवर्तित हो जाता है। (४) परिवर्तन विश्व का आवश्यक विधान है। इसके बिना जीवन नीरस और आकर्षणहीन हो जायगा; क्योंकि नवीनता का रूप हमारे सामने नहीं आयेगा। ऐसी अवस्था में जीवन भार बन जायगा और कोई भी संसार की स्थिरता के साथ चलना पसंद न करेगा। कवि में भविष्यात्मक मानव-चिंतन के अंकुर यहीं दिखाई देने लगते हैं।'[८]

वास्तव में पंत की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता हिंदी-साहित्य में अपना विशेष महत्त्व रखती है। महाकवि 'निराला' के शब्दों में—'परिवर्तन किसी भी बड़े कवि की कृति से निःसंकोच मैत्री कर सकता है।'[९] भाव और भाषा की दृष्टि से यह कविता क्रान्तिकारिणी है। इसकी भाषा में ओज है और भाव की दृष्टि से जीवन के विभिन्न रंगों का समावेश है। जीवन के सभी रंग—वीभत्स, करुण, शृंगार—समाहित हैं। 'परिवर्तन' के लिए पंत के ये शब्द अत्यन्त ही महत्त्वपूर्ण हैं—'इस कविता-जगत् में नित्य जगत् को खोजने का

---

८. श्री फूलदेव पाण्डेय, एम० ए०। ९. प्रबन्ध पद्म, पृ.-सं. १२[illegible]

प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे परिवर्तन के रचनाकाल से प्रारंभ हो गया था, 'परिवर्तन' उस अनुसंधान का केवल प्रतीक मात्र है।' संक्षेप में 'पल्लव' की कविताओं को हम निम्नांकित श्रेणियों में विभक्त कर सकते हैं—(क) भावना-प्रधान, (ख) कल्पना-प्रधान, (ग) प्रकृति-प्रधान (घ) चिंतन-प्रधान और (ङ) प्रेम-प्रधान।

पल्लव की विशेषताएँ

डा० शिवनन्दन प्रसाद के शब्दों में 'पल्लव' की भावधारा की विशेषताएँ निम्नांकित हैं—१--इस संग्रह की प्रारम्भिक कविताओं में कवि के विरह-विदग्ध हृदय के करुण उद्गार हैं। 'ग्रन्थि' की भावना से अंतर यह है कि 'पल्लव' में कवि की वेदना का क्षेत्र जीवन और उसका हृदय ही नहीं, वरन् समस्त जड़-चेतन सृष्टि है। ये रचनाएँ भावप्रधान हैं। **[उच्छ्वास, आँसू]**

२—प्रकृति के विराट् क्षेत्र में प्रवेश करने के फलस्वरूप कवि की वेदना कुछ शमित हो जाती है और उसकी मनोवृत्ति कल्पना के सुन्दर सुकुमार चित्र खड़ा करने की ओर होती है। **[वीचि-विलास, स्वप्न, निर्झर आदि]**

३—प्रकृति-दर्शन द्वारा कवि की चित्तवृत्ति उदात्त होती है और वह विश्व के समष्टिगत सौन्दर्य-तत्त्व का साक्षात् करता है। **[अनंग]**

४—इस व्यापक चेतन सौन्दर्य-तत्त्व की सहानुभूति का अनुभव उसे होता है। **[मौन-निमंत्रण]**

५—प्रकृति के असीम क्षेत्र के बीच दीर्घकालीन भावसाधना के उपरान्त, विश्व में व्यापक परिवर्तन के दृश्य देखने के फलस्वरूप कवि की अन्तर्दृष्टि खुल जाती है और सत्य का वास्तविक ज्ञान उसे होता है। अब उसकी भावना एकांगी नहीं, क्योंकि वह सम्पूर्ण सत्य को देख चुका है। अतः वह संयोग और वियोग, सुख और दुःख, जीवन और मरण में अभेद देखता है। **[परिवर्तन]**

६—इस प्रकार 'गुंजन' की भावधारा की पूर्वपीठिका के रूप में हम 'पल्लव' का भाव-विकास देखते हैं। इसी भावधारा का चरम विकास गुंजन में द्रष्टव्य है।

'पल्लव' का अल्हड़ कवि 'गुंजन' में एक गंभीर कवि के रूप में आया। इसमें सन् १९२६ से लेकर १९३१ के बीच की लिखी हुई कविताओं का संचयन है। 'गुंजन' को पंत ने अपने प्राणों का 'उन्मन गुंजन' मात्र कहा है। कुछ कविताएँ इसमें बहुत पहले की भी हैं। इसकी कविताओं के मर्मों से परिचित होने के लिए कवि के व्यक्तिगत जीवन की कुछेक जीवन-घटनाओं से परिचित होना अत्यावश्यक है। 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच कवि को रोगग्रस्त होकर मृत्युशय्या तक पहुँच जाना पड़ा था, पर कुछ समय के बाद रोग से मुक्त होकर कवि की आत्मा एक नई आशा से प्रदीप्त हो उठी। फलत: गुंजन में जीवन के प्रति एक नया दृष्टिकोण का होना स्वाभाविक है। 'गुंजन' की रचना 'पल्लव' की शैली पर हुई अवश्य, परन्तु इसमें भावधारा की दिशा परिवर्तित है। सौंदर्यान्वेषण में तल्लीन रहनेवाला पंत दर्शन की ओर प्रवृत्त हुआ। गुंजन के पूर्व प्रकृति के बिखरे हुए सौंदर्य से आश्चर्यचकित होनेवाला पंत का कवि 'आत्मा के चिरधन' की खोज में निकल पड़ा और फलत: उसने 'गुंजन' के रूप में अपने निकाले हुए निष्कर्ष को हिन्दी-काव्य-जगत् के समक्ष प्रस्तुत किया। 'गुंजन' के पहले कवि की कल्पना का संसार था हृदय, परन्तु अब आत्मा हैं। इसीलिए इसमें भावावेश की न्यूनता और चिंतन एवं मनन की मुख्यता है। पंत ने आधुनिक कवि की भूमिका में स्वयं लिखा है—'पल्लव और गुंजन-काल के बीच में मेरा किशोर भावना का सौन्दर्य-स्वप्न टूट गया। दर्शनशास्त्र और उपनिषदों के अध्ययन ने मेरे रागतत्त्व में मंथन पैदा कर दिया और उसके प्रवाह की दिशा बदल दी।' इसकी व्याख्या पंत के शब्दों में सुनिए—'कविता के स्वप्न-भवन को छोड़कर हम इस खुरदरे पथ पर क्यों उतर आए। इस युग में जीवन की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार धारण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा-अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप में सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपने

गुंजन : एक मध्यम कड़ी

पोषण-सामग्री ग्रहण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है और युग-जीवन ने उसके चिर-संचित सुख स्वप्नों को जो चुनौती दी है उसको उसे स्वीकार करना पड़ रहा है।'[१०]

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट है कि पंत की कल्पना धरती पर आकर टिक गई। वह मानव-जीवन का गायक बन गया। अतः वह सुख-दुःख, हानि-लाभ, संयोग-वियोग, जीवन-जगत्, मुक्ति और ईश्वर आदि के सम्बन्ध में एक नए ढंग से सोचने को बाध्य हुआ। अब कवि चिंतनशील हो गया। उनकी भावना कमजोर होने लगी और चिंतना प्रबल। अतएव 'गुंजन' भावना और चिंतन का समन्वित रूप है। यही समन्वयवादी भावना 'गुंजन' में पंत की भावधारा का पृष्ठाधार है। 'इस समन्वय का परिणाम यह होता है कि कवि मध्यम मार्ग का पक्षपाती होता है और प्रतिपल साधना द्वारा व्यक्तित्व के उत्कर्ष को जीवन की सार्थकता का आधार मानता है।' 'गुंजन' का कवि इस तथ्य से परिचित है कि जीवन में दुःख का कारण अतिशय अमर्यादित अभिलाषायें हैं—

बढ़ने की अति इच्छा में जाता जीवन से जीवन।

'अति' से बचना ही यथार्थ सुख है। कवि ने तो यहाँ तक कहा है कि दुःख का आधिक्य भी दुख का कारण बनता है—

जग पीड़ित है अति दुख से जग पीड़ित है अति सुख से
मानव जग में बँट जावें दुख-सुख से औ' सुख-दुख से।

'इस मध्यम मार्ग को अपनाकर ही मनुष्य सदैव आध्यात्मिक आनंद में निमग्न रह सकता है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी भगवान ने कहा है कि सुख-दुःख में समता का नाम ही योग है; यद्यपि सुख मोह और आकर्षण है तथा दुःख आत्मा का भोजन है।'

दुःख इस मानस आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन।

---

१०. रूपाभ (प्रथम अंक)—पंत की लिखी हुई सम्पादकीय टिप्पणी।

ईश्वर पर कवि को विश्वास है। बंधन और मुक्ति के संबंध में कवि की भावना वेदांत की अपेक्षा वैष्णव धर्म की पद्धति के अधिक निकट है। कवि के लिए बंधन ही मुक्ति है और मुक्ति ही बंधन है। गुंजन एक प्रकृति-काव्य नहीं, प्रत्युत मानव-काव्य है। नारी के प्रति कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त नवीन है। समष्टि रूप से 'गुंजन' में कल्पना के साथ-साथ चिन्तन की प्रधानता है, उसकी कविताएँ अनुरंजन के साथ मनन की जाती है। 'गुंजन में प्रायः तीन प्रकार की कविताएँ हैं ; सबसे पहले लगभग पंद्रह कविताओं में सुख-दुख का समन्वय या मानव-महत्त्व की स्वीकृति है। दूसरी कक्षा में लगभग चौदह कविताएँ प्रेयसी के प्रति प्रेम-निवेदन की है और तीसरा 'वैच' प्रकृति-संबंधी कविताओं का है। इनके अतिरिक्त तीन-चार कविताएँ विविध हैं। इस प्रकार गुंजन निर्धारित सीमाओं में ही प्रायः चला है।'[११]

संक्षेप में 'गुंजन' की भावधारा की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं—

'गुंजन की विशेषताएँ

(क) 'गुंजन' का कवि पहले भावुक था, परन्तु इसमें वह विचारशील कवि बन गया है। (ख) इसमें पूर्व की रचनाओं के समान वैयक्तिक प्रेम के अन्तर्गत विरह-मिलन, स्वप्न और आकांक्षा की शत-सहस्र उद्भावनाएँ नहीं हैं, प्रत्युत बाह्य जगत् की वास्तविकता एवं जीवन की असलियत है। (ग) इसमें भावना और चिंतना का सम्मिलित रूप है ; पर इसके साथ-साथ कवि के दार्शनिक विचारों में पर्याप्त सरसता भी है। (घ) चिंतनशील हो जाने के कारण कवि का दृष्टिकोण अनेक भावों और पहलुओं के संबंध में बदल गया है। वह बाह्य सौन्दर्य का गायक न बनकर अन्तःसौन्दर्य का गायक हो गया है। जैसे—अप्सरि, भावी पत्नी के प्रति, मधुवन आदि। (ङ, इसमें कवि का प्रेम शारीरिक धरातल पर नहीं है, वरन् उससे ऊपर की वस्तु है। (च) इसमें कवि की आशावादी भावना मुखरित है। (छ) 'कवि की भावधारा की सबसे बड़ी विशेषता है—धरातल का

---

११. पंत का काव्य और युग : यशदेव, पृ० सं० १२८

उत्कर्ष, जिसके कारण उसका प्रेम व्यक्तिगत आकांक्षा के रूप में नहीं रह जाता, वरन् विश्व-कल्याण का साधन बन जाता है।' (ज) कुछ कविताओं को छोड़ कर शेष कविताएँ छोटी हैं जो गीतिकाव्य की दृष्टि से सुन्दर उतरी हैं।

वास्तव में गुंजन छायावाद और प्रगतिवाद के संधिस्थल पर खड़ा है। यहीं से पंत मानव-जीवन का कवि बन जाता है और सुखी मानव-समाज का निर्माण करना चाहता है। इसमें आधुनिकतम भाव-दिशा की ओर संकेत है। इसलिए यह उनकी समस्त कृतियों की मध्यम कड़ी है।

'युगान्त' से कवि की भावधारा में दिशान्तर

'युगान्त' के प्रकाशन से छायावाद का पराभव और प्रगतिवाद का शंख-नाद होता है। इसमें सन् १९३४ से १९३६ तक लिखी हुई कविताओं का संग्रह है। इसकी अनेक कविताएँ गुंजन की ही परम्परा में आती हैं, क्योंकि वे चिंतन-प्रधान हैं। इसमें प्रगति-युग के प्रारंभ होने की भूमिका है। कवि स्वयं कहता है—'युगान्त में मैं निश्चय रूप से इस परिणाम तक पहुँच गया था कि मानव-सभ्यता का पिछला युग अब समाप्त होने को है और नवीन युग का प्रादुर्भाव अवश्यम्भावी है।' 'कवि के सौदर्न्य-युग में चिंतन का आरम्भ 'गुंजन' से होता है। 'गुंजन' में उसके चिंतन में सत्य की व्यक्तिगत साधना है, ज्योत्स्ना में उसका सार्वभौम रूप है और युगांत के चिंतन की प्रधानता मानव के प्रति एक विशेष दृष्टिकोण के रूप में प्रकट हुई है। इसलिए 'युगान्त' कवि की चिंतन-प्रधान कविताओं का संग्रह है। इसमें मात्र 'सुन्दरम्' ही कवि का आदर्श नहीं है। वह 'सत्यम्' और विशेषतया 'शिवम्' की ओर भी आकर्षित होता है।'[१२] युगांत का कवि गुंजन में व्यक्तिगत साधना पर जोर देता था, पर इसमें आकर कवि की दृष्टि समष्टि की पीड़ाओं की ओर गई जिसके संवेदन से उसका हृदय आन्दोलित हो उठा। फलतः कवि का हृदय लोक-मंगल की भावना से भर गया। डा० नगेन्द्र के शब्दों में—'पल्लव का करुणाक्लिष्ट भाव जो गुंजन में आकर समझौते का रूप धारण कर चुका था,

---

१२. श्री गोपाल कृष्ण कौल

युगान्त में आकर पूर्णतया मांगलिक कामनाओं का वाहक हो गया है। इन कृतियों में कवि जगत् के जीर्ण उद्यान में मधु-प्रभात लाने की शुभाकांक्षा बार-बार करता हुआ देखा जाता है। उसका करुणा-तप्त हृदय मानव-हित से पूर्ण हो गया है। वह मानवता के विकास के द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापित करने की शुभेच्छाओं से आकुल है।[१३] युगान्त की पहली ही कविता में कवि माँगता है—

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र हे त्रस्त ध्वस्त, हे शुष्क शीर्ण !
हित ताप-पीत मधुवात-भीत, तुम वीतराग, जड़ पुराचीन !
निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग ! जन-नीड़ शब्द औ' श्वास-हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम, झर झर अनंत में हो विलीन !
कंकाल जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर, पल्लव लाली !
प्राणों की मर्मर से मुखरित जीवन की मांसल हरियाली !
मंजरित विश्व में यौवन के जग का पिक मतवाली
निज अमर प्रणय स्वर मदिरा से भर दे फिर नवयुग की प्याली !

नये युग के आगमन से कवि को आशा है, तभी वह उसकी शक्ति और सौन्दर्य का गीत गाता है। लेकिन "मानव-जग आज जड़ बंधनों में जकड़ा हुआ कराह रहा है, अतएव वह उसी की जागृति की कामना करता है। कोई भी वस्तु उसी अंश तक उसे प्रिय है जहाँ तक वह मानव के लिए कल्याणकारी है, इसीसे वह कोयल से मधुर नहीं, आग्नेय गीत गाने को कहता है, क्योंकि उसे विश्वास है कि इसी से नवीन मानवता का जन्म होगा—

गा कोकिल बरसा पावक कण,
नष्ट भ्रष्ट हो जीर्ण पुरातन, ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन,
पावक पग धर आए नूतन, हो पल्लवित नवल मानव-मन।

और यह विश्वास करता है कि यह नवोदिता मानवता अखण्ड और अभिजात्य होगी, उसमें राष्ट्र, जाति तथा वर्गगत भेद नहीं रहेंगे। वह तो

१३. सुमित्रानंदन पंत, पृ० ८९

सोचता है, 'मनुष्य का परिचय क्या मनुष्य शब्द ही काफी नहीं ?' वह अमर-शाश्वत ज्योति है, उसका विभाजन क्या मिथ्या और कृत्रिम नहीं ?' ऊर्ध्वोन्मुख मानवता ! तुम्हारा अभिनव सौन्दर्य ज्योति के साथ उदय हो। (यह पूँजीवादी विचारधारा ही है !)—

गा कोकिल संदेश सनातन
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन, वह न देह का नश्वर रजकण,
देशकाल है उसे न बन्धन, मानव का परिचय मानव-पन।

वह जड़वाद से अभिभूत मानवता का परित्राण चाहता है, क्योंकि इसीसे आज ये युद्ध-गर्जनाएँ, उत्पीड़न और अत्याचार दिखाई पड़ते हैं, मानवात्मा आज जड़ बन्धनों में कराह रही है, उसका परित्राण आवश्यक है—

जड़वाद जर्जरित जग में, अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्राभिभूत जग में करने, मानव जीवन का परित्राण।

[बापू के प्रति]

.........आज उसके लिए मानव ही प्रधान है—वही एकमात्र महत्त्व है, उसीका सौन्दर्य गेय है। विहगों का उपयोग वह श्रमजीवियों के निरस्त जीवन को नव प्रेरणा-दाता के रूप में ही देखता है—

आ गा गा शत शत सहृदय खग,
भर रहे नया इनमें जीवन,
ढीली है जिनकी रग रग।

इस प्रकार युगांत में प्राय: सर्वत्र मानवता के नवयुग का ही आवाहन है, किन्तु यह पूँजीवादी मानवतावाद और उदारतावाद से अधिक कुछ नहीं।' [१४] इसमें प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण बदला हुआ है और ऐन्द्रिय चित्रण का अभाव है। इस कोटि की कविताओं में हैं—वसंत, तितली, संध्या, शुक्र, छाया, बाँसों का झुरमुट आदि। वसंत का हर्षोत्फुल्ल एवं आह्लादपूर्ण चित्र देखिये—

---

१४. पंत का काव्य और युग : यशदेव, पृ० सं० १२७ ५८

पल्लव पल्लव में नवल रुधिर—
पत्रों में मांसल रंग खिला,
आया नीली-नीली लौ से
पुष्पों के चित्रित दीप जला!
+ + +
कलि के पलकों में मिलन स्वप्न,
अलि के अंतर में प्रणय गान,
लेकर आया प्रेमी वसंत,
आकुल जड़ चेतन स्नेह-प्राण।

पंत की लेखनी द्वारा छाया की गहनता का अंकन अत्यन्त ही व्यंजनापूर्ण हो पाया है, यथा—

पट पर पट केवल तम अपार,
पटपर पट खुले न मिला पार।

युगान्त में कवि की अन्तमु‍खी प्रवृत्ति वहिमु‍खी हो गई, वह व्यक्ति से समाज की ओर आया। युग की नवीन प्रवृत्तियों ने छायावाद की सौंदर्य-कल्पना को झकझोर कर उखाड़ फेंका। तब पंत के कवि को यह स्वीकार करना पड़ा कि छायावाद इसलिए अधिक नहीं रहा कि उसके पास, भविष्य के लिए उपयोगी नवीन आदर्शों का प्रकाशन, नवीन भावना का सौन्दर्यबोध और नवीन विचारों का रस नहीं था। यह काव्य न रहकर केवल अलंकृत संगीत बन गया था। द्विवेदी-युग के काव्य की तुलना में छायावाद इसलिए आधुनिक था कि उनके सौन्दर्यबोध और कल्पना में पाश्चात्य साहित्य का पर्याप्त प्रभाव पड़ गया था, और उसका भाव-शरीर द्विवेदी-युग के काव्य की परम्परागत सामाजिकता से पृथक् हो गया था। किन्तु वह नए युग की सामाजिकता और विचारधारा का समावेश नहीं कर सका था। उसमें व्यावसायिक क्रान्ति और विकासवाद के बाद का भावना-वैभव तो था, पर महायुद्ध के बाद की 'अन्न-वस्त्र'-धारणा (वास्तविकता) नहीं आयी थी। उसके 'हास अश्रु आशाऽकांक्षा', 'खाद्यमधुपायी' नहीं बने थे। इसलिए एक ओर वह

निगूढ़, रहस्यात्मक, भावप्रधान (Subjective) और वैयक्तिक हो गया और दूसरी ओर केवल टेकनीक और आवरणमात्र रह गया। दूसरे शब्दों में नवीन सामाजिक जीवन की वास्तविकता को ग्रहण कर सकने से पहले, हिन्दी कविता, छायावाद के रूप में, ह्रास-युग के वैयक्तिक अनुभवों, ऊर्ध्वमुखी विकास की प्रवृत्तियों, ऐहिक जीवन की आकांक्षा-संबंधी स्वप्नों, निराशाओं और संवेदनाओं को अभिव्यक्त करने लगी, और व्यक्तिगत जीवन-संघर्ष की कठिनाइयों से क्षुब्ध होकर, पलायन के रूप में, प्राकृतिक दर्शन के सिद्धान्तों के आधार पर, भीतर-बाहर में, सुख दुःख में, आशा-निराशा, संयोग और वियोग के द्वन्द्वों में सामंजस्य स्थापित करने लगी। सापेक्ष की पराजय उसमें निरपेक्ष की जय के रूप में गौरवान्वित होने लगी।'[१५] फलतः युगान्त की रचना के पीछे यही इतिहास है। युगान्त के संबंध में कवि ने स्वयं लिखा है कि 'मैंने जिस नवीन क्षेत्र को अपनाने की चेष्टा की है, मुझे विश्वास है, भविष्य में मैं उसे अधिक परिपूर्ण रूप में ग्रहण एवं प्रदान कर सकूँगा।'

युगांत की विशेषताएँ

संक्षेप में युगान्त की भावधारा इस प्रकार है जिसके आधार पर ही युगांत और ग्राम्या की रचना हुई—(क) गुंजन में कवि की साधना व्यक्तिगत थी, पर युगांत में जनकल्याण की भावना समाहित है। (ख) रूढ़िगत मान्यताओं का विध्वंस एवं नवीन आदर्शों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया गया है। (ग) इसमें मानव-संस्कृति के मान (Values) वर्त्तमान मान से भिन्न होंगे। मानव की महानता की कसौटी धन न होकर आत्मा की विकास-दशा होगी। (घ) इस नवीन संस्कृति के आधार पर होंगे मानव मात्र की समानता, स्वतंत्रता एवं परस्पर प्रेम। (ङ) नवीन आदर्शों के रूप में कवि ने गांधीजी को देखा है। (च) इसमें प्रकृति प्रधान विषय नहीं है, क्योंकि इसमें कवि मानव-जीवन का गायक बन गया है। फिर भी कुछ प्रकृति के सुन्दर चित्र मिलते हैं।

यों तो 'युगान्त' में ही कवि की वाणी बदल गई, परन्तु 'युगावाणी' से कवि

१५. आधुनिक कवि : पर्य्यालोचन, भाग २, पृ० सं० ११-१२

ने एक नयी सृष्टि की रचना प्रारंभ की। 'युगवाणी' में सन् १९३७ से १९३९ के बीच की लिखी हुई रचनाएँ संगृहीत हैं। इसमें ८२ कविताओं का संचयन है। पंतजी के शब्दों में कवि ने 'युगवाणी' में युग के गद्य को वाणी देने का प्रयत्न किया है और साथ-साथ 'युग की मनोवृत्ति का आभास' भी। यही कारण है कि इसमें तत्कालीन राजनीति के 'वादों' का स्वर मुखर हुआ है और वे हैं—मार्क्सवाद, गाँधीवाद, साम्राज्यवाद, समाजवाद और भौतिकवाद। इसमें इन सभी 'वादों' का समन्वित स्वर फूट पड़ा है। इसमें समाज के प्रत्येक वर्ग की गाथा है और नारी-समाज के उत्थान के आन्दोलन की विचारधारा की अभिव्यक्ति है। इसमें प्रकृति-विषयक कविताएँ भी हैं और कवि ने निराला, भारतेन्दु, द्विवेदी आदि जैसे महान साहित्यकारों के प्रति श्रद्धा के दो फूल चढ़ाये हैं।

युगवाणी

'युगवाणी' की भावधारा का विश्लेषण करते हुए प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने लिखा है—'कहा जाता है कि 'युगान्त' में पंतजी के काव्य-जीवन के एक युग के अंत की और दूसरे के आरंभ की सूचना मिलती है। लेकिन इसका अर्थ यह नहीं समझना चाहिये कि युगान्त के पूर्व और पश्चात् की रचनाओं में कोई सम्बद्ध विकास-क्रम नहीं अथवा 'युगान्त' के पूर्व की भावधारा से उसके पश्चात् की भावधारा सर्वथा विच्छिन्न है। वस्तुतः बात तो यह है कि जिस अतस्-साधना की अभिव्यक्ति हम 'गुंजन' और 'युगांत' में पाते हैं उसीका बाह्य व्यावहारिक रूप 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की रचनाओं में परिलक्षित है। 'गुंजन' में अभिव्यक्त सुख-दुःख की समता में साधना और नैसर्गिक मध्यम मार्ग की सौन्दर्यानुभूति को ही 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में व्यावहारिक रूप प्रदान किया गया है। आत्मा की साधना ही लोक-रंजक बन गई है।........'युगवाणी' को प्रगतिशील काव्य कहा जाता है। यदि मार्क्सवादी सिद्धांतों की साहित्यगत अभिव्यक्ति ही प्रगतिवाद है तो निश्चय 'युगवाणी' में प्रगतिशील काव्य के लक्षण मिलेंगे। साम्राज्यवाद, धनपति, मध्यवर्ग, कृषक, श्रमजीवी आदि कविताएँ इस दृष्टि से दर्शनीय हैं। 'उद्बोधन', 'मार्क्स के प्रति' और 'भूत-दर्शन शीर्षक कविताओं में भी मार्क्सवादी सिद्धांतों

की व्यंजना है। ऊपर से देखने पर लगता है कि कवि की भावधारा ने एक नया रूप लिया है, एक नई दिशा ग्रहण की है। आध्यात्मवाद को छोड़कर कवि भौतिकवादी बन गया है और मार्क्सवाद के अन्तर्गत इतिहास की भौतिक व्याख्या और वर्ग-संघर्ष के जो सिद्धांत हैं, उन्हें मान लिया है। आत्मा को छोड़ अब वह शरीर को आदरित करने लगा है।

'गुंजन' में मन की जिस साधना का और जिस नैसर्गिक सौंदर्यानुभूति का इतना महत्त्व था, उसे कलाकार ने अचानक छोड़ दिया है और अब वह रोटी का राग अलापने लगा है। आश्चर्य होता है इस परिवर्तन को देखकर। सोचते हैं लोग कि कैसे संभव है कि किसी कलाकार के दृष्टिकोण का ऐसा मौलिक रूपान्तर हो और वे इस परिणाम पर पहुँच पड़ते हैं कि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताओं में जान नहीं है। इन रचनाओं में कलाकार का मस्तिष्क बोलता है, हृदय नहीं। कलाकार के व्यक्तित्व (Personality) का स्वाभाविक उच्छलन इनमें है केवल युग के फैशन का तकाजा, अतः ये हैं 'थर्ड-रेट' कविताएँ। लेकिन पंत की कविताओं के ऊपर-ऊपर देखनेवाले भूलते हैं। वे पंत के काव्य की प्रेरणा को यदि समझने की कोशिश करें, यदि शब्दों के अर्थ तक ही सीमित न रहकर उनके कारण-भूत-भावधारा को समझने का प्रयत्न करें जिससे पंत के समस्त आर्थिक-राजनैतिक सिद्धांत उद्भूत हैं तो वे पायेंगे कि 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' की कविताओं में भी एक आध्यात्मिक अंतर-दर्शन है।'[१५] इस प्रकार हम देखेंगे कि शुरू से लेकर अबतक की रचनाओं में एक ही अविच्छिन्न भावधारा का प्रवाह है।

'युगवाणी' में पंत ने मार्क्सवाद का पल्ला पकड़ा है, परन्तु गाँधीवाद का आँचल सरकने नहीं दिया है। 'युगवाणी' की पहली कविता है 'बापू', जिसमें पंत का स्वर संशयालु है, देखें—

सत्य अहिंसा से आलोकित होगा मानव का मन !
अमर प्रेम का मधुर स्वर्ग बन जावेगा जन जीवन !

---

१५. पंतजी का गुंजन, पृ० १२२-२४

आत्मा की महिमा से मंडित होगी नव मानवता !
प्रेम-शक्ति से चिर निरस्त हो जावेगी पाशवता !

लेकिन कवि भूतवाद और आध्यात्मवाद के बीच समन्वय की कल्पना करता है और यह समन्वय समाजवाद-गाँधीवाद कविता में कुछ विस्तार के साथ चित्रित किया गया है। साम्यवाद का आधार है भौतिकतावाद, परन्तु कवि संकीर्ण भौतिकवादियों के प्रति व्यंग्य करता हुआ कहता है—

आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?
वस्तुवाद ही सत्य, मृषा सिद्धांतवाद, आदर्श ?
बाह्य परिस्थितियों पर आश्रित अन्तर का उत्कर्ष ?
मानव कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा सत्य केवल उसके दो कूल ?
आत्मा औ' भूतों में स्थापित करता कौन समत्व ?
वहिरंतर, आत्मा भूतों से है अतीत वह तत्व ?
भौतिकता, आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल ?
व्यक्ति-विश्व से, स्थूल सूक्ष्म से परे सत्य के मूल !

'युगवाणी' के कवि ने गांधी और मार्क्स के बीच में अपना एक स्वतंत्र मार्ग स्थापित किया है, क्योंकि गांधीवाद और मार्क्सवाद दोनों अपूर्ण हैं। मार्क्स ने जिस नए सत्य का उद्घाटन किया है, उस संबंध में कवि कहता है—

विकसित हो, बदले जब-जब जीवनोपाय के साधन,
युग बदले, शासन बदले, करगत सभ्यता समापन !
सामाजिक संबंध बने नव अर्थ भित्ति पर नूतन,
नवविचार, नवरीति-नीति, नवनियम, भाव, नवदर्शन !
साक्षी है इतिहास,—आज होने को पुनः युगान्तर,
श्रमिकों का साधन होगा अब उत्पादन यंत्रों पर !!
वर्गहीन सामाजिकता देगी सबको सम साधन,
पूरित होंगे जन के नव-जीवन के निखिल प्रयोजन !

दिग-दिगंत में व्याप्त' निखिल युग-युग का चिर गौरव हर,
जन संस्कृति का नव विराट् प्रासाद उठेगा भू पर !

और साथ-ही-साथ पंत ने साम्यवाद का अभिनन्दन किया है—

साम्यवाद के साथ स्वर्णयुग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन !

परन्तु कवि ने साम्यवाद को भारतीय रंग में भिंगोए रखा है। यों तो पंत की विचारधारा प्रगतिवादी होते हुए भी साम्यवादियों से भिन्न है। इसमें पंत का चिन्तन पूर्णतया स्वतंत्र एवं मौलिक है। इस सम्बन्ध में प्रशंसा करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'यह देखकर प्रसन्नता होती है कि छायावाद के बँधे घेरे से निकल कर पंतजी ने जगत् की विस्तृत अर्थभूमि पर स्वाभाविक स्वच्छन्दता के साथ विचरने का साहस किया है।' अस्तु, इस दृष्टि से उनकी रचनाओं में 'युगवाणी' का अपना महत्त्व है।

स्वयं पंत के कवि ने 'युगवाणी' को विश्वमूर्ति कहा है जिससे वह जाति-मन से मुक्त होकर युग के विश्वमन एवं लोकमन को अपने स्वरों में मूर्त्त कर सके; मनुष्य की अंतश्चेतना में जो सत्य अभी अमूर्त है उसे रूप दे सके; जीवन-सौन्दर्य की जो प्रतिमा आज अन्तर्मन में विकसित हो रही है उसे भौतिक जीवन में साकार कर सके, और हमारा मनस्वर्ग पृथ्वी पर उतर आए।'

अब हम संक्षेप में कवि द्वारा 'युगवाणी' में दिए गए विचारों को देते हैं जिससे कवि कि 'युगवाणी' सम्बन्धी विचारधारा और भी स्पष्ट हो जायगी—

'युगवाणी' की विशेषताएँ

(क) भूतवाद और आध्यात्मवाद का समन्वय जिससे मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके। (ख) समाज में प्रचलित जीवन की मान्यताओं का पर्यालोचन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह। (ग) पिछले युग के उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ियों की तीव्र भर्त्सना जो आज मानव के विकास में बाधक हो रही है। (घ) मार्क्सवाद तथा फ्रायड के प्राणि-शास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव, जन-समाज का पुनः संगठन एवं दलित लोक-समुदाय का जीर्णोधार। (ङ) वहिर्जगत् के साथ अन्तर्जीवन के संगठन की आवश्यकता,

राग-भावना का विकास तथा नारी-जागरण। (च) युगवाणी में काव्यात्मकता का अभाव नहीं है ; प्रत्युत उसका काव्य अप्रच्छन्न, अनलंकृत और विचार-भावना-प्रधान है। (छ) युगवाणी की भाषा सूक्ष्म है, उसमें विश्लेषण का सौन्दर्य है।

'युगवाणी' के पश्चात् ग्राम्या का प्रकाशन हुआ। इसमें 'युगवाणी' के पश्चात् १६४० के मध्य तक की ५३ कविताओं का संग्रह है। इसमें

ग्राम्या

ग्राम्य-जीवन-सम्बन्धी रचनाएँ संगृहीत हैं। 'युगवाणी' में जो आधुनिक प्रगतिवादी सिद्धान्तों का आरम्भिक रूप है, उसको बलिष्ठ बनाने के लिए कवि ने 'ग्राम्या' को जन्म दिया। डा० नगेन्द्र के शब्दों में 'युगवाणी' प्रगतिवादी पंत का सिद्धान्त वाक्य था—'ग्राम्या' उसका प्रयोग। 'युगवाणी' में पंतजी अपने नवीन सिद्धांतों की रूपरेखा निश्चित कर रहे थे। सिद्धांत अमूर्त्त होते हैं, इसलिए 'युगवाणी' में रस से पुष्ट मांस नहीं है। 'ग्राम्या' तक वे सिद्धांत स्थिर कर चुके और अब उन्होंने उसके प्रयोग के लिए एक मूर्त्त आधार चुन लिया। स्वभावतः ग्राम्या की स्नायुओं में कवित्त्व का गाढ़ा रस प्रवहमान है। उससे अंग भरे हुए और यौवन पीन है—

है मांस-पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता
संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज।
कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,
उद्दीप्त न करता उसे भाव कल्पित मनोज।

यह मानों ग्राम्या की महत्त्वमयी व्याख्या है।'[१६] प्रकृति का स्वतत्र गायक अब कल्पना के मंच पर न बैठकर यथार्थता की भूमि पर आकर ग्रामीण जीवन के चित्रों को खींचने की ओर प्रवृत्त हुआ। इसमें ग्राम्य-जीवन का जो चित्रण, निरीक्षण एवं आलोचन है, वह एक साधारण पाठक की दृष्टि से नहीं है जैसा कि कवि ने यथार्थवाद के नाम पर लिखा है। इसमें वह निमग्नता, वह गति नहीं जिसमें पाठक का हृदय घुल-मिल जाय। भारतीय ग्रामीण

---

१६. सुमित्रानंदन पंत, पृ. सं. २२४-२५

जन-जीवन के साथ तादात्म्य स्थापित कर ये कविताएँ नहीं लिखी गई हैं, इसका उत्तर पंतजी के शब्दों में है—'ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना होता।' खैर, जो भी हो, उन्होंने अपने महल के वातायन से भारतीय ग्रामीण-जीवन का चित्र आँका है। कला के विचार से साप्ताहिक 'कर्मवीर' ने उसपर जो अपनी सम्मति दी है, उसी के शब्दों में—ग्राम्या पके हुए धान से लहलहे खेत के समान है। उसमें ग्रामीण जीवन की आर्द्रता है। 'एस्थीट' कवि ने कई सुन्दर चित्र-राग आलेखित किये हैं। भाषा और भी सरल, ओजवती और सजीव हो उठी है। कई जगह ग्रामीण शब्दों का भी प्रयोग है जो 'लोकल कलर' उत्पन्न करता है।··· 'धोबियों का नाच', 'चमारों का नाच', 'कहारों का रुद्र नर्तन', इफेक्ट की दृष्टि से अत्यन्त ललित चीजें हैं। 'भारत माता ग्रामवासिनी', 'अहिंसा', 'चरखा-गीत' सुन्दर संघगीत (कोरस) हैं।'

'ग्राम्या' का जो जन्म हुआ, उसकी पृष्ठभूमि (Back-ground) 'युगवाणी' है। समयानुकूल जिन-जिन विचार-धाराओं एवं परिस्थितियों का काफी प्रभाव पड़ा, उसीका रंग इस पर है। उन्होंने 'ग्रामजनता को 'रक्तमांस के जीवों' के रूप में नहीं देखा है, एक मरणोन्मुखी संस्कृति के अवयव-स्वरूप देखा है और ग्रामों को सामंत-युग के खंडहर के रूप में।' देखें—

यह तो मानव लोक नहीं रे यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित।

* * *

मानव दुर्गति की गाथा से ओत-प्रोत, मर्मांतक
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक।

—इसमें जीवन की सच्ची घटनाओं के साथ-साथ रंग-परिज्ञान (Sense of colour) का सुन्दर रूप प्रस्तुत किया गया है। उन्होंने ग्राम्य जनता की मरणोन्मुखी संस्कृति को तो देखा ही, परन्तु उनके प्रति उन्होंने अपनी बौद्धिक सहानुभूति (Intellectual sympathy) भी प्रदर्शित की है।

आज असुन्दर लगते सुन्दर प्रिय पीड़ित शोषित जन
जीवन के दैन्यों से जर्जर मानव मुख हरता मन !

आदि पंक्तियों में हार्दिकता कूट-कूट कर भरी हुई है। कवि का लक्ष्य है—पुनर्जागरण, पर वह सांस्कृतिक क्रांति की ओर लक्ष्य करता है। वह उनके प्रति सहानुभूति ही प्रदर्शित नहीं करना चाहता, प्रत्युत उन ग्रामीणों की दुर्गति का सुधार करना भी पंत का उद्देश्य है। जिस प्रकार डी० एच० लारेन्स ने निम्नकोटि की मानवता का अविकल चित्र खींचा है उसी प्रकार पंत ने भी 'ग्राम्या' में ग्राम्य-जनता के रूप की बाँकी झाँकी ली है। 'ग्राम्या' के पूर्व पंत में जो आकार-प्रियता थी, वह अब चित्र-रूप में उतर आयी। 'उसकी सर्वहारा मशीन के सम्पर्क में आई जनता की बीमारी उनके राजनीतिक वर्ग-संस्कार हैं, जिनका लारेन्स ने चित्रण किया है। अपने देश के जन समूह (mob) की बीमारी उससे कहीं गहरी, आध्यात्मिकता के नाम में रूढ़ि-रीतियों एवं अंधविश्वासों के रूप में पथराए हुए (फॉसिलाइज्ड) उनके सांस्कृतिक संस्कार हैं। लारेन्स के पात्र अपनी परिस्थितियों के लिए सचेतन और सक्रिय हैं; 'ग्राम्या' के दरिद्रनारायण अपनी परिस्थितियों ही की तरह जड़ और अचेतन—

वज्रमूढ़, जड़भूत, हठी, वृष बांधव कर्षक,
ध्रुव, ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर रक्षक।

फिर लारेन्स जीवन के मूल्यों के संबंध में प्राणिशास्त्रीय मनोविज्ञान (वाएलॉजिकल वॉट) से प्रभावित हुआ है,[१७] परन्तु पंत का कवि 'ऐतिहासिक विचार धारा से, जिसका कारण स्पष्ट ही है' कि वह 'पराधीन देश का कवि' है। 'लारेन्स जहाँ द्वन्द्व-पीड़न (सेक्स रिप्रसन) से मुक्ति चाहता है' पंत 'राजनीतिक आर्थिक शोषण से'। खैर, जो भी हो, कवि ने ग्रामीणों के प्रति हृदयहीनता नहीं प्रदर्शित की है।

पंत का कवि ऐतिहासिक विचारधारा से अधिक प्रभावित इसलिए भी हुआ है कि 'उसमें कल्पना के स्रोत को विशद और वास्तविक पथ मिलता है।

---

१७. आधुनिक कवि, भाग २, भूमिका, पृ० ३०-३१।

छायावाद के दिशाहीन शून्य-सूक्ष्म आकाश में अतिकाल्पनिक उड़ान भरनेवाली अथवा रहस्यवाद के निर्जन अदृश्य शिखर पर कालहीन विराम करनेवाली कल्पना को एक हरी-भरी ठोस जनपूर्ण धरती मिल जाती है।

'ताक रहे गगन ? मृत्यु नीलिका गहन गगन ?
निःस्पंद शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को, स्वर्गिक भू को !
मानव, पुण्य - प्रसू को।'—

इसी लक्ष्य-परिवर्तन की ओर इंगित करता है। 'कितनी चिड़िया उड़े अकास, दाना है धरती के पास' वाली कहावत के अनुसार ऐतिहासिक भूमि पर उतर आने से कल्पना के लिए जीवन के सत्य का दाना सुलभ और साकार हो जाता है; और कृषि, वाणिज्य, व्यवसाय, कला-कौशल, समाजशास्त्र, साहित्य, नीति, धर्म, दर्शन के रूप में खंड-खंड विभक्त मनुष्य की सांस्कृतिक चेतना का ज्ञान अधिक यथार्थ हो जाता है।'[१८]

कवि के व्यक्तिगत जीवन में जिन-जिन परिस्थितियों का आगमन हुआ, उन्हीं से प्रभावित विचारों को काव्य का विषय बनाया। कवि ने जीवन के परिवर्तन को माना है और परिवर्तन जीवन का एक अनिवार्य अंग है। युग एकरसता पसंद नहीं करता, वह भिन्न-भिन्न रसों का स्वाद चखना चाहता है। साहित्य के साथ भी यही बात लागू होती है, तब साहित्यकार एकरसता कैसे देखना पसन्द करेगा ! वास्तव में कविता वही है जो मानवीय मनोवृत्तियों का समयानुकूल रूप खींच दे। अन्यथा वह प्रथम कोटि की कविता नहीं होगी। कवि पंत के काव्यमय जीवन का विकास क्रमशः हुआ, वह सर्वप्रथम सुकुमार अनुभूति का उपासक रहकर भावप्रवण बन गया। इस प्रकार उन्होंने सौंदर्य-चिंतन, दार्शनिक चिंतन, भौतिक चिंतन एवं विवेचना की। सच तो यह है कि पंत का विकास एक क्रम से हुआ, जो एक सफल कवि का प्रधान गुण है। उसने अंत में आकर कविता को जन-जीवन के साथ लगा दिया जिसके कारण

---

१८ वही, पृ० २१

उसकी कविताएँ उत्कृष्ट हुईं। आज तो सर्वव्याप्त हलचल है, इस बीच कवि की दिव्यात्मा अटल एवं दृढ़ है। कवि सामूहिक प्रगति चाहता है जिससे भावी मानव-समाज का भविष्य उज्ज्वल और आलोकमय हो। पंत ने स्वयं स्वीकार करते हुए लिखा है कि भविष्य के साहित्यिक को इस युग के वाद-विवादों, अर्थशास्त्र और राजनीति के मतांतरों द्वारा, इस सन्धिकाल की घृणा, द्वेष, कलह के वातावरण के भीतर से, अपने को वाणी नहीं देनी पड़ेगी। उसके सामने आज के तर्क-संघर्ष, ज्ञान-विज्ञान, स्वप्न-कल्पना—सब घुलमिल कर एक सजीव सामाजिकता और सांस्कृतिक चेतना के रूप में वास्तविक एवं साकार हो जायँगे। वर्तमान युद्ध और रक्तपात के उस पार वह एक नवीन, प्रबुद्ध, विकसित और हँसती-बोलती हुई, विश्व-निर्माण में निरत, मानवता से अपनी सृजन-सामग्री ग्रहण कर सकेगा। इस परिवर्तन-काल के विक्षुब्ध लेखक की अत्यन्त सीमाएँ और अपार कठिनाइयाँ हैं।' अपने इस विचारधारा से अनुप्राणित होकर कवि ने 'ग्राम्या' में सामाजिक प्रवृत्तियों को काव्य का आकार प्रदान किया।

ग्राम्या की विशेषताएँ

संक्षेप में 'ग्राम्या' की भावधारा की विशेषताएँ निम्नांकित हैं--(क) 'युग-वाणी' में कवि ने जो सिद्धान्त समाज-व्यवस्था एवं नई संस्कृति की स्थापना के लिए स्थिर किये थे, उसी का प्रयोग ग्राम्या में हुआ है। (ख) 'युगवाणी' में जनकल्याण के लिए मार्क्स का साम्य-वाद अपनाया गया था, परन्तु 'ग्राम्या' में कवि ने उसे भारतीय रंगों में रँग दिया है। (ग) 'ग्राम्या' में सिद्धांत-वाक्य नहीं हैं, अगर हैं भी तो उनकी संख्या अल्प है। इसमें ग्रामीण जीवन का मार्मिक चित्रण हुआ है। (घ) इसमें कवि ने अपने सिद्धांतों को व्यावहारिक बनाने का प्रयास किया है। (ङ) इसमें कवि ने सिर्फ गंभीर दार्शनिक सिद्धांतों के विश्लेषण-विवेचना में अपनी प्रतिभा का व्यय नहीं किया है, वरन् छोटी-से-छोटी समस्याओं का अंकन करना कविकर्म माना है। (च) 'ग्राम्या' की रचनाएँ अत्यन्त मार्मिक एवं प्रभावशालिनी हुई हैं। 'मानव-मर्म को छूने की शक्ति इन रचनाओं में इसलिए अधिक है कि इनमें कवि ने अत्यन्त संयत रूप से, पर कौशल के

साथ, अपनी भावुकता का अभिव्यंजन किया है। भावना और सिद्धांत के इस योग से प्रगतिवाद का सच्चा रूप निखर पाया है, इसमें संदेह नहीं।' (ज) 'ग्राम्या' की कविताओं में व्यंग्य-गीति भी हैं और उनका व्यंग्य-बाण शत्रु और मित्र दोनों पर पड़ता है। (झ) इसमें सेक्स की भी चर्चा आयी है जिसमें ऐन्द्रिकता के साथ-साथ वासना की भी गंध है, पर उनकी सेक्स-भावना स्वस्थ एवं मांस-पूजा के 'रुग्ण विलास' से रहित है। (ट) इसकी भाषा उत्कृष्ट है, वह इस अर्थ में कि उसके शब्दों में एक शक्ति और दृढ़ता है।

'ग्राम्या' की रचना करने के अनन्तर कवि सात वर्षों तक मौन रहा और उसकी प्रतिभा संचित रही। इसका एकमात्र तात्कालिक कारण है उसकी रुग्णता। इस बीच में कविता को कई प्रकार के दुःखों का सामना करना पड़ा। एक बार फिर वह मृत्युशय्या पर जा पड़ा और इस स्थिति पर जा पहुँचा जहाँ से मृत्यु दृष्टिगोचर होने लगी। 'मृत्यु के उस अंध-तमस् को

स्वर्ण-किरण

भेदकर नवजीवन की स्वर्ण-किरण का उद्भास स्वभावतः जीवन दर्शन में परिवर्तन की अपेक्षा करता है। वास्तव में मृत्यु जीवन की भौतिकता के लिए सबसे बड़ी ललकार है—आज से शत-सहस्र वर्ष पूर्व मानव-चेतना के उस नव-प्रभात में वैदिक ऋषि ने मानव को भौतिक लिप्साओं से सावधान करने के लिए ही तो कहा था—'ॐ क्रतो स्मर, कृतं क्रतो स्मर'। मृत्यु की चेतना जीवन के स्थूल तथ्यों को भेद कर उसके सूक्ष्म सत्यों को अनायास ही उद्घाटित कर देती है। अतएव कवि को स्थूल से सूक्ष्म की ओर, वस्तु से आत्मा की ओर प्रेरित करने के लिए उसकी इस रुग्णता ने भी कम-से-कम परिस्थिति का कार्य आवश्यक किया है। पंत-जैसे व्यक्ति के जीवन में वैसे ही कटुता के लिए स्थान कम था, जो कुछ कटुता थी वह इस अग्नि में जलकर निःशेष हो गई—अब उसमें प्राणों का अमृत है, नवजीवन, आशा और उल्लास।'[१९] जब कवि स्वस्थ हुआ तब कुछ समय के लिए पांडेचरी के अरविंद-आश्रम में रहा जिसके फलस्वरूप उसके जीवन-सम्बन्धी

---

१९. पंत का नवीन जीवन-दर्शन : डा० नगेन्द्र

दृष्टिकोण में भी परिवर्तन हुआ। अरविंद का प्रभाव कवि पर पड़ा जिसको पंत ने स्वयं 'उत्तरा' की प्रस्तावना में स्वीकारोक्ति के रूप में लिखा है कि 'कवीन्द्र रवीन्द्र के प्रति भी मेरी दो रचनाएँ 'युगपथ' में प्रकाशित हो रही हैं, किन्तु इन सबमें जो एक परिपूर्ण एवं संतुलित अन्तर्दृष्टि का अभाव खटकता था, उसकी पूर्त्ति मुझे श्रीअरविन्द के जीवन दर्शन में मिली; और इस अन्तर्दृष्टि को मैं इस विश्व-संक्रान्ति-काल के लिए अत्यन्त महत्त्वपूर्ण तथा अमूल्य समझता हूँ। मैंने अपने समकालीन लेखकों तथा विशिष्ट व्यक्तियों पर समय-समय पर स्तुति-गान लिखने में सुख अनुभव किया है। श्री अरविंद के प्रति मेरी कुछ विनम्र रचनाएँ, भेंट रूप में, 'स्वर्ण किरण', 'स्वर्ण-धूलि' तथा 'युगपथ में' पाठकों को मिलेंगी। श्री अरविंद को मैं इस युग की अत्यन्त महान् तथा अतुलनीय विभूति मानता हूँ। उनके जीवन-दर्शन से मुझे पूर्ण संतोष प्राप्त हुआ। उनसे अधिक व्यापक, ऊर्ध्व तथा अतलस्पर्शी व्यक्तित्व, जिनके जीवन-दर्शन में आध्यात्म का सूक्ष्म, बुद्धि-अग्राह्य सत्य नवीन ऐश्वर्य तथा महिमा से मंडित हो उठा है, मुझे दूसरा कहीं देखने को नहीं मिला। विश्व-कल्याण के लिए मैं श्री अरविंद की देन को इतिहास की सबसे बड़ी देन मानता हूँ। उसके सामने इस युग के वैज्ञानिकों की अणुशक्ति की देन भी अत्यन्त तुच्छ है। उनके दान के बिना शायद भूत-विज्ञान का बड़ा-से-बड़ा दान भी जीवन मृत जाति के भविष्य के लिए आत्म-पराजय तथा अशान्ति ही का वाहक बन जाता।'[२०] इसी पृष्ठभूमि को दृष्टिपथ में रखते हुए हम स्वर्ण-किरण में आये हुए भावों का विश्लेषण करेंगे।

'स्वर्ण-किरण' से पंत के कवि-जीवन का एक नवीन अध्याय आरम्भ पाता है, इसलिए हम इसे पुनरुज्जीवन का काव्य' की संज्ञा प्रदान कर सकते हैं। इसमें कवि की दृष्टि और स्वर परिवर्तित है। अब वह अनुभव करने लगा है कि उसे जीवन में कोई गंभीर कार्य न्यस्त करना है, इसलिए उसने 'स्नेह-समर्पण' में डा० एन० सी० जोशी से ये शब्द कहे हैं—

२०. उत्तरा की प्रस्तावना, पृष्ठ सं० १६-२०

डॉक्टर साहब, मुझे आपने
डिया पुनः नव जीवन।
गीत गा सकूँ फिर विधि का था
उसमें गूढ़ प्रयोजन॥

इस प्रकार यह विदित होता है कि नवजीवन की प्राप्ति के फलस्वरूप उन्हें आन्तरिक प्रसन्नता है और साथ-साथ 'विधि' पर आस्था भी। पंत में आश्चर्यमय आशा है जो 'स्वर्ण' का पर्याय है और वह प्रथम किरण के समान बाहर से आकर एक आह्लादकारी परिवर्तन प्रस्तुत कर देता है। फलतः व्यग्र होकर कवि 'स्वर्ण-किरण' का अभिनन्दन करते हुए गा उठता है—

हँस लो स्वर्ण-किरण,
स्वरों में हँसी लहर
ज्योति का जगा प्रहर,
चेतना उठी सिहर
स्वर्ण यह दिव्य अमर

और अब वह कामना भी करता है—

युगों का तमस हरण
करे यह स्वर्ण किरण

नव-जीवन प्राप्ति से उसे जो नवोल्लास मिला उसे स्वीकार करते हुए कहता है—

जादू बिछा दिया इस भू पर
तुमने सोने की किरणों की,
जीवन हरियाली बो-बे कर।

इस संग्रह की अधिकांश कविताएँ एक विशेष प्रकार की आध्यात्मिक भविष्य-कल्पना है। यह आध्यात्मिकता साम्प्रदायिक या धार्मिक नहीं है, प्रत्युत मनोवैज्ञानिक है जिसका सम्बन्ध सूक्ष्म चेतना से है। आत्मा की सत्ता पर कवि को विश्वास है, लेकिन वे उसे चेतना का सूक्ष्म रूप मानते हैं, 'अपने में सर्वथा निरपेक्ष भौतिक जीवन से एकान्त अविकृत उसका अस्तित्व नहीं है।

और स्पष्ट शब्दों में मानव-हृदय का पूर्णतम विकसित रूप आत्मा है। अतएव उसमें मानव-हृनय की विभूतियों का चरम विकास मिलता है। उनसे रहित शुद्ध-बुद्ध अथवा निर्लिप्त रूप, नकारात्मक एवं निवृत्तिमूलक पंत को अग्राह्य है। उन्होंने जिस आध्यात्मिक चेतना की कल्पना की है उसमें भौतिकता का परिष्कार है, तिरस्कार नहीं है; उन्नयन है, दमन नहीं है।'

'आज हमें मानव-मन को करना आत्मा के अभिमुख'

और साथ ही

वही सत्य कर सकता मानव-जीवन का परिचालन,
भूतवाद हो जिसका रज तन प्राणिवाद जिसका मन
औ' अध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरन्तन।

....

सच तो यह है कि आध्यात्मिकता पंत की काव्य-चेतना का सहज विश्वास है। इसमें चेतना का अभिनन्दन है, जड़ का नहीं। कुछ लोग यह कहेंगे कि पंत जन-जीवन के अंकन से विमुख हो रहे हैं, परन्तु बात ऐसी नहीं है, वरन् कवि विश्व-कल्याण की साधना में लीन है।

'स्वर्णकिरण' की भावधारा की विशेषताएँ

संक्षेप में 'स्वर्ण-किरण' की भावधारा की विशेषताएँ निम्नांकित हैं—(क) 'स्वर्ण-किरण' एक आध्यात्मिक भावों से पूर्ण काव्य है। इसमें भी 'गुंजन के समान आत्मा की साधना पर जोर डाला गया है, परन्तु इसमें उसका सम्बन्ध पीड़ित मानवता से है। (ख) कवि आध्यामिक धरातल पर समस्त मानव का उत्कर्ष देखने का अभिलाषी है और उसी में मानव-जीवन की सार्थकता है। (ग) कवि आत्मा की शक्ति पर आस्था रखता है जिसके कारण वह नवीन सिद्धान्तों की स्थापना कर लेने की आशा करता है। (घ) इसमें प्रणय-भावना की भी अभिव्यक्ति हुई है जिसमें वास्तविक गंभीरता है। वह पंत की आयु और मननशील प्रवृत्ति की देन है। (ङ) इसमें कवि समाज का कटु आलोचक है, पर वह सिर्फ उसकी आलोचना ही नहीं करता, वरन् कवि का विचार है कि

मनुष्य को समाज को सहयोगी बनाना है। (च) प्रकृतिपरक कविताओं में चिंतन की प्रधानता है।

स्वर्णधूलि

पंत ने स्वयं कहा है कि 'स्वर्णधूलि का धरातल सामाजिक है।' इसका तात्पर्य्य यह है कि इसमें भी पूर्ववर्ती रचनाओं के समान जन-चेतना एवं लोक-मंगल-भावना को अभिव्यक्ति मिली है। इसमें सिर्फ वस्तुवाद का स्वर ही मुखरित नहीं है, वरन् आध्यात्मिक अनुभूति का कंठ विशेष रूप से फूटा है। इसमें कवि ने वैदिक ऋषियों की दृष्टि से ही जन जीवन को देखा है। कवि यह नहीं चाहता कि मानव को सिर्फ भौतिक सुख की प्राप्ति हो, वरन् समस्त मानव के आध्यात्मिक उत्कर्ष को देखने का वह आकांक्षी है। अतएव हम देखते हैं कि 'स्वर्णकिरण' की भावना 'स्वर्णधूलि' में गंभीर हो गई है। इन्हीं भावनाओं के आधार पर जीवन, जगत् आदि संबंधी मूल्यों (values) का निर्माण हुआ है। उनकी एक कविता 'पतिता' है जिसमें उन्होंने यह बतलाया है कि उन्नत और पतित का अंतर शरीर पर आधारित नहीं, वरन् मन पर है—

मन से होते मनुज कलंकित
रज की देह सदा से कलुषित
प्रेम पतित पावन है, तुमको
रहने दूँगा मैं न कलंकित

समाज की जो परिभाषा परम्परानुमोदित है, वह कवि को मान्य नहीं है। श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा निर्दिष्ट निष्काम प्रेम पर ही परकीया और स्वकीया का भेद देखिए—

अतः स्वकीया या परकीया जन - समाज की है परिभाषा
काम मुक्त औ प्रीति युक्त होगी मनुष्यता, मुझको आशा !

[परकीया : पृ० ५]

कवि आत्मसत्य को ही वास्तविक सत्य मानता है, क्योंकि वस्तु-सत्य और भाव-सत्य दोनों 'अति' की सीमा पर हैं और इसलिए ये दोनों वास्तविकता से काफी दूर हो गए हैं। 'आत्मसत्य' को कवि ने वास्तविक सत्य माना है,

क्योंकि वह दोनों 'वस्तुसत्य और भावसत्य' के बीच सामंजस्य उपस्थित करते हैं। इसके लिए 'सामंजस्य' शीर्षक कविता (पृ० सं०६) द्रष्टव्य है। इसी सामंजस्य की महत्ता को कवि ने 'आजाद' शीर्षक कविता में नाटकीय ढंग से प्रस्तुत किया है। आध्यात्मवाद को कवि ने जीवन का वास्तविक लक्ष्य माना है—

वही सत्य कर सकता मानव - जीवन का परिचालन
भूतवाद हो जिसका रजतन, प्राणिवाद जिसका मन,
औ' आध्यात्मवाद हो जिसका हृदय गंभीर चिरंतन
जिसमें मूल सृजन विकास के, विश्व प्रगति के गोपन।

[लोक-सत्य : पृ० १२]

कवि ने सभी स्थलों पर आध्यात्मिकता पर जोर दिया है। वह सांस्कृतिक चेतना पर विश्वास करते हैं। स्वयं पंत ने लिखा है कि 'आधुनिक भौतिकवाद हमें, मध्ययुगीय भारतीय दार्शनिकों के आत्मवाद की तरह, अपने युग के लिए एकांगी तथा अधूरा लगता है। मानव जीवन के रूप को अखण्डनीय ही मानना पड़ता है, उसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। सांस्कृतिक संचरण न राजनीति की तरह संबल संचरण है और न धर्म तथा आध्यात्म की तरह ऊर्ध्व संचरण। वह इन दोनों का मध्यवर्ती पंथ है।' [२१]

'आर्षवाणी' और 'मानसी' शीर्षक दो खंडों में बहुत-सी कविताएँ आयी हैं जिनमें उनका स्वर भिन्न है, 'अन्तर्भावना का धरातल है।' 'आर्षवाणी' के अन्तर्गत रचनाओं में कवि ने स्वीकार किया है कि 'वह वैदिक मंत्रों तथा तत्संबंधी अध्ययन से प्रभावित है।' इस खंड में कवि ने प्राकृतिक उपादानों को लक्षित कर विश्व-मंगल-भावना को अभिव्यक्ति दी है, कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

जौ के खेतों में ज्यों गायें करती विचरण
देव, हमारे उर में सुख से तुम करो रमण !

२१. 'सांस्कृतिक चेतना क्यों कैसे'—सुन. न. पंत. (संगम, १८ सितंबर, १९४८)

सब दिशाओं से दो हमको, इन्द्र, चिर अभय,
विजयी हो षड् रिपुओं पर, जीवन हो सुखमय।

[इन्द्र : पृ० १२७]

श्री इलाचंद जोशी ने पंत की नवीन विचारधारा को संक्षेप में इस प्रकार व्यक्त किया है—

(क) मानवीय जीवन का निर्धारण बाह्य मन के द्वारा नहीं, बल्कि अंतश्चेतना के आधार पर करने का युग आ गया है। हमें सचेत रूप से मानवीय अवचेतना के अगाध सागर का मंथन करना होगा और इस मंथन के फलस्वरूप जो सूक्ष्म भाव-सत्य ऊपर उठेंगे उनका विश्लेषण अनुभवी रासायनिक की तरह उनके द्वारा व्यक्ति तथा समाज का सुसंयोजित कल्याण-पथ निर्देशित करना होगा।

(ख) अंतश्चेतन को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है—अवचेतना (Unconscious) और ऊर्ध्वचेतना (Superconscious)। ये दोनों चेतनाएँ एक दूसरी से अविच्छिन्न रूप में बंधी है। बिना अवचेतना की सागरोपम गहराई की नींव का ऊर्ध्व या अतिचेतना की हिमालयोपम ऊँचाई ठहर नहीं सकती, और बिना अतिचेतना की चरम उच्चता पर स्थित स्थिर और चिर प्रशांत लक्ष्य के विश्वजनीन अवचेतना का असीम उद्वेलन कोई सार्थकता नहीं रखता।...(इन दोनों चेतनाओं में सामंजस्य-मूलक सूत्र या समन्वयात्मक सेतु बाँधना होगा।)

(ग) मानवीय अवचेतना ही दिव्य ज्योतिमयी स्वर्गीय उषा है और वही घनघोर अंधकारमयी नारकीय रात्रि। ये दोनों एक ही तत्त्व के दो रूप हैं। यदि सामूहिक मानव-जीवन वास्तविक स्वर्गिकता की स्थापना करना चाहता है तो अवचेतन लोक के उसी घोर नारकीय अंधकार की यथार्थ मिट्टी के आधार पर ही उसे प्रतिष्ठित किया जा सकता है।

(घ) ऐतिहासिक, सामाजिक अथवा व्यक्तिगत जीवन में ईश्वर (सर्जनात्मिका प्रकृति का मूल प्रेरक-तत्त्व) फिर-फिर मरता-जीता है और फिर-फिर नये रूपों में आविर्भूत होता रहता है। सामूहिक अवचेतना के अनंत और अगाध तम-सागर के भीतर निहित अमित रहस्यमयी कामना-तरंगें युग-युग में,

पलपल में अपनी बद्धस्थिति से मुक्त होकर नव रूपों में बाहर को फूट पड़ने के लिए आकुल रहती हैं, और वे ही नव-नव स्फुरित स्रोत एक ओर युग-युग के आराध्यदेव का रूप बदलते रहते हैं और दूसरी ओर प्रतिफल के जीवन का नव-नव निर्माण करते चले आते हैं। चिर विकासशील (बाह्य और अंतर) प्रकृति युग-युग के अंधकार से तथा प्रकाश से समान रूप के शक्ति खींचती हुई द्वेष, कलह, संग्राम और अंतर्विरोध के बीच में, प्रकट ह्रास की अवस्था में भी नया बल प्राप्त करती हुई, प्रतिपल नये-नये उन्नत तत्त्वों में रसांतरित होती हुई आगे को बढ़ती चली जाती है।

(ङ) आधुनिक गणित इस सिद्धांत पर पहुँचता है कि विश्व के समस्त भौतिक तत्त्व आत्मनिपीड़न अथवा आत्म-मंथन द्वारा धीरे-धीरे शक्ति-तत्त्व में परिणत होते जा रहे हैं और गणित द्वारा ही इस महासत्य का आभास मिल रहा है कि वह समस्त शक्तितत्त्व भी आत्मनिपीड़न द्वारा धीरे-धीरे सूक्ष्म मनस्तत्त्व में परिणत हो जायगा। इस प्रकार समस्त विश्व में अंततोगत्वा एक सूक्ष्म और व्यापक चेतना-तत्त्व के अतिरिक्त और कुछ नहीं रह जायगा। पंतजी की विभिन्न कविताओं में दूसरे रूपों में इसी सत्य की ओर निर्देश पाया जाता है।

उत्तरा

'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' के दो वर्षों के पश्चात् 'उत्तरा' का प्रकाशन हुआ। सामान्य रूप से 'उत्तरा' अपनी दो पूर्ववर्ती रचनाओं की परम्परा में है। पर 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्ण-धूलि' में समष्टि-चिंतन की प्रधानता है, लेकिन 'उत्तरा' में पंत का कवि मानप को, मानव-समाज को, संस्कृति को बदल डालने की आकांक्षा का अभिव्यक्ति प्रदान करता है। साथ-ही-साथ कवि को यह विश्वास हो जाता है कि उसकी आकांक्षा फलीभूत हो जायगी। इसी आस्था पर उसकी इच्छा का स्वर्ण 'भू-स्वर्ग' बन रहा है, परन्तु इसमें किसी-न-किसी रूप में 'भू' का आँचल सरक ही गया है। 'भू' कवि के पाँवों के नीचे आकर दब गया और वहाँ से उसकी अन्तःचेतना जाग्रत् हो उठी। इसके फलस्वरूप पंत की आन्तरिक प्रवृत्ति उन्मुख हो गयी और उसके चिंतन की धारा एक शीर्ष-विन्दु पर जाकर

स्थिर हो जाती है। इस प्रकार पंत कवि की अपेक्षा एक दार्शनिक बन जाता है और इसीलिए उसकी दार्शनिक चिंतना 'उत्तरा' में फूट पड़ी है।

यों तो 'उत्तरा' में कुछ प्रकृतिपरक, कुछ वियोग-शृंगार-विषयक, कुछ धरती तथा युग-जीवन-संबंधी एवं कुछ प्रार्थना-विषयक कविताओं का चयन हुआ है, पर इन कविताओं से अत्यधिक महत्त्व रखता है कवि द्वारा लिखित 'उत्तरा' की प्रस्तावना। इसमें कवि ने 'अपने उत्तर जीवन की प्रेरणाओं और विचारधाराओं का विश्लेषण किया है।' इधर 'स्वर्ण-किरण' और 'स्वर्णधूलि' को लेकर आलोचकों के बीच एक वितंडावाद खड़ा हो गया था, उसी के निराकरण के लिए पंत ने अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहा है—'इस प्रस्तावना का उद्देश्य उन तर्कों या उच्छ्वासों का निराकरण करना नहीं, केवल पाठकों के सामने, कम-से-कम शब्दों में, अपना दृष्टिकोण भर उपस्थित कर देना है। वैसे, मेरा विचार अपने काव्य-संकलन में 'युगान्त' के बाद की अपनी रचनाओं के संबंध में विस्तृत आलोचनात्मक निबंध लिखने का है, पर वह कल की बात है। मेरी इधर की रचनाओं का मुख्य ध्येय केवल उस युग-चेतना को, अपने यत्किंचित् प्रयत्नों द्वारा, वाणी देने का रहा है जो हमारे संक्रान्तिकाल की देन है और जिसने, एक युगजीवी की तरह, मुझे भी अपने क्षेत्र में प्रभावित किया है। इस प्रकार के प्रयत्न मेरी कृतियों में 'ज्योत्स्ना' काल से प्रारंभ हो गये थे; 'ज्योत्स्ना' की स्वप्न भ्रांत चाँदनी (चेतना) ही एक प्रकार से 'स्वर्ण-किरण' में युग प्रभात के आलोक से स्वर्णिम हो गई है।

वह स्वर्ण भोर की ठहरी जग के ज्योतित आंगन पर
तापसी विश्व की बाला पाने नव-जीवन का वर ?—

चाँदनी को संबोधित 'ज्योत्स्ना-गुंजन' काल की इन पंक्तियों में पाठकों को मेरे उपर्युक्त कथन की प्रतिध्वनि मिलेगी। मुझे विश्वास है कि 'ज्योत्स्ना' के बाद की मेरी रचनाओं को तुलनात्मक दृष्टि से पढ़ने पर पाठक स्वयं भी इसी परिणाम पर पहुँचेंगे। बाहरी दृष्टि से उन्हें 'युगवाणी' तथा 'स्वर्ण-किरण' काल की रचनाओं में शायद परस्पर-विरोधी विचारधाराओं का समावेश मिले,

पर वास्तव में ऐसा नहीं है।[२१] पंत द्वारा अभिव्यक्त विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कवि के कवित्व का विकास स्वाभाविक रूप से हुआ है और वह एक सूत्र में गुम्फित है। अस्तु, कवि अब सिर्फ द्रष्टामात्र नहीं रह गया है, प्रत्युत नये विचारों का सूत्रधार वन गया है। यह सही है कि हम उसके विचारों से सहमत न हों, पर उसके द्वारा इंगित विचारों की अपनी महत्ता है जिसे युग समझता है या आनेवाला युग पहचानेगा। कवि की चिन्तना विकासशील रही है। यों तो आज हम चाहें तो पंत को किसी भी विशेप सूत्र में गुम्फित कर सकते हैं, लेकिन कवि की गतिविधि अपनी है और ऐतिहासिक दृष्टि से उनका विकासक्रम अत्यन्त महत्त्व रखता है। पंत ने लिखा है—ज्योत्स्ना में मैंने मानव-जीवन की जिन वहिरंतर मान्यताओं का समन्वय करने का प्रयत्न तथा नवीन सामाजिकता (मानवता) में उनके रूपांतरित होने की ओर इंगित किया है, 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में उन्हीं के वहिर्मुखी (समतल) संचरण को (जो मार्क्सवाद का क्षेत्र है). अधिक प्रधानता दी है; किन्तु समन्वय तथा संश्लेषण का दृष्टिकोण एवं तज्जनित मान्यताएँ दोनों में समान रूप से हैं। इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं। 'युगवाणी' तथा 'ग्राम्या' में यदि ऊर्ध्व मानों का समधरातल पर समन्वय हुआ है तो 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्ण-धूलि' में समतल मानों का ऊर्ध्व धरातल पर; जो तत्त्वत: एक ही लक्ष्य की ओर निर्देश करते हैं। किन्तु किसी लेखक की कृतियों में विचार-साम्य के बदले उससे मानसिक विकास की दशा को अधिक महत्त्व देना चाहिए; क्योंकि लेखक सजीव अस्तित्व या चेतना है और वह भिन्न-भिन्न समय पर अपने युग के स्पर्शों तथा संवेदनाओं से किस प्रकार आंदोलित होता है, उन्हें किस रूप में ग्रहण तथा प्रदान करता है, इसका निर्णय ही उसके व्यक्तित्व पर प्रकाश डालने में अधिक उपयोगी सिद्ध होना चाहिए।'[२२] पंत के विचारों से स्पष्ट होता है कि न वह गाँधीवादी है, न मार्क्सवादी और न अरविंदवादी, वरन् वह सभी वादों का समन्वित रूप है।

---

२१. 'उत्तरा' की प्रस्तावना, पृ०—१ ।२२. वही, पृ०—२

'उत्तरा की चेतनावृत्ति में हम दो प्रमुख प्रवृत्तियों की प्रधानता पाते हैं। एक का सम्बन्ध सामाजिक मनोवृत्ति से है और दूसरी का सम्बन्ध कवि के व्यक्तिगत विचारों से है। जहां तक हम सामाजिक चेतना की ओर देखते हैं तो हमें युगांत, युगवाणी अथवा स्वर्ण-किरण और स्वर्ण-धूलि का न तो मानव-जगत मिलता है और न कवि की वैयक्तिक वृत्ति ही मिलती है।'[२३]

यह हम ऊपर लिख आये हैं कि कवि वहिर्जगत् का विस्तार और अन्तर्जीवन का विकास चाहता है, जिसकी अभिव्यक्ति पंत ने इस प्रकार की है—

बदल रहा अब स्थूल धरातल,
परिणत होता सूक्ष्म मनस्तल,
विस्तृत होता वहिर्जगत् अब
विस्तृत अंतर्जीवन अभिमत।
—उत्तरा, पृ० १

एक दूसरी कविता है 'निर्माण-काल', जिसमें उन्होने इसी भावना की अभिव्यक्ति इन चरणों में की है—

यह रे भू का निर्माणकाल
हँसता नवजीवन अरुणोदय
ले रही जन्म नव मानवता
अब खर्वमनुजता होती क्षय !
—उत्तरा, पृ० ६१

इस प्रकार के भावों की अभिव्यक्ति अनेक कविताओं में हुई है और वे हैं—'युगविषाद', 'युगछाया', 'युगसंघर्ष', 'जागरण-गान', 'गीत-विहग', 'उद्बोधन' आदि।

'मानववाद' पर कवि ने मन की प्रकृत दशा का रूप अंकित किया है और साथ-साथ मानवता में भव-विकास भी देखा है—

मानव अंतर हो भू विस्तृत
नव मानवता में भव विकसित,

२३. फूलचन्द पाण्डेय

जन मन हो नव चेतना ग्रथित,
जीवन शोभा हो कुसुमित हे
फिर दिशि क्षण में !
तुम देव, बनो चिर दया प्रेम जनजन में,
जय मंगल हित हे !

'उत्तरा' के पश्चात् 'अतिमा' प्रकाशित हुई है। इसमें भी उत्तरा की कोटि की कविताएँ हैं और उसका धरातल भी वही है।

विकास-सूत्र और पंत

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का स्वाभाविक विकास हुआ है, उसका व्यक्तित्व शुरू से अंत तक प्रगतिशील रहा है। पंत का साहित्यिक विकास जीवन-विकास के साथ साथ है। 'वीणा' और 'ग्रन्थि' में पंत एक अल्हड़ भावुक कवि था 'जो अपने व्यक्तिगत प्रेम और इसके प्रतिदान को ही सब-कुछ समझ बैठा था, जिसने प्रेयसी के रंगीन सपने देखने में जीवन की सार्थकता मान ली थी, आगे चलकर 'पल्लव' में कुछ गंभीर हो गया है। वह अपना व्यक्तिगत प्रेम जो निस्संदेह वासनामूलक या पार्थिव है और जिसके शरीर का महत्त्व मन से अधिक नहीं तो कम भी नहीं है, समस्त चराचर जगत् में प्रचारित देखता है, अपनी वेदना की व्याप्ति वह समस्त विश्व में देखता है और अस्तित्व को ही वेदना का पर्याय मान लेता है। जब वह इस प्रकार प्रकृति की ओर अपना दृष्टि-प्रसार करता है और फलतः क्षण-क्षण परिवर्तनशील प्राकृतिक लीलाओं को देखता है तो उसकी आँखें खुल जाती हैं। 'गुंजन' में आकर उसे जीवन के यथार्थ स्वरूप की अनुभूति होती है और वह जन्म, मरण, सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति, नारी आदि के रहस्यों को बहुत-कुछ समझ पाता है; इसी हेतु गुंजन में भावना का उद्दाम वेग नहीं है जैसा 'पल्लव' में है, 'वरन् इसमें भावना और चिंतन में समन्वय है। इस समन्वय का परिणाम यह होता है कि कवि मध्यम मार्ग का पक्षपाती होता है और प्रतिपल साधना द्वारा व्यक्तित्व के उत्कर्ष को जीवन की सार्थकता का आधार मानता है। व्यक्तित्व के इस उत्कर्ष के कारण उसकी दृष्टि अपने से बाहर विश्व पर पड़ती है और सामाजिक जीवन की करुण विषमता से वह

घबरा उठता है, लेकिन उसका साधना-पुनीत मन पलायन नहीं करता, बल्कि समाज के रूढ़ि-जर्जर मानदंडों को बदलने का उपक्रम करता है। 'युगान्त', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में कवि की दृष्टि वस्तु-जगत् की विषमता दूर करने के उपाय खोजती रहती है और आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था को बदलने के लिए मानव-बुद्धि रास्ता ढूँढती है, लेकिन उसे शीघ्र ही अनुभव होता है कि मानवता, आदर्श और शान्ति का उपभोग तब तक नहीं कर सकती जब तक अंतस्साधना द्वारा समस्त नर-नारी अपनी आत्मा का बल पहचान न लें। 'स्वर्ण-किरण', 'स्वर्णधूलि', 'उत्तरा' और 'वाणी' में, इसलिए, नवीन आध्यात्मिक मानों (Standards) और मूल्यों (Values) के संस्थापन का प्रयास है। 'गुंजन' के बाद कवि पुनः एक बार आत्मा की साधना को सर्वाधिक महत्त्व देता है। वैयक्तिक दृष्टि से जिन मानों और मूल्यों की घोषणा 'गुंजन' में हुई है, सामाजिक दृष्टि से प्रायः उन्हीं की पुनरावृत्ति 'स्वर्ण-धूलि' में की गई है।'[२४] इस प्रकार हम देखते हैं कि पंतजी चाहे 'वाद' के जिस कठघरे में बंद रहें या हमलोग उन्हें बाँध दें, फिर भी वे पूर्णरूप से कवि ही हैं। पंत की प्रगतिशीलता सर्वदा उन्मुख है और रहेगी। कवि चिरायु हों। हमें उनसे बहुत आशाएँ हैं।

———

२४. डा० शिवनंदन प्रसाद

गीतिकाव्य और पंत

पंत का युग गीतिकाव्य का युग है। जिस समय पंत ने हिंन्दी-कविता-कानन में अपनी प्रतिभा का कोमल पौधा लगाना प्रारम्भ किया था, उसी समय से हिंदी में छायावाद का चलन हुआ। छायावाद-युग के पूर्व 'द्विवेदी-युग था जिसमें इतिवृत्तात्मक (Matter of fact) कविताओं का ढेर लग रहा था। उसी के प्रतिक्रिया-स्वरूप साहित्य में धूमकेतु की तरह छायावाद काव्य-गगन में उदित हुआ। काव्य का प्रणयन पहले प्रबन्धरूप में होता था, पर छायावाद ने उसके रूप में परिवर्तन कर डाला। इस नये 'वाद' के कारण हिंन्दी में बाह्यवादी काव्य का प्रणयन अल्प-मात्रा में होने लगा और अन्तर्वादी काव्य का आधिक्य। जिस प्रकार द्विवेदी-युग प्रबन्ध-काव्य के लिए अनुकूल रहा उसी प्रकार छायावाद-युग गीति-काव्य के लिए। इसका मुख्य कारण यह है कि छायावाद में जिस आत्मनिष्ठ चेतना को प्रधानता मिली, वही गीतिकाव्य का प्रधान तत्त्व रहा।

पंत का युग

गीत में वैयक्तिक अनुभूति की प्रधानता रहती है। वैयक्तिक अनुभूति का संबंध हृदय से है और जब हृदय में भावों का एक समाँ बँध जाता है तभी वे उद्गार काव्योचित भाषा का माध्यम लेकर अभिव्यक्त होते हैं जो 'गीति' की संज्ञा से विभूषित हो उठते है यों तो ये भाव कवि के जीवन से संबंधित होते हैं, पर वे ऐसे भाव होते हैं कि दूसरे की हृदय-वीणा के तारों को झंकृत कर देते हैं। सुतरां, यही रागात्मकता गीतिकाव्य की प्रमुख विशेषता बन जाती है। इसका दूसरा प्रधान तत्त्व है—संगीतात्मकता, पर यह संगीत बाह्य कम और आन्तरिक अधिक होता है। संगीत के अभाव से यह पूर्ण नहीं हो सकता है।

गीतिकाव्य का स्वरूप

दोनों का संयोग होना अत्यावश्यक है और इस संबंध में इतना ही कहना पर्याप्त है कि सरस्वती के एक हाथ में पुस्तक है (जो भाव का द्योतक है) तो दूसरे में वीणा (संगीत का द्योतक) है। यही कारण है कि जब भावनाएँ संगीतमय हो जाती हैं तो गीतों की उत्पत्ति होती है। इसीलिए विद्वानों ने गीतिकाव्य को संगीत की चरम-सीमा माना है। हिंदी में गीतिकाव्य अंग्रेजी के 'लिरिक' (Lyric) शब्द का पर्यायवाची है। पाश्चात्य विद्वानों ने 'गीत' की संज्ञा उसी काव्य-पद्धति को प्रदान की है, जो वाद्य यंत्रों के साथ मिलकर गाया जाता है—

(i) LYRICAL POETRY : The poetry which can be sung or can be supposed to be sung to the accompaniment of the musical instrument. [1]

(ii) Lyrical Poetry, in the original meaning of the term, was poetry composed to be sung to the accompaniment of lyre or harp. In this sense, the poet is principally occupied with himself. [2]

(iii) Adapted to the lyre. Meant to be sung. Now used as the name for short poems (whether or not intended to be sung) usually divided into two stanzas or spophus and directly expressing the poet's own thoughts and sentiments. [3]

गीतिकाव्य की व्युत्पत्ति

इससे स्पष्ट होता है कि 'लिरिक' शब्द का प्रादुर्भाव 'लायर' शब्द से हुआ है जिसका शाब्दिक अर्थ है बीन या वीणा। सर्वप्रथम कवियों ने लायर या बीन के सहारे गाने योग्य गीत रचे होंगे और पीछे चलकर 'लिरिक' कविता को 'लायर' की अपेक्षा नहीं रह गई। फलतः इन गीतों का नाम 'लिरिक' पड़ गया। पहले गीत का आधार रहा होगा लोकगीत जिसके कारण उसमें वाद्य-यंत्रों की अपेक्षा रही, पर धीरे-धीरे लोकगीत की धारा मन्द पड़ने लगी और 'गीत' का स्वरूप वदल गया। बाद में गीत ने 'लोक-गीत' का आँचल

1. Encyclopaedia Britannica, 14 th Volume.
2. An Introduction to English Literature : W. H. Hudson.
3. S. D.

त्याग कर कवि की व्यक्तिगत भावना (Subjective feeling) के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। यही कारण है कि कवि के अन्तर्जगत् में भावों की धारा जब अपनी सीमा का अतिक्रमण करने लगती है तब गीत फूट पड़ता है। इसी सार-तत्त्व को लेकर जान ड्रिंकवाटर (John Drinkwater) ने ठीक ही कहा है—

Lyric is projected through a mood of higher intensity.

इसीलिए हम गीत में अन्तर्जगत् की भावात्मक अभिव्यक्ति पाते हैं जिसमें संगीत प्राण की तरह विद्यमान रहता है। वास्तव में काव्य का श्रेष्ठ स्वरूप गीतकाव्य ही है।

हीगेल

हीगेल का कथन है—'कवि संसार के अंत:करण में पहुँचकर आत्मानुभूति करता है, तब उसे अपनी चित्तवृत्ति (Mood) के अनुसार काव्योचित भाषा में व्यक्त करता है। अतएव गीतिकाव्य के अन्य अंगों से आत्माभिव्यक्ति भाव और कल्पना के कारण विभिन्न हो गया है।....गीत रचने की एक विशेष चित्तवृत्ति (Lyric Mood) होती है। इच्छा, विचार और भाव उसके आधार होते हैं। भाव की उत्पत्ति के लिए बाह्य पदार्थों का मन में विनिर्गमन होता है। जब कवि शान्त और समन्वित चित्तवृत्ति में होता है तब कल्पना में बाह्यजगत् प्रधान हो जाता है जिससे भाव की उत्पत्ति होती रहती है। इसीसे गीत की सृष्टि होती है।'

अर्नेस्ट राईस

अर्नेस्ट राईस का मत है—'सच्चा गीत वही है जो भाव या भावात्मक विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो। जो शब्द और लय के सामंजस्य से उच्च भाव को पूर्णतया प्रदर्शित करता हो और पद-लालित्य तथा शब्द-माधुर्य से उस संगीतमयी ध्वनि में निकलता हो, जिसे स्वाभाविक भावात्मक अभिव्यक्ति कह सकते हैं। उसमें शब्द सरल, कोमल और नादपूर्ण हों। गति का उसमें प्रवाह हो, प्रधान अनुभूति का सुन्दर आरोह-अवरोह हो, माधुर्य-युक्त हो, प्रसादपूर्ण हो और संगीतमय हो।'

हरवर्ट रीड का कहना है—'गीत का मूल अर्थ अब लुप्त हो गया है और अब वह केवल भावात्मक ही हो गया है। संसार उन कविताओं को गीत मानने लगा है जिनमें सूक्ष्म अनुभूति हो अथवा इन सूक्ष्म-अनुभूतियों की उन प्रतिक्रियाओं को जो एकांत आनन्द से जाग्रत् होती हैं। गीतिकाव्य का कवि निश्चय ही संसार की सजगता एवं जागृति से अपने भाव पाता है। संसार की रमणियों में, पुष्पों में, वातावरण के रंगीन वैभव में और उसकी सुकुमारता में ही कवि के भाव जागृत होते हैं। इन भावात्मक चेतनाओं के अनायास प्रवाह में गीतिकाव्य की धारा बह निकलती है।'

हरवर्ट रीड

हमारे भारतीय साहित्य में गीतिकाव्य का कोई स्वतंत्र अस्तित्व नहीं रहा है, क्योंकि काव्य तो स्वयं गेय रहा है। हाँ, जो गेय रहे हैं, उन्हें हिन्दी में लोगों ने 'पद' की संज्ञा से विभूषित किया है। अंग्रेजी और ग्रीक साहित्य में गीतिकाव्य की स्वतंत्र सत्ता रही है। हमारे यहाँ गीतिकाव्य में भावावेश के साथ-साथ संगीत को भी प्रधान तत्त्व माना गया है जैसा कि सूर और मीरा की रचनाओं से पता चलता है।

गीतिकाव्य क्या है ?

'गीतिकाव्य में कवि अपनी अन्तरात्मा में प्रवेश करता है और बाह्य जगत् को अपने अन्तःकरण में ले जाकर उसे अपने भावों से रंजित करता है। आत्माभिव्यंजन सम्बन्धी कविता गीतिकाव्य में भी छोटे-छोटे गेय पदों में मधुर भावनापन्न, आत्मनिवेदन से युक्त स्वाभाविक ही जान पड़ती है। उसमें शब्द की साधना के साथ-साथ स्वर (संगीत) की साधना भी होती है। भावना सुकोमल होती है और एक-एक पद में पूर्ण होकर समाप्त हो जाती है। कवि उसमें अपने अन्तर्तम को स्पष्टतया द्रष्टव्य कर देता है। वह अपने अनुभवों और भावनाओं से प्रेरित होकर उनकी भावात्मक अभिव्यक्ति कर देता है।[४]

इन्हीं सब बातों को दृष्टिपथ में रखते हुए सुश्री महादेवी वर्मा ने गीतिकाव्य

---

४. डा० श्यामसुन्दर दास

का लक्षण इस प्रकार दिया है—'सुख-दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेष गिने-चुने शब्दों में स्वर-साधना के उपयुक्त चित्रण कर देना ही गीत है।...गीत यदि दूसरे का इतिहास न कह कर वैयक्तिक सुख-दुःख ध्वनित कर सके तो उसकी मार्मिकता विस्मय की वस्तु बन जाती है, इसमें संदेह नहीं।'[५] इस विवरण से हम गीतिकाव्य के दो पक्ष देखते हैं। 'प्रथम में भाव, विचार, इच्छा, कल्पना, उद्गार और अन्तर्गत का चित्रण होता है। उसमें वस्तु-तत्त्व की प्रधानता होती है। दूसरे पक्ष में भाव-भाषा का सामंजस्य, छंद, सरलता, सुकुमारता, संगीत, भाषा शैली और संक्षिप्तता आदि आते हैं। प्रथम स्वरूप को गीतिकाव्य का अंतरंग और द्वितीय स्वरूप को बहिरंग कहना उचित होगा। जैसा कि पहले कह चुके हैं, गीतिकाव्य का संबंध हृदय से है। अतएव उसका अंतरंग अथवा वस्तु-तत्त्व हृदय के अनुरूप ही बहुत सुकोमल, तरल और भावपूर्ण होना चाहिये। मस्तिष्क की ऊहा-पोही और दार्शनिक विचारों की गहनता या सैद्धान्तिक निरूपण के लिए उसमें कम ही स्थान है। वरन् इनसे गीतिकाव्य का बहिरंग भी नष्ट हो जाता है। उदाहरण में कबीर और तुलसी के कुछ दार्शनिक पद रख सकते हैं। वस्तुतत्त्व की अपेक्षा गीतिकाव्य में बहिरंग अधिक आवश्यक होता है। क्योंकि भावना के सुकुमार होने के साथ-साथ भाषा सरल, सुमधुर और सुव्यंजक होनी चाहिये। गीतिकाव्य का प्रकरण सुन्दर हो, मनोहर हो और संक्षिप्त हो, साथ ही प्रभावोत्पादक भी हो। उसमें रूप और ध्वनि का सौंदर्य हो।...वस्तुतत्त्व में भाव का प्राधान्य हो जिसमें कवि और पाठक दोनों के हृदय में लयकारी संगीत के द्वारा सामंजस्य स्थापित हो जावे। भाव के अनुरूप ही भाषा भी सरल, सुकुमार और स्पष्ट होनी चाहिये। उसमें कल्पना नवीन और उन्मुक्त हो। भावों की अभिव्यक्ति तीव्रतम होनी चाहिये जिससे इसका प्रभाव अधिक-से-अधिक पड़े। भाव विच्छिन्न और अस्पष्ट न हों। संगीत के पूर्ण विकास के लिए भाषा

महादेवी वर्मा के शब्दों में गीत की परिभाषा

---

५. महादेवी का विवेचनात्मक गद्य, पृ० १४१

का सुकुमार और सलय होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रवाह के लिए शब्दों का चयन सुन्दर हो। भाषा में द्वित्व और संयुक्त अक्षरों का कम-से-कम प्रयोग हो। साथ ही कर्कश अक्षरों का भी यथाशक्ति वहिष्कार हो। मात्राएँ दीर्घ हों जिससे स्वरों का आरोह-अवरोह समुचित रूप से हो सके। सम्पूर्ण पद में एक अन्विति हो और उसमें भाव एक पर्वतीय झरने की भाँति तीव्र गति में उमड़-उमड़कर आता हो।'[६] इस विवेचन और विश्लेषण के पश्चात् हम गीति-काव्य में निम्नलिखित विशेषताओं का निरूपण करते हैं—

गीतिकाव्य की विशेषता

(क) आत्मनिष्ठ भावना का प्राधान्य।

(ख) आरंभ से अंत तक एक ही भाव।

(ग) भावना का चरम वेग या उत्कर्ष।

(घ) प्रत्येक गीत का स्वतंत्र अस्तित्व।

(ङ) संगीतात्मक योजना की अपेक्षा।

(च) गीत के कलेवर की संक्षिप्तता।

ये हुईं गीतिकाव्य की विशेषताएँ। गीतिकाव्य का प्रयोग प्रबन्ध-काव्य, खंडकाव्य, नाटक आदि में होता है, यथा—साकेत, यशोधरा, द्वापर आदि। अंग्रेजी साहित्य में साधारणतया गीतिकाव्य के निम्नलिखित भेद मिलते हैं— धार्मिक या स्तुति गीत (हिम्स), राष्ट्रीय गीत (पेट्रिऑटिक सांगस), प्रणय गीत (लव लिरिक), शोक गीत (एलिजी), गौरव गीत (ओड), उत्सव गीत (कनविवियल लिरिक), और चतुर्दशी (सॉनेट)। इसके अतिरिक्त, अंग्रेजी के प्रसिद्ध आलोचक विलियम हेनरी हडसन ने गीतिकाव्य के अन्तर्गत पत्रगीति (एपिसल) को भी रखा है। आधुनिक हिन्दी कविता में गीतिकाव्य के पाँच भेद मिलते हैं। वे हैं—

गीतिकाव्य के भेद और उसका विवेचन

(क) **व्यंग्यगीति**—इस कोटि के गीतिकाव्य में नाथूराम 'शंकर' का

---

६. हिंदी गीतिकाव्य—ओमप्रकाश अग्रवाल, एम० ए०, पृ० ५६

'गर्भ-रंडा रहस्य', गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही' का 'कविराज से संबोधन', निराला की 'जूही की कली' आदि है।

(ख) **पत्रगीति**—बँगला के महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त, मैथिलीशरण गुप्त (पत्रावली) और द्वारका प्रसाद गुप्त 'रसिकेन्द्र' ने पत्रगीति लिखे हैं।

(ग) **शोकगीति**—इस कोटि के काव्यों में प्रसाद का 'आँसू' अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस कोटि के गीतिकाव्य में सुमित्रानन्दन पंत की 'आँसू' शीर्षक कविता भी है। पंत ने तो विरह को भी वरदान माना है—

विरह है अथवा यह वरदान !
कल्पना में है कसकती वेदना;
अश्रु में जीता सिसकता गान है;
शून्य आहों में सुरीले छंद हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है ?
वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़कर आँखों से चुपचाप;
बही होगी कविता अनजान !

और पंत ने 'वेदना' का सादर आह्वान किया है—

आज वेदने ! आ तुझको भी,
गा-गा कर जीवन दे दूँ,
हृदय खोल-खोल रो-रो कर।

हिन्दी कविता के लिए स्यात् नया स्वर हो, पर संस्कृति में आदि कवि वाल्मीकि ने ही 'आँसूवाद' या वेदनावाद का नया राग अलापा था और अंग्रेजी में शेली ने।

(घ) **भावनागीति**—इसमें किसी वर्ग-विशेष की भावना की अभिव्यंजना रहती है। माखनलाल चतुर्वेदी की 'भारतीय विद्यार्थी' शीर्षक कविता इसी भेद के अन्तर्गत रखी जा सकती है।

(ङ) अध्यांतरिक गीति—इस संबंध में डा० कृष्णलाल ने लिखा है कि 'इस गीतिकाव्य की प्रेरणा-शक्ति कवि को अपने अन्तःप्रदेश से मिलती है। इसके समस्त भावावेगों में कवि का व्यक्तित्व स्पष्ट दिखाई पड़ता है। प्राचीन वीर आदर्शों को विदा दे दी गई है और प्रत्येक कवि अपने क्षेत्र-विशेष में नायक के रूप में प्रकट होता है। महत् प्रतीकों के द्वारा व्यापक प्रभाव के प्रयत्न का परित्याग कर कविगण व्यक्तित्व के सूक्ष्म परिधि में ही अनंत का दर्शन और असीम की व्यंजना करने का प्रयत्न करते हैं। संक्षेप में, अध्यांतरिक गीति-काव्य कवि के अन्तःप्रवृत्ति और चित्तवृत्ति का काव्य है जो उसकी प्रकृति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है। विशुद्ध अध्यांतरिक गीतिकाव्यों में तीन विभिन्न शैलियाँ मिलती हैं। प्रथम शैली में कवि अपने अनुभव और भाव अपने ही ऊपर ढालकर लिखते हैं; सुमित्रानन्दन पंत विसर्जन की भावना में गा उठते हैं—

इस मंद हास में बहकर गा लूँ मैं बेसुर—'प्रियतम'
बस इस पागलपन में ही अवसित कर दूँ निज जीवन।

'अध्यांतरिक गीतिकाव्य की द्वितीय शैली में किसी वस्तु के देखने से जो विचार और भाव, कल्पना और चित्र, हृदय अथवा मस्तिष्क में उठते हैं, उनकी व्यंजना कवि करता है।......वृक्षों के नीचे 'परहृतवसना' छाया को देखकर सुमित्रानन्दन पंत के मस्तिष्क में न जाने कितने दृश्य और चित्र छाया के लिए उपस्थित हो जाते हैं और वे कवि-हृदय की सरलता से पूछते हैं—

किस रहस्यमय अभिनय की तुम सजनि ! यवनिका हो सुकुमार,
इस अभेद्य-पट के भीतर है किस विचित्रता का संसार ?
निर्जनता के मानस-पट पर—बार-बार भर ठंढी-साँस—
क्या तुम छिपकर क्रूर काल का लिखती हो अकरुण-इतिहास ?

इस प्रकार की कविताएँ अंग्रेजी में ओड्स (Odes) कहलाती हैं और इन्हें हिन्दी में संबोध-गीति कह सकते हैं, क्योंकि इनमें कवि किसी वस्तु-विशेष को संबोधन करके उसके संबंध में अपने विचारों और भावों, चित्रों और कल्पनाओं की व्यंजना करते हैं। इसमें कवि किसी प्राकृतिक वस्तु, किसी भाव और

विचार, अथवा किसी दृश्य को भी सम्बोधन कर सकता है। हिन्दी में संबोध-गीतियों की संख्या पर्याप्त है और उनमें कुछ तो बहुत ही उत्कृष्ट श्रेणी की हैं। पंत के 'पल्लव', 'आँसू', 'वीचि-विलास', 'अनंग', 'स्वप्न', 'शिशु', 'छाया' और 'परिवर्तन' हिन्दी काव्य के सर्वोत्कृष्ट संबोध-गीति के उदाहरण हैं। संबोध-गीतियों में एक दूसरी शैली सुमित्रानन्दन पंत के 'बादल' में मिलती है जिन से 'बादल' स्वयं अपनी कथा, अपने भाव और विचार, अपनी सुन्दरता इत्यादि अपने मुख से कहते हैं। संबोध-गीतियों का मुख्यतम अंग कवि की कल्पना है। वह अपने एक अलग संसार की कल्पना करता है जिसके उपादान, भाव और भाषा सांसारिक उपादान, भाव और भाषा से बिलकुल भिन्न हैं। वह अपनी सृष्टि को एक बहुत ही सुन्दर रूप देता है, उसमें विविध गुणों का आरोप करता है, यहाँ तक कि वह सृष्टि भी इतनी ही सत्य प्रतीत होने लगती है जितनी की यह बाह्य सृष्टि है। उदाहरण के लिए सुमित्रानंदन पंत को ले लीजिये। कवि ने 'परिवर्तन' को एक सुन्दर रूप-देकर उसपर अनेक गुणों का आरोप किया, यहाँ तक कि उसके इस रूप की सत्यता पाठकों के अंतस्तल तक पहुँच जाती है और वहाँ एक अमिट छाप लगा जाती है।'[७]

इस प्रकार के कवियों में महादेवी वर्मा, बच्चन, निराला, पंत, रामकुमार वर्मा, प्रसाद आदि हैं जिनके गीतों में गीतिकाव्य के लक्षण पूर्णतया मिलते हैं।

गीति-काव्य की कसौटी पर पंत के गीत

सच्चे अर्थ में पंत गीतिकार नहीं हैं, वरन् एक सफल कवि हैं। पंतजी स्वच्छन्दतावाद के सच्चे कवि हैं, क्योंकि प्रकृति द्वारा जो सौंदर्यानुभूति होती है उससे उनके हृदय का तार-तार कम्पित हो उठता है जिससे सुरीली रागिनी गूँज उठती है। यह सच है कि पंत की कविताएँ भावपूर्ण हैं और मधुर भी, परन्तु उसमें गीति-तत्त्व निहित नहीं है। हाँ, उनकी कुछ कविताएँ गीतिकाव्य की दृष्टि से अत्यन्त सुन्दर हैं, जैसे 'मधुकरी'—

सिखा दो ना, हे मधुप-कुमारि !
मुझे भी अपने मीठे गान,

---

७. **आधुनिक हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० सं० ११८-२२**

कुसुम के चुने कटोरों से
करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान ;

—इसमें गीतिकाव्य की समस्त विशेषताएँ समाहित हैं। अब पंत की कुछेक कविताओं को गीतिकाव्य की कसौटी पर रखकर कसते हैं और देखने का प्रयास करते हैं कि उसके गीत किसी हद तक खरे उतरे हैं।

गीतिकाव्य की प्रथम विशेषता है—आत्मनिष्ठ भावना का प्राधान्य। इस कोटि की कविताओं में निम्नांकित है—

(क) छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बालजाल में कैसे उलझा दूँ लोचन !
भूल अभी से इस जग को !

(ख) नीरव तार हृदय में
गूँज रहे हैं मंजुल लय में
अनिल पुलक से अरुणोदय में !

(ग) मैं नहीं चाहता चिर सुख,
मैं नहीं चाहता चिर दुख,

(घ) जीवन का श्रम-ताप हरो हे !
सुख सुखमा के मधुर स्वर्ण से
सूने जग गृह द्वार भरो, हे !

(ङ) तप रे मधुर-मधुर मन !

(च) देखूँ सबके उर की डाली !
किसने रे क्या-क्या चुने फूल !

प्रत्येक गीत में आरंभ से अन्त तक एक भावधारा का विकास होता है, उसमें किसी अन्य भावना का समावेश नहीं हो पाता है, क्योंकि उसका अंतरंग तो सार्वकालिक और सर्वजन-संवेद्य होता है। इसके साथ-साथ इसमें 'भावना का चरम उत्कर्ष होता है, क्योंकि कवि के समस्त व्यक्तित्व का ज्वलित बिन्दु भावव्यंजना पर ही केन्द्रित होता है—वस्तु-वर्णन या चरित्र-चित्रण की अपेक्षा

तो होती नहीं।' इस दृष्टि से पंत के गीतिकाव्य में निम्नलिखित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

(अ) नित्य कर्मपथ पर तत्पर धर
निर्मल कर अंतर,
पर - सेवा का मृदु पराग भर
मेरे मधु-संचय में !

(आ) वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप,
बही होगी कविता अनजान !

(इ) बिना दुःख के सब सुख निःसार
बिना आँसू के जीवन भार।

(ई) विजन बन में तुमने सुकुमारि
कहाँ पाया यह मेरा गान,
मुझे लौटा दो विहग - कुमारि
सजल मेरा सोने का गान।

(उ) इस मंद हास में बहकर गा लूँ मैं बेसुर प्रियतम
बस इस पागलपन में ही अवसित कर दूँ निज जीवन।

(ऊ) लौटे गृह सब श्रांत चराचर
नीरव, तरु अधरों पर मर्मर,
करुणानत निज कर - पल्लव से
विश्व - नीड़ प्रच्छाय करो, हे !

(ए) यह साँझ - उषा का आँगन,
आलिंगन विरह मिलन का;
चिर हास-अश्रु मय आनन
रे इस मानव-जीवन का !

(ऐ) जीवन का उल्लास—

... .

रे फैल-फैल फेनिल हिलोल

उठती हिलोल पर लोल-लोल।

(ओ) आज चंचल-चंचल मन-प्राण

आज के शिथिल-शिथिल तन-भार;

आज दो प्राणों का दिनमान

आज संसार नहीं संसार।

आज क्या प्रिये, सुहाती लाज ?

आज रहने दो गृह - काज।

प्रत्येक गीत का स्वतंत्र अस्तित्व होता है और साथ-साथ महत्त्व भी। इसका एकमात्र कारण है गीतों के विषय की भिन्न-रूपता। इसीलिए पंत के कोई भी गीत एक दूसरे से संबद्ध नहीं हैं प्रत्युत स्वतंत्र हैं।

गीतिकाव्य के लिए संगीतात्मकता से पूर्ण होना अनिवार्य है क्योंकि इससे गीत में सजीवता आती है। इङ्गलैंड के प्रसिद्ध राजकवि आल्फ्रेड आस्टीन (Alfred Austen) का कथन है कि जिस पद्य में संगीत और अर्थ की सुन्दरता न हो, उसे कविता का पद नहीं दे सकते, फिर चाहे उसमें कितने ही गुण क्यों न हों।[8] उस दृष्टि से पंत के अनेक गीत द्रष्टव्य हैं, यथा—

कलरव किसको नहीं सुहाता ?

कौन नहीं इसको अपनाता

यह शैशव का सरल हास है, सहसा उससे है आ जाता।

या

जगत की शत - कातर चीत्कार

वेधती बधिर ! तुम्हारे कान !

---

8. No verse which is unmusical or obscure can be regarded as poetry, whatever other qualities it may possess.

अश्रु - स्रोतों की अगणित धार
सींचती उर - पाषाण !
अरे क्षण - क्षण सौ - सौ विश्वास
छा रहे जगती का आकाश !
चतुर्दिक् घहर - घहर आक्रान्ति,
ग्रस्त करती सुख - शान्ति !

इसमें शब्दों के गुम्फन द्वारा नाद-सौन्दर्य की सृष्टि हुई है, जो स्वयं भावों को साकार कर देते हैं। 'जीव प्रसू' शीर्षक कविता में अन्तर्निहित मधुर लय देखने योग्य हैं :

देखो भू को
जीव - प्रसू को
हरित भरित
पल्लवित मर्मरित
कुंजित गुंजित
कुसुमित
भू को !

गीतिकाव्य की अंतिम विशेषता है—संक्षिप्तता। इस दृष्टि से भी उनके गीत आदर्श हैं। गीतिकाव्य की दृष्टि से पंत की एक आदर्श कविता द्रष्टव्य है :

नीरव तार हृदय में
गूँज रहे हैं मंजुल लय में, अनिल पुलक से अरुणोदय में !
चरण कमल में अर्पण कर मन
रज रंजित कर तन
मधुरस मज्जित कर मम जीवन चरणामृत आशय में !
नित्य कर्मपथ पर तत्पर धर
निर्मल कर अन्तर,
पर-सेवा का मृदु पराग भर मेरे मधु संचय में !

यों तो पंत ने अधिकतर छोटे ही गीत लिखे हैं, परन्तु कई गीत अत्यन्त बड़े भी हैं जिसके फलस्वरूप उन गीतों का कलात्मक-सौन्दर्य बिखर-सा गया, है। पंत के गीतों की संख्या अधिक नहीं है, लेकिन जो भी गीत उनके कोमल कण्ठ से निःसृत हुए हैं वे सुन्दर ही उतरे हैं, क्योंकि उनके गीतों में व्रजभाषा के समान ही मृदुता एवं माधुर्य है। उनके गीतों में ही सर्वप्रथम माधुर्य और छायावाद की प्रांजलता आ पायी है जिसके कारण हिन्दी गीतिकाव्य में उनका स्थान आदरणीय है।

उपसंहार

प्रकृति-चित्रण और पंत

मानव प्रकृति के आँगन में जन्म ग्रहण करता है और अपने को चारों ओर से प्रकृति की नैसर्गिक सुषमा से घिरा पाता है। अतएव जब वह जन्म ग्रहण करता है तब अबोध शिशु के समान 'धूल की ढेरी में अनजान' बनकर क्रीड़ा करता है और ईश्वर-प्रदत्त वाणी का संबल पाकर उस सुषमा के प्रति आत्म-निवेदन करने की आकांक्षा रखता है। धीरे-धीरे उस अनजान शिशु का ज्ञान विस्तृत होता है और उसकी आश्चर्यमयी सुषमा को देखकर विस्मय-विमुग्ध हो जाता है। वस्तुतः 'ज्ञान और चेतना के उदय-काल से ही मानव-हृदय प्रकृति के प्रति संवेदनशील है। सभ्यता के उदय-काल में जब उसने अपने चारों ओर व्याप्त प्रकृति के जटिलतम रहस्यों को देखा तब उसके हृदय में उनके प्रति जिज्ञासा हुई। अपने अनन्य एवं अनन्त निरीक्षण के पश्चात् उसने इस बात का अनुभव किया कि प्रकृति का सहवास अत्यन्त कोमल एवं आनन्ददायी है और प्रकृति में ही मनुष्य के सुकुमार मनोभावों तथा वृत्तियों के परितोष के लिए समुचित सामग्री है। इस प्रकार मानव को प्रथम काव्य की प्रेरणा प्रकृति से मिली। उसने अपनी संवेदना जाग्रत् की और असीम आनंद का अनुभव किया, उसकी कल्पना को शक्ति मिली और प्रथम कवि की वाणी से निःसृत होकर काव्य के आदिम स्वरूप हमारे सामने आया। फिर तो धीरे-धीरे काव्य जीवन का एक अंग होता गया और प्रकृति अभिन्न सहचरी।' यह तो सत्य ही है कि मानव के ज्ञानमय चक्षु के खुलने के समय चतुर्दिक फैली हुई विराट् प्रकृति 'नाना रूप-रस-गंध और ध्वनि-रंग-राग की सुषमा-राशि से' अपना शृंगार कर खड़ी थी। फलतः प्रकृति का साक्षात्कार होना अनिवार्य था। इसी भाव की अभिव्यक्ति 'उर्मिला' के द्वारा हुई है—

मानव और प्रकृति का संबंध

जीवन के पहले प्रभात में आँख खुली जब मेरी,
हरी भूमि के पात-पात में 'मैंने हृद्गति हेरी।'

[साकेत : गुप्तजी]

यही कारण है कि मानव और प्रकृति में रागात्मक सम्बन्ध है। इसी रागात्मक सम्बन्ध के अन्योन्याश्रय रूप के फलस्वरूप मानव प्रकृति की हरीतिमा में अपने मनोभावों को रंग में रँगा देखकर कभी अपने मुख को मंद मुस्कान से भर लेता है।[1] और कभी उस पर विषाद की गहरी छाया तन जाती है।[2] इतना ही नहीं, कभी-कभी मानव अपनी पीड़ा या हास्य को प्रकृति पर प्रतिच्छादित देखता है। और जब-तब प्रकृति के आह्लादकारी रूप को देखकर वह स्वयं वेदना से भर जाता है; क्योंकि वह अनुभव करता है कि इस समय की प्रकृति उस पर व्यंग्य कस रही है। कभी-कभी यही प्रकृति मानव-हृदय के हरे जख्मों पर मरहम पट्टी का कार्य न्यस्त करती है। सुतरां, यह स्पष्ट हो जाता है कि मानव और मानवेतर प्रकृति में रागात्मक सम्बन्ध का अन्योन्याश्रय है।

मानव पर प्रकृति का प्रभाव

व्यापक अर्थ में प्रकृति के दो रूप हैं—मानव-प्रकृति (Human Nature) और मानवेतर प्रकृति (Physical Nature)। इन दोनों के भी दो भेद हैं। मानव-प्रकृति के अन्तर्गत अंतरंग मानव-(Internal Human Nature) और बहिरंग मानव-प्रकृति (External Human Nature) तथा मानवेतर प्रकृति (Physical Nature) के अन्तर्गत नैसर्गिक मानवेतर प्रकृति (Natural Physical Nature) और कृत्रिम मानवेतर प्रकृति

प्रकृति के भेद

१ उदाहरण स्वरूप अंग्रेजी के कवि वर्ड्सवर्थ की 'दी वेस्टमिनिस्टर ब्रिज' और 'रेनबो' देखिये जिनमें प्रकृति की आहलादमयी रूपरेखा प्रस्तुत की गई है।

२ पंत की 'चाँदनी' शीर्षक कविता की पंक्तियों को पढ़िये—

जग के दुःख दैन्य-शयन पर यह रुग्णा जीवन-बाला।
रे॰ कब से जाग रही वह, आँसू की नीरव माला॥

(Artificial Physical Nature) आती है। अब हम इन भेदों की तालिका प्रस्तुत करते हैं—

- **मानव-प्रकृति**
  - **अंतरंग**
  - **बहिरंग**
- **मानवेतर प्रकृति**
  - **नैसर्गिक**
  - **कृत्रिम**

मानव-हृदय की दो वृत्तियाँ होती हैं—एक अन्तमुंखी और दूसरी बहिमुंखी। जब मानव के हृदय की वृत्ति बहिमुंखी होती है तब वह मानव-प्रकृति के बाह्य आवरण (बहिरंग) और मानवेतर प्रकृति के कृत्रिम आवरण की ओर आकृष्ट होता है; पर जब उसकी वृत्ति अन्तमुंखी हो जाती है तब वह मानव-प्रकृति के अंतरंग सौन्दर्य और मानवेतर प्रकृति के नैसर्गिक सौन्दर्य पर विस्मय-विमुग्ध हो उठता है। इस दृष्टि से पंत के शब्दों में:—'रीतिकाल के कवियों की दृष्टि मुख्यत: बहिमुंखी थी, अतः उन कवियों के लिए शेष रह ही क्या गया? उनकी अपरिमेय कल्पनाशक्ति कामना के हाथों द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलाकर नायिका के अंग-प्रत्यंग से लिपट गई।' कहने का तात्पर्य्य (Purport) यह है कि कवियों ने प्रकृति के इन चार अंगों में (ऊपर जो चक्र दिया गया है उसके अनुकूल) तीन अंगों को बिल्कुल उपेक्षित रखा। उन लोगों ने प्रकृति के एक अंग को ही अपने काव्य में स्थान दिया। वह एक अंग है—मानव-प्रकृति का बहिरंग-सौन्दर्य। बहिरंग-सौन्दर्य के अंकन में रीतिकालीन कवियों ने नायक-नायिका की आँख, अधर, भौंह, भृकुटि, कपोल, नाक, कटाक्ष आदि का वर्णन कर अपनी काव्यमय प्रतिभा का दुरुपयोग किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि रीतिकाल में मानवेतर प्रकृति की उपेक्षा अधिक की गई। रीतिकालीन कवियों ने पार्थिव सौंदर्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया। रीतिकाल के पूर्व वीरगाथा-काल और भक्ति-काल रहा है।

वीरगाथा-काल

वीरगाथा-काल के कवि राजाओं के दरबार में आश्रय पाते थे। उस समय समस्त देश में युद्ध का गीत अलापा जा रहा था। कविगण भी युद्ध में हाथ बँटाते थे। अतः उन्हें प्रकृति

निरीक्षण करने का कभी अवसर ही न मिला जिसके फलस्वरूप तत्कालीन काव्य में प्रकृति का अंकन नाममात्र भी नहीं हो पाया। भक्तिकाल के कवि उपदेशक रहे। उन सबने भारतीय जनता के त्रस्त जीवन को विहसित करने का प्रयत्न किया, क्योंकि हिन्दू जनता मुगलों द्वारा रौंदी जा चुकी थी। जो भी कवि हुए, वे विशुद्ध काव्य-रचना की ओर प्रवृत्त हुए। सूर और तुलसी ने काव्य-प्रणयन का भार तो उठाया, पर सूर तो बालगोपाल की लीलाओं और उनके हाव-भाव तथा गोपियों की विरह-वेदना की ओर इस प्रकार लीन थे कि उन्हें प्रकृति-अंकन का मौका ही नहीं मिला। यह ठीक है कि गोपियाँ प्रकृति को उपलक्ष्य बनाकर रोती और कलपती हैं[१], पर इस प्रकार के पदों में सिर्फ प्रकृति के अंग-प्रत्यंग का नाम गिनाया गया है। सूरदास ने प्रकृति में उपमा पाई, पर उससे वातावरण निर्माण में साहाय्य ग्रहण नहीं किया। यों तो सूर ने प्रकृति के कोमल चित्र ही खींचे हैं; क्योंकि उनकी प्रकृति आह्लादमयी है। ब्रज के लताकुंज और उसकी ऋतुएँ राधाकृष्ण के संयोग के लिए साधन प्रस्तुत करती हैं। वास्तव में प्रकृति का निखरा हुआ रूप वियोगावस्था में ही सामने आता है। ब्रज की गोपिकाएँ अपनी वियोगावस्था में प्रकृति के उल्लासमय रूप को देखने में असमर्थ रहती हैं, इसीलिए वे व्यंग्य करती हुई कहती हैं—

सूरदास

(क) मधुवन तुम कत रहत हरे ?
विरह वियोग श्याम सुन्दर के ठाढ़े क्यों न जरे ?

(ख) मेरे नैना विरह की बेलि भई ?
सींचत नैन-नीर के, सजनी मूल पतार गई ॥
बिगसित लता सुभाय आपने छाया सघन भई।
अब कैसे निरवारौं सजनी ! सब तन पसरि छई ॥

सूर के प्रकृति-वर्णन का क्षेत्र सीमित है, क्योंकि उन्होंने मुख्यतया गोचारण, शृंगार और वात्सल्य के सिलसिले में प्रकृति का वर्णन किया है। 'सूर

१. निसदिन बरसत नैन हमारे।
सदा रहत पावस ऋतु मो पै जब ते श्याम सिधारे।—सूरदास

ने प्रकृति के कोमल अंगों का चित्रण ही विशेष रूप से किया है। संयोग की लीलाओं में उद्दीपन के लिए उन्होंने प्रकृति का अपेक्षाकृत बहुत कम प्रयोग किया है। उन्होंने अपनी प्रकृति को भयानक रूप में भी देखा है। कृष्ण के मथुरा-गमन के पश्चात् उनका प्रकृति-चित्रण के प्रति जो दृष्टिकोण है उसमें परिवर्तन हो जाता है। वह गोपियों को अपना माध्यम बनाकर और उन्हीं की आँखों से देखकर प्रकृति का चित्रण करते हैं।'[४]

रामवत् शाखा के एकमात्र प्रतिनिधि कवि गोस्वामी तुलसीदास ने अपने अत्यन्त लोकप्रिय काव्य-ग्रंथ 'रामचरित-मानस' को मानव-काव्य बनाया जिसमें

तुलसीदास

राम, लक्ष्मण, सीता आदि अवतारी प्राणियों का आदर्श रूप प्रस्तुत किया गया है, फिर भी उन्होंने अल्प मात्रा में ही प्रकृति का अंकन प्रभावोत्पादक रूप में किया है। इस प्रबन्ध के अन्तर्गत मानवीय भावों को उद्दीप्त करने के लिए, बिम्ब-प्रतिबिम्ब-भाव आदि के लिए ही प्रकृति आई है, यथा—

(अ) वर्षाकाल मेघ नभ छाये।
गरजत लागत परम सुभाये॥
दामिनि दमकि रहहिं घनमाहीं!
खल की प्रीति जथा थिर नाहीं।! आदि

(आ) घन-घमंड नभ गरजत घोरा।
प्रियाहीन डरपत मन-मोरा॥

तुलसी भक्त कवि थे। वे भगवान राम के उपासक थे। उनकी अलौकिक कथा लिखने में तल्लीन थे। फिर भी जब-तब उन्होंने प्रकृति की ओर ध्यान अवश्य दिया है। उनकी लेखनी के द्वारा जो प्रकृति साहित्य-जगत् में आयी, वह मनोरम होने के साथ-साथ यथार्थ भी है। हाँ, अपने कथांश को भुलाकर उन्होंने प्रकृति का चित्रण नहीं किया है। उनके प्राकृतिक चित्र प्रसंगानुकूल हैं। प्रकृति-चित्रण में उनके दो उद्देश्य हैं। उनका पहला उद्देश्य है प्रकृति

---

४. प्राचीन कवियों की काव्य-साधना, पृ० ५२

के नीरव स्पन्दन को मनुष्य के सम्मुख रखना। प्राकृतिक उत्सव के वर्णन में उन्होंने इसी आदर्श का पालन किया है। देखिये—

> झरना झरहिं सुधा सम वारी।
> त्रिविध ताप हर त्रिविध बयारी॥
> विटप बेलि तृण अगनित जाती।
> फल प्रसून पल्लव बहु भाँती॥

गोस्वामीजी के इस प्रकार के अधिकांश वर्णन पिछले कवियों के ढंग पर शब्द-सौन्दर्य-प्रधान ही हुए हैं जिनमें वस्तुओं का परिगणन मात्र है। प्रकृति-चित्रण में गोस्वामीजी का दूसरा उद्देश्य है प्रगति के प्रगाढ़ वैराग्य की मनुष्य की लालसा और ललक से तुलना करना। संतोष एवं हर्ष के चित्रण में उन्होंने इसी आदर्श का पालन किया है। 'मानस' में ऐसे प्रकरण कम हैं जहाँ प्रकृति मनुष्य के हर्ष में हर्ष मानती है और शोक में शोकित होती है। पर उनसे कविता के यथार्थ ध्येय को धक्का भी लगता है। तुलसी ने इसीलिए उनसे बचने की चेष्टा की है। मानस के समुद्र-बंधन में पात्रों का प्राकृतिक शक्तियों के साथ जो प्रातीक्य दिखाया गया है उसमें अभिव्यंजना नहीं, केवल एक संकेत है। इसलिए हम कह सकते हैं कि तुलसी का प्रकृति-वर्णन अधिकांश वस्तुनिष्ठ है।'[५]

रीतिकाल

रीतिकालीन कवियों में केशव और बिहारी ने सिर्फ प्राकृतिक उपादानों की तालिका उपस्थित की है। बिहारी के प्रकृति-अंकन में चमत्कार और अलंकार है। उसमें हृदय के राग को छूने की शक्ति का नितांत अभाव है। इन कवियों के द्वारा प्रकृति का अंकन उद्दीपन के रूप में हुआ है। उन्होंने इसकी महत्ता की ओर कतई ध्यान नहीं दिया।

भारतेन्दु ने मानव-प्रकृति का चित्र आँका। उनके मानव-प्रकृति के चित्र शुद्ध और यथार्थ हैं। जहाँ कहीं भी वे मानवेतर प्रकृति का रूप उतारने के लिए खड़े हुए वहाँ मानव-प्रकृति का वेग उन्हें अपने साथ बहा ले जाता था

---

५. वही, पृ० १४२।

और वह प्रकृति का वर्णन करते-करते मानव-प्रकृति का वर्णन करने लग जाते थे। वस्तुतः उनकी कविताओं में जो एक-दो स्थल मानवेतर प्रकृति के आए हैं उनमें सजीवता नहीं। उन्होंने सिर्फ परम्परा का पालन किया है। इस प्रकार आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के शब्दों में कहा जा सकता है कि 'हिन्दी की कविता में प्राकृतिक दृश्यों का वह सूक्ष्म वर्णन नहीं मिलता जो संस्कृत की प्राचीन कविताओं में पाया जाता है।[६]

भारतेन्दु-युग

भारतेन्दु-युग के बाद द्विवेदी युग का आगमन हुआ जिसमें 'सर्वप्रथम स्वतंत्र रीति से प्रकृति-चित्रण का आरम्भ हुआ। इस समय के प्राकृतिक चित्रण में नवीन दृष्टि दिखाई पड़ती है। कवियों ने प्रकृति को काव्य में समुचित स्थान प्रदान किया। इनमें सच्चा प्रकृति-प्रेम है।' परन्तु इस द्विवेदी-युग के पूर्व प्रकृति का अंकन पम्परानुमोदित रहा। उन पूर्ववर्ती 'कवियों ने प्रकृति का स्वतंत्र चित्रण बहुत कम किया है। प्रकृति का उपयोग अधिकतर प्रेम की भावना को उद्बुद्ध और उत्तेजित करने के लिए हुआ। साहित्य की पारिभाषिक शब्दावली में हम यों कह सकते हैं कि इससे पूर्व प्रकृति का उद्दीपन रूप में ही चित्रण हुआ है, आलम्बन रूप में बहुत कम। इस प्रकार वर्षा और वसंत भारत की दो सबसे अधिक रमणीक ऋतुओं की शोभा की ओर तो कवियों का ध्यान बहुत कम है, परन्तु इन ऋतुओं से संयोग की प्रसन्नता और वियोग की पीड़ा का वर्णन अधिक मिलता है। नैतिकता का उपदेश देने के लिए भी कवियों ने प्रकृति को साधन बनाया है। इसके आगे इन कवियों को प्रकृति निस्सार प्रतीत हुई और इन्होंने प्रकृति को आलम्बन मानकर उसकी काव्यपूर्ण अभिव्यक्ति की चेष्टा नहीं की।'[७]

द्विवेदी-युग

इस 'काल में प्रकृति का चित्रण अनेक शैलियों में हुआ। कवि अपनी-अपनी विशेष भावनाओं को लेकर प्रकृति-निरीक्षण के लिए निकले और अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार उन्होंने प्रकृति का चित्र खींचा। प्रथम, प्रकृति के

---

६. चिन्तामणि, पृ० २४-२५ ७. आधुनिक काव्य-धारा, पृ० १७३

परम्परागत रूपों का वर्णन था, जैसे, ऋतुओं का वर्णन, प्रभात-वर्णन, समुद्र-तट वर्णन इत्यादि। इस प्रकार का प्रकृति-वर्णन भारत में बहुत प्राचीन

द्विवेदी-युग में प्रकृति की प्रवृत्ति

काल से चला आ रहा है। महाकाव्यों का तो यह एक प्रधान लक्षण समझा जाता था कि उसमें ऋतु-वर्णन, नगर-वर्णन, प्रभात-वर्णन इत्यादि प्रकृति के विविध परम्परागत रूपों का वर्णन हो।...... षट्ऋतु-वर्णन और बारहमासा की प्रणाली का हिन्दी में भी बहुत प्रचार था। बीसवीं शताब्दी के प्रारंभिक काल में जब खड़ी बोली भाषा का कोई आदर्श न था, उस समय कवि प्रायः इस प्रकार के प्रकृति-वर्णन के पद्य लिखा करते थे। कालिदास के 'ऋतु-संहार' के आधार पर ऋतु-वर्णन की एक नई प्रणाली चल निकली थी। मैथिलीशरण गुप्त, गिरधरशर्मा, लोचन प्रसाद पांडेय, सत्यनारायण कविरत्न, कन्हैयालाल पोद्दार इत्यादि अनेक कवि इस प्रकार ऋतु-वर्णन अथवा प्रभात-वर्णन इत्यादि लिखा करते थे। मैथिलीशरण गुप्त का 'निदाघ-वर्णन' (सरस्वती, जुलाई १९०७) इस दिशा में एक स्तुत्य प्रयास था। प्रकृति-वर्णन की दूसरी प्रवृत्ति प्रकृति-निरीक्षण से उत्पन्न सहजोद्रेक था। जिस प्रकार बालक किसी नई और सुन्दर वस्तु को देखकर आनन्द में मग्न हो स्वाभाविक सरलता से अपनी प्रसन्नता प्रकट करता है, उसी प्रकार कुछ सरल और भावुक-हृदय कवि प्रकृति का अलौकिक सौन्दर्य देखकर मुग्ध भाव से उमड़ पड़े।'[८] इस प्रवृत्ति के अंतर्गत श्रीधर पाठक, विद्याभूषण 'विभु', पंत आदि आते हैं। श्रीधर पाठक ने अपनी एक कविता में काश्मीर को 'प्रकृति देवी का शृंगार-गृह' की संज्ञा प्रदान की है, जहाँ वह अपना रूप सजाती है—

> **प्रकृति यहाँ एकांत बैठि निज रूप संवारति।**
> **पल-पल पलटति भेष छनिक छवि छिन-छिन धारति॥**
> **विहरति विविध बिलास भरी जोवन के मद सनि।**
> **ललकति किलकति पुलकति निरखति थिरकति बन ठनि॥**
> **[काश्मीर सुषमा : पृ० ९]**

---

८. आधुनिक हिंदी साहित्य का विकास, पृ० ७२-७३

इस प्रकरण में प्रकृति का संवेदनात्मक चित्रण हुआ है ; उनके चित्रा मक वर्णन का दृष्टांत देखने योग्य है—

अगम घोर घन बनवा जंगल जार,
गहबर गर्त कठिनवा कुवट कुठार ।
भिरत जहाँ तरवरवा बिरवा बाँस,
भरत बतास अधिकवा दीरघ साँस ।
तिम दुर्गम कलदलवा नरवा नार,
सुठि जलपात सुथलवा विषम कगार ॥

[देहरादून : पृ० २२]

यह बिलकुल सत्य है कि 'अपने समय के कवियों में प्रकृति का वर्णन पाठकजी ने सबसे अधिक किया, इससे हिन्दी कवियों में वे प्रकृति के उपासक कहे जाते हैं। यहाँ पर यह कह देना आवश्यक है कि उनकी वह उपासना प्रकृति के उन्हीं रूपों तक परिमित थी जो मनुष्य को सुखदायक और आनन्दप्रद होते हैं, या जो भव्य और सुन्दर होते हैं। प्रकृति के सीधे-सादे नित्य आँखों के सामने आनेवाले, देश के परम्परागत जीवन से सम्बन्ध रखने वाले दृश्यों की मधुरता की ओर उनकी दृष्टि कम रहती थी।'[१]

छायावाद-युग

द्विवेदी-युग के पश्चात् छायावाद-युग का आगमन हुआ और इस खेवे के कवियों ने प्रकृति को जड़ नहीं, वरन् चेतन माना। प्रकृति के प्रति यह जो दृष्टि-कोण है, वह पाश्चात्य साहित्य से ग्रहण किया गया है। 'अतएव पल्लवों में उसने एक सस्फुटयौवना बालिका का रूप पाया, निर्झरणी में एक अपनी धुन में मस्त कलस्वर में गाती हुई नायिका को पहचाना; उसने समस्त प्रकृति को सचेतन रूप में देखा। अनेक छायावादी कवि और समालोचक प्रकृति का चेतन स्वरूप देखकर चौंक उठते हैं और उसमें आत्मा-परमात्मा-संबंधी आध्यात्मिक भावनाओं का आरोप करने लगते हैं; परन्तु

१. हिन्दी साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल, पृ० ६०७

वास्तव में इस प्रकार के प्रकृति-चित्रण में आध्यात्मिकता की गंध भी नहीं है।'[१०]

पंत को कवि बनाने का श्रेय प्रकृति को है और प्रकृति को चेतन बनाने का सेहरा पंत को। पंत को प्रकृति के तन-मन का सहज ज्ञान है, क्योंकि उन्होंने उसके सूक्ष्म स्पदनों की धड़कन सुनी है और कवि की प्रतिभा ने प्रकृति के रम्य प्रांगण में रास रचाया है। यही कारण है कि पंत ने प्रकृति को जड़ और मृतक नहीं, वरन् चेतना-सम्पन्न माना है। उसमें मानव-हृदय की संवेदनशीलता है, क्योंकि वह मानव-हृदय के प्रेम को समझने में समर्थ है। सभी छायावादी कवियों में सामान्य रूप से यही भावना व्याप्त है। इस प्रकार कवि और प्रकृति एक दूसरे के लिए आलम्बन हैं। पंत ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि 'कविता करने की प्रेरणा सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्माचल प्रदेश को है। कवि-जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था; और कोई अज्ञात आकर्षण, मेरे भीतर, एक अव्यक्त सौंदर्य का जाल बुनकर चेतना को तन्मय कर देता था।' फलतः कवि का प्रधान विषय है प्रकृति और गौण है मानव। ठीक यही बात बायरन के साथ लागू होती है। बायरन ने स्वयं लिखा है कि 'मैं मनुष्य से कम प्यार नहीं करता, पर प्रकृति से अधिक प्यार करता हूँ।'*

पंत की दृष्टि में प्रकृति

हिन्दी की प्राचीन कविता पर जिस प्रकार संस्कृत का प्रभाव है उसी प्रकार आधुनिक कविता में अंग्रेजी का प्रभाव लक्षित होता है। फलतः इस प्रभाव से इस युग की कविता अन्तर्वृत्ति-निरूपिणी (Subjective) हो गई जिसके कारण आलम्बन और उद्दीपन की कमी हो गई और अप्रस्तुत रूप-विधानों का प्राचुर्य हो गया। शेली, कीट्स और वर्ड्स्वर्थ की कुछेक कविताएँ इसी कोटि की हैं। 'उपर्युक्त कवियों में से वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज का प्रभाव अपेक्षाकृत अधिक है,

अंग्रेजी की प्रकृति-कविता का इस युग की प्रकृति परक कविता पर प्रभाव

१०. आधुनिक हिन्दी-साहित्य का विकास, पृ० ७२-३
* I love not man the less, but nature more—Byron.

यद्यपि श्रीयुत पंत-ऐसे कवियों पर शेली का प्रभाव अधिक जान पड़ता है। किती के प्रभाव पड़ने से मेरा तात्पर्य यह नहीं है कि उसकी नकल की गई है। मेरा मतलब केवल इतना ही है कि उस प्रकार की कविता अधिक पाई जाती है और परिस्थितियों को देखते हुए ऐसा जान पड़ता है कि यह इंगित वहीं से मिलता है। वर्ड्स्वर्थ और कोलरिज दोनों की प्रवृत्ति प्रकृति में परोक्ष सत्ता का संकेत पाने की ओर थी। यह प्रवृत्ति हिन्दी में भी है। दोनों यह जानने की कोशिश करते थे कि हमारे परिस्थिति-रूपी पर्दों के पीछे कौन-सी परोक्ष सत्ता काम कर रही है। प्रकृति के द्वारा प्रकृति के कर्त्ता को देखने की ओर उनकी प्रवृत्ति थी। वर्ड्स्वर्थ की आरंभिक कविता में हमें प्रकृति के बड़े सूक्ष्म और संश्लिष्ट चित्र मिलते हैं, परन्तु उनके प्रौढ़ काल की कविता में यह बात नहीं है। उसमें कवि ने प्रकृति में एक अनंत सत्ता का अनुभव किया है और एक आभ्यन्तर संसार की खोज की है। कवि ने स्वयं अपने दोनों रूपों को—प्रकृति के सीधे-सादे सच्चे उपासक के रूप को और आध्यात्मिक सिद्धांतवादी रूप को—स्वीकार किया है। प्रकृति के सीधे-सादे रूप के उपासक के चले जाने पर आध्यात्मिक सिद्धांतवादी का जन्म हुआ।...इस प्रकार की परोक्ष सत्ता का बड़ा सुन्दर संकेत कवि की बाल्यावस्था की स्मृति द्वारा अमरत्व का 'संकेत' (Ode on Intimations of Immortality : from Recollections of Early Childhood) नामक कविताओं में मिलता है। कोलरिज (Coleridge) में भी कुछ-कुछ इसी प्रकार की भावना पायी जाती है। दोनों ही कवि प्रकृति को ब्रह्म की प्रत्यक्ष विभूति मानते थे और उसी में उसके दर्शन करते थे। कोलरिज प्रकृति की अंतरात्मा को देखते थे। वे उसमें ईश्वरीय शक्ति का अनुभव करते थे। यह बात उनकी कुछ कविताओं और विशेषतया उनके फुटकर नोट्स से स्पष्ट हो जाती है जो कि कुछ तो लिटरेरी रिमेन्स (Literary Remains) नामक पुस्तक में है और कुछ अनीमा पोयटिक (Anima Poetic) नामक पुस्तक में उनके पौत्र हार्टली कोलरिज द्वारा प्रकाशित किए गये हैं। इस दूसरी पुस्तक में बड़े सुन्दर शब्द-चित्र और आश्चर्योत्पादक

विचार भरे पड़े हैं जिनके द्वारा कवि की कला और उसकी प्रकृति के प्रति भावना समझने में बड़ी सहायता मिलती है। उनकी प्रवृत्ति का परिचय इन पंक्तियों से हो जायगा—

But thou, my babe! shalt wander like a breeze
By lake and sandy shores beneath the crags.
Of ancient mountains, and beneath the clouds
Which in their bulk both lakes and shores
And mountain crags; So shalt thou see and hear.
The lovely shapes and sounds intelligible
Of that eternal language, which thy God
Utters... ... ...

परन्तु कवि प्रकृति की सुन्दरता की ओर से उदासीन नहीं है। यह बात उनके 'अनीमा पोयटिक' से ज्ञात होती है जिसमें रात्रि के अनेक शब्द-चित्र भरे हैं और जो उनके जाग्रत् स्वप्नों (Nocturnal Reveries) से पूर्ण हैं आधुनिक काल की नवीन ढंग की कविताओं में प्रकृति के प्रति ऐसी ही रहस्य और परोक्ष सत्ता की भावना पायी जाती है।' ११

हिन्दी कविता में मानवेतर बाह्य प्रकृति का विभिन्न रूपों में उपयोग होता रहा है। कविता की रचना में कवि को किसी-न-किसी रूप में प्रकृति का आश्रय ग्रहण करना ही पड़ता है, उसके बिना कविता की सरसता दूर भाग खड़ी होती है। शुद्ध मानव जीवन संबंधी कविता में भी प्रकृति परोक्ष रूप से अवश्य आती है।

काव्य में प्रकृति के विभिन्न प्रयोग

हिन्दी कविता में हम यह देखते आये हैं कि कवियों ने सुन्दर स्त्री के सौन्दर्य का चित्र अंकित करने के लिए प्राकृतिक अवयवों का आश्रय ग्रहण किया है जिससे यह स्पष्ट होता है कि कविता के लिए प्रकृति एक अनिवार्य तत्व है। 'प्रकृति के अनंत रमणीय प्रसार में काव्योपयोगी असीम सौन्दर्य, अगाध माधुर्य, अगणित रंजनकारी ध्वनियाँ, आकर्षक वर्ण रूप, आकृतियाँ, भरी पड़ी हैं। रूप-माधुर्य के इस अक्षय भाण्डार से काव्य अपने को सदा श्री-सम्पन्न रखता है। उसमें

---

११. हिन्दी काव्य में प्रकृति—श्री रामचन्द्र श्रीवास्तव, पृ० ७२-४

प्रकृति का ग्रहण विभिन्न रूपों में होता है।'[१८] आधुनिक काल में प्रकृति-निरूपण की निम्नलिखित विधाएँ प्रचलित हैं—आलंबन रूप, उद्दीपन रूप, रहस्य-भावना की अभिव्यक्ति, मानवीकरण, पृष्ठभूमि व वातावरण-निर्माण, दार्शनिक तथ्य, अप्रस्तुत योजना, प्रतीकात्मक, उपदेशात्मक, अलंकार रूप, प्रकृति-चित्रण; समासोक्ति पद्धति एवं अन्योक्ति पद्धति आदि। इनमें से किसी एक रूप में किये जाने बाले प्रकृति-चित्रण में दूसरे रूव या रूपों से भी सहायता ली जा सकती है। पंत द्वारा प्रकृति-चित्रण में ये विधाएँ किस सीमा तक विद्यमान हैं, इस पर विचार करना आवश्यक है।

पंत छायावाद के कवि हैं, न कि द्विवेदी-युग के। प्रकृति का उपयोग आलबंन रूप में होता आया है क्योंकि इसी के द्वारा भावों का उदय होता है।

आलंबन के रूप में प्रकृति का वर्णन

आलंवन का अर्थ ही है आश्रय जिसके हेतु भाव आश्रित हों, वही आलंबन कहा जाता है। अतएव भावों का विषय है आलबंबन। 'बिम्ब ग्रहण करना ही कवि का काम है और इसका चित्रण ही काव्य का प्रथम विधान है। अतः भावों के विषय अथवा प्रकृत आधार का कल्पना द्वारा संशिलष्ट और व्योरेवार चित्रण ही कवि का सर्वप्रथम आवश्यक कार्य है। प्रकृति का

१८, विलियम हेनरी हडसन ने अपनी पुस्तक An Introduction to the study of literature के 'On the treatment of Nature in poetry' नामक परिशिष्ट (Appendix) में कविता में प्रकृति के निम्नलिखित रूपों में प्रयुक्त होना बतलाया है—

The poetry of simple delight in nature; The poetry of Nature's sensuous beauty; The metaphorical use of Nature; Nature as back- ground; The poetry of Association. The poetry of set-description; Indifference of Nature; The Sympathy of Nature; The Subjective treatment of Nature.

जे० सी० शार्प (J. C. Shairp) ने भी 'Poetic interpretation of Poetry' में कुछ इसी प्रकार का विभाजन किया है परन्तु हडसन ने उसमें कुछ परिवर्द्धन किया है।

ग्रहण आलंबन के रूप में किस स्थल पर हुआ है इसका पता उस स्थल की वर्णन-प्रणाली के देखने से लग जायगा। कवि जहाँ बिम्ब ग्रहण कराने की चेष्टा करेगा वहाँ प्रकृति का वर्णन आलंबन के रूप में ही होगा। ऐसे स्थलों पर कवि का निरीक्षण बड़ा सूक्ष्म होता है। वह वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उनके चारों ओर की परिस्थिति से संबद्ध संश्लिष्ट चित्र उपस्थित करता है। कवि के विशेष अनुराग के बिना ऐसे सूक्ष्म ब्योरों और परिस्थितियों पर दृष्टि न तो जायगी ही और न टिकेगी ही। अतएव सूक्ष्म विवरण-युक्त, संश्लिष्ट और पूर्ण वर्णनवाले स्थानों पर प्रकृति का ग्रहण आलंबन के रूप में समझना चाहिए।[१३] मानवेतर बाह्य प्रकृति का आलंबन के रूप में चित्रण छायावादी कविता में बहुत कम हुआ है। पंत की प्रसिद्ध कविता है 'एक तारा' जिसमें मैदानों की सान्ध्य-प्रकृति का संश्लिष्ट एवं सजीव चित्र अंकित है—

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम-प्रान्त !
पत्रों के आनत अधरों पर सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर !

आलंबन रूप में प्रकृति का चित्रण करने में पंतजी अपनी अन्तर्भावनाओं का उस पर आरोप कर देते हैं। 'बादल' शीर्षक कविता में प्रकृति का यथातथ्य एवं संश्लिष्ट चित्र अंकित हुआ है परन्तु, उसमें अलंकारों के कारण कल्पना चित्रों का आधिक्य है।

हम सागर के धवल हास हैं, जल के धूम, गगन की धूल !
अनिल फेन, ऊषा के पल्लव, वारि-वसन, वसुधा के मूल !

इस प्रकार की कविताओं में 'छाया' शीर्षक कविता अत्यन्त प्रसिद्ध है। छाया वृक्ष के नीचे सोई हुई है। अतीत की एक परिचित घटना का आरोप करते हुए पंत कहते हैं—

---

१३. हिन्दी काव्य में प्रकृति-चित्रण, पृ० २१ २२।

कहो, कौन हो दमयन्ती-सी, तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या, अलि नल-सा निष्ठुर कोई !

इस प्रकार के अनेक उदाहरण पंत की कविताओं में मिलते हैं। अब हम प्रकृति के इस आलंबन रूप की विस्तृत समीक्षा प्रस्तुत करते हैं। इस रूप के भी अनेक भेद हैं और वे हैं—(क) रूप-विस्तार (ख) सूक्ष्मदर्शिता व तूलिका-कौशल (ग) गतिविधि (घ) वर्ण-भावना (ङ) नाद-व्यंजना (च) गंध (छ) स्पर्श (ज) भाव-व्यंजना (झ) स्नेह भावना और (ञ) मनस्थिति।

[क] **रूप-विस्तार**—कवि की दृष्टि सबसे पहले-पहल प्राकृतिक पदार्थों पर पड़ती है और वे पदार्थ तीन भागों में विभाजित किये जा सकते हैं—(i) पृथ्वी पर स्थिर पदार्थ, जैसे—पहाड़, मैदान, मरुभूमि, बाग-बगीचा, पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि के आकार प्रकार (ii) सागर, निर्झर आदि और (iii) आकाश, मेघ, तारा, नक्षत्र, नीहारिका, आकाश-गंगा आदि। इन सभी प्रकृतिक पदार्थों का विशद वर्णन एक ही कवि की लेखनी से संभव नहीं है, इनका वर्णन प्रत्येक कवि की रुचि पर अवलम्बित है। कोई प्रकृति के कोमल रूप के अंकन-आनन्द की प्राप्ति करता है तो कोई उसके कठोर रूप के वर्णन में। प्रकृति के विशद वर्णन की गुंजाइश प्रबन्धकाव्यों में विशेष रूप से होती है, मुक्तक काव्य या गीतों में तो उसकी झलक मात्र ही रहती है। कभी-कभी लोग वस्तुओं का नाम ही गिनाकर रह जाते हैं। पंत ने भी उद्यान की क्यारी-क्यारी में पुष्पित फल-फूलों का एक अच्छा-सा सूचीपत्र (Catalogue) तैयार किया है। वस्तुओं के नामों की गणना करना अत्यन्त साधारण कला समझी जाती है, ऐसी कला को हरिऔधजी ने 'प्रियप्रवास' में सजाया और सँवारा है। इस कला में काव्यत्व का अभाव रहता है, पंत की पंक्तियों में देखिये :—

नव वसन्त की रूप राशि का ऋतु उत्सव यह उपवन,
सोच रहा हूँ, जन जग से क्या सचमुच लगता शोभन;
रंग रंग के खिले फ्लॉक्स वरवीना, छपे डियाथंस,
नत दृग ऐंटी हिनम, तितली सी पैंजी, पापी सानस;

हँसमुख, कैण्डीटफ्ट, रेशमी चटकीले नैशटर शभ्र,
खिली स्वीट पी—एवडंस, फिल वास्केट औ ब्यू बैंटम !
दुहरे कार्नेशंस, स्वीट सुलतान सहज रोमांचित,
ऊँचे हॉली हॉक लार्क स्वर पुष्प स्तम्भ से शोभित !
फूले बहु मखमली, रेशमी मृदुल गुलाबों के दल
धवल मिसेज हरड् कार्नेगी बृटिश क्वीन हिम उज्ज्वल।
सोसेफ हिल, सनवर्स्ट पीत, स्वर्णिम लेडी हेलिङन
ग्रे एड सुगल, रिचमरड, विकच ब्लैक प्रिंस नील लोहित तन।
फेअरी क्वीन, मारगरेट मृदु वीलियम शीन चिर पाटल
बटन रोज बहु लाल, ताम्र, माखनी रंग के कोमल !

सुमित्रानन्दन पंत ने पर्वतीय सौन्दर्य का अत्यन्त ही आकर्षक रूप अंकित किया है क्योंकि वे तो उसके साथ एकाकार हो गये हैं। इस दृष्टि से उनकी ('स्वर्ण किरण' में संग्रहीत 'हिमाद्रि' शीर्षक कविता अपने ढंग की अकेली है। पंत ने पर्वत-प्रदेश का जो सौन्दर्य-चित्र अंकित किया है वह परम रमणीय है। कुछ पंक्तियाँ देखिये :—

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश; पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश।
मेखला पर्वत अपार, अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार, नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पड़ा ताल दर्पण-सा फैला है विशाल !
गिरि का गौरव गाकर झर्-झर् , मद से नस नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर झरते हैं झाग भरे निर्झर।
गिरिवर के उर से उठ-उठ कर उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झांक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष, अटल, कुछ चिन्ता पर !
उड़ गया अचानक, लो भूधर फड़का अपार पारद के पर !
रव शेष रह गए हैं निर्झर ! है टूट पड़ा भू पर अंबर !

पंत ने मोती-सदृश हिम-बिन्दुओं एवं ग्राम-माधुरी का भी सुन्दर रूप-चित्रण किया है। 'लहराते कांस व उड़ते सूखे पत्ते भी पंत की दृष्टि से बच

नहीं सके हैं। ग्राम के उन्मुक्त वातावरण के सौंदर्य को नवीन प्रगतिवादी कवियों ने बड़े उत्साह से अंकित किया है, इसमें कोई संदेह नहीं। 'अप्सरा' की सूक्ष्म सौंदर्यमयी दिव्य सृष्टि करनेवाले पंत भी खेतों की हरि-भरी ताजी शाक-सब्जियों का वर्णन बड़े हुलास से करते हैं। आलू, गोभी, बैगन, मूली, पालक, धनियाँ, लौकी, सेम, टमाटर, मिर्च, गेहूँ के बाल, अरहर, सरसों आदि को देखकर वे लहलहा उठे हैं।[१४] पंतजी को चित्तीदार अमरूद भी बहुत पसंद जान पड़ते हैं। पशु-पक्षी भी हमारे जीवन के अभिन्न अंग है! उनसे हमारा आदिम रागात्मक संबंध है। पंत ने तूल सी मार्जार-बाला (ग्रन्थि) को देखकर व बादलों की उपमा मेमनों के बाल से देकर (पल्लव) अपना पशु-प्रेम सूचित किया है।[१५] पंत ने चीटी,[१६] फुलसुँही[१७] (एक पक्षी) झरना,[१८] आकाश,[१९] पृथ्वी,[२०] आदि का भी अत्यन्त ही हृदयग्राही वर्णन किया है। आरंभ में छायावादी कवियों ने मुक्त आकाश का गान गाया, परन्तु बाद में वे धरती पर उतर आये। इस सबंध में सुप्रसिद्ध कवि श्री नरेन्द्रशर्मा ने अपनी कविता-पुस्तक 'प्रभातफेरी' की भूमिका में लिखा है कि 'मैं चाहता हूँ कि सत्य और सौंदर्य की खोज में निर्भीक होकर और ऊँचा उड़ सकूँ लेकिन जगद्धात्री पृथ्वी से विमुख हो, महत्त्वाकांक्षा के सूर्य तक पहुँचने की इच्छा से उड़नेवाले संपाती की भाँति नहीं।' सुमित्रानंदन पंतजी का भी आग्रह हुआ- 'देखो भू को, पुण्य प्रसू को।' इन्होंने ऊषा का भी अत्यन्त उत्फुल्लकारी चित्र अंकित किया है।

---

१४. 'ग्राम-श्री कविता की पंक्तियों को देखिये—
उड़ती भीनी तैलाक्त गंध, फूली सरसों पीली पीली,
लो, हरित धरा से झांक रही, नीलम की कलि, तीसी नीली।...
लहलह पालक महमह धनियाँ, लौकी औ' सेम फली फैली,
मखमली टमाटर हुए लाल, मिरचों की बड़ी हरी थैली॥

१५. कविता में प्रकृति-चित्रण, पृष्ठ १२९-३०।

१६. गुंजन और युगवाणी १७. ज्योत्स्ना १८. पल्लव १९. युगवाणी और ग्राम्या २०. ग्राम्या।

[ख] सूक्ष्मदर्शिता व तूलिका कौशल—कवि एक सामाजिक प्राणी है। वह जीवन की हलचलों से दूर होकर कभी-कभी प्रकृति के किसी एक वस्तु पर अपनी दृष्टि केन्द्रित कर देता है और भावरूपी मोती को निकालता है। जो वस्तु कवि को अत्यधिक प्यारी होती है उसी वस्तु की बारीकियों की ओर उसकी दृष्टि फिरती है। इस प्रकार के अंकन में वस्तु की प्रमुखता नहीं रहती है। 'मूल पदार्थ तो निमित्त मात्र ही रहता है, विभाव के रूप-चित्रण का प्रयास नहीं के बराबर रहता है; हाँ दार्शनिक कल्पना का घटाटोप ही प्रमुख हो जाता है। सूक्ष्म कल्पनाजीवि कवि हो प्रायः इस प्रकार के कल्पना-विलास में लीन होते हैं। ऐसी रचनाएँ कवि की एकान्तिक सूक्ष्मदर्शिता व मनोयोग की क्षमता की परिचायिका होती है।'

पंत एक कल्पनाजीवी कवि हैं और कल्पना उनकी सहचरी है। कल्पना के बिना कविता में सरसता नहीं आ सकती। सूक्ष्मदर्शिता एवं तूलिका-कौशल की दृष्टि से 'एक तारा', 'स्याही की बूँद' और 'छाया' शीर्षक कविताएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। 'कवीद्र रवीन्द्र ने एक क्षुद्र ओस बिन्दु में विराट को समाविष्ट कर दिया है।' इसके उदाहरण के लिए पंत विरचित 'एक तारा' शीर्षक कविता की कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती है :

पश्चिम नभ में हूँ रहा देख
उज्ज्वल, अमन्द नक्षत्र एक!
अकलुष अनिन्द्य नक्षत्र एक ज्यों मूर्तिमान ज्योतित विवेक,
उर में हो दीपित अमर टेक

+ +

चिर अबिचल तारक अमन्द।
जानता नहीं वह छन्द बन्ध।
वह रे अनन्त का मुक्त मीन अपने असंग-सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन।
निष्कम्प शिखा-सा वह निरुपम, भेदता जगत जीवन का तम,
वह शुद्ध, प्रबुद्ध, शुक्र वह सम!

—इसमें कल्पना की ऊँची उड़ान (Flight of imagination) देखने को मिलती है जो 'नक्षत्र के प्रति आत्मिक प्रेम' को सूचित करती है।' पंत की 'ग्राम्या' और 'गुंजन' की कविताओं में इस रूप का सुन्दर निखार हो पाया है।

[ग] गति विधि—यों तो सभी कवियों ने प्राकृतिक उपकरणों की स्थिति-परिस्थिति, रुप-रंग आदि का वर्णन किया है परन्तु उनका प्रकृति-निरीक्षण तभी सर्वांगीण समझा जाता है जब कि उनकी क्रिया एवं गति विधि का सजीव वर्णन होता है। सागर, नदी, नाले पेड़-पौधे आदि में अनेक प्रकार की गति-विधियाँ दृष्टिगत होती हैं। सागर, नदी-नाले के जल उठते-गिरते बहते हैं, उससे एक विशेष प्रकार के स्वर प्रस्फुटित होते हैं। आँधी आने से पेड़-पौधे टूट कर गिरते हैं और उनके जाने के बाद वे शांत हो जाते हैं। इसी प्रकार की अनेक गति विधियाँ होती हैं। जिस कवि में गति-ज्ञान (Sense of Dynamicity) होती है, वह वातावरण सृष्टि करने में अत्यन्त सफल होता है। पंत गति-विधि के पूर्ण पारखी हैं, इसीलिए उनके प्राकृतिक चित्र अत्यन्त सटीक होते हैं। वर्षा होने के पूर्व आकाश में बादल उमड़-घुमड़ कर आते हैं—बादल की इस गति-विधि का अत्यन्त ही मार्मिक वर्णन पंत की 'बादल' शीर्षक कविता में हुआ है। पंत प्रकृति के निरीक्षण में जल्दीबाजी नहीं करते हैं, वे एकाग्र चित्त से उसका अध्ययन करते हैं और तब कवि की लेखनी चित्रकार की तूलिका बन जाती है। पंत ने वर्षान्त के रजत धवल धुनी रुई से बादलों,[२१] चाँदनी रात की लहरों,[२२] पर्वत प्रदेश के पल-पल में परिवर्तित दृश्यों,[२३] झंझा के स्पर्श से सर-सर-मर-मर शब्द करते हुए नीम के पत्तों,[२४] को जिस सूक्ष्मता एवं एकाग्रता से देखा है, वह अत्यन्त ही सराहनीय है।

---

२१. पंत की 'बादल' शीर्षक कविता।

२२. 'नौका विहार' शीर्षक कविता। २३' 'उच्छ्वास' शीर्षक कविता।

२४. 'झंझा में नीम' शीर्षक कविता।

शब्दों के द्वारा उन्होंने प्रकृति की जो तस्वीर खींची है, वह बोलने लगती है। इसके कुछ उदाहरण लीजिये—

(क) डाँडों के चल करतल पसार, भर भर मुक्ताफल फेन - स्फार,
बिखराती जल में तार - हार।
चाँदी के साँपों सी रलमल नाँचती रश्मियाँ जल में चल
रेखाओं सी खिंच तरल सरल।
लहरों की लतिकाओं में खिल, सौ सौ शशि, सौ सौ उडु झिलमिल
फैले फूले जल में फेनिल। (नौका-बिहार)

(ख) सर् सर् मर् मर्
रेशम के - से स्वर भर
घने नीम दल ....
झूम झूम झुक झुक कर
भीम नीम तरु निर्भर
सिहर सिहर थर् थर् थर्
करता सर् सर्
चर मर्! [झंझा में नीम]

(ग) अभी गिरा रवि ताम्र कलश - सा
गंगा के उस पार।
सिमटा पंख साँझ की लाली
जा बैठी अब तरु शिखरों पर,
ताम्रपर्ण पीपल से शतमुख
झरते चंचल स्वर्णिम निर्झर
ज्योति - स्तंभ सा धँस सरिता में
सूर्य क्षितिज पर होता ओझल! [गंगा की साँझ]

(घ) वर्ण-भावना (Sense of Colour)—पंत की प्रकृति में कोमलता तो है ही, परन्तु उसमें वर्ण-विपुलता (Colourfulness) भी है। उन्होंने अपनी कविता में सजीवता लाने के लिए रङ्गों का भी विधान

किया है क्योंकि उससे काव्य-चित्र में पूर्णता आती है। पंत के वर्ण-परिज्ञान में कल्पना की मात्रा अधिक है, कारीगरी (Craftsmanship) कम। वर्ण-परिज्ञान रसानुभूति में सहायता पहुँचाती है। यह प्रवृत्ति अंग्रेजी-कवि आर्नल्ड, रोजेटी व कीट्स में विशेष रूप से पायी जाती है। पी० बी० शेली (P. B. Shelley) ने भी वस्तुओं के रंगों पर पूरा-पूरा ध्यान रखा है। उसने अपने गंभीर निरीक्षण के द्वारा पतझड़ के समय के वृक्षों के मुर्झाये पत्तों के रंगों का अत्यन्त सुन्दर चित्र अंकित किया है—

O Wild West Wind, thou breath of Autumn's being,
Thou from whose unseen presence the leaves dead
Are driven, like ghosts from an enchanter fleeing,
Yellow and black, pale and hectic red,
Pestolence stricken multitudes :

(Shelly : Ode to the West Wind)

हिन्दी कवियों में पंतजी का वर्ण-ज्ञान अत्यन्त सूक्ष्म है और वे इस क्षेत्र में सभी कवियों से आगे रहे हैं। उनके विशेष रूप से प्रिय रंग हैं— धूमधुआँरा; गेरुआ, सिंदूरी, गुलाबी, केसरी, रूपाभ, धानी-रुपहला-सुनहला, इन्द्रधनुषी, मूंगिया, धूमिल, आसमानी, अंगूरी, किशमिमी, भूरा, स्वर्णाभ, वसन्ती, पारद, सिलहटी आदि। रगों की बारीक पहचान देखकर ही प्रकृति निरीक्षण की सत्यता को हम जान सकते हैं क्योंकि उनका प्रभाव हृदय पर अवश्य पड़ता है। पंत की वर्ण-भावना Sense of Colour) के कुछ उदाहरण लीजिए—

(क) विद्रुम औ मरकत की छाया, सोने चांदी का सूर्यातप!
हिम परिमल की रेशमी वायु शत रत्न छाप, खग चित्रित नभ।

(ख) गहरे धुंधले, धुले सांवले मेघों से मेरे धुले नयन।
तुहिन वन में छाई सुकुमारि, तुम्हारी स्वर्ण जाल सी तान।

[सोने का गान]

(ग) पल्लव पल्लव में नवल रुधिर पत्रों में मांसल रंग खिला;
आया नीली पीली लौ से पुष्पों के चित्रित दीप जला!

[वसन्त]

(घ) देखता हूँ, जब पतला इन्द्र धनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का खोलती है कुमुद-कला;

['आँसू' से]

(ङ) हरित - द्युति चंचल अंचल - छोर
सजल छवि, नील कंचु, तन गौर,
चूर्ण कच, सांस सुगंध झकोर,
परों में सायं - प्रात !

[वायु के प्रति]

(च) रुपहले सुनहले, आम्र - बौर
नीले पीले औ ताम्र भौंर
रे गंध अंध हो ठौर - ठौर
रे पांति - पांति में चिर उन्मन
करते मधु के बन में गुंजन। [गुंजन, पृष्ठ १०]

पंत की विकसित एवं सूक्ष्म रंग-भावना के लिए ज्योत्स्ना (नाटिका), ग्राम्या, युगान्त और उत्तरा की कविताएँ द्रष्टव्य हैं।

(ङ) नाद-व्यंजना (Sense of Sound)—हम प्रतिदिन अनेक प्रकार की ध्वनियाँ सुना करते हैं जो कानों को सुख पहुँचाती है। इन ध्वनियों में कोयल की कूक, पपीहे की पुकार, भ्रमर का गुंजन, लहरों का कलकल निनाद, संगीत की तान, मन्दिरों की घंटा-ध्वनि, झींगुरों की झंकार आदि हैं। इनका मानव के रागात्मक हृदय से घनिष्ठ सम्बन्ध है। बाह्य दृष्टि से उन ध्वनियों का कोई अर्थ नहीं है परन्तु उससे हृदय के अन्तर्निहित मर्म परिचालित होते हैं। कविगण अपने शब्दों के माध्यम से उसी प्रकार के भावों की सृष्टि करने का प्रयास करते हैं जिस प्रकार का भाव उन ध्वनियों में छिपा रहता है। इसके लिए सबसे सुन्दर साधन है ध्वन्यात्मक शब्दों का प्रयोग, जिसके उच्चारणमात्र से ही उस प्रकार का नाद होता है जिस प्रकार अनुकृत (Imitated) ध्वनियों का। प्रभावोत्पादन की दृष्टि से नाद-व्यंजना का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है क्योंकि यह पूर्ण रसप्रतीति में सहायक है। पी० वी०

शेली (P. B. Shelley) ने नाद-व्यंजना के अभूतपूर्व प्रभाव पर प्रकाश डालते हुए लिखा है :—

"Sounds as well as thoughts have relation both between each other and towards that which they represent, and a perception of the order of those relations has always been found connected with a perception of the order of the relation of thoughts. Hence the language of poets has ever effected a certain uniform and harmonious recurrence of sound, without which it were not poetry, and which is scarcely less indispensable to the communication of its influence than the words themselves, without reference to that peculiar order....." [25]

अंग्रेजी कवि शेली ने 'नाद और विचार तथा अनुभूति की प्रेषणीयता (Communicability) का संबंध' स्थापित कर उसकी महत्ता पर प्रकाश डाला है। पंत की कविताओं से नाद-व्यंजना के कुछ सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं, यथा—

(क) कभी अचानक, भूतों सा प्रकट विकट महा आकार
कड़क कड़क जब हँसते हम सब थर्रा उठता है संसार।

(ख) चीख उठा घुघ्घू डालों में लोगों ने पट दिये द्वार पर
निगल रहा बस्ती को धीरे गाढ़ अलस निद्रा का अजगर।

(ग) बाँसों का झुरपुट
संध्या का झुटपुट।
हैं चहक रहीं — टी-वी-टी टुट्-टुट्। [कलरव]

(घ) मृदु मन्द-मन्द, मन्थर-मन्थर लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर,
[नौका-विहार]

(ङ) झींगुर के स्वर का प्रखर तीर, केवल अशान्ति को रहा चीर।
[एकतारा]

---

25. Shelley : Defence of Poetry (Loci-Critici, Page 401)

(च) शत शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर। [निष्ठुर परिवर्तन]

पंत को कविताओं से इस नाद-व्यंजना के और भी उदाहरण दिये जा सकते हैं।

उद्दीपन रूप में प्रकृति

हिन्दी-कविता में उद्दीपन रूप में प्रकृति का उपयोग अत्यधिक हुआ है। हिन्दी-साहित्य का कोई भी युग इससे अछूता नहीं है। उद्दीपन का शाब्दिक अर्थ है—उद्दीप्त करना, अभिवृद्धि करना, आदि। 'जब लौकिक आलंबन—विशेषत: मानव—के प्रति जगे हुए रतिभाव को प्रकृति के द्वारा और अधिक बढ़ाकर आश्रय या भाव के अनुभवकर्त्ता को अनेक मार्मिक स्थितियों के बीच दिखाया जाता है वहाँ प्रकृति का चित्रण उद्दीपन रूप में हुआ कहा जाता है। प्रकृति जगे हुए भाव को दो रूपों में उद्दीप्त करती है —(१) संयोग के क्षणों में मिलन की भावना को अभिवृद्ध कर आश्रय का आत्मोत्कर्ष करने में सहायक होती है, उसे रोमांच, पुलक व प्रेमाश्रु की उल्लासमयी मानसिक भूमिका पर उठा ले जाती है, और (२) वियोग के क्षणों में प्रिय-विरह-जन्य व्याकुलता उत्पन्न करके उसे दाह और रुदन का अनुभव कराती है। आलंबन रूप के चित्रण में कवि या पात्र का प्रकृति से सीधा सम्बन्ध होता किन्तु यहाँ परोक्ष। इसमें मानव ही प्रमुख होता है, प्रकृति गौण! प्रकृति का इस रूप में चित्रण शृंगार रस के उद्दीपन पक्ष में ही किये जाने की बँधी-बँधाई साहित्यिक परम्परा है। है भी यह बहुत स्वाभाविक। यह तथ्य मनोविज्ञान-सम्मत हैं कि हम अपनी अभीष्ट वस्तु या प्रिय की प्राप्ति से असीम आनन्द का अनुभव करते हैं और उसके विछोह या नाश से उसी अनुपात में दु:ख का। यह सुख-दु:ख की अनुभूति अन्य मानव-सम्बन्धों की अपेक्षा प्रणय-सम्बधों में ऐसा वेग व तीव्रता धारण करती है क्योंकि आलंबन से शारीरिक, मानसिक व आत्मिक तीनों रूपों में सम्बद्ध होने के कारण आश्रय का सम्पूर्ण अस्तित्व प्रभावित होता है। यह अनुभूति हमारे हृदय तक ही सीमित न रहकर हमसे फूट-फैलकर समस्त चराकर जगत् या प्रकृति तक परिव्याप्त हो जाती है।

उन्हीं क्षणों में हम सौन्दर्य का सर्वाधिक अनुभव करते हैं। [२६] उद्दीपन रूप में प्रकृति जड़ रूप में भी चित्रित होती है और चेतन रूप में भी।....छायावाद में प्रकृति का चेतन रूप ही अधिक ग्रहण किया जाता है। अतः प्रकृति व मानव के पारस्परिक संबंध निम्नलिखित रूपों में संघटित होते हुए दिखाई पड़ते हैं—(१) मानव दुःखी तो प्रकृति भी दुःखी। (२) मानव सुखी तो प्रकृति भी सुखी। (३) मानव दुःखी किन्तु प्रकृति सुखी। (४) मानव सुखी किन्तु प्रकृति दुखी। मुख्यतः इन चार प्रकार के पारस्परिक व्यवहारों के निरूपण तक ही उद्दीपन-गत प्रकृति-चित्रण की व्याप्ति समझी जा सकती है।'[२७] अतएव यह स्पष्ट हो जाता है कि उद्दीपन वही है जो आलंबन के द्वारा आश्रय के हृदय में उत्पन्न भावों को उद्दीप्त करे अर्थात् बढ़ावे। हिन्दी के प्राचीन कवियों के लिए यह मार्ग अत्यन्त सरल था, वह उनके लिए राजपथ था। प्राचीन कविताओं में नायक-नायिका के मनोविकारों को उद्दीप्त करने के लिए इसका प्रयोग होता था परन्तु छायावाद-युग में प्रकृति स्वयं कवि के मनोविकारों को उद्दीप्त करती है। 'साथ ही प्रकृति में चेतन सत्ता का आरोप होने के कारण प्रकृति की वस्तुएँ कवि के साथ सहानुभूति दिखातीं और उसके सुख-दुःख में सम्मिलित होती है। इस प्रकार उद्दीपन रूप में होते हुए भी प्रकृति का कवि के साथ तादात्मय प्रगट होता है।' यही कारण है कि पंत की कविताओं में कीट्स की तरह प्रकृति के ऐन्द्रिक (Sensuous) चित्रों का प्राबल्य है। कुछ उदाहरण लीजिए—

---

27. 'So the esthetic emotion (Part of that 'Tender emotion' which accompanies the instinct of love) may overflow from the person desired to the objects attached to her, to her attitudes and forms, to her manners of action and speech, and to anything that is hers by possession or resemblance. All the world comes to partake of the fair one's Splendour."—Will. Durant :: The Mansions of Philosophy (1929), Page 290.

२७. कविता में प्रकृति-चित्रण, पृ० १२६-८।

(क) धधकती है जलदों से ज्वाल, बन गया नीलम व्योम प्रवाल;
आज सोने का संध्या काल, जल रहा जतुगृह-सा विकराल;
चिनगियों-से तारों को डाल आग का-सा अंगार शशि लाल
लहकता है, —फैला मणि जाल जगत को डँसता है तम व्याल!
पूर्व-सुधि सहसा जब सुकुमारि! सरल-शुक-सी सुखकर-सुख में
तुम्हारी भोली बातें कभी दुहराती हैं उर में!
['आँसू से']

(ख) विदा हो गई साँझ विनत मुखपर झीना आँचल धर,
मेरे एकाकी आँगन में मौन मधुर स्मृतियाँ भर।
मैं बरामदे में लेटा शैया पर पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव। [याद]

(ग) शैवलिनि! जाओ, मिलो तुम सिन्धु में
अनिल! आलिंगन करो तुम गगन को
चन्द्रिके! चूमो तरंगों के अधर,
उडुगणो! गाओ, पवन-वीणा बजा।
पर, हृदय! सब भाँति तू कंगाल है,
उठ किसी निर्जन-विपिन में बैठ कर
अश्रुओं की बाढ़ में अपनी बिकी
भग्न-भावी को डुबा दे आँख-सी! [ग्रंथि]
(प्रकृति के प्रति विरही हृदय की दशा)

(घ) आज रहने दो गृहकाज, प्राण! रहने दो गृहकाज!
आज जाने कैसी बातास, छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, सालस-सालुस बातास जगा रोओं में सौ अभिलाष।
[गुंजन]

यों तो छायावादी कविता से उद्दीपन-रूप में प्रकृति-चित्रण की प्रवृत्ति बहुत ही कम गयी है परन्तु अप्रस्तुत रूप-विधान की प्रधानता बढ़ गयी है।

इसका यह तात्पर्य नहीं कि प्राचीन हिन्दी कवियों की कविताओं में यह गुण विद्यमान नहीं है, प्रत्युत् छायावादी कविता में इस प्रवृत्ति को हम व्यापक रूप में पाते हैं। 'अप्रस्तुत' का सम्बन्ध वैसे वर्णनों से है जिसमें 'प्राकृतिक रूपविन्यास प्रस्तुत के रूप में होते हुए भी उपमा -उत्पेक्षा-प्रधान होता है अर्थात् जिसमें प्राकृतिक रूप-व्यापारों के ऊपर अप्रस्तुतों की इतनी भरमार होती है कि प्रस्तुत दबकर गौण हो जाता है।' कहने का अर्थ यह है कि कवि प्रकृति का चित्रण न कर उसे विभिन्न प्रकार के अप्रस्तुतों की व्यंजना का साधन बनाता है। इसीलिए यह प्रकृति का अप्रस्तुत-वर्णन कहा जाता है। पंत ने अप्रस्तुत-वर्णन के लिए प्रकृति का भी उपयोग किया है। इनकी कविता में अप्रस्तुत-रूप-विधान भाव-व्यंजक है, जटिल कल्पना कम। उन्होंने अपनी कविताओं में नये-नये उपमानों की रचना की है और वह उनकी सूक्ष्म प्रकृति-निरीक्षण की परिचायिका है। जहाँ हमारे प्राचीन कवियों ने अप्रस्तुत-रूप-विधान के लिए रूप-रंग की समानता को दृष्टि में रखा है वहाँ छायावादी कवियों (पंत, प्रसाद, निराला) ने प्रभाव साम्य या साधारण-सा हल्का संकेत लेकर भी निःशंक अप्रस्तुत-योजना की है।' जैसे—

अप्रस्तुत रूप-विधान और प्रकृति

इन्द्र धनु सा आशा का सेतु, अनिल में अटका कभी अछोर।

['आँसू' से]

इस काव्य-संदर्भ में 'आशा और इन्द्रधनुष के साम्य का आधार आशा का क्षणिक और धनुरंगों के समान भाँति-भाँति की सुखद कल्पनाएँ उत्पन्न करने-वाली होना एवं उसकी निराधारता है। इसी प्रकार—

सिसकते हैं समुद्र से मन,
उमड़ते हैं नभ से लोचन। **['आँसू' से]**

यहाँ पर मन और समुद्र का साम्य-आधार सिसकने का शब्द नहीं, सिसकने में वक्षस्थल का नीचे-ऊपर होना है। इसी प्रकार नेत्र और आँखों में साभ्य का आधार दोनों को शून्यता है। प्रभाव-साम्य के सम्बन्ध में पंडित रामदहिन मिश्र ने लिखा है कि इसके लिए 'यह आवश्यक नहीं है कि वस्तु के

प्रत्येक कार्य या गुण का पूर्णत: साम्य हो। सादृश्य और साधर्म्य के संकेत वा सूचनामात्र से भी भाव की वृद्धि हो तो आरोप अनावश्यक है। यदि सादृश्य और साधर्म्य प्रभाव-विस्तारक नहीं तो वह उपमान निर्जीव है। अप्रस्तुत योजना में प्रभाव की क्षमता उपेक्षणीय नहीं है। प्रसन्नता की बात है कि छायावादी युग की कविता प्राय: प्रभाव-साम्य पर ही अधिक दृष्टि रखकर की गई है। सादृश्य का अभाव होने पर भी नाममात्र के प्रभाव-संकेत पर अप्रस्तुत-योजना कर दी गई हैं।

नवोढ़ा बाल लहर अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर सरकती है सत्वर।

इसमें प्रत्यक्षत: नवोढ़ा रूपक के रूप में है और लहर पर उसका अध्यवसान किया गया-सा प्रतीत होता है, पर यथार्थत: यहाँ लुप्तोपमा है। वाचक 'सी' का लोप है। अर्थात् बाल-लहर नवोढ़ा-सी रुककर सरकती है। इसमें नवोढ़ा और बाल-लहर का स्वरूपत: कुछ सादृश्य नहीं। रुककर सरकने की क्रिया का ही थोड़ा साधर्म्य है। नवोढ़ा पति के निकट जाती तो है पर सत्वर ही भाग आती है। लज्जा से खिसकना या सिकुड़ता ही साम्य का आधार है।

रंगीले गीले फूलों से, अधखिले भावों से प्रमुदित।
बाल्य - सरिता के कूलों से, खेलती थी तरंग सी नित॥

तरंग जैसे अपने कूलों तक ही सीमित रहती है, उसीके भीतर उठती-पड़ती, घटती-बढ़ती और जाती-आती है, उसी प्रकार वह लड़कपन के ही सारे खेल खेलती थी। सीमा के धुँधले साम्य को लेकर ही यहाँ की अप्रस्तुत योजता है।'[२८]

पंत की कविता में अप्रस्तुत योजना का अत्यधिक उपयोग हुआ है क्योंकि वे जीवन और जगत् की मार्मिक अनुभूतियों के कवि हैं। एक उदाहरण ऐसा प्रस्तुत किया जाता है जिसमें अप्रस्तुत योजनाओं की भरमार है, यथा—

---

२८. काव्य में अप्रस्तुत-योजना—पं० रामदहिन मिश्र, पृ० ६४-६५।

कभी कुहरे-सी धूमिल घोर, दीखती भावी चारों ओर।
तड़ित-सा सुमुखि तुम्हारा ध्यान, प्रभा के पलक मार उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर गंभीर मुझे करता है अधिक अधीर,
जुगुनुओं से उड़ मेरे प्राण खोजते हैं तब तुम्हें निदान।

इसमें जो उपमान आए हैं, उनमें सूक्ष्म साम्य का आधार है। वह सुन्दर होने के साथ-साथ भाव-व्यंजक भी है। इनके द्वारा जो मूर्ति-निर्माण हुआ है, वह सहृदयों के हृदय में घर कर लेता है।

'एक तारा' शीर्षक कविता से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं जिनमें काव्योचित साम्य-योजना विद्यमान है—

गंगा के चल जल में निर्मल, कुम्हला किरणों का रक्तोपल,
है मूँद चुका अपने मृदु दल।
लहरों पर स्वर्णरेख सुन्दर पड़ गयी नील ज्यों अधरों पर—
अरुणाई प्रखर शिशिर से डर।

—संध्यागमन के पूर्व सूर्य की रक्तिम किरणें स्वर्णिम होकर पड़ती हैं, और ज्यों-ज्यों चारों ओर अंधकार फैलता जाता है त्यों-त्यों वे किरणें नीली होती जाती हैं। जाड़े के मौसम में अरुण अधरों की लालिमा शीत की अधिकता के कारण झाँवर हो जाती है, वह नीली हो जाती है। कहने का तात्पर्य यह है कि दोनों में हम एक-सा व्यापार पाते हैं। इसीलिए सहज भाव से अधर जाड़े में नीले हो जाते हैं लेकिन कवि ने 'शिशिर से डर' की बात जोड़कर अपनी कल्पना में चार चाँद लगा दिए हैं। वस्तुतः पंत की यह साम्य-योजना अत्यन्त ही प्रशंसनीय है।

अप्रस्तुत-योजना के अनेक भेद हैं। अप्रस्तुत-योजना तो भाव-व्यंजक के लिए ही खड़ी की जाती है जो सहृदयों के हृदय को चमत्कृत कर देती है। भावव्यंजक अप्रस्तुत-योजना से ही कवि की अभिव्यंजना-शक्ति का पता चलता है। निम्नांकित काव्य-संदर्भ में अप्रस्तुत-योजना की भाव-व्यंजकता दर्शनीय है—

अह ! सुरा का बुलबुला यौवन धवल, चन्द्रिका के अधर पर अटका हुआ।
हृदय को किस सूक्ष्मता के छोर तक, जलद-सा है सहज ले जाता उड़ा।

—'इसके पूर्वार्द्ध में यौवन के लिए दो अप्रस्तुत योजनाएँ हैं। यहाँ वाचक शब्द भी नहीं है। बुलबुला क्षणस्थायी है। इससे यौवन की क्षण-भंगुरता स्पष्ट है। बुलबुला सुरा का है—मदिरा का है। इससे उनमें मादकता है। चन्द्रिका के अधर पर है—सौन्दर्य ही पर वह निर्भर करता है। जब-तक कान्ति है तब तक यौवन है। अन्यत्र की 'अनिल में अटका कभी अछोर' ऐसी ही कवि की योजना है। इसमें कवि यही कहना चाहता है कि यौवन क्षणभंगुर है, मादकतापूर्ण है और उल्लास तथा कान्ति से ओतप्रोत है। कवि की एक साथ ही यह ऐसी चमत्कार-योजना है जो अपनी गंभीर अभिव्यक्ति की कुशलता से हृदय को गद्‌गद् कर देती है। यदि इसको कहा जाय कि यौवन सुरा के बुलबुला-सा क्षणभंगुर और चंद्रिका-सा सुन्दर है तो वह रस नहीं मिल सकता जो कवि के कहने के ढंग से मिलता है। छायावादी युग में विशेषतः और वर्तमान युग में सामान्यतः अप्रस्तुत-योजना में व्यंग्य-व्यंजक भाव पर विशेष ध्यान दिया जाता है। इसमें उपमानोपमेय भाव का स्पष्ट रूप नहीं लक्षित होता।

कनक छाया में जबकि सकाल खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार।

प्रातःकाल कली के खिल जाने पर जब उसका सौरभ फैल जाता है, तब गंध-अंध-मधुप गुंजार बन जाते हैं। अभिप्राय यह कि वे इतने गुंजार करने लगते हैं कि यह मालूम नहीं पड़ता कि मधुप गुंजार करते हैं या वे गुंजार ही बन गए हैं: मधुपों के गुंजार बन जाने की अप्रस्तुत-योजना, सौरभ की अधिकता, भौंरों की अधिक प्रसन्नता तथा गुंजार की अधिकता प्रकट करती है। यहाँ भी व्यंग्य व्यंजक-भाव ही है, रूप आदि का साम्य नहीं है।[२९]

---

२९. वही; पृष्ठ ८१-२।

इससे यह स्पष्ट होता है कि पंत ने अप्रस्तुत-योजना की व्यंजकता पर अधिक ध्यान दिया है। अप्रस्तुत-योजना के कुछ और उदाहरण लीजिये—

(क) तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याण ! त्रिवेणी की लहरों का गान !
[आँसू की बालिका]

(ख) रंगीले गीले फूलों—से अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के फूलों से खेलती थी तरंग-सी नित।
['उच्छ्वास' की बालिका]

(ग) चुन कलियों की कोमल साँस, किसलय अधरों का हिमहास।
चिर अतीत स्मृति-सी अनजान, ला सुमनों की मृदुल सुवास॥
पिघला देतीं तन मन प्राण !
[पल्लव, पृष्ठ ६३]

इस प्रकार के उदाहरण पंतजी की 'वीचि-विलास', 'नक्षत्र', 'बादल', 'अनंग', 'मधुवन', 'मौन-निमंत्रण, 'आँसू, 'चाँदनी' आदि शीर्षक कविताओं में द्रष्टव्य हैं।

पंत की कविताओं में प्रकृति की संवेदनशीलता की छाया स्पष्टरूप से प्रतिबिम्बित दिखाई पड़ती है। 'इसमें कवि प्रकृति का विवरण के साथ वर्णन नहीं करते। ये अधिकतर प्रकृति के विषय में अत्यन्त सूक्ष्म तथा आवश्यक संकेत करते हैं। इनके प्रकृति-सम्बन्धी उद्गार सदा व्यक्तिगत होते हैं। कवि की भावुकता ही पाठकों के मस्तिष्क को उत्तेजित करती है। कवि-उद्गार ही पाठक के हृदय पर अधिक समय तक अंकित रहे हैं। संवेदनात्मक वर्णन में कवि की भावना प्रकृति के रूपों को अपने रंग में रंग देती है और भावावेश में कवि को प्रकृति के रूप में अपनी प्रतिकृति दिखाई पड़ती है। प्रकृति के दृश्यों में दूसरों की कहानी लिखी मिलती है'। 'आँसू-शीर्षक कविता में किसी विशेष दुःखपूर्ण मनःस्थिति के कारण पंत को 'इन्द्रधनुष' और 'पपीहे की पीन पुकार' उसके हृदय की प्रतिकृति प्रतीत होती है—

संवेदनात्मक प्रणाली

इन्द्रधनुष की सुन कर टंकार उचक चपला के चंचल बाल,
दौड़ते थे गिरि के उस पार देख उड़ते विशिखों की धार;
मस्त जब उनको द्रुत चुमकार, रोक देता था मेघासार।
अचल के जब वे विमल विचार अवनि से उठ-उठ कर ऊपर
विपुल व्यापकता में अविकार लीन हो जाते थे सत्वर,
विहंगम-सा बैठा गिरि पर सुहाता था विशाल अम्बर!
पपीहों की वह पीन पुकार निर्झरों का भारी झर-झर;
झींगुरों की झीनी झनकार घनों की गुरु गंभीर घहर;
बिन्दुओं की छनती झनकार दादुरों के वे दुहरे स्वर!
हृदय हरते थे विविध प्रकार शैल पावस के प्रश्नोत्तर!
खैंच ऐंचीली भ्रू-सुरचाप—शैल की सुधि यों बारम्बार—
हिला हरियाली का सुदुकूल, झुला झरनों का झलमल हार;
जलद-पट से दिखला मुख-चंद्र पलक पल-पल चपला के भार;
भग्न उर पर भूधर-सा हाय! सुमुखि, धर देती है साकार!

[—आँसू से]

'यद्यपि यह अत्यन्त स्वाभाविक है कि किसी विशेष मन:स्थिति में वस्तुएँ विशेष रंग में रँगी प्रतीत होती हैं तथापि इसे उस मात्रा तक न पहुँच जाना चाहिए कि प्राकृतिक वर्णन का सौन्दर्य ही नष्ट हो जाय। संवेदनात्मक चित्रण के लिए सामंजस्य और अनुपात की भावना अत्यन्त आवश्यक है, अन्यथा प्राकृतिक दृश्य कवि की भावना से आच्छन्न होकर बिलकुल अपरिचित-सा प्रतीत होगा और कवि की कहानी बन जायगी।.........इसी प्रकार चाँदनी रात का रुग्णा-बाला से रूपक प्राकृतिक अनुभूति के विरुद्ध है। चाँदनी से आनन्द की अनुभूति होती है; रोगिणी की भावना का संकेत नहीं मिलता—

जग के दुख-दैन्य शिखर पर यह रुग्णा जीवन-बाला।
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला॥

पर पंत में ऐसे अस्वाभाविक संकेत बहुत कम स्थलों पर मिलते हैं, साधारणतया कवि के संकेत बड़े भावुक और अनुभूतिपूर्ण होते हैं।' [३०] 'अपनी इस संवेदनशील भावप्रवणता के कारण आधुनिक युग का कवि प्रकृति से निरन्तर नित-नवीन संदेश पाता है और अपने सुख-दुःख का प्रतिबिम्ब उसी के निर्मल दर्पण में देखना चाहता है। अत: यहाँ उसकी रचना बहुत-कुछ उसके मनोभावों पर निर्भर है। यदि वह प्रसन्न है तो प्रकृति उसके लिए आहलादमयी है, अन्यथा उसे प्रकृति में भी रोदन का ही स्वर, विषाद और संताप का ही राग, विरह और व्यथा का ही गीत सुन पड़ता है।' निम्नांकित पंक्तियों में कवि के अनुकूल भाव प्रकृति में दिखाई पड़ते हैं—

व्योम विपिन में जब वसंत-सा खिल नव पल्लवित प्रभात,
बहते हम तब अनिल-स्रोत में गिर तमाल-तल के से पात;
उदयाचल से बालहंस फिर उड़ता अम्बर में अवदात,
फैल स्वर्ण-पंखों से हम भी करते द्रुत मारुत से बात।
संध्या का मादक पराग पी, झूम कलिन्दों-से अभिराम,
नभ के नील कमल में निर्भय करते हम विमुग्ध विश्राम।
[बादल]

'वसन्त' शीर्षक कविता में पंत प्रकृति को उषा की भाँति लाल देखता है और वह उसी रूप में उसका अंकन करता है—

चंचल पग दीप-शिखा के धर गृह, मग, वन में आया वसंत?
सुलगा फाल्गुन का सूनापन सौंदर्य-शिखाओं में अनंत!
सौरभ की शीतल ज्वाला से फैला उर-उर में मधुर दाह
आया वसंत, भर पृथ्वी पर स्वर्गिक सुन्दरता का प्रवाह?
पल्लव-पल्लव में नवल रुधिर पत्रों में मांसल रंग खिला
आया नीली-पीली लौ से पुष्पों के चित्रित दीप जला!

---

३०. आधुनिक काव्यधारा, पृ० २१६

अधरों की लाली से चुपके कोमल गुलाब के गाल लजा,
आया पंखुड़ियों को काल—पीले धब्बों से सहज सजा !
—वसंत

और कभी चाँदनी से पूर्ण घाटी को देखकर पंत का हृदय आनन्द से भर उठता है—

वह विजन चाँदनी की घाटी छाई मृदु वनतरु गंध जहाँ,
नींबू आड़ू के मुकुलों के मद से मलयानिल लदा वहाँ
सौरभ-श्लथ हो जाते नत-मन, बिछते झर-झर मृदु सुमन शयन,
जिन पर छन, कंपित पत्रों से, लिखती कुछ ज्योत्स्ना जहाँ-तहाँ
आ कोकिल का कोमल कूजन, उकसाता आकुल उर - कंपन,
यौवन का ही वह मधुर स्वर्ग, जीवन - बाधाएँ वहाँ कहाँ ?
—विजन घाटी

कुछ दृष्टान्त और लीजिये—

(क) गंध - गुंजित कुंजों में आज
बँधे वाहों में छायालोक। —गुंजन, पृ० ६१

(ख) मुसकुरा दी थी क्या तुम प्राण !
मुसकुरा दी थी आज विहान ?
आज गृह-वन-उपवन के पास
लोटता राशि-राशि हिम-हास,
खिल उठी आँगन में अवदात
कुंद-कलियों की कोमल प्रात।
—गुंजन, पृ० ४६

(ग) अरी सलिल की लोल हिलोर !
यह कैसा स्वर्गिक उल्लास ?
सरिता की चंचल दृग - कोर !
यह जग को अविदित उल्लास !

आ, मेरे मृदु अंग झकोर,
नयनों को निज छवि में बोर,
मेरे उर में भर यह रोर !

—लहर

कहीं-कहीं मानव-भावनाओ के प्रतिकूल भाव भी प्रकृति में दृष्टिगत होते हैं—

कुसुमों के जीवन का फल
हँसता ही जग में देखा
इन म्लान-मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा।

—गुंजन, पृ० २१

रहस्यात्मक संकेत

जब संवेदनशील प्रेषणीयता के कारण कवि-हृदय और प्रकृति में घनिष्ठ संबंध स्थापित हो जाता है तब कवि को प्रकृति से रहस्यात्मक संकेत मिलते रहते हैं। जिस प्रकार कवि दुःख, सुख आदि में प्रकृति का आवाहन करता है उसी प्रकार प्राकृतिक दृश्य भी कवियों को जाग्रत कर बुलाते हैं। छायावादी कवियों की दृष्टि में समस्त जड़-चेतन प्रकृति में व्याप्त एक चेतन सत्ता है। यही चेतन सत्ता पंत को यह जानने को उत्सुक बनाती है कि शांत सरोवर का हृदय किन अभिलाषाओं से चंचल हो उठता है। या उसके पास भी एक हृदय है जिसमें मानव-हृदय के समान ही अभिलाषाएँ तरंगित होती हैं। वीणा के तारों में सुप्त संगीत किसी के कोमल स्पर्श से क्यों मुखरित हो उठता है। क्या वीणा के भी कोई प्राणी है ? और किसके स्पर्श से प्रकृति की वीणा मुखरित हो उठती है ? निम्नांकित पंक्तियों में वही जिज्ञासा मुखरित हो उठी है—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल, चंचल ?

सोए वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से भर-भर
बज उठते प्रतिपल-प्रतिपल
आशा के लघु अंकुर
किस सुख से फड़काकर पर
फैलाते नव दल पर दल!

कवि स्तब्ध ज्योत्स्ना में निद्रा की मधुमयी गोद में अनजान स्वप्न देख रहा है, उसी समय कवि को किसी अज्ञात रहस्यमयी सत्ता से निमंत्रण मिलता है—

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन।

इस निमंत्रण में कवि को एक परोक्ष सत्ता का आभास मिलता है। उसकी ओर एक विस्मय की भावना ही उनमें प्रधान रूप से दिखाई पड़ती है। कभी-कभी कवि सोचता है कि प्रकृति के इस अनन्त छवि के पीछे कौन-सी सत्ता है। उसके आकर्षण का अनुभव कवि को होता है और वह पूछने लगता है :—

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन!

चेतन सत्ता के विभिन्न नाम-रूपों से कवि को आवाहन मिलता है जिसका अत्यन्त सुन्दर उदाहरण 'मौन-निमंत्रण' की पंक्तियों में है, जहाँ नक्षत्रों से, तड़ित से, कलिका से, लहरों से, प्रभात से, खद्योतों से, ओसकणों से और स्वप्नों से कोई अज्ञात चेतन-सत्ता कवि पंत को मौन-निमंत्रण देती है। वसंत की सुषमा में कवि को किसी परोक्ष रहस्यमयी सत्ता का आभास मिलता है—

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास
विधुर-उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन
संदेशा मुझे भेजता कौन !

जब रहस्यमय संकेत कवि से मूक आलाप किया करते हैं तब वह कभी-कभी पूछ बैठता है—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि ! तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ-कहाँ हे बाल विहंगिनि ! पाया तूने यह गाना ?

तब वह फिर उसके उद्गम-स्थल को जानने के लिए व्यथित होता है—

ऊषा की कनक-मदिर मुस्कान
उसी में था क्या वह अनजान

कभी कवि को हवा में उड़ते हुए पत्तों में किसी का उठा हुआ हाथ अपनी ओर इशारा करता हुआ मालूम पड़ता है—

कभी उड़ते पत्तों के साथ, मुझे मिलते मेरे सुकुमार।
बढ़ाकर लहरों से निज हाथ, बुलाते मुझको फिर उस पार॥

'गुंजन' की एक कविता में असीम के प्रति ससीम की जिज्ञासा वर्णित है, उसका उदाहरण लीजिए—

कब से विलोकती तुमको ऊषा आ वातायन से ?
संध्या उदास फिर जाती सूने-गृह के आँगन से।

—गुंजन, पृ० ४९

स्वाभाविक रहस्यात्मक संकेत का एक उदाहरण और लीजिए—

दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झंकार,
छिपा छाया-वन में सुकुमार, स्वर्ग की परियों का संसार,

वही उन पेड़ों में अज्ञात, चाँद का है चाँदी आ वास,
वहीं से खद्योतों के साथ, स्वप्न आते उड़-उड़कर पास,
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान, मिला कवि को निज गान !

—गुंजन

कवि प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक भावों का प्रत्यक्षीकरण भी करता है, वह उसमें जीवन की नित्यता, अनित्यता, नश्वरता, अमरता आदि भावों को पाता है। कवि पंत दार्शनिक विचारधाराओं से प्रभावित रहा है जैसा कि उन्होंने आधुनिक कवि की भूमिका में स्वीकार किया है। इसलिए पंत की कविता में दार्शनिक भावों की प्रधानता है। 'नौका-विहार' शीर्षक कविता में कवि चाँदनी रात में सरिता के वक्षस्थल पर नौका-विहार कर रहा है। इसमें कवि ने जीवन और जगत् के शाश्वत सौंदर्य की अभिव्यक्ति की है। आरंभ में कवि ने नौका-विहार का एक अपूर्व चित्र प्रस्तुत किया है और अंत में नौका-विहार से उद्‌भूत कवि के दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति हुई है—

दार्शनिक तथ्य

ज्यों - ज्यों लगती है नाव पार
उर में आलोकित शत विचार
इस धारा-सा ही जग का क्रम, शाश्वत इस जीवन का उद्‌गम
शाश्वत है गति, शाश्वत संगम
शाश्वत नभ का नीला विकास, शाश्वत कवि का यह रजत-हास
शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर-जन्म मरण के आर-पार।
शाश्वत जीवन नौका-विहार।

—नौका-विहार

ठीक इसी प्रकार का भाव 'निर्झर-गान' शीर्षक कविता में भी गुंजित है—

प्रगति में है निर्वाण, पतन में अभ्युत्थान;
जलद-ज्योत्स्ना के गात ! अटल हो यदि चरणों में ध्यान;
शिलोच्चय के गौरव संघात ! विश्व है कर्म-प्रधान !

पंत के कवि ने अपनी कविताओं के अनेक स्थलों पर प्रकृति को मानव का रूप प्रदान किया है। यह रूप प्रदान करने का एकमात्र उद्देश्य रहता है—विशिष्ट भावों की व्यंजना। पंत की 'चाँदनी' शीर्षक दो कविताओं में दो प्रकार के भावों का चित्रण है। एक में चाँदनी 'जग के दुःख-दैन्य' पर सोई हुई 'रुग्ण जीवन बाला' के रूप में है तो दूसरी कविता में 'नीले नभ के शतदल पर' बैठी हुई शरदाहासिनी है। 'चाँदनी'-शीर्षक पहली कविता में कवि ने मानव-जीवन के यथार्थ विषम स्वरूप को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया है—

प्रकृति का मानवीकरण

जग के दुख-दैन्य शयन पर यह रुग्णा जीवन-बाला।
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला!
पीली पड़, दुर्बल, कोमल, कृश देह लता कुम्हलाई;
विवसना, लाज में लिपटी, साँसों में शून्य समाई!

इसमें रुग्णा ज़ीवन-बाला गौण है, प्रकृति का दृश्य प्रधान है। दूसरी 'चाँदनी' शीर्षक कविता में दुग्ध-धवल चंद्रिका कुछ शांत भाव से बैठी सोचती-सी आभासित हो रही है—

नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शरद-हासिनी,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर, नीरव, अनिमिष, एकाकिनि!
वह सोई सरित-पुलिन पर साँसों में स्तब्ध समीरण,
केवल लघु-लघु लहरों पर मिलता मृदु-मृदु उर-स्पंदन।

संध्या-सुन्दरी का संश्लिष्ट चित्र देखिये—

कौन तुम रूपसि, कौन?
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया-छवि में आप।
सुनहला फैला केश-कलाप,
मूँद अधरों में मधुपालाप।
पलक में निमिष पदों में चाप,

भाव-संकुल बंकिम भ्रू - चाप
ग्रीवा तिर्यक्चम्प क-द्युति गति,
नयन मुकुलित नत मुख जलजात।

विपट-बालिका का भी सुन्दर चित्र देखिये—

सखी, भिखारिन-सी तुम पथ पर फैलाकर अपना अंचल,
सूखे पत्तों को ही पा क्या प्रमुदित रहती हो प्रतिपल !

संश्लिष्ट मूर्ति-विधान का एक और उदाहरण लीजिये—

सजल देह-द्युति चल-लहरों में बिम्बित सरसिज-माल।
रवि-छवि-चुम्बित चल-जलदों पर तुम नभ में, उस पार,
लगा अंक से तड़ित भीत शशि—मृग शिशु को सुकुमार,
छोड़ गगन में चंचल उडुगण चरण-चिह्न लघु-भार
नाग-दंत-नत इन्द्र धनुष-पुल करती तुम नित पार।

—अप्सरा

छायावाद की हिंदी-कविता में मानवीकरण की यह भावना वस्तुत: चेतनीकरण या मूर्तीकरण का एक ढंग है। अचेतन प्रकृति के व्यापारों में जब कवि चेतन की भावप्रेरित साभिप्राय चेष्टाओं का आरोप करता है तब उसे हम मानवीकरण कह सकते हैं। और जब अमूर्त प्रकृति (जैसे उषा, संध्या, दिशा आदि) को मूर्त्त मानकर उसके सौन्दर्य का, अंग-प्रत्यंग का, उसकी चेष्टाओं का चित्र अंकित किया जाता है तब उसे हम मूर्तीकरण कहते हैं। मानवी करण में मूर्तिकरण और चेतनीकरण—आधुनिक कविता की दोनों विशेषताएँ कहीं-कहीं पृथक्-पृथक्, कहीं एकत्र परिलक्षित होती हैं।'[३१]

उपदेशात्मक प्रकृति-चित्रण

उपदेशात्मक प्रणाली में प्रकृति का अंकन हिन्दी के प्राचीन कवियों ने विशेषरूप से किया है, परन्तु आज की छायावादी कविताओं में प्रकृति के इस रूप का अभाव-सा देखा जाता है। आज के आलोचकों का कथन है कि प्रकृति के चारु-चित्र-अंकन में नैतिकता की दुहाई देना कला की हत्या है, इससे उसका

३१. आधुनिक काव्य में सौंदर्य-भावना, पृ० १४५

सौन्दर्य कुंठित हो जाता है। प्रकृति के माध्यम से कहीं-कहीं पंत ने उपदेश भी दिया है—

हँस मुख प्रसून सिखलाते पल भर भी, तो हँस पाओ,
अपने उर की सौरभ से जग का आंगन भर जाओ।

गुंजन, पृ० ३१

प्रतीकात्मक प्रकृति-चित्रण

छायावाद-युग के कवियों ने अपनी कविताओं में प्रतीकों का व्यवहार अत्यधिक किया है। डा० केसरीनारायण शुक्ल के शब्दों में—'कवि भावाभिव्यंजन के क्षेत्र में इनकी महत्ता को अच्छी तरह समझते हैं। ये जानते हैं कि साधारण वक्तव्य की अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक और संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है। ये जानते हैं कि प्रतीकों का प्रयोजन उपदेशात्मक नहीं है। इनका उद्देश्य सत्य को सौन्दर्य से समन्वित करना है। वे यह भी जानते हैं कि काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं है, प्रत्युत ये काव्य के आधारभूत अंग हैं। केवल कवि के भावावेश में उद्भूत प्रतीक ही पाठको में वैसी भावना जगाने में समर्थ होते हैं। ऊपरी बुद्धि द्वारा सजावट के लिए गढ़े हुए प्रतीकों का विश्लेषण करने पर उनमें सच्ची सौंदर्य-भावना का अभाव तथा शिथिलता लक्षित होती है। सुन्दर लय के समान सौन्दर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक हैं। इन प्रतीकों का अपनी परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ठ संबंध होता है। प्रत्येक देश के प्रतीकों का अपना समूह होता है जिनके द्वारा देशवासी अपने सुख-दुख, मृत्यु, स्वर्ग, नरक आदि की भावना को प्रकट करते हैं। इस प्रकार उष्ण देशों की भीषण उष्णता नरक की ज्वाला का प्रतीक बन गयी और ठंढे देशों की घोर शीतलता भी नरक मानी जाने लगी। वसंत तथा ग्रीष्म हर्ष और दुख के द्योतक माने गए। इसलिए दूसरी भाषाओं के प्रतीकों का अपने साहित्य में समावेश करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है; क्योंकि

उन भाषाओं से अपरिचित पाठकों के लिए अधिकांश विदेशी प्रतीक अर्थहीन सिद्ध होंगे। वर्तमान कवि-परम्परा से प्राप्त (चंद्र, कमल आदि प्रतीकों) से संतुष्ट नहीं हैं। वे अपनी रचनाओं को मार्मिक तथा प्रभावोत्पादक बनाने के लिए नए प्रतीकों की उद्‌भावना कर रहे हैं। इस प्रकार उषा इन कवियों के लिए स्फूर्ति, जीवन के आरंभ और सुख का प्रतीक बन गई है। संध्या जीवन के अवसान, एकांत तथा दुख का द्योतन करती है। प्रकाश सुख को और अन्धकार निराशा को सूचित करता है। स्वर्ण में दीप्ति तथा कांति की भावना है। इन प्रतीकों का आधुनिक रचनाओं में अत्यधिक व्यवहार हुआ है।' ये प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से चुने गए हैं जिसके कारण वे सब इन्द्रियगम्य होते हैं और अमूर्त भावनाओं की प्रतीति करने में बहुत दूर तक सहायक हुए हैं। पंत ने प्रतीकों का प्रयोग सबसे अधिक किया है। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) **प्रथम इच्छा का पारावार सुखद आशा का स्वर्गाभास,**
स्नेह का वासंती संसार, पुनः उच्छ्‌वासों का आकाश।

—इसमें 'पारावार' अनन्तता और 'वासंती' सुख-दशा तथा 'आकाश' शून्य जीवन के प्रतीक हैं।

(२) **कभी तो अबतक पावन प्रेम, नहीं कहलाया पापाचार।**
हुई मुझको ही मदिरा आज, हाय क्या गंगाजल की धारा॥

—इसमें 'मदिरा' कलुषता और 'गंगाजल' पवित्रता का प्रतीक है।

(३) **आँखों की खिड़की से उड़-उड़ आते ये आते मधुर-विहग।**

—इसमें 'मधुर विहग' मधुर भाव का प्रतीक है।

(४) **यह साँझ-उषा का आँगन, आलिंगन विरह-मिलन का।**

—इसमें 'साँझ' वेदना का और 'उषा' उल्लास का प्रतीक है।

(५) **देखूँ सबसे उर की डाली—किसने रे क्या-क्या चुने फूल**
जग की छवि उपवन से अनुकूल? इसमें कलि, किसलय कुसुम, शूल!

—इसमें 'कलि' आशा, 'किसलय' प्रेम, 'कुसुम' सुख और 'शूल' दुःख का प्रतीक है।

(६) **उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास;**
चाँदनी का स्वभाव में भास, विचारों में बच्चों की साँस!

—इस संदर्भ में 'उषा' निष्कपटता और सहृदयता का 'चाँदनी' स्वच्छता और शीलता का, 'मुकुल' निर्मलता और प्रबोधता का प्रतीक है।

'काव्य के प्रतीकों के विषय में एक बात आवश्यक है। नवीनता और प्रभाव के लिए नए-नए प्रतीकों की उद्भावना अत्यन्त अपेक्षित है, नहीं तो ये प्रतीक रूढ़िगत होकर प्रभावहीन हो जाते हैं। नवीन विधान के अभाव में हिन्दी की आधुनिक रहस्यवादी कविता के हृत्तंत्री, वीणा, मूक वेदना, मौन-आवाहन आदि प्रतीक रूढ़ और प्रभावहीन हो गए हैं। फारसी कविता के साकी-प्याला के समान ही अब इनमें कोई प्रभाव नहीं है।'

यह ठीक है कि पंत को काव्य-प्रेरणा प्रकृति से मिली है। इसीलिए उन्होंने प्रकृति का अंकन विशेष रूप से किया है, पर वह प्रकृति मानव-भावों की अभिव्यक्ति के साधन-मात्र हैं। प्रकृति-प्रेम कवि के संस्कारों में समाविष्ट है। प्रकृति के प्रति कवि का दृष्टिकोण अत्यन्त स्वस्थ एवं नैसर्गिक है। कवि के लिए प्रकृति जड़ नहीं, प्रत्युत एक सचेतन सत्ता है। पंत की लेखनी से प्रसूत प्रकृति के चित्र सजीव और स्वाभाविक हैं तथा साथ-ही-साथ संश्लिष्ट भी। 'नौका-बिहार', 'एकतारा' आदि कविताएँ अत्यन्त संश्लिष्ट एवं कलात्मक हैं। पंत की प्रकृति स्थिर (Static) नहीं, वरन् गत्यात्मक है। गत्यात्मक वर्णन में पंत की कला अत्यन्त सुन्दर बन पड़ी है। 'पल्लव' तक पंत प्रकृति के कवि रहे, 'गुंजन' में मानव-जीवन के गायक बने; पर प्रकृति को नहीं त्यागा और बाद की रचनाओं में वे मानव के पूर्ण गायक बन गए। पंत की प्रकृति सर्वदा कोमल रही है, हाँ सिर्फ एक कविता को छोड़कर और वह है 'परिवर्त्तन'। इस कविता में प्रकृति का भीषण रूप अंकित है। लेकिन कवि ने इस रूप के अंकन से अपने-आपको बचाया

उपसंहार

है। प्रकृति से कवि का साहचर्य टूटता चला जा रहा है और मानव से संबंध जुटता जा रहा है—

> प्रकृति-धाम यह, तृण-तृण, कण-कण जहाँ प्रफुल्लित जीवित,
> यहाँ अकेला मानव ही रे चिर-विषण्ण जीवन्मृत !!
>
> —ग्राम-चित्र

पंत की नारी-भावना

> She gave me eyes, she gave me ears,
> And humble cares, and delicate fears ;
> A heart, the fountain of sweet tears ;
> And love, and thought, and joy,
>
> —Wordsworth

नारी

नारी की परिभाषा है सौंदर्य और सौंदर्य की साकार प्रतिमा है नारी। समस्त भूमंडल नारी-सौंदर्य से आह्लादित एवं प्रभावित है। कवियों पर नारी का प्रभाव विशेषतया प्रेम के द्वारा ही पड़ता है। प्रेम अजेय है, अनुपम है, उत्कृष्टतम है। यही प्रेम हमारी आत्मा का संबंध उस असीम से कराने लगता है जो सृष्टि के आरंभ से ही कल्पनाओं का केन्द्र रहा है। हमारे भारतीय साहित्य में भी नारी का महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है, जिसके सौंदर्य, सेवाधर्म, पातिव्रत तथा त्याग की कथाओं से इतिहास भरा पड़ा है। आरंभ से ही नारी कवियों का काव्य-विषय बनती आयी है तो भला छायावादी कवियों से वह कैसे तिरस्कृत हो पाती।

नर-नारी के आकर्षण की समस्या

नर और नारी के बीच एक आकर्षण की कड़ी है। अगर यह आकर्षण स्थायी रूप से रह गया तो वह प्रेम में परिणत हो गया। इस आकर्षण के पीछे सेक्स की भावना अन्तर्निहित है। 'जिसकी ओर हम आकर्षित होते हैं, वह किसी-न-किसी रूप में हमारी सेक्स-भावना को गुदगुदाता है! वह भावना बड़ी जटिल भावना है। इतना होने पर भी सभी प्रेमियों में यह भावना प्रबल नहीं होती। बहुत-से व्यक्ति हैं जो शरीर के सुख के लिए इतने लालायित नहीं होते जितने इस बात के इच्छुक होते हैं कि किसी

के मन को वे प्रभावित कर सकें और कहीं कोई ऐसा हो जो उनके मन को समझ सके। इसके आगे आकर्षण कहीं-कहीं बौद्धिकता पर चलता है। किसी-किसी की प्रतिभा से हम चकित रहते हैं और जीवन भर बंधे रहते हैं। न ऐसे व्यक्तियों के शरीर की ओर हमारा ध्यान रहता है और न अपने लिए उनकी भावुकता से तात्पर्य्य। प्रेम की कोई-कोई घटना इससे भी सूक्ष्म होती है। कभी-कभी ऐसा होता है कि जीवन में दो प्राणी मिलकर सदैव को एक दूसरे से बिछुड़ जाते हैं। वहाँ शरीर से भी संबंध नहीं रहता, बौद्धिकता से प्रभावित होने की बात भी नहीं उठती और नहीं उठती है उनके मन को प्रभावित करने की बात। फिर भी दो प्राणी दूर बैठे एक दूसरे के लिए चुपचाप अनुभव करते रहते हैं। ऐसी दशा में केवल आत्मा आत्मा को पहचानती है। प्रेम के लिए एक प्रवृत्ति ही पर्याप्त होती है, पर पूर्ण और उच्चकोटि का प्रेम वह है जहाँ दो प्राणियों में शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा चारो की अनुकूलता हो।'[1]

पंत का कवि नारी-सौंदर्य के प्रति आकृष्ट है, पर प्रणय-संबंधी कविताओं की प्रेरक शक्ति कोई अज्ञात, अनाम और अरूप नारी है। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि सिडनी (Sidney) ने स्टीला (Stella) के हँसमुख मुखमंडल में सौन्दर्य तथा प्रेम का रूप पाया जो साहित्य के लिए अमर है। जेफेरिज (Jefferies) ने अपनी पुस्तक डेवी मार्न (Dewy Morn) में फिलाइस (Felise) का बहुत दिव्य रूप अंकित किया है। उसने तो यहाँ तक कहा है 'कि ऐसी सुशीला नारी शैशव से ही बन्दिनी बना दी जाय जिससे उसको उसी पुरुष का दर्शन प्राप्त न हो, तो भी वह अनन्त काल तक प्रेम करती रहेगी। संसार के लिए नहीं—प्रेम के लिए; इस लोक के लिए नहीं, उस लोक के लिए; आत्मा के लिए नहीं, परमात्मा के लिए।' पी० बी० शेली (P. B. Shelley) ने भी 'ऑन लव' (On Love) में इसी बात की पुष्टि की

पंत की नारी अनाम और अज्ञात

---

१. विश्वम्भर 'मानव'

हैं। वर्ड्स्वर्थ की कविताओं में नारी-भावना व्याप्त है, पर वे कल्पना-प्रस्तुत चित्र हैं। पर उसकी कल्पनामयी का रूप अत्यन्त ही सुन्दर, मनमोहक एवं सौन्दर्यमय है। शेक्सपियर ने भी अपनी प्रेमिका के पवित्र सौन्दर्य का रूप खड़ा किया है, यथा—

And truly not the morning sun of heaven
Bather becomes the grey cheeks of the east
Nor that full star that ushers on the eve
Doth half that glory to the sober west
As these two mourning eyes become thy face.

इसी प्रकार शेक्सपियर ने एक दूसरे स्थल पर नारी-सौन्दर्य को फूलों के सौन्दर्य में समन्वित किया है—

But sweeter than the lids of Juno's eyes
Or cry the reate's breath.

नारी : प्रणय की प्रतिभा

वस्तुतः नारी मानव की चिर आकांक्षा तथा आकर्षण और प्रणय की प्रतिमूर्ति है। नारी का प्रणय युग-युगों से मानव के लिए एक मृगतृष्णा बनी रही है। यही कारण है कि नारी का स्थान बहुत ऊँचा है और यह युग-युग का सत्य है। हमारे भारतीय शास्त्रों में भी नारी-महत्त्व की ओर निर्देश किया गया है—

यस्य माता गृहे नास्ति भार्या चाप्रियवादिनी
अरण्यं तेन गन्तव्यं यथारण्यं तथा गृहम्।

यही कारण है कि हमारे हिन्दी के कवि भी नारी के प्रति संवेदनशील हैं। नारी-सौन्दर्य की ओर हमारा पंत का कवि भी आकृष्ट हुआ है, पर वह एक दर्शक के रूप में खड़ा है। पंत ने नारी को प्रकृति की आड़ में देखा है क्योंकि वह प्रत्यक्ष होकर नारी को देखना नहीं चाहता चूँकि वह जन-भीरु है और दुनिया की आँखों से भयभीत भी। वह नारी-सौन्दर्य-अंकन-कला में निपुण है, पर वह भी प्राकृतिक प्रतीकों के माध्यम से। पंत उसका शरीरी वर्णन नहीं करते हैं, प्रत्युत् प्रकृति पर नारी-रूप का आरोप कर देते हैं। कवि नारी का चिन्तन करते-करते एक अलौकिक जगत् में प्रवेश कर जाता है जहाँ नारी आध्यात्मिकता के रंग में सराबोर हो जाती है।

'ग्रन्थि' में पंत की नारी

'ग्रन्थि' में सर्वप्रथम पंत ने एक किशोरी का सौन्दर्य देखा जहाँ जाकर उनकी आँखें कुछ क्षणों तक विस्मय-विमुग्ध होकर बंद हो गई थीं। पंत ने 'नायिका के चन्द्रमुख की सुन्दरता, उसके मुख पर सहसा एक लट के स्थिर हो जाने की रम्यता और दृष्टि-मिलाप से दौड़ी लाज की लालिमा को' निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है—

इन्दु पर, उस इन्दु-मुख पर, साथ ही ये पड़े मेरे नयन, जो उदय-से
लाज से रक्तिम हुए थे;—पूर्व को पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!
बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में;
अचल, रेखांकित कभी थी कर रही प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में!
लाज की मादक-सुरा सी लालिमा फैल गालों में, नवीन गुलाब-से,
छलकती थी बाढ़ सी सौन्दर्य की अध-खुले सस्मित-गढ़ों से, सीप-से!

प्रकृति-प्रधान, नारी गौण

इसमें प्रणय-व्यापार की कथा गुम्फित है, पर हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि पंत नारी-सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट नहीं रहे; क्योंकि उनका मन प्रकृति के कोमल रूपों में जाकर अटका हुआ था। उन्होंने 'मोह' शीर्षक कविता में यह स्पष्ट किया है कि वह प्राकृतिक सौन्दर्य का प्रेमी है, न कि नारी-सौन्दर्य का। पर कवि ने इस भावना को द्वन्द्व के रूप में व्यक्त किया है।

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया, तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले, तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
तज कर तरल तरंगों को इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रू भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन?
उषा सस्मित किसलय दल, सुधा-रश्मि से उतरा जल,
ना, अधरामृत ही के मद में कैसे बहला दूँ जीवन?

पर आगे चलकर कवि ने नारी के रूपों को काव्य में यथासंभव स्थान दिया, क्योंकि कवि सौन्दर्योपासक रहा है। सौन्दर्योपासक होने के नाते उसने

नारी में सौन्दर्य को प्रतिष्ठित पाया और काव्य-विषय का साधना बनाया। पंत के नारी-सौन्दर्य में मांसलता का अभाव और भावोल्लास का आधिक्य है। उच्छ्वास शीर्षक कविता की बालिका सुन्दर थी, सरल थी। सुन्दरता और अबोधता का मिला-जुला वर्णन पंत ने यों किया है—

'पल्लव' में नारी-भावना

सरलपन ही था उसका मन निरालापन था आभूषण
कान से मिले अजान नयन सहज था सजा सजीला तन
छिपी-सी पी-सी मृदु मुसकान छिपी-सी खिंची सखी-सी साथ,
उषा की उपमा-सी बन, मान गिरा का धरती थी, धर हाथ।

पंत के लिए नारी योग्य वस्तु नहीं है, वरन् भावनाओं की प्रेरिका है। कवि को नारी के रोम-रोम से प्यार है और उसे कवि का मलार भी मिला है। उसे सिर्फ 'घने लहराते रेशम के बाल' पर अनुराग नहीं है, प्रत्युत कवि के लिए तो—

तुम्हारे गुण हैं मेरे गान मृदुल दुर्बलता ध्यान
तुम्हारी पावनता अभिमान, शक्ति पूजन सम्मान
अकेली सुन्दरता कल्याण सकल ऐश्वर्यों की संधान।
तुम्हारी सेवा में अनजान; हृदय मेरा है अन्तर्धान।
देवि, माँ, सहचरि, प्राण।

कवि नारी के बाह्य एवं आन्तरिक दोनों सौंदर्य के प्रति जागरूक है। उसकी दृष्टि रीतिकालीन कवियों के समान एकांगी नहीं है। यदि वह एक ओर परम्परानुमोदित पथ पर अग्रसर होकर यह कह सकता है—

तुम्हारे चलपद चूम निहाल मंजरित अरुण अशोक सकाल,
स्पर्श से रोम-रोम तत्काल सतत सिंचित प्रियंगु की बाल।

तो दूसरी ओर कवि अपनी पावन प्रेयसी के पवित्र स्पर्श में अलौकिक मधुरिमा और पावनता का आभास पाता है—

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान।
तुम्हारी वाणी में कल्याण, त्रिवेणी की लहरों में गान।

'गुंजन' में आकर पंत की नारी-भावना में एक प्रकार की ऐंद्रिकता आ गई है। कवि को नारी-प्रेम पर विश्वास है, आस्था है। प्रेम हृदय-द्वार के पट खोल देता है, उसीकी कल्पना काव्य में सजाते हैं। कवि की प्रणयानुभूति (Experience of love) ऐन्द्रिक (Concentrated) हो गई है। कवि अपनी 'भावी पत्नी' का रूप एक भाव-चित्र द्वारा अंकित करता है। कवि की 'भावी पत्नी' 'न जाने किस गृह में अनजान छिपी' होगी और उस मुग्धा नारी का यौवन न जाने किस कोने में छलक रहा होगा—

'गुंजन' में पंत की नारी भावात्मक सौन्दर्य की प्रतिमा

जननि अंचल में झूल सकाल मृदुल उर कंचन-सी वपुमान ;
स्नेह सुख में बढ़, सखि चिर काल दीप की अकलुष शिखा समान ;

यों तो इसमें कवि की आत्मनिष्ठ भावना है, पर इस प्रकार की भावना प्रत्येक सहृदय मानव के हृदय में उठा करती है। नारी के शरीर में जो दीप-सी कांति है, उससे कवि स्वयं प्रभावित है। आगे रूप विभव का चित्र देखिए—

नवल मधुऋतु निकुंज में प्रात प्रथम कलिका-सी अस्फुट गात,
नील नभ अंतःपुर में तन्वि ! दूज की कला सदृश नवजात ;
मधुरता मृदुता-सी तुम प्राण !

निःसंदेह ये पंक्तियाँ एक व्यक्ति-विशेष के प्रति है, पर ऐसा प्रतीत होता है कि प्रकृति इसके प्रत्येक अङ्ग में रमी हुई है। इसमें प्रेम-रहस्य का अभी-अभी विकास हुआ है। नवजात चंद्रमा के समान इसका यौवन नवजात है। कवि विश्व के समस्त सौन्दर्य में उसी की छवि को देखता है—

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास, स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर विलास, विश्व सुषमा ही का संसार
दृगों में छा जाता सोल्लास व्योमबाला का शरदाकाश।

आगे चलकर कवि ने नारी के अलौकिक रूप-राशि का निरूपण शैशव से यौवन तक किया है और उसका क्रमशः विकास दिखलाया है। सौन्दर्य अनुभव की वस्तु है और उसके लिए सरस वस्तु, सुन्दर वस्तु एवं अनुकूल परिस्थिति अनिवार्य है। 'भावी पत्नी' का सौन्दर्य अतीन्द्रिय है। यहाँ रूप-सौन्दर्य नहीं

भाव-सौन्दर्य है। रूप-सौन्दर्य क्षणिक है और भाव-सौन्दर्य स्थायी। रूप-सौन्दर्य से मन ऊब जाता है, भाव-सौन्दर्य से रिक्त हृदय पूर्ण हो जाता है। नारी के पत्नीत्व में माधुर्य है। यहाँ लौकिक वासनामय स्वरूप नहीं हैं, बल्कि आध्यात्मिक सौन्दर्य है, जैसे—शकुन्तला कश्यप की कुटी में, न कि शकुन्तला कण्व के आश्रम में। आगे भी कवि ने अपनी कल्पनामयी प्रेयसी का रूप-सौन्दर्य अंकित किया है जिसमें नारी का शृंगार स्पष्ट होकर उभर पड़ा है। कवि ने तो अपनी 'मानसी' के सौन्दर्य का निरूपण किया है, लेकिन अपने हृदय की और उसके अंतःकरण की उठी हुई भावनाओं का समन्वय अत्यन्त सुन्दर ढङ्ग से किया है। भावों में एक शृंगार है जो गले की हार के समान लटकता हुआ सुन्दर प्रतीत हो रहा है और कवि ने उसका निवारण कहीं भी नहीं होने दिया है। इसमें 'स्वर्ग से उतरी प्रणय-हंसिनि' का रूप अलंकारिक है, पर अनुभूति का प्रबल वेग है जो मानव-मन को अपने-आप आकृष्ट कर लेता है। पंत के कवि का प्रेमी हृदय अपनी काल्पनिक प्रेयसी के अलौकिक एवं अपूर्व सौन्दर्य की प्रदीप्ति देखकर एकाएक पुकार उठता है—

रूप - तारा तुम पूर्ण प्रकाम ; मृगेक्षिणी ! सार्थक नाम !

कवि के दृग-पथ के सम्मुख जब वह उदित होती है, तब उसमें प्रणय की झंकार गूँजने लगती है—

प्रणय का रथ तुमने परिवेश दीप्त कर दिया मनोमय-देश ;
स्निग्ध सौन्दर्य - शिखा अनिमेष ! अनन्द, अनिन्द्य, अशेष !

मृगेक्षिणी की रूप-किरणों के कवि हृदय की अन्तरात्मा को आलोक से परिपूर्ण कर दिया—

उषा - सी स्वर्णोदय पर भोर . दिखा मुख कनक-किशोर ;
प्रेम की प्रथम मदिर तम कोर दृगों में दुरा कठोर ;
छा दिया यौवन - शिखर अछोर रूप-किरणों में बोर ;

अभी तक कवि प्रेयसी की मादक कल्पना करता रहा, पर अब उसकी कल्पना प्रेयसी के साथ एकाकार हो गई, यथा—

कल्पना तुममें एकाकार कल्पना में तुम आठों धाम;
तुम्हारी छवि में प्रेम-अपार; प्रेम में छवि अभिराम;
अखिल इच्छाओं का संसार स्वर्ण-छवि में निज गढ़ विन्नाण,
बन गई मानसि ! तुम साकार देह दो एक प्राण !

कवि की प्रेयसी कल्पनामात्र है, शायद ही उसका अस्तित्व हो ! कवि के शब्दों में—

कल्पना हो, जाने, परिमाण

पंत का कवि नारी-रूप में सौन्दर्य का अक्षय भण्डार पाता है, और उसके सौन्दर्य में जो वासना की सुगन्ध है, उससे कवि अपने-आपको सुरक्षित नहीं रख पाता है, पर उस वासना की एक निर्धारित सीमा है, जहाँ वह प्रहरी की नाईं खड़ा है। कवि अपनी प्रेयसी के संग विश्व-रंगमंच पर प्रेम लेकर आता है, पर वह कोमलता, मधुरता तथा उदात्त भावनाओं से परिपूर्ण है— उससे वासना की खुशबू निकलती अवश्य है जिससे वातावरण में एक ताजगी, रवानी आती है। अपने वासना-जन्य भावों का निर्देश कवि ने सांकेतिक रूप से किया है। इसमें वास्तविकता है, पर अशिष्टता नहीं, जो सभ्य समाज के लिए अरुचिकर प्रतीत हो। यही कारण है कि उनका प्रेम आदर्शवादियों का प्रेम है, उसकी वासना में दुर्गन्ध नहीं, बल्कि कुसुमों के सौरभ की मादकता है। कवि 'वातास के सौरभश्लथ उच्छ्वास' से पुलकित होकर अपनी प्रेयसी से समस्त गृह-कार्य को स्थगित कर देने का आग्रह करता है—

आज रहने दो यह गृह-काज प्राण ! रहने दो यह गृह-काज !

क्योंकि—

प्रिये लालस सालस बातास जगा रोओं में सौ अभिलाष !

\+ \+ \+

आज चंचल चंचल मन प्राण, आज रे शिथिल शिथिल तन भार !
आज दो प्राणों का दिनमान, आज संसार नहीं संसार !
आज क्या प्रिये सुहाती लाज ? आज रहने दो सब गृह-काज !

यह कवि की मनुहार है। दाँते ने लिखा है—'यह मरणशील वस्तु (नायिका) इतनी पवित्र एवं पूज्यनीय कैसे हो सकती है।' इसपर उसने मनन, एवं चिन्तन किया, तब फिर नायिका को देखकर कहता है—'मेरी प्रेयसी परमात्मा की एक सुन्दरतम कृति है। प्रकृति में जो कुछ दर्शनीय एवं सुशोभन है, सबका उसके जीवन में समावेश है। उसकी आँखों में जैसे ज्योतिं की किरणें फूट पड़ती हैं। चार्ल्स जेम्स (Charles James) का भी कथन है—'पवित्रता की प्रतिमा मेरी प्रेयसी तो एक फूल की तरह है। मर्यादा उसकी दासी है। प्रेम उसका आवरण है। उसकी पलकों पर सन्ध्या-तारा की भाँति सत्य बैठकर मुस्कुराता रहता है।' पंत की नारी भी पवित्रता तथा सौन्दर्य की प्रतिमा है।

कविताओं में नारी का चित्रण कवि एक प्रतीक या रूपक मानकर करता है। वह किसी वस्तु का प्रतीक या रूपक खड़ा करता है—इसका उसे स्वयं ज्ञान नहीं है। पंत ने भी नारी का चित्रण प्रतीक-योजना द्वारा किया है। शैली (Shelley) और स्पेन्सर (Spencer) ने किसी नारी-विशेष का रूपक तैयार कर कविताओं की रचना नहीं की है, पर उसमें अज्ञातरूप से उसका प्रकटीकरण हुआ है। तौभी उसमें नारीत्व का सुशोभन पवित्र सौन्दर्य तथा उत्कृष्ट प्रेम प्रातःकालीन सूर्य-किरणों में ओसकणों की भाँति आलोकमय है। पंत की चाँदनी शीर्षक दो कविताओं का अवलोकन कीजिये। इसकी पहली कविता में चाँदनी रुग्ण जीवनबाला की प्रतीक मानी गई है, इसमें चाँदनी का स्वाभाविक रंजक रूप नहीं है, बल्कि सांग-रूपक का सुन्दर दृष्टान्त है, यथा—

जग के दुख-दैन्य शयन पर वह रुग्णा जीवन-बाला
रे कब से जाग रही, वह आँसू की नीरव माला

इस कविता में विषादपूर्ण जीवन का चित्र आँका गया है, पर 'चाँदनी'-शीर्षक दूसरी कविता में उसका हर्षोत्फुल्ल चित्र खींचा गया है। अंग्रेजी का पागल कवि जान क्लेयर (John Clare) की काव्याधिष्ठात्री एक जादूगरनी है और विविक्तता एक भयंकर तथा भीषण अलकोंवाली रमणी। उसके सौन्दर्य के विनाश होने पर कवि ने लिखा है—

Now that art gone, the fairy rose is fled
The erst gay fancy's garden did adorn
Thine was the dew on which her folly fed
The sun which She glittered in the morn.

—यह कवि के टूटे हुए हृदय का उद्‌गार है और अब उसकी नायिका अखिल प्रकृति का एक अंश बन गई है। जान क्लेयर की 'लवर्स इनभिटेशन' (Lover's Invitation) और 'लव लिवस् बियोण्ड द टौम्ब' (Love lives beyond the tomb) दो प्रसिद्ध कविताएँ हैं। इसका नारी-प्रेम का अंकित चित्र काल्पनिक नहीं है। उसमें कवि के हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति ही नहीं, प्रत्युत उसमें वही तत्त्व है जो ऐसे भावों तथा ऐसी अनुभूतियों का प्राण है।

इसके अनन्तर पंत ने अपनी प्रेयसी के सौन्दर्य का विश्व-व्यापी प्रभाव प्रकृति के तत्त्वों को आकुल दिखलाकर अंकित किया है—

कब से विलोकती तुमको ऊषा आ वातायन से ?
संध्या उदास फिर जाती सूने नभ के आँगन से ?

एक दूसरे स्थल पर कवि ने अपनी प्रणयिनी के सौन्दर्य का प्रकृति पर प्रभाव अंकित किया है—सृष्टि का प्रत्येक तत्त्व प्रफुल्ल है और चारों ओर सौन्दर्य-छटा फैल गई है—यह सब-कुछ उसकी प्रेयसी की मधुस्मृति की देन है—

मुसकुरा दी थी क्या तुम, प्राण ! मुसकुरा दी थी आज विहान !
आज गृह-वन-उपवन के पास लौटता राशि-राशि हिम-हास
खिल उठती आँगन में अवदात कुंद कलियों की कोमल प्रात !

तथा उसकी प्रणयिनी की मधुस्मृति की सौन्दर्य-छटा चाँदनी जो बिखरी, उससे कवि का हृदय पुलकित हो उठा। अब कवि का 'मन विहग' मृगेक्षिणी के नयनाकाश में जाकर खो गया तथा उसके 'सजल, श्यामल, अकूल आकाश' में कवि-हृदय आधारहीन हो गया; वह अनन्त, असीम में अपने अस्तित्व को खो बैठा। इसी को कवि ने नये साँचे में ढालकर प्रस्तुत किया है—

तुम्हारे नयनों का आकाश सजल, श्यामल, अकूल आकाश !
गूढ़, नीरव, गंभीर प्रसार, न गहने को तृण का आधार
बसाएगा कैसे संसार, प्राण इनमें अपना संसार !
न इनका ओर - छोर रे पार, खो गया वह नव पथिक अजान !

गुंजन में कवि की नारी-भावना में इतनी ऐन्द्रिकता तथा निकटस्थ है, जिसके कारण वह अपने प्रणय-गीत की धारा को रोक नहीं पाता है, तब बेबस होकर कहता है—

अलि ! इन भोली बातों को अब कैसे भला छिपाऊँ ।
इस आँख - मिचौनी से मैं, कह ? कब तक जी बहलाऊँ !

कवि का 'मन-विहग' अपनी प्रणयिनी से मिलने की अभिलाषा करता है। अब उसमें की ऐन्द्रिकता समष्टि-भावना की ओर अग्रसर होती है, जिससे इसका संस्कार हो जाता है। इसमें एक शोभा आ जाती है। इसमें समष्टि-भावना का—आभास है, नाममात्र का—

सुमुखि, वह मधु क्षण ! वह मधु बार धरोगी कर में सुकुमार ।

यहाँ पर तो ऐन्द्रिकता धुल रही है, पर अब समष्टि-भावना साकार रूप में खड़ी हो जाती है—

निखिल जब नारी नर संसार मिलेगा नव सुख से नव बार
अधर उर से उर अधर समान पुलक से पुलक प्राण से प्राण ।

सतुरां, नारी प्रेम की साकार प्रतिमा और सौकुमार्य का प्रतीक है। वह हमें चन्द्र-किरण की भाँति शीतलता प्रदान करती है। वर्ड्सवर्थ ने भी अपनी रूथ (Ruth) के बारे में लिखा है— As if she from her birth had been an infant of the wood.

सारांश यही है कि नारी के प्रेम की भावना मानव-हृदय की भावनाओं को सहज (Natural), सरल रीति से आन्दोलित करती है। महाकवि कोलरिज (Coleridge) ने प्रेमी और प्रेमिका का वही सम्बन्ध बतलाया है, जो मानव के नयन और ज्योति में है। प्रेमी अपनी प्रणयिनी से कहता है— 'तुम मेरी आँखों की वह अमर-ज्योति हो, जिससे मैं संसार को देखता हूँ और

जो संसार की समस्त द्रष्टव्य वस्तुओं की आधी सुन्दरता को बनानेवाली अक्षय किरण-ज्वाल है। फिर भी तुम प्रात: काल के उगते हुए सूर्य के समान एवं निशीथ के नयनाभिराम चन्द्रमा के समान अपने ही लिये बनाई गई-सी प्रतीत होती हो। वे शत-शतरूप किरणें जो तुम्हीं से सौंदर्य और प्रकाश पाती हैं, तुम्हारे ही लिए निर्धारित जान पड़ती हैं।' वास्तव में नारी पुञ्जीभूत सौन्दर्य की साकार प्रतिमा है और जिधर उसके सौन्दर्य की चाँदनी छिटकी, उधर—

दृष्टि फेरी तुमने जिस ओर
खिल गई कमल-पंक्ति अम्लान। —दिनकर

नारी की सौन्दर्य-साधना विश्व के लिए एक वरदान है, जिसकी प्राप्ति के लिए कठोर तपस्या की जाती है, उन तपस्वियों में सुर, नर, मुनि लोग हैं और भविष्य में भी रहेंगे।

गुंजन के पश्चात् पंत की नारी-भावना में दिशान्तर होता है। 'छायावाद-युग में पंत ने नारी को उसकी सांस्कृतिक महिमा-सुषमा में देखा था। छायावाद के बाद ज्यों-ज्यों सामाजिक वास्तविकता स्पष्ट होने लगी, त्यों-त्यों न केवल नारी का, बल्कि समस्त मानव-समुदाय का अशोभन मुख कवि के सम्मुख प्रत्यक्ष होने लगा। कवि ने शोषित-पीड़ित समूह की भाँति ही नारी के माध्यम से भी युगों का कदर्य्य इतिहास देखा है। ऐतिहासिक दृष्टि से आर्थिक दृष्टि-स्थिति के अनुसार समाज की नैतिक सीमाएँ निर्धारित होती आई हैं।'[1] सुतरां, ऐसे संकीर्ण वातावरण में नारी सम्पत्तिमात्र हो गई थी—

नारी-भावना में दिशान्तर

क्षुधा-काम-वश गत युग ने पशुबल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण सदृश नारी भी कर ली अधिकृत।
—युगवाणी

आधुनिक युग में नारी की सामाजिक स्थिति बिलकुल बदल गई है, आज उसकी सामाजिक स्थिति का निरूपण पंत के शब्दों में कीजिये—

१. श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी।

सदाचार की सीमा उसके तन से है निर्धारित,
पूत योनि वह : मूल्य चर्म पर केवल उसका अंकित;
अंग-अंग उसका नर के वासना-चिह्न से मुद्रित,
वह नर की छाया, इंगित संचालित, चिर-पदलुण्ठित!
वह समाज की नहीं इकाई, शून्य समान अनिश्चित
उसका जीवन-मान मान पर नर से है अवलम्बित।
मुक्त हृदय वह स्नेह-प्रणय कर सकती नहीं प्रदर्शित,
दृष्टि, स्पर्श, संज्ञा से वह हो जाती सहज कलंकित। —ग्राम्या

अब नारी भोग-प्रधान सभ्यता की उपभोग्या नहीं है। वह उत्सर्गमय प्रेम की प्रतीक है, वासना अथवा शारीरिक विकृतियों की विवशता नहीं। 'पंत ने प्रगतिवादियों की तरह समाज का ऐतिहासिक समीक्षण और निरीक्षण किया है; किन्तु उनका जीवन-दर्शन दृष्टिगत ही नहीं, अन्तर्गत (मननशील) भी है। यहीं पर वे प्रगतिवादियों से भिन्न हैं। उनकी ऐतिहासिक दृष्टि देखती है—'योनिमात्र रह गई मानवी'; किन्तु सांस्कृतिक आत्मा (अंतरात्मा) कहती है—'योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित।' इसीलिए 'पल्लव' की 'देवि, माँ, सहचरि, प्राण' 'युगवाणी' में भी 'जननि, सखी, प्यारी' है। पंत की प्रगतिशीलता में गार्हस्थिक गरिमा है, आर्योचित अभिजात्य है, सामाजिक साधना है। वे नारी के व्यक्तित्व (अन्तर्निर्माण) की स्थापना चाहते हैं। पंत की अंतर्दृष्टि में मध्ययुग की संकीर्ण नैतिनता और आधुनिक युग की अतिभौतिकता दोनों एक ही जैसी निष्प्राण हैं। मध्यम युग की ओर देखकर वे कहते हैं—'उसका नैतिक मानदण्ड स्त्री की शरीर-यष्टि रहा है। उस सदाचार के एक अंचल-छोर को हमारी मध्य-युग की सती और हमारी बाल-विधवा अपनी छाती में चिपकाए हुई है और दूसरे छोर को उस युग की देन—वेश्या!'—सामंत-युग की यह विरासत पूँजीवाद को मिली; क्योंकि दोनों का समाज अर्थप्रधान है। किसी भी आर्थिक युग में मूलभूत परिवर्तन नहीं हो सकता। प्रगतिवाद भी अर्थोन्मुख है, इसलिए वह अपने आर्थिक साम्य से मनुष्य को बाह्य-मुक्ति

प्रगतिवादी भावना

(मांसमुक्ति) ही दे रहा है।'[1] आधुनिक युग में भौतिकवादियों से कवि कहता है—

हाड़-मांस का आज बनाओगे तुम मनुज-समाज !
हाथ-पाँव संगठित चलावेंगे जग-जीवन-काज ?
दया-द्रवित हो गए देख दारिद्र्य असंख्य तनों का ?
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें दोगे निरुपाय मनों का ?
आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट-नाम ?
मानव की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?

नारी पर आज से नहीं, युग-युगों से अत्याचार, अनाचार होता रहा है, मनुष्य उसे व्यक्तिगत पूँजी समझकर दुरुपयोग करता है। अस्तु, हमारा कवि नरों से आग्रहपूर्वक कहता है कि अब नारी पर अत्याचार नहीं करो, उसे तन-मन से मुक्त होने दो ताकि उसे मानव-समाज में गौरवपूर्ण पद की प्राप्ति हो और साथ-साथ नये युग का आगमन हो—

मुक्त करो नारी को मानव ! चिर-बंदिनि नारी को,
युग-युग की बर्बर कारा से, जननि, सखी, प्यारी को !
छिन्न करो सब स्वर्ण-पाश उसके कोमल तन-मन के,
वे आभूषण नहीं, दाम उसके बन्दी-जीवन के।
पुरुष-वासना की सीमा से पीड़ित नारी जीवन,
नारी-नारी का तुच्छ भेद है केवल युग्म-विभाजन !
योनि मात्र रह गई मानवी निज आत्मा कर अर्पण,
पुरुष-प्रकृति की पशुता का पहने नैतिक आभूषण !
नष्ट हो गई उसकी आत्मा, त्वचा रह गई पावन,
युग-युग से अवगुण्ठित गृहिणी सहती पशु के बन्धन !
खोलो हे मेखला युगों की कटि-प्रदेश से, तन से !
अमर प्रेम हो बन्धन उसका, वह पवित्र हो मन से !

---

१. वही।

क्षुधा - कामवश गत युग ने पशुबल से कर जन शासित
जीवन के उपकरण - सदृश नारी भी कर ली अधिकृत !
मुक्त करो जीवन - संगिनि को, जननि, देवि को आदृत,
जग - जीवन में मानव के सँग हो मानवी प्रतिष्ठित !

पंत की नारी-विषयक एक दूसरी कविता है जिसमें नारी नर की छाया बतलायी गई है जिसके फलस्वरूप कवि के हृदय में बहुत बड़ा दुःख होता है और साथ-साथ आश्चर्य भी—

पुरुषों की ही आँखों से नित देख - देख अपना तन
पुरुषों ही के भावों से अपने प्रति भर अपना मन,
लो, अपनी ही चितवन से वह हो उठती है लज्जित
अपने ही भीतर छिप-छिप जग से हो गई तिरोहित
वह नर की छाया नारी ! चिर-नमित नयन, पद विगड़ित,
वह चकित, भीत हिरनी-सी निज चरण-चाप से शंकित !
मानव की चिर-सहधर्मिणि, युग-युग से मुख अवगुण्ठित,
स्थापित घर के- कोने में वह दीपशिखा-सी कंपित !

ग्राम्या' में नारी-संबंधी अनेक कविताएँ हैं जिनमें 'युगवाणी' के समान भावनाएँ गुम्फित हैं। लेकिन कवि ने इसमें एक नई बात यह जोड़ी है कि नर-नारी का भेद लिंग के आधार पर नहीं होना चाहिये। वास्तव में नर-नारी एक दूसरे के पूरक हैं ! दोनों में सामंजस्य की भावना का होना नितान्त आवश्यक है। 'स्त्री'-शीर्षक एक कविता में कवि ने जहाँ नारी का गुणगान किया है वहाँ दूसरी ओर 'नारी' को नरक भी माना है।[1] यदि कहीं नरक है इस भू पर तो वह भी नारी के अन्दर,

वासनावर्त में डाल प्रखर
वह अंध गर्त में चिर-दुस्तर
नर को ढकेल सकती सत्वर

१. योरोप में ईसाई-धर्म के प्रसार ने नारी को 'नरक का द्वार' सिद्ध कर दिया है।

आज की नारी ने पाश्चात्य सभ्यता का अनुकरण किया है, उस संबंध में कवि की भावना को देखिये—

पशुओं से मृदु चर्म, पक्षियों से ले प्रिय रोमिल पर,
ऋतु कुसुमों से सुरंग सुरुचिमय चित्र वस्त्र से सुन्दर,
सुभग रूज, लिपस्टिक, ब्रोस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित,
अंगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से कर नख शिख शोभित;
शिक्षित तुम संस्कृत, युग के सत्यायासों में पोषित,
समकक्षिणी नरों की तुम, निज द्वंद्व मूल्य पर गर्वित
प्रेम, दया अहृदयता, शील, क्षमा पर-दुख-कातरता,
तुम में तप, संयम, सहिष्णुता नहीं त्याग, तत्परता।
लहर-सी तुम चपल लालसा श्वास वायु से नर्तित
तितली-सी तुम फूल फूल पर मँडराती मधुक्षण-हित !
मार्जारी तुम, नहीं प्रेम को करती आत्म समर्पण
तुम्हें सुहाता रंग प्रणय, धन पद मद, आत्म-प्रदर्शन।
तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी, मार्जारी
आधुनिके, तुम नहीं अगर कुछ, नहीं सिर्फ तुम नारी !

तुलसी के समान पंत ने भी नारी की भर्त्सना की है

—पर आधुनिक नारी की यह हवा गाँवों के आकाश तक नहीं पहुँच पायी है। हम इस रचना के पंतजी की गणना नारी-निंदकों में (तुलसीदास के समान) कर सकते हैं। 'ग्राम्या' की 'मजदूरिनी के प्रति'-शीर्षक कविता में नारी के प्रति स्वस्थ दृष्टिकोण व्यक्त हुआ है। वह मजदूरिनी पुरुषों के साधारण कार्यों में हाथ बँटाती है, स्वच्छंदता के साथ विचरण करती है और उसके तन की मांस-पेशियाँ भी दृढ़ हैं: मजदूरिनी का स्पृहणीय चित्र देखिये—

नारी की संज्ञा भुला, नरों के संग बैठ,
चिर जन्म सुहृद-सी जन-हृदयों में सहज पैठ,

जो बँटा रही तुत जग-जीवन का काम काज;
तुम प्रिय हो मुझे : न छूती तुमको काम-लाज।
सर से आँचल खिसका है,—धूल भरा जूड़ा,—
अधखुला वक्ष,—ढोती तुम सिर पर घर-कूड़ा;
हँसती, बतलाती सहोदरा-सी जन-जन से,
यौवन का स्वास्थ्य झलकता आतप-सा तन से।
कुल - वधू सुलभ संरक्षणता से हो वंचित,
निज बन्धन खो, तुमने स्वतंत्रता की अर्जित,
स्त्री नहीं, आज मानवी बन गई तुम निश्चित,
जिसके प्रिय अंगों को छू अनिलातप पुलकित !
निज द्वन्द्व प्रतिष्ठा भूल, जनों के बैठ साथ,
जो बँटा रही तुम काम-काज में मधुर हाथ,
तुमने जिन तन की तुच्छ कंचुकी को उतार,
जग के हित खोल दिए नारी के हृदय-द्वार !

मजदूरिनी के शरीर पर कंचुकी नहीं है, वह अधखुली है; पर किसी की वासनात्मक दृष्टि उसपर जाकर केन्द्रीभूत नहीं होती है। उसका मन साफ है, वह सिर्फ अपना काम जानती है और सभ्य कही जानेवाली नारियों की अपेक्षा बहुत स्वतंत्र है। उसका जीवन उन्मुक्त प्रकृति के समान स्वतंत्र है। कवि ने उसके बाह्य जीवन का निरूपण किया है, उसकी आंतरिक पीड़ा को नहीं देखा है। 'स्वर्ण-किरण' में 'नारी-नथ' शीर्षक कविता में कवि ने उसके सौन्दर्य के साथ-साथ उसकी स्थिति एवं महत्ता का वर्णन किया है। एक नारी के कारण यह चराचर सुन्दर है, इसी कथन पर कवि को विश्वास है—

कितनी वेणियाँ लोल लोटतीं पीठों पर
खुली, बँधी, फूल गुथीं सुरभित तम निर्झर !
नवल मुकुल सृष्टि अंग चकित मृग ग्रीवा भंग
पुष्प शिखर से उरोज, चारु हंस छवि सरोज,

रूप की प्ररोह बाँह प्राण कामना प्रवाह···
सचमुच—
एक अंगना से सुभग लगता अंगों का जग

'स्वर्ण-धूलि' में 'मातृ-शक्ति' और 'मातृ-चेतना' शीर्षक दो कविताएँ हैं जिनमें कवि की भावना अलौकिक माँ से सम्बन्धित है। 'मनुष्यत्व' शीर्षक कविता में वर्ग-भेद एवं वर्ण भेद से उद्भूत होनेवाली हानियों की ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट किया गया है। इसमें कवि ने बतलाया है कि पुरुषों की दृष्टि में दोष है, नारी की दृष्टि में नहीं। नारी के प्रति हम पुरुषों की दृष्टि कैसी होनी चाहिये, इसकी ओर कवि ने लक्ष्य किया है—

छोड़ नहीं सकते यदि जन
नारी मोह पुरुष की दासी उसे बनाना,
देह, द्वेष और काम-क्लेश के दृश्य दिखाना—
तो अच्छा हो छोड़ दें अगर
हम समाज में द्वन्द्व स्त्री पुरुष में बँट जाना!
स्नेह मुक्त सब रहें परस्पर,
नारी हो स्वतंत्र जैसे नर,
देव द्वार हो मातृ कलेवर

संक्षेप में पंत की नारी-भावना

'गुंजन' तक पंत की नारी-भावना में कल्पना है और इसके माध्यम से जिन भावों को अभिव्यक्ति मिली है, वह हृदयगत नहीं है; क्योंकि इनका भावजगत् भावमय (Abstract) है, जितना कि शैली। जिस प्रकार शैली हमारे सामने एक चित्र प्रस्तुत अवश्य करता है, परन्तु उसका चित्र अस्पष्ट, अदृश्य एवं धूमिल है उसी प्रकार पंत ने कल्पनामयी नारी का रूप अंकित किया है जिसके उपमान इतने सूक्ष्म हैं कि समझना दुर्वार है; यद्यपि उसके उपदेश स्थूल भी हैं। हमारा जन-समाज प्रकृति के जीवन से दूर है। इनकी कविता कल्पना के वायुयान पर बैठकर आकाश-गंगा का चक्कर लगाती है। इनके चित्र सुन्दर, मनोरम तथा मनोरंजक अवश्य हैं, पर न ये चित्र समस्त भूमण्डल पर हैं, न

उनके हृदय में, न कहीं और ही जगह है। यों तो 'गुंजन' में आकर कवि का दृष्टिकोण कुछ-कुछ मार्क्सवादी बन गया है, पर उनका हृदय उसके साथ नहीं है। बाद की रचनाओं में पंत का दृष्टिकोण समाजवादी हो गया है जिसके कुछ ऐसे चित्र उपस्थित किये गए हैं जो अमर एवं शाश्वत हैं। नारी के प्रति कवि का निजी विचार ही अधिकतर व्यक्त हुआ है जो कुछ सीमा तक ठीक भी है। कवि की नारी-भावना एक सीमित परिधि में नर्तन कर रही है, वह व्यापक न होकर व्यक्तिगत है। खैर, जो भी हो, कल्पनाजनित नारी-प्रकृति की भावना का अंकन सुन्दर हुआ है।

पंत के प्रणय-गीत

पंत स्वभाव से सौन्दर्य के गायक हैं और 'सौन्दर्य प्रेम का उत्पादक है। किंतु सौंदर्य-दर्शन में जिस प्रकार विकास एवं संकोच होगा, उसी प्रकार प्रेम की भिन्न-भिन्न कोटियाँ होंगी। आधुनिक छायावाद के काव्य में नवयुवक कवियों की चंचल तूलिका प्रेम के जो चित्र अंकित कर रही है, वे वास्तविक प्रेम के नहीं; किन्तु उद्दाम शारीरिक वासना के अशांत नग्न चित्र हैं। उनका अपना नया आदर्श है—अतृप्त कवि का जीवन संगीत है। कोई प्रेम करके शान्ति चाहे तो, मनुष्य-जीवन, प्रेम और शान्ति ये तीनों चीजें साथ नहीं रह सकतीं।' किन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो यह प्रेम नहीं, वासना का प्रचण्ड ताण्डव है, मोह का पंकिल क्षेत्र है। प्रेम जीवन की मूल प्रेरक-शक्ति है। प्राणी की कोई प्रेरणा उसके प्रभाव में जीवित नहीं रह सकती। जैसा कि ऊपर वर्णित हो चुका, सौंदर्य की भावना पर ही प्रेम का आधार है। अतः सौन्दर्य की भावना कलुषित हो जाने पर प्रेम की भावना भी कलुषित हो गई है।'

सौन्दर्य और प्रेम

पंत का सौन्दर्य एक रेखा के दो बिन्दु पर स्थिर है। एक बिन्दु है प्रकृति और दूसरा है नारी। पर दोनों एक ही सूत्र में गुम्फित हैं। उन्होंने प्रकृति को सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है और 'निसर्ग से तादात्म्य अनुभव करते समय स्वयं अपने को भी नारी के रूप में चित्रित किया है। उन्होंने 'कोमल मनुज कलेवर' की कल्पना की है और 'अविराम प्रेम की बाँहों' में मुक्ति पाई है। कहा जा सकता है कि पंतजी की कला नारी-कला (Feminine Art) है।' पंतजी ने प्रकृति के दर्पण में नारी का प्रतिबिम्ब देखा है जो सौन्दर्य की साकार प्रतिमा है और

प्रकृति और नारी-कला

उससे कवि के हृदय में प्रेम के भाव जाग उठे हैं। पंत ने स्वयं लिखा भी है—

नवल मेरे जीवन की डाल बन गई प्रेम-विहग का वास।

पंत माँ के आँचल के स्नेह से वंचित रहे तो किशोर कवि के हृदय में प्रकृति जाकर बैठ गई; क्योंकि उसके प्रति कवि का प्रेम शैशव के पहले

वीणा

प्रभात में ही उद्भूत हो चुका था। इस बात की पुष्टि के लिए पंत की 'वीणा' पर्याप्त है। उसमें प्रकृति के प्रति प्रेम है, नारी के प्रति नहीं। इसीलिए 'वीणा' की रचनाओं में प्राकृतिक-प्रेम मुखर है और नारी-प्रेम लुप्त। साथ-साथ यहाँ पर यह स्पष्ट कर देना अप्रासंगिक नहीं कि पंत की दृष्टि नारी की ओर गई थी अवश्य, पर प्रकृति और नारी का सौन्दर्य कवि के समक्ष एक विषम समस्या बन गया था, जैसे—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया तोड़ प्रकृति से भी माया;
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
तज कर तरल तरंगों को इन्द्रधनुष के रंगों को
तेरे भ्रू-भंगों से कैसे बिंधवा दूँ निज मृग-सा मन?

—लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कवि नारी को तिरस्कृत दृष्टि से देखता है या उसमें उसके प्रति घृणा का भाव अन्तर्निहित है। पंत वीणा-काल में एक अल्हड़ किशोर था, तो भला उस समय वह कैसे नारी-सौन्दर्य से विमुख हो पाता। सच तो यह है कि कवि नारी-सौन्दर्य की आकर्षण-शक्ति से भय खाता है; क्योंकि उसे इस बात का भय है कि कहीं नारी के भ्रू-भंगों में उलझकर वह प्रकृति को न त्याग दे! फिर भी यह हमें स्वीकार करना ही पड़ेगा कि पंत में नारी के प्रति आकर्षण था, क्योंकि आज ही प्रकृति-निरीक्षण के अवसर पर नारी शृंगार कर आयी थी। नारी शृंगार ने उसके

ग्रंथि में प्रणय-भावना

मन को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। 'वीणा' में कवि नारी के प्रति सिर्फ आकृष्ट रहा, प्रेम का अनुभव न कर सका। आकर्षण-भाव से अनुराग के भाव जाग पड़े जो 'प्रेम' की संज्ञा से आक्रान्त है। यह प्रेमभाव कुछ ही वर्षों

के उपरान्त उनकी 'ग्रन्थि' के रूप में प्रकाशित हुआ। कुछ आलोचकों की दृष्टि में 'ग्रन्थि' की प्रेम घटना वास्तविक है, पर कवि ने 'ग्रन्थि' की कथा को एकदम काल्पनिक बतलाया है। उस समय कवि उन्नीस-बीस वर्ष का था। प्रेम की कोई बात ठीक से समझता भी नहीं था। इस लघु आकार में मंडित प्रेमकाव्य में एक विफल-प्रणय तरुण-हृदय की बड़ी ही मार्मिक वेदना है। इसकी कथावस्तु से यह मालूम होता है कि जब कवि की मूर्च्छा दूर हो जाती है तब उसकी दृष्टि नायिका के अपरिमित सौन्दर्य पर जाकर केन्द्रित हो जाती है और क्रमशः वह उसकी ओर आकृष्ट होने लगता है। 'इस प्रेम में अपने बचानेवाले के प्रति कृतज्ञता की भावना नायक के मन में है, और बचपन से ही वह प्यार से वंचित रहा है; अतः हृदय ने अपने अभाव की पूर्त्ति चाही तो वह आकांक्षा एकदम स्वाभाविक और मनोवैज्ञानिक है; पर है यह ऐसे ही प्रेम का उदाहरण जो देखते ही उत्पन्न होता है। कवि ने दृष्टि मिलते ही नायिका के प्रणय का परिचय भी दिया है। उसे भी कवि ने प्रारंभ से स्नेह-वंचित रखा है। अतः एक-सी मानसिक परिस्थितियों के दो व्यक्तियों को स्थिति ने यदि टकरा दिया तो ठीक ही किया। यह दुःख की बात है कि इस टकराहट से दोनों हृदय आगे चलकर चकनाचूर हो गए। प्रणय-भावना में पल्लवित होनेवाले नायिका के हृदय की चर्चा कवि ने जिस प्रकार सखियों के प्रसंग में की है उसी प्रकार यौवन की छाया में प्रणय की ओर बढ़नेवाले अपने हृदय की भावनाओं के विकास का परिचय उसने अपनी दशा के वर्णन में दिया है। इन दोनों में अपनी दशा का वर्णन उसने स्पष्ट रूप से किया है; पर नायिका के हृदय की गति का विश्लेषण अधिक व्यंजनात्मक और काव्यमयी भाषा में। प्रणय की चर्चा के उद्दीपनकारी वातावरण में वहाँ प्रणय-भावना दृढ़ता पकड़ती चली है।'[१] कवि की प्रणय-भावना 'ग्रंथि' में स्वानुभूत होकर सघन हो गई है। पंतजी द्वारा इसे काल्पनिक बताये जाने पर भी हम विश्वास के साथ कह सकते हैं कि इसमें

---

१. **विश्वम्भर 'मानव'**

वर्णित व्याख्याएँ काल्पनिक नहीं हो सकतीं, वे यथार्थ एवं पूर्ण अनुभव पर आधारित हैं। वस्तुत: इसमें एक प्रवंचित प्रेमी के घायल हृदय की आर्त्त-पुकार है—

कौन दोषी है ? यही तो न्याय है !
वह मधुप बिंध कर तड़पता है, इधर
दग्ध चातक तरसता है,—विश्व का
नियम है यह ; रो अभागे हृदय ! रो

कवि ने प्रेमी की जो व्याख्याएँ प्रस्तुत की हैं उनमें स्वानुभूति की मार्मिक झंकार है—

यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की
जो अपांगों से अधिक है देखता
दूर होकर और बढ़ता है, तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा ?
प्रेम का ही नाम जप जिसने नहीं
रात्रि से पल हों गिने, प्रति शब्द से
चौंक कर, उत्सुक नयन जिसने उधर
हो न देखा,—प्यार उसने क्या किया ?

पर नहीं, तुम चपल हो अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते ही नहीं ;
बस बिना सोचे हृदय को छीन कर
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में !
कौन दोषी है ! यही तो न्याय है...
......................अभागे हृदय रो !!

शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह !—अहह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण, चुभती नोक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा !!

'ग्रन्थि' के प्रणय-गीत की लड़ी 'पल्लव' में भी है, क्योंकि यह स्पष्ट है कि कवि के हृदय पर गहरा आघात पहुँचा है। 'पल्लव' में 'उच्छ्वास' और 'आँसू' काफी लम्बी कविताएँ हैं। 'ग्रन्थि' की आकस्मिक असफल प्रेम की प्रतिक्रिया उच्छ्वास बनकर आयी है और फिर आँसू की धारा प्रवाहित हो चली है।

'पल्लव' के प्रणय-गीत

यह हो सकता है कि 'ग्रन्थि' का कथानक कुछ भिन्न हो और 'उच्छ्वास' और 'आँसू' के कथानक कुछ अलग। परन्तु साहित्यिक विकास में जहाँ कवि के आघातों का चिंतन और स्पष्ट रूप प्रतिपादित हुआ है, वहाँ यह अवश्य कहा जा सकता है कि किसी दूसरी घटना के समय कवि को पुनः ग्रन्थि की कथा-वस्तु याद आ जाती है और उसके 'उच्छ्वास' और 'आँसू' क्रमशः उसके अन्तर को पीड़ित तथा शान्त करने के उपचार में लग जाते हैं। 'मानव' ने इसे स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि 'आँसू' तथा 'उच्छ्वास' की नायिका ग्रन्थि की बालिका से भिन्न है और इसे पुष्ट करने के लिए 'मानव' ने उन उत्तरों का उल्लेख किया है जो उनके प्रश्नों पर पंतजी ने दिये थे। 'ग्रंथि' के विषय में पूछने पर उनका हँस देना या मौन-सा हो जाना, बहुत-कुछ स्वीकारात्मक प्रतीत होता है। मनोविज्ञान इसे सही मानता है, त्रुटिपूर्ण नहीं।'[1]

'उच्छ्वास'-शीर्षक कविता में एक बालिका के संग प्रेम-व्यापारवाली घटना को अभिव्यक्ति दी गई है। यह प्रेम-व्यापार पहाड़ी प्रदेश के प्राकृतिक सौन्दर्य की पृष्ठभूमि में चल रहा है। कवि एक अस्फुट-यौवना किशोरी पर मुग्ध है। प्रेम का नवीन पल्लव पल्लवित हो ही रहा था कि अचानक संदेह द्वारा राग विराग बन गया। कवि उच्छ्वास को बादल बनकर समस्त सृष्टि को अच्छादित करने के लिए कहता है—

बरस धरा में, बरस सरित, गिरि, सर, सागर में।
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में ॥

जिस अस्फुट-यौवना किशोरी से कवि ने प्रेम-व्यापार करना आरंभ किया था, वह सुन्दरता एवं भोलेपन की साकार प्रतिमा थी—

---

१. फूलचन्द पाण्डेय

सरलपन ही था उसका मन निरालापन था आभूषण।.......
रँगीले गीले फूलों से अधखिले भावों से प्रमुदित
बाल्य-सरिता के कूलों से खेलती थी तरंग-सी नित
—इसी में था असीम अवसित।

और अब कवि का आकर्षण अत्यन्त ही मधुर उतर पड़ा है—

उसके उस सरलपन से मैंने था हृदय सजाया
नित मधुर-मधुर गीतों से उसका उर था उसकाया।...
मैं मन्द हास-सा उसके मृदु अधरों पर मँड़राया।

कवि उस बालिका के सौंदर्य एवं भोलेपन से अत्यन्त प्रभावित हुआ था जिसके कारण वह प्रणय-गीतों को गाने लगा था। अल्पकाल के लिए दोनों साथ रहे, पर किसी कारणवश दोनों के मध्य में 'संदेह' दीवार बन कर खड़ा हो गया। फलतः प्रेम-व्यापार रुक गया—

रोग का है उपचार, पाप का भी परिहार,
है अदेह संदेह, नहीं है इसका कुछ संस्कार।
यही तो काँटे-सा चुपचाप उगा उस तरुवर में,—सुकुमार
सुमन वह था जिसमें अविकार बेध डाला मधुकर निरुपाय !!
अभी पल्लवित हुआ था स्नेह, लाज का भी न गया था राग;
पड़ा पाला-सा हा ! संदेह कर दिया वह नव-राग विराग !
मिले थे दो मानस अज्ञात, स्नेह-शशि बिम्बित था भरपूर ;
अनिल सा कर अकरुण आघात, प्रेम-प्रतिमा कर दी वह चूर !!
बालकों का-सा मारा हाथ ; कर दिये विकल हृदय के तार।
नहीं अब रुकती है झंकार, यही था हा ! क्या एक सितार ?
हुई मरु की मरीचिका आज, मुझे गंगा की पावन धार।

'उच्छ्वास' में कवि के असफल प्रेम की कथा है तो 'आँसू' में कवि उसकी स्मृति के कारण विवश होकर रोने लगा है। आरम्भ में ही कवि के प्रेम का 'गीला-गान' मुखर होता है—

आह, यह मेरा गीला गान !
वर्ण-वर्ण है उर की कंपन,
शब्द-शब्द है सुधि का दंशन।
चरण - चरण है आह,
कथा है कण-कण करुण अथाह।

आगे चलकर कवि ने इस गीत में भी 'संशय' की बात कही है जिसके कारण दोनों में संयोग भी नहीं हुआ, प्रत्युत प्रेम का दुराव भी कठिन हो गया। इसने प्रेम को 'अतिशय करुण' बना दिया—

करुण है हाय ! प्रणय, नहीं दुरता है जहाँ दुराव
करुणतर है वह भय, चाहता है जो सदा बचाव;
करुणतम भग्न-हृदय, नहीं भरता है जिसका घाव
करुण-अतिशय उनका संशय, छुड़ाते हैं जो जुड़े स्वभाव !!

'आँसू'-शीर्षक कविता में पंत के कवि ने प्रेम को गंगाजल के समान पवित्र माना है, पर संसार उस प्रेम को पाप की संज्ञा से विभूषित करता है, कवि को इसका आंतरिक दुःख है। वह अपने को एकाग्र चित्त से ध्यान करने की चेष्टा करता है, पर उसकी आँखों से अश्रु की धारा फूट पड़ती है—

मूँद दुहरे दृग-द्वार !
अचल पलकों में मूर्ति सँवार, पान करता हूँ रूप अपार;
पिघल पड़ते हैं प्राण, उबल चलती है दृग-जल-धार !

'पल्लव' में प्रणय-भावना से गुम्फित एक कविता है 'स्मृति'; जो 'उच्छ्वास' और 'आँसू' की भावनाओं से संबंधित है। इसमें कोई नई बात नहीं है—

आँख में आँसू भर अनजान,
अधर पर धर उच्छ्वास,
समाती है जब उर में प्राण !
तुम्हारी 'सुधि' की सुरभित साँस;

डुबा देता है मुझे संदेह
सूर सागर वह स्नेह !

'गुंजन' के पूर्व की रचनाओं में असफल प्रेम के गीत हैं, परन्तु इसके (गुंजन) प्रणय-गीत आशा के आलोक से दीप्त। इसमें संयोग के चित्र अधिक हैं, वियोग के अल्प। 'भावी पत्नी के प्रति' शीर्षक कविता की गणना प्रेमपरक गीतों में होगी। यह किसी व्यक्ति-विशेष को लक्ष्य कर नहीं लिखी गई है। इसमें कवि ने भावी पत्नी के बचपन से यौवन-काल तक का वर्णन किया है जो कल्पना के धरातल पर आश्रित है, पर फिर भी यह कविता अविवाहित नवयुवकों को अत्यन्त प्रिय है। कवि ने सौन्दर्य-वर्णन के अनेक रसों का उद्रेक किया है। इसमें प्रणय-भावना से प्लावित दो कविताएँ और हैं। एक में संयोग-पक्ष प्रबल है तो दूसरे में वियोग-पक्ष। वियोग-पक्ष की चर्चा पंत ने यों की है—

गुंजन के प्रणय-गीत

कब से बिलोकती तुमको, ऊषा आ वातायन से ?
संध्या उदास फिर जाती, सूने गृह के आँगन से !
लहरें अधीर सरसी में तुमको तकती उठ-उठ कर,
सौरभ समीर रह जाता प्रेयसि ! ठण्ढी साँसें भर !
हैं मुकुल मुँदे डालों पर, कोकिल नीरव मधुवन में,
कितने प्राणों के गाने ठहरे हैं तुमको मन में ?
तुम आओगी, आशा में अपलक हैं निशि के उडुगण !
आओगी अभिलाषा से चंचल, चिर नव, जीवन-क्षण !

संयोग-भावना से पुष्ट कविता को देखें—

आज रहने दो गृह-काज प्राण ! रहने दो यह गृह-काज
आज जाने कैसी वातास छोड़ती सौरभ श्लथ उच्छ्वास
प्रिये, लालस—सालस वातास, जगा रोओं में सौ अभिलाष।
आज उर के स्तर-स्तर में, प्राण ! सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार,
दृगों में मधुर स्वप्न संसार, मर्म में मदिर - स्पृहा का भार।

शिथिल स्वप्न पंखुड़ियाँ खोल आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूँजता भूला भौंरा डोल सुमुखि! उर के सुख से वाचाल।
आज चंचल-चंचल मन-प्राण, आज रे शिथिल-शिथिल तन भार
आज दो प्राणों का दिन-मान, आज संसार नहीं संसार।

—संयोगकाल की यह व्यंजना अत्यन्त ही मार्मिक एवं मधुर हुई है। रस की दृष्टि से पंत के प्रणय-गीत शृंगार-रस के अन्तर्गत आते हैं।

युगांत और परवर्ती कृतियाँ

'युगान्त' में प्रणय-भावना से समन्वित सिर्फ एक रचना है जिसमें पंत आलिंगन, चुंबन और आत्मसमर्पण या एकाकार तक आ गए हैं। इसमें जो नायिका है, वह कम उम्र होने पर भी मुग्धा है। उस मुग्धा का वर्णन देखिये—

मंजरित आम्रवन छाया में हम प्रिये, मिले थे प्रथम बार,
ऊपर हरीतिमा तम गुंजित, नीचे, चन्द्रातप छना प्यार।
तुम मुग्धा थी, अतिभाव-प्रवण उकसे थे अंबियों-से उरोज,
चंचल, प्रगल्भ, हँसमुख, उदार, मैं सलज,—तुम्हें था रहा खोज।

उसके बाद कवि कहता है—

तुमने अधरों पर धरे अधर; मैंने कोमल वपु भरा गोद;
था आत्म-समर्पण सरल-मधुर मिल गए सहज मारुतामोद।

'युगवाणी' में व्यक्तिगत प्रणयगीत का अभाव है, पर 'ग्राम्या' में 'याद'-शीर्षक एक कविता है जिसका कुछ महत्त्व है। इस कविता में और पूर्ववर्ती कविताओं में काफी वैषम्य है। 'ग्राम्या' के बाद की रचनाओं में कवि का दृष्टिकोण आध्यात्मिक हो गया है। अतएव आध्यात्मिक भावनाओं से ओत-प्रोत काव्य में प्रणय-गीत का पाया जाना बिलकुल असंगत है। 'स्वर्ण-किरण' की एक कविता है 'अगुंठिता' जिसमें प्रणय की व्याख्या नवीन है।

संक्षेप में पंत का 'प्रेम निष्काम प्रेम है। इसका उद्देश्य आनन्द के आदान-प्रदान के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं। वह प्रेम का प्रतिदान

आवश्यक नहीं मानता। अतः प्रेम उसकी दृष्टि में आत्म-निवेदन या आत्म-समर्पण का रूप ले लेता है। वह इसलिए संभव है कि इस प्रेम का सम्बन्ध शरीर से नहीं, आत्मा से है।' कवि द्वारा रचित ज्योत्स्ना नाटक में एक नारी पात्र ने कहा है कि 'मैं चाहती हूँ कि प्रेम की भाषा अधिक संस्कृत, प्रेम प्रकट करने के हाव-भाव और भी नवीन एवं परिमार्जित हों।' वास्तव में यह उक्ति पंत की प्रणय-भावना के साथ चरितार्थ होती है।

उपसंहार

पंत का जीवन-दर्शन

साहित्य का प्रत्येक कलाकार अपने साहित्य के माध्यम से जीवन को संदेश देता है; क्योंकि वह मानव है और मानव-समाज का एक कण है।

पंत जीवन का कवि

अस्तुत, उसकी लेखनी से स्वभावतया कुछ सीख, कुछ संदेश उभर उठते हैं। पंत विलियम वर्ड्सवर्थ के समान जीवन-गायक है, वह जीवन का कवि है। यही कारण है कि छायावादी पंत के काव्य में जीवन के प्रति कुछ मान्यताएँ हैं और ये मान्यताएँ कवि के संस्कार-बोधक हैं। कवि अपने जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण रखता है, वह पीछे जाकर अत्यन्त उत्कृष्ट हो जाता है। 'पल्लव' तक पंत का कवि प्राकृतिक सौन्दर्य की ओर आकृष्ट रहा, पर क्रमशः इसी प्राकृकि सौन्दर्य में कवि ने जीवन-सौन्दर्य को पाया। इस समय तक कवि ने प्राकृतिक सौन्दर्य के कोमल पक्ष को ही सँवारा था, मधुर भावों की तानी-भरनी ही निर्मित की थी, क्योंकि उसे कर्म-मार्ग अत्यन्त ही दुष्कर प्रतीत होता था—

मेरा मधुकर का - सा जीवन, कठिन कर्म है, कोमल है, मन।

उसने सिर्फ कोमलता को ही वरेण्य समझा, उसी में सौन्दर्य की झाँकी पायी, उसी में सुषमा ढूँढने का प्रयास * किया; पर कवि के व्यक्तिगत जीवन में कुछ विषम परिस्थियों ने आकर डेरा डाला, तब उन्होंने कर्म-मार्ग का साक्षात्कार किया, यहीं से उनके जीवन ने नया रास्ता अख्तियार किया।

---

* दिवस का इसमें रजत-प्रसार उषा का स्वर्ण - सुहाग;
निशा का तुहिन-अश्रु शृंगार, साँझ का निःस्वन राग;
नवोढ़ा की लज्जा सुकुमार, तरुणतम-सुन्दरता की आग।

—पल्लव, पृ०-२

फलतः पंत की कविता जगत् एवं जीवन की ओर मुड़ी। 'जीवन के व्यापक क्षेत्र में प्रवेश करने पर उनकी कल्पना को कोमल-कठोर, मधुर-कटु, करुण-भयंकर कई प्रकार की भूमियों पर बहुत दूर तक एक सम्बद्ध धारा के रूप में चलना पड़ा है। इस दिशा में उनकी मानसिक स्थिति की दो धाराएँ दीख पड़ती हैं। पहले वह लगातार सुख का दुःख में, उत्थान का पतन में, उल्लास का विषाद में परिवर्तन सामने लाकर क्षोभ से भर देते हैं—

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
मृदुल होठों का हिमजल हास, उड़ा जाता निःश्वास समीर,
सरल भौंहों का शरदाकाश, घेर लेते घन घिर गंभीर !
दैव जीवन भर का विश्लेष मृत्यु ही है निःशेष !!

पर इस प्रकार का क्षोभ उनके हृदय में स्थायी नहीं रह पाता। वह अपनी इस मानसिक-स्थिति से शीघ्र ही ऊब जाते हैं और परिवर्तन के दूसरे पक्ष में जाते हैं। उनकी प्रथम मानसिक स्थिति उन्हें निराशावाद की ओर ले जाती थी, पर अपनी इस दूसरी मानसिक स्थिति में वह आशावाद की ओर आये हैं। यह उनकी अन्तश्चेतना का, उनकी अन्तर्दृष्टि का परिणाम है।'

भावधारा में दिशा-परिवर्तन के कारण

कवि की भावधारा के परिवर्तन के कुछ कारण हैं। सर्वप्रथम पल्लव-काल में कवि के पिता का स्वर्गवास और अपनी रुग्णावस्था, जिसके कारण कवि का जीवन जर्जर हो गया था; पर शीघ्र ही स्वास्थ्य-लाभ के उपरान्त जीवन के प्रति कवि का दृष्टिकोण बदल गया। दूसरे, दर्शन और उपनिषद् के अध्ययन ने उसके रागतत्त्व में मंथन पैदा कर दिया एवं कवि ने सौन्दर्य-लोक से उतर कर मानव के चिरन्तन भाव-जगत् में प्रवेश किया। तीसरे, स्वदेशी-आन्दोलन एवं छायावाद की विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया के परिणामस्वरूप कवि पीड़ित मानव के सुख-दुख को देखने के लिए व्यग्र हो उठा। इस प्रकार 'पल्लव' में आवास करनेवाला कवि जीवन की डाल पर आकर व्योम-विहारी 'खग' के समान चहकने लगा। ये कारण पंत के जीवन-दर्शन की पृष्ठभूमि हैं।

पिता के स्वर्गवास और अपनी रुग्णता के अनन्तर स्वास्थ्य-लाभ के प्रति पंत ने 'परिवर्तन'-शीर्षक कविता को जन्म दिया, जिसमें वह सौन्दर्य द्रष्टा न होकर मानव-द्रष्टा हो गया—सृष्टि के 'निष्ठुर परिवर्तन' पर उसका करुणा-पल्लवित कोमल हृदय अश्रु-वाष्प से भर उठा। अब वह मानव-जगत् में सुख-दुःख, आशा-निराशा, जन्म-मरण आदि का क्रम पाने लगा। 'जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझड़ का अस्थि-पंजर।'

और—

आज बचपन का कोमल गात! जरा का पीला पात!
चार दिन सुखद चाँदनी रात, और फिर अंधकार अज्ञात।

—पल्लव, पृ०-७८

और—

खोलता उधर जन्म लोचन मूँदती इधर मृत्यु क्षण-क्षण!
वही मधु ऋतु की गुंजित डाल झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल सिहर उठती, जीवन है भार।

—जीवन की इस यथार्थ कठोरता से टकराकर 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच कवि की किशोर-भावना का सौन्दर्य-स्वप्न टूट गया। कुछ समय

जीवन के प्रति आशावादी दृष्टिकोण

के लिए उसके जीवन-वातायन में निराशा का कुहासा रहा, पर कवि उसी के बीच 'ज्योतिर्मय जीवन' को देखने लगा। 'उसे विश्वास है कि संसार की जड़ता में चेतन को ग्रहण कर उसकी अनुभूति को अपने भीतर विकसित करने की शक्ति है।'† मन की ऐसी दशा में ही कवि ने निम्नांकित पंक्तियों को गुनगुनाया—

---

† इस अनित्य जगत् में नित्य जगत् को खोजने का प्रयत्न मेरे जीवन में जैसे 'परिवर्तन' के रचनाकाल से ही प्रारंभ हो गया था, 'परिवर्तन' इस अनुसंधान का एक प्रतीक मात्र है। हृदय-मंथन का दूसरा मुख आप आगे चलकर 'गुंजन' और ज्योत्स्ना'—काल की रचनाओं में पायेंगे।

—पंत (प्रतीकः ४ : : हेमन्त : मेरा रचनाकाल।)

जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन।
बरसो लघु-लघु तृण-तरु पर चिर-अव्यय, चिर-नूतन। ‡

'पल्लव' में कवि को जो निराशा मिली थी, वह समयोपरान्त धुल गई। 'गुंजन' में कवि का दृष्टिकोण आशावादी रहा जिसके फलस्वरूप वह जीवन को प्यार करने लगा—

प्रिय मुझे विश्व सचराचर
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर
सुन्दर अनादि, शुभ सृष्टि अमर;...
जग-जीवन में उल्लास मुझे
नव आशा, नव अभिलाष मुझे। —गुंजन

अब कवि को चारों ओर आशा की स्वर्ण-किरण दीख पड़ने लगी, सृष्टि का प्रत्येक कण आशा के आलोक से आलोकित है, सभी के मन में नवल भाव गुंफित हैं—

नव रूप, गंध, रंग, मधु, मरन्द,
नव आशा, अभिलाषा अमन्द,
नव गीत-गुंज, नव भाव-छंद, — गुंजन

पहले संसार के जीवन में वेदना थी, पल-पल में आह थी, × पर आज जन्म-जरा-मृत्यु से युक्त जीवन का विकास-क्रम सुन्दर है—

---

‡ मृतिकार पात्र खनि भरि बार-बार
तोमार अमृत ढाल दिये
अविरत नाना वर्ण गंधमय।

— रवीन्द्रनाथ ठाकुर

× (क) सिसकते हैं समुद्र-से मन, उमड़ते हैं नभ से लोचन;
विश्व-वाणी ही है क्रन्दन; विश्व का काव्य अश्रु कण।

—पल्लव, पृ० १७

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन चिर-सुन्दर सुख-दुख का मन
... .

सुन्दर जीवन का क्रम रे सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन ।—गुंजन

जीवन तो सुंदर है, वर कवि की दृष्टि सुखःदुख, हास-अश्रु पर जाती है। अस्तु, वह निश्चय नहीं कर पाता है कि हास-अश्रु, सुख-दुःख के सापेक्ष रूप वरदान हैं या अभिशाप।* अब वह लोक-कल्याण का संधान करता है। वह जीवन में सुख-दुःख पाता है जो मानव-मन की दशाएँ हैं। इसीलिए वह सुखी या दुःखी होता है। इन दोनों का क्रमशः आना जरूरी है। इस सम्बन्ध में कवि के दृष्टिकोण की दो धाराएँ हैं—एक सापेक्षिक दृष्टिकोण और दूसरा निरपेक्ष दृष्टिकोण। उनका निरपेक्ष दृष्टिकोण है—

सुख-दुख का सम्बन्ध

सुख-दुख के पुलिन डुबाकर, लहराता जीवन-सागर।
अस्थिर है जग का सुख-दुख, जीवन ही नित्य चिरन्तन।
सुख-दुख से ऊपर मन का, जीवन ही रे अवलम्बन।

सापेक्षिक दृष्टिकोण से पंत कहते हैं—

आज का दुःख, कल का आह्लाद और कल का सुख आज विषाद।...
स्वीय कर्मों के अनुसार एक गुण फलता विविध प्रकार।
कहीं राखी बनता सुकुमार, कहीं बेड़ी का भार...
बिना दुख के सब सुख निःसार, बिना आँसू के जीवन भार।...
सुख-दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन।

(ख) आह, यह मेरा गीला गान। वर्ण-वर्ण है उर की कम्पन,
शब्द-शब्द है सुधि का दंशन; चरण-चरण है आह,
कण है कण-कण करुण-अथाह; बूँद में है वाडव का दाह।
—पल्लव, पृ० ११

* विरह है अथवा यह वरदान !
कल्पना में कसकती वेदना, अश्रु में जीता, सिसकता गान है,
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं, मधुर लय का क्या कहीं अवसान है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत ने सृष्टि के द्वन्द्वात्मक विधान को समझकर अपने मन को शान्त किया है। पंत का जो निरपेक्ष दृष्टिकोण है वह सापेक्षिक दृष्टिकोण को संतुलन देता है। इस जगत् में सुख-दुःख ही सब कुछ नहीं है, वरन् उसके बाद भी एक अजर-अमर तत्त्व है, वह है मन। पंत जीवन में सुख-दुःख का समन्वय चाहते हैं, पर वे सुख-दुःख को अस्थिर मानते हैं—

अस्थिर है जग का सुख-दुख

सुतरां, पंत मन की शक्ति और उसके महत्त्व को स्वीकार करते हैं जिसके कारण वे आत्मदर्शी हैं।

दुःख को कोई भी व्यक्ति प्यार नहीं करता, क्योंकि वह मानव-मन में वेदना को उद्भूत करता है; पर कवि दुःख को अपने हृदय से लगाता है, क्योंकि वह मन को पवित्र भावनाओं से पूर्ण बनाता है।* पंत ने सर्वदा सौंदर्य की घाटी से गुजरने का प्रयास किया है, पर जीवन की कठोरता ने कवि के मन को खिन्न बना डाला है। इसीलिए वह सांसारिक कष्टों की अग्नि में जलकर पवित्र एवं कोमल बनने का आग्रह करता है—

तप रे मधुर-मधुर मन!
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल
जग-जीवन की ज्वाला में गल
बन अकलुष उज्ज्वल औ' कोमल

यों तो आरंभ में दुःख कष्टकर है, पर अन्त में वह कल्याणप्रद है, दुख की घड़ियों के बीत जाने के अनन्तर जो आनन्द की घड़ियाँ आती हैं वे पीछे चलकर अत्यन्त रुचिकर होती हैं। + दुःख के समान सुख का आधिक्य भी

---

* दुख इस मानव-आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन
दुख के तम को खा-खाकर, भरती प्रकाश से वह मन।

× दुख-दावा से नव अंकुर, पाता नव जीवन का वन
करुणार्द्र विश्व की गर्जन बरसाती नव-जीवन-कण

जीवन में एकरसता उत्पन्न कर देता है जो मानव-जीवन की उदासीनता का एक प्रमुख कारण है—

जग पीड़ित है अति दुख से जग पीड़ित रे अति सुख से

अस्तु, 'अति' से बचना ही वास्तविक आनन्द है और वह दोनों के समविभाजन से—

मानव जग में बँट जावें दुख सुख से औ' सुख दुख से।

'इस मध्यम मार्ग को अपनाकर ही मनुष्य सदैव आध्यात्मिक आनन्द में निमग्न रह सकता है। श्रीमद्‌भगवद्‌गीता में भी भगवान ने कहा है कि सुख-दुःख में समता का नाम ही योग है; यद्यपि सुख मोह और आकर्षण है तथा दुःख आत्मा का भोजन है।' कवि ने निष्कर्ष के रूप में कहा है कि—

यह साँझ-उषा का आँगन, आलिंगन विरह मिलन का,
यह हास-अश्रु मय जीवन रे इस मानव-जीवन का।*

फिर भी सुख-दुख इस प्रकार एक सूत्र में गुम्फित हैं कि वे दोनों एक दूसरे से विलग नहीं हो सकते—

हैं बँधे बिछोह मिलन दो देकर चिर स्नेहालिंगन।

कवि जीवन को निकट से देखता है, उसका पर्यवेक्षण करता है और जीवन-सम्बन्धी उठनेवाली जटिल समस्याओं का समाधान करता है। वह

जीवन की समस्याओं का मनोवैज्ञानिक उपचार

सांसारिक विभीषिका एवं हाहाकार को निरखकर व्यग्र हो उठा है, उसका हृदय करुणाभिभूत होकर विचलित हो उठा है, जो बिलकुल स्वाभाविक है; पर यह तो विषम समस्या का समाधान नहीं हुआ। मानव के लिए रुदन-गीत का गान व्यर्थ है; क्योंकि इससे हम सहज में मुक्ति

---

* **मानव-जीवन वेदी पर परिणय है विरह-मिलन का**
सुख-दुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का, मन का।
—प्रसाद : आँसू

नहीं पा सकते हैं, क्योंकि भाग्य में पुती हुई कालिमा मिट नहीं सकती। अतएव दुःख की पुकार करना श्रेयस्कर नहीं है; क्योंकि इससे जीवन दूभर हो जाता है। इसीलिए वेदना को हम हृदय के एक कोने में सो जाने दें ताकि इसे कोई भी देख न सके, प्रत्युत हम स्वयं हँसें और हँसावें—इसी में मानव-जीवन की सार्थकता है—

आँसू की आँखों से मिल भर ही आते हैं लोचन
हँसमुख ही से जीवन का, पर हो सकता अभिवादन

—कवि की दृष्टि में जीवन के दर्द का यही मनोवैज्ञानिक उपचार है।

इच्छाओं की भट्ठी सभी के हृदय में है, वह उठना चाहती है। आज के जीवन के दुःखों की जड़ है मानव-मन की 'अति-इच्छा'। लेकिन हमारी इच्छाओं की पूर्ति कभी नहीं होती जिसके प्रति हम असंतोष प्रकट करते हैं।*

अति-इच्छाओं की असंगति

पर इन असंयमित इच्छाओं से हम अपने-आपको बिलग नहीं रख सकते, क्योंकि 'इच्छा' ही मानव का जीवन-धन है। मानव का प्रत्येक कार्य इच्छा पर समाधारित है, उत्प्रेरित है अनुप्राणित है। इसी के कारण मानव-जीवन की धारा गतिशील है। अगर जीवन में 'सम-इच्छा' का प्रादुर्भाव हो जाय तो इससे जीवन में संयम आ जाता है। संयमित जीवन हो जाने से व्यक्ति का तन-मन आनन्दित रहता है। विषय-वासना के हेतु जीवन-यापन करना एक प्रवंचना है। सच तो यह है कि सदिच्छाओं की पूर्ति के निमित्त जीवन व्यतीत करना अत्यन्त सार्थक है।× अमर्यादित आकांक्षाएँ पल भर के लिए आनन्द प्रदान करती हैं, पर दूसरे पल में ही वे जीवन-उद्देश्य की सिद्धि में बाधा पहुँचाती हैं। सत् इच्छाओं के कारण मन को शान्ति और असत् इच्छाओं के हेतु अशान्ति,

---

* बह जाता बहने का सुख लहरों का कलरव नर्तन,
बढ़ने की अति इच्छा में जाता जीवन से जीवन।

× इच्छा है जग का जीवन पर साधन आत्मा का धन;
जीवन की इच्छा है छल, इच्छा का जीवन-जीवन।

निराशा होती है। इसीलिए पंत ने कहा है कि मर्यादित आकांक्षाओं की साधना में ही मानव का सुख निहित है—

ये आधी अति इच्छाएँ साधन में बाधा-बंधन
साधन भी इच्छा ही है; सम इच्छा ही रे साधन।

—यह है जीवन की असंगतियों के प्रति कवि का दार्शनिक समाधानयुक्त दृष्टिकोण। इसीलिए कवि ने यह बतलाया है कि सुखमय जीवन के लिए आकांक्षाओं का मर्यादित होना अनिवार्य है।

आशा, विश्वास और ईश्वर

पंत मुख्यतया प्रकृति के कवि हैं, पर 'पल्लव' के बाद की रचनाओं में उसकी अन्तर्वृत्ति मानव-जीवन की ओर उन्मुख हुई है। वह मानव-समाज एवं उसकी व्यवस्था का गीत गाने लगा है, ईश्वर उसके काव्य का विषय नहीं रहा है, पर वह परोक्ष सत्ता के प्रति विश्वास रखता है; क्योंकि आशा और विश्वास पर ही हृदय की गति अवलंबित है—

सुन्दर विश्वासों से ही बनता रे सुखमय जीवन,
ज्यों सहज सहज साँसों से चलता उर का मृदु स्पन्दन।

आशा और विश्वास ही जीवन का स्पन्दन है, इसी पर जीवन की ऊर्मियाँ लहराती चलती हैं—

विश्वास चाहता है मन, विश्वास-पूर्ण जीवन पर;
सुख-दुख के पुलिन डुबाकर लहराता जीवन-सागर।

इसी आधार पर पंत ने लिखा है—

ईश्वर पर चिर विश्वास मुझे

'विश्वास भक्त की आधार-शिला है। अतः कवि का हृदय भक्ति-भावना

भक्ति-भावना

के लिए उपयुक्त क्षेत्र है। कवि उस विराट् अनन्त के चरण में आत्म-निवेदन भी करता है जिसका सौन्दर्य अखिल विश्व में अभिव्यक्त हो रहा है और जिसका माधुर्य उसके हृदय में बज रहा है—

नीरव तार हृदय में
गूँज रहे हैं मंजुल लय में·······
चरण-कमल में अर्पण कर मन
रज रंजित कर तन
मधु रस-मज्जित कर मम जीवन
चरणामृत आशय में।

कवि की भक्ति किसी साकार विशिष्ट वस्तु—मूर्ति अथवा अवतार के प्रति नहीं है। उसकी भक्ति निराकार की साकार में अभिव्यक्ति मात्र में है, उसकी भक्ति का उद्देश्य लौकिक सुख अथवा ऐश्वर्य की प्राप्ति है। इस दृष्टि से उसकी भक्ति निष्काम है; क्योंकि अगर उसे किसी वस्तु की कामना है तो इसी बात की कि उसका हृदय निर्मल और पर-सेवा की उन्नत भावनाओं से परिपूर्ण बने।' [1]

निर्मल कर्मपथ पर तत्पर धर
निर्मल का अन्तर
पर सेवा का मृदु-पराग भर।

मुक्ति और बंधन

बंधन और मुक्ति के संबंध में कवि का निजी दृष्टिकोण है। उसकी दृष्टि में मुक्ति मन की एक विशिष्ट दशा है और बंधन सुख की मृगतृष्णा के कीचड़ में फँसे रहने का नाम है। कवि मुक्ति की कामना नहीं करता है, क्योंकि इससे मनुष्य के व्यक्तित्व का लोप हो जाता है। 'कवि की दृष्टि में संसार के माधुर्य, सौन्दर्य और सरसता से पूर्ण विविध नाम-रूपों की साकारता से मुक्त हो जाना ही वास्तव में बंधन है। सगुण से मुक्त हो जाना सच्ची मुक्ति नहीं, वह तो एक प्रकार का अदृश्य बंधन है। सच्ची मुक्ति तो है शब्द, स्पर्श, रूप, रस और रंग से युक्त इस साकार जगत् के सौन्दर्य का रसपान करने में समर्थ होना।'

---

१. प्रो० शिवनन्दन प्रसाद, एम० ए०।

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन,
गंध-हीन तू गंध-युक्त बन, निज अरूप में भर स्वरूप-मन।
मूर्तिमान बन, निर्धन। गल रे गल, निष्ठुर मन!

मुक्ति और बंधन की भावना वैष्णवधर्म की भावना से साम्य रखती है। कवि ने तो यह स्वीकार किया है कि बंधन ही मुक्ति है और मुक्ति ही बंधन।

उपसंहार

संक्षेप में पंत की जीवन-दर्शन-संबंधी-भावना संयत और गंभीर है, वह साम्प्रदायिक नहीं, प्रत्युत स्वाभाविक है; क्योंकि वे भावनाएँ परिस्थितियों के प्रभाव के फलस्वरूप उद्भूत हुई हैं। अंत में कवि ने यह बतलाया है कि जीवन का वर्तमान संघर्ष शाश्वत नहीं है, उसका विनाश अवश्य होगा—

होंगे संघर्ष परास्त।
धर्म, नीति, आचार—
रुँधेगी सबकी क्षीण पुकार।

इसीलिए हमें जीवन के छोटे-से-छोटे क्षणों को भी आनन्दप्रद बनाना चाहिये, कवि का यही संदेश है—

सागर-संगम में है सुख जीवन की गति में भी लय,
मेरे क्षण-क्षण के लघु कण जीवन-लय से हो मधुमय।

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंत का जीवन-दर्शन एक ऐसा प्रकाश है जो मानव को अंधकार की गुफा से निकाल स्वर्ण-किरण के बीच रखने की पर्याप्त सामर्थ्य रखता है।

पंत की विचारधारा

भाव और विचार

भाव और विचार दोनों दो वस्तुएँ है, पर दोनों का संबंध अभिन्न हैं, एक के अभाव में दूसरा अपूर्ण है। भाव हृदय की सम्पत्ति है और विचार मस्तिष्क की उपज। दोनों का संतुलन काव्य में अनिवार्य है। यही कारण है कि भावुकता को विचारधारा से पूर्णरूपेण पृथक् कर देना असंभव है। प्रत्येक की एक अपनी विचारधारा होती है जिसके अनुसार वह साहित्य-क्षेत्र में एक विशिष्ट महत्ता संस्थापित कर लेता है। पंत की भी अपनी विचारधारा है जो साहित्य के रंगमंच पर दौड़ती नजर आती है। पंत ने 'ईश्वर, जीव, प्रकृति और इस त्रितय के अन्तर्गत आनेवाली जीवन, मृत्यु, सुख दुःख आदि गहनतम समस्याओं के प्रति अपनी सूझ को अभिव्यक्ति दी है जिससे परिचित हो जाना कवि की कविता के गूढ़ रहस्यों को समझने के लिए अत्यावश्यक है।

'पल्लव' तक पंत कल्पनाजीवी कवि और चतुर शब्द-शिल्पी के रूप में प्रसिद्ध रहे, पर 'गुंजन' में आकर पंत का भावुक कवि अधिक संयत हो गया है। यों तो पंत में चिंतन-प्रवृत्ति का आरंभ 'परिवर्तन'-शीर्षक कविता से हो पायी थी जिसके फलस्वरूप 'गुंजन' से हम कवि की रचना का युगान्तर पाते हैं। 'पल्लव' की अंतिम कविता में कवि ने अपनी बाल-कल्पनाओं एवं स्वप्नों से विदाई ले ली है, जैसा कि कवि ने लिखा है—

स्वस्ति जीवन के छाया-काल !
सुप्त स्वप्नों के सजग सकाल।
मूक मानस के मुखर मराल।
स्वस्ति, मेरे कवि बाल !

तुम्हारा मानस था सोच्छ्वास,
अलस पलकों में स्वप्न-विलास,
आँसुओं की आँखों में प्यास,
गिरा में था मधुमास ! —पल्लव

'वह छाया-काल से बाहर निकल आता है और सुख-दुःख, जन्म-मरण जैसे गहरे प्रश्नों पर विचार करने लगता है। प्रकृति के प्रति उसका दृष्टिकोण अधिक संयत हो जाता है। अब वह कल्पना का खिलवाड़ नहीं करता, जीवन उसे चारों ओर से घेरने लगता है। परन्तु इस जीवन का अर्थ आर्थिक और राजनैतिक जीवन नहीं है। यह है अंतरतम का जीवन, चिंतन और जिज्ञासा का जीवन। प्रकृति के नाश और परिवर्तन ने जहां कवि में जीवन की नश्वरता और अवसाद के स्वर उठाये हैं, वहां प्रकृति का उल्लास उसे जीवन की मूल प्रवृत्ति-जैसा लगता है। 'गुंजन' की कविताओं में कवि सुख-दुःख, हर्ष-विषाद और जन्म-मरण जैसे शाश्वत विषयों पर विचार करता है। वह कल्पना के सत्य से आत्मचिंतन और आत्म-दर्शन के सत्य की ओर बढ़ रहा है।' 'पल्लव' और 'गुंजन' के बीच ही कवि पर दैविक और दैहिक विपत्तियों का प्रकोप हुआ। इसी काल में कवि दर्शन और उपनिषद् के अध्ययन की ओर झुका और जीवन के रहस्यों के अनुसंधान में प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार उसके कवि-जीवन की दिशा बदल गई। कवि की इच्छाओं के संसार में कुछ समय तक नैराश्य और उदासीनता छा गई। जन्म के मधुर-रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थि-पंजर !

विचारधारा की पृष्ठभूमि

'खोलता इधर जन्म लोचन, मूँदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण !'
'वही मधुऋतु की गुंजित डाल, झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल सिहर उठती,—जीवन है भार।'

कवि की जीव-दृष्टि का मोह एक प्रकार से छूटने लगा और सहज जीवन व्यतीत करने की भावना में एक तरह का धक्का लगा। इस क्षणभंगुरता के 'बुदबुदों के व्याकुल संसार' में परिवर्तन ही एकमात्र चिरन्तन सत्ता जान

पड़ने लगी। कवि के हृदय की समस्त आशाऽकांक्षाएँ और सुख-स्वप्न अपने भीतर और बाहर किसी महान्, चिरन्तन वास्तविकता का अंग बन जाने के लिए, लहरों की तरह, अज्ञात प्रयास की आकुलता में ऊब-डूब करने लगे। किन्तु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से जहाँ जीवन के नाम-रूप-गुण के छिलके उतारकर मन को शून्य की परिधि में भटकता है वहाँ वह छिलके में फल के रस की तरह व्याप्त एक ऐसे सूक्ष्म संश्लेषणात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्त को अलौकिक आनन्द से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने कवि के मन को अस्थिर कर दिया।

जग के उर्वर आँगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन,
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर हे चिर - अव्यय चिर-नूतन !'—

इसी सविशेष कल्पना के आधार पर हम कह सकते हैं कि कवि ने अपने जीवन के प्रति एक नवीन आशा-समन्वित दृष्टिकोण को लेकर ईश्वर, जीव, प्रकृति, मुक्ति आदि समस्याओं पर विचार किया। इसी समय कवि पर प्राच्य एवं पाश्चात्य दर्शन तथा अन्य ललित कलाओं का विशेष प्रभाव पड़ा, पर यह उनपर बाह्य प्रभाव है जिसने उनकी हार्दिकता पर धक्का नहीं पहुँचाया। उन्हें भौतिक जगत् के आदर्शों के प्रति विश्वास नहीं रह गया। इसीलिए उन्होंने भारतीय आस्तिकता का आँचल दृढ़ता के साथ पकड़ा और अन्य कवियों के समान अपनी आस्तिकता को अभिव्यक्त करने में कवि को संकोच नहीं हुआ—

ईश्वर

ईश्वर पर चिर-विश्वास मुझे

यहाँ पर यह संकेत कर देना प्रासंगिक हो जाता है कि पंत के जीवन-संबंधी मर्मों एवं उनके विचारों को समझने के लिए 'ज्योत्स्ना' का अध्ययन अनिवार्य है। कवि द्वारा अभिव्यक्त 'गुंजन' के पद्यमय विचार, 'ज्योत्स्ना' में गद्यरूप में बिखरे पड़े हैं। उनपर पश्चिम के मार्क्सवाद का अक्षरशः प्रभाव पड़ा है, पर वे कठोर भौतिक युग का प्रतिकार करते हैं जिसका विचार निम्नलिखित शब्दों में 'ज्योत्स्ना' के द्वारा प्रकट किया गया है। यथा वह

कहता है—'मनुष्य को यथार्थ प्रकाश की आवश्यकता है। इस अनादि और अनन्त जीवन पर अनन्त दृष्टिकोणों से प्रकाश डाला जा सकता है। ज्ञान-विज्ञान से मनुष्य की अभिवृद्धि हो सकती है, विश्वास नहीं हो सकता। सरल, सुन्दर और उच्च आदर्शों पर विश्वास रखकर मनुष्यजाति सुख-शान्ति का उपभोग कर सकती है, पशु से देवता बन सकती है।' इसी ईश्वरत्व पर विश्वास रखकर ही नव-जीवन का निर्माण हो सकता है। कवि ने यों लिखा है-

सुन्दर विश्वासों से ही बनता रे सुखमय जीवन,
ज्यों सहज-सहज साँसों से चलता उर का मृदु स्पन्दन।

कवि को ईश्वर पर विश्वास तो है, पर उसके स्वरूप, स्थिति एवं सत्ता के संबंध में वह मौन है। क्योंकि वह जिस परोक्ष सत्ता में विश्वास करता है, वह न तो अवतारी ईश्वर से मेल खाता है और न अद्वैतवाद के ब्रह्म से। विशेष व्यक्तियों में ईश्वर की विशेष शक्ति पुंजीभूत हो जाती है, इनमें उसका विश्वास नहीं। अद्वैतवाद के ब्रह्म को तो 'मोतीवाली मछली' बतलाता है जिसको पाने के लिए 'जीवन-सागर के निस्तल जल' में प्रवेश करना उसे अभीष्ट नहीं है। वह द्वैत इसलिए पसन्द करता है कि द्वैत में ही व्यक्ति के व्यक्तित्व का महत्त्व सुरक्षित रह सकता है जिसमें व्यक्ति जीवन के सुख-दुख-पूर्ण सौन्दर्य का रस ले सके।

सुनता हूँ, इस निस्तल जल में रहती मछली मोतीवाली,
पर मुझे डूबने का भय है भाती तट की थल-जल-माली।
आएगी मेरे पुलिनों पर वह मोती की मछली सुन्दर,
मैं लहरों के तट पर बैठा देखूँगा उसकी छवि जी भर;

'कवि इसलिए अद्वैतवाद के पक्ष में नहीं, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं हुआ कि कवि रूढ़िगत द्वैत को ही सर्वांश में मानता है; क्योंकि द्वैतवादियों के समान जड़ और चेतन की अलग सत्ता में उसे विश्वास नहीं। वह ऐसा नहीं मानता कि जड़ सदैव जड़ रहेगा और चेतन सदैव चेतन रहेगा। उसकी धारणा है कि समस्त जड़ प्रकृति में भी किसी चेतन सत्ता का निवास है जिसके प्रभाव से प्रकृति के कण-कण में सौन्दर्य है, रस है, प्राणों का स्पन्दन है। उस

चेतन के अभाव में जड़ प्रकृति में आकर्षण संभव नहीं था। कवि की भावना सर्ववाद (Pantheism) के अधिक निकट है। सर्ववाद के अन्तर्गत किसी ईश्वर की तो कल्पना नहीं होती, लेकिन समस्त जड़-चेतन में व्याप्त किसी सूक्ष्म विराट् चेतन सत्ता का अस्तित्व मान्य होता है। यहाँ इतना कह देना यथेष्ट होगा कि व्यापक चेतन को कवि की रचनाओं में अनेक मूर्त आकार मिले हैं, अनेक स्वरूपों द्वारा इसकी अभिव्यक्ति हुई है। कहीं प्राकृतिक सौन्दर्य, कहीं मानव के भाव और कहीं प्रियतमा की रूप-माधुरी बनकर यही व्यापक चेतन अभिव्यंजित होता है। इसी व्यापक चेतन के प्रति कवि का प्रेम होता है। इसी व्यापक चेतन के प्रति कवि अपने व्यक्तित्व के अन्तरतम की श्रद्धांजलि भेंट करता है। कवि का प्रेम और कवि की पूजा का आधार अनेक रूपों में यही एक व्यापक तत्त्व है।'[१]

प्रकृति और जीव

कवि ने प्रकृति एवं जीव की सत्ता को चिरंतन एवं शाश्वत माना है। कवि के अनुसार ये सारी वस्तुएँ नश्वर नहीं हैं; क्योंकि इसकी नश्वरता से ही संसार असार है तथा इस प्रकार मानव शीघ्र ही विरक्त होने के लिए प्रचेष्टाशील होने लगेगा। इसीलिए ईश्वर की महत्ता के सदृश प्रकृति और जीव की भी महत्ता है। इसका कम महत्व नहीं है—

मानव दिव्य स्फुलिंग चिरंतन

—में ही अमरता का सन्देश है। जिस प्रकार मानव-जीवन-धारा चिर-व्यापी, चिरंतन एवं शाश्वत है, उसी प्रकार प्रकृति भी नित्य एवं नवीन है। इसका संकेत कवि ने 'नौका-विहार'-शीर्षक कविता की अन्तिम पंक्तियों में किया है। यथा—

शाश्वत लघु लहरों का विलास।
हे जग-जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन नौका - विहार।

---

१. प्रो० शिवनन्दन प्रसाद।

मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

जीवन के अमरत्व के साथ-साथ पुनर्जन्म पर भी विश्वास है, क्योंकि यह एक प्रकार का बंधन है—

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन।

वे इस प्रकार की मुक्ति से पलायन करते हैं। क्योंकि मानव का जन्म-मरण शाश्वत है। जिस प्रकार जीव की सत्ता चिरंतन है, उसी प्रकार प्रकृति की सत्ता भी चिरंतन है।

जीवन और जगत

विश्व की सृष्टि सत्य, शिव एवं सुन्दर है। संसार प्रकृतिमय है और वह कवि के हृदय में आह्लादमयी भावनाओं को जन्म देता है। इसके अतिरिक्त कवि का मन संकुचित व्यक्तिगत सुखों की तृष्णा के कारण चंचल रहता है। अस्तु, प्रकृति चिरव्यापी एवं सौन्दर्यमय है—

प्रिय मुझे विश्व यह सचराचर
तृण, तरु, पशु, पक्षी, नर, सुरवर
सुन्दर अनादि शुभ सृष्टि अमर ;
निज सुख से चिर-चंचल मन,
मैं हूँ प्रतिपल उन्मन, उन्मन।

जब जगत् के जीव और प्रकृति सत्य एवं सुन्दर हैं तब जीवन का सत्य एवं सुन्दर होना अनिवार्य है। इसीलिए पंत का कवि कहता है—

जग-जीवन में उल्लास मुझे, नव आशा नव अभिलाष मुझे।

लेकिन मानव-जीवन इतना सुन्दर नहीं है, जितना कवि समझता है।

सुख-दुःख

यहाँ मानव-जीवन में पीड़ा का साम्राज्य है और उस जीवन के चारों ओर कुहराम मचा है। क्योंकि मानव-जीवन सुख-दुःख के ताने-बानों से बीना हुआ है। कवि के सम्मुख सुख-दुःख का प्रश्न है। देखिये—

जग-जीवन में है सुख-दुख, सुख-दुख में है जग-जीवन।

अतः मानव सुख-दुःख की कठोर परिधि से बाहर नहीं है और इन दोनों के मर्मों से भली-भाँति परिचित है—

सुख-दुःख न कोई सका भूल।

और जीवन की पूर्णता के लिए कवि एक नवीन मार्ग के अनुसंधान में निकल पड़ता है। मानव-जीवन के निरीक्षण के उपरान्त कवि इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि सुख-दुख का समविभाजन उचित रीति से नहीं हुआ है। सुख या दुःख का आधिक्य ही—मानव-जीवन की पीड़ा का मूल है। जीवन की सार्थकता के लिए सुख और दुःख का अनुपाततः मिश्रण अनिवार्य है और तभी जीवन आनन्दमय एवं शान्तिमय हो सकता है। यहाँ कवि का साम्यवादी विचार स्पष्टतः झलकता है, जो पाश्चात्य साहित्य की देन हैं। जिस प्रकार मार्क्सवादी सिद्धान्त के अनुसार सम्पत्ति का समविभाजन अनिवार्य है, उसी प्रकार सुख या दुःख वांछित नहीं—

मैं नहीं चाहता चिर-सुख मैं नहीं चाहता चिर-दुख।

जीवन में सुख या दुःख को स्थायी रूप से वर्तमान रहना भी एक प्रकार का संताप है—

अविरत दुख है उत्पीड़न, अविरत सुख है उत्पीड़न

इसीलिए जीवन की सार्थकता एवं जीवन का आनन्द दोनों के सम्मिश्रण में ही है और जीवन की पूर्णता के लिए आपस में सुख-दुःख समान रूप से बँट जायँ—

सुख-दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरण।
मानव जग में बँट जावे दुख-सुख से औ' सुख दुख से।

अंत में कवि मानव-जीवन को हास-अश्रुमय आनन मानता है—

यह साँझ उषा का आँगन आलिंगन विरह-मिलन का;
चिर-हास-अश्रुमय आनन रे इस मानव-जीवन का।

इसी प्रकार कवि 'प्रसाद' ने भी 'आँसू' में लिखा है—

मानव-जीवन की वेदी पर परिणय है विरह-मिलन का
सुख-दुख दोनों नाचेंगे है खेल आँख का, मन का।

वास्तव में मानव अपने कल्याण के लिए 'अति इच्छा' करता है, परन्तु उसकी आकांक्षाओं की पूर्ति कहाँ हो पायेगी? यही असफलता जीवन का एक गुरुतम भार बन जाती है—

बढ़ने की इच्छा से जाता जीवन से जीवन।

परन्तु कवि को 'अति इच्छा' से दुःख की प्राप्ति होती है। इतना होते हुए भी कवि दुःख से मुक्त नहीं होना चाहता—

दुख इस मानव - आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन,
दुख के मन को खा - खा कर भरती प्रकाश से वह मन।

वस्तुतः बिना दुःख के प्राप्त की हुई वस्तु में उतना आनन्द नहीं आता, जितना कि दुःख से प्राप्त की हुई वस्तु में। किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

जानै ऊख-मिठास को जो मुख नीम चबाय।

यह जो सिद्धान्त है, वह अक्षरशः सत्य है। जो मनुष्य दिन-रात सुख के क्रोड़ में पला रहेगा, उसे वास्तविक सुख की प्राप्ति कतई न होगी। कल्पना कीजिए उस भूख से पीड़ित भिखारी की, जिसे चार रोज की बासी रोटी दी जाती है और वह उसे प्रेम से खा जाता है, परन्तु एक अमीर आदमी को वही रोटी दी जाय तो वह उठाकर नाली में फेंक देगा। ऐसा क्यों होता है? यह स्वाभाविक है। इसीलिए दुःख के उपरान्त सुख की प्राप्ति में एक मीठा-मीठा आनन्द आता है। यथा—

बिना दुख के सब सुख निस्सार, बिना आँसू के जीवन भार,
दीन-दुर्बल है रे संसार, इसी से दया, क्षमा, औ' प्यार।

'ज्योत्स्ना' में पंत की कल्पना कहती है—'संसार की भौतिक कठिनाइयों से परास्त होकर, उसके दुखों से जर्जर होकर, मनुष्य की समस्त शक्ति इस समय केवल बाह्य प्रकृति के अत्याचारों से मुक्ति पाने की ओर लगी है जिसके लिए उसने भूत-विज्ञान की सृष्टि की है। मानव-जीवन के बाह्य क्षेत्रों एवं विभागों को संगठित एवं सीमित कर, अपने आंतरिक जीवन के लिए उदासीन होकर, मनुष्य अपनी आत्मा के लिए नवीन कारा निर्मित कर रहा है।' कवि ने 'आन्तरिक जीवन' की व्याख्या इन शब्दों में की है—

आत्मा है सरिता के भी जिससे सरिता है सरिता
जल जल है, लहर-लहर रे, गति गति, सृति सृति चिर-भरिता।

आत्मा जीवन का आधार स्तंभ है और इसके विस्तार में ही मानव का परमानन्द अन्तर्हित है। 'अहं ब्रह्म' की यही मूल साधना है। यह मानवता की सिहरन, स्पन्दन और कंपन से आविर्भूत है। मानव-जीवनाकाश में सुख-दुःख अस्थिर प्रतीत होता है, परन्तु जीवन नित्य और चिरन्तन है। जीवन ही जो सुख-दुःख से ऊपर है, वह मन का एकमात्र अवलंबन है—

आत्मा

अस्थिर है जग का सुख-दुख जीवन ही नित्य चिरंतन!
सुख-दुख से ऊपर, मन का जीवन ही रे अवलम्बन!

वास्तव में सुख-दुःख का अस्तित्व तो अवश्य है, परन्तु वह नित्य एवं चिरंतन नहीं है। जीवन चिरस्थायी है और दोनों को समान रूप से अपने अन्दर स्थान दिये हुए है। कवि ने जीवन को इसी सूक्ष्म दृष्टि से ग्रहण किया है। वह दृढ़तापूर्वक कहता है—

जीवन की लहर-लहर से हँस-खेल, खेल रे नाविक!
जीवन के अंतराल में नित बूड़-बूड़ रे भाविक!

अतः इस स्थिति से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि मानव-जीवन की प्रत्येक लहर में, चाहे वह सुख की हो चाहे दुःख की, उसे हँसते-खेलते सहना है। इस प्रकार आत्म-चिंतन की ऊर्मि में हम इतने तल्लीन हो जाते हैं कि उसकी प्रत्येक लहर प्रिय प्रतीत होती है। जीवन-युद्ध-स्थल में जो दौड़ है, उसमें जन्म-मरण का कोई विशेष स्थान नहीं। उस जन्म-मरण में ही जीवन की सार्थकता नहीं है। इसी पर एक अंग्रेज कवि ने लिखा है।

Birth is not the beginning of life
Nor death is ending
Birth and death begin and end
Only a single chapter in life

इसीलिए यह कहा गया है कि मानव जन्म-मरण के पचड़े में न पड़कर जीवन-पथ पर अग्रसर रहे और अपने कर्त्तव्य की पूर्त्ति करता जाय। अस्तु, हम मानव का वास्तविक सुख इसी में है कि अपने जीवन की प्रत्येक छोटी-मोटी परिस्थितियों को हँसते-हँसते झेल लें, क्योंकि इन परिस्थितियों का अपना विशेष महत्त्व है। इस प्रकार प्रत्येक क्षण हम आनन्दमय बनाए रखें, वस्तुतः सम्पूर्ण मानव-जीवन की सार्थकता इसी में है—

महिमा के विशद जलधि में हैं छोटे-छोटे-से कण,
अणु से विकसित जग-जीवन लघु अणु का गुरुतम साधन;

हमलोगों ने अत्यधिक महत्त्वाकांक्षा के कारण अपने जीवन को विषाद-पूर्ण बना दिया है। इन्हीं सब वजहों से हमारे जीवन का उल्लास विलीन हो गया है। कवि ने एक उपदेश दिया है कि अपने अभीष्ट की पूर्त्ति की छोटी-छोटी वस्तुओं को हेय दृष्टि से नहीं देखना चाहिए, बल्कि उन्हीं क्षणों को आह्लादमय बना अपने जीवन को सुन्दर बनावे—

सागर-संगम में है, सुख, जीवन की गति में भी लय,
मेरे क्षण-क्षण के लघु-कण जीवन लय से हो मधुमय।

इस प्रकार छोटी-छोटी वस्तुओं के प्रति हमारी सहानुभूति का होना अनिवार्य है। यह कवि हृदय का स्पन्दन नहीं है, बल्कि विश्व-जीवन की धड़कन है। इसके शब्द कवि द्वारा निर्मित हैं, परन्तु विचार तत्त्व-चिंतक हैं। 'पल्लव' का कवि जगत् को हास-उल्लासमय न देखकर अपने अंतःप्रदेश की सहानुभूति का प्रसार इस संतप्त जग में करता है। उसका सौन्दर्य-सुरभित हृदय, दूसरे के प्रणय-मधुरित कलित हृदय को देखकर रो उठता है और अपने को—

तप रे मधुर-मधुर मन;
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल, जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल, तप रे विधुर-विधुर मन।
अपने सजल स्वर्ण-से पावन रच जीवन का मूर्ति पूर्णतम।

मुक्ति और बंधन

कवि संसार के संताप से अपने जीवन को अकलुष, उज्ज्वल एवं कोमल बनाता है। यह इसलिए नहीं कि वह अपनी योगसाधना के द्वारा मुक्ति प्राप्त कर ले। हमने ऊपर एक स्थल पर निर्देश किया है कि कवि जीवन के अमरत्व के साथ-साथ पुनर्जन्म पर भी विश्वास रखता है, क्योंकि मुक्ति स्वयं एक प्रकार का बंधन है—

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन, गंधहीन तू गंधयुक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन ! मूर्तिमान बन, निर्धन।

वह जीवन को पावन बनाकर मुक्ति की कामना नहीं करता है, क्योंकि वह देवता के निकट पहुँचकर वरदान प्राप्त करने के लिए आतुर नहीं। वह संसार के साथ ममत्व स्थापित कर मनुष्य के हृदय तक पहुँचकर मानवता का सन्देश देने की कामना करता है। ईश्वर की प्राप्ति में हमारा कर्म सहयोग देता है, परन्तु वह जो कुछ भी देता है अपनी आरती लेकर, परन्तु मनुष्य हमें सफलता-असफलता, सुख-दुःख, जन्म-मरण, हर्ष-विषाद, आशा-निराशा में सहायक बनेगा, अपनी आत्मा से आत्मा मिलकर। शरीर की भिन्नता अवश्य रहेगी, परन्तु, आत्मा एक अमर, शाश्वत एवं चिरंतन रहेगी। इसीलिए कवि काजी नजरुल ने लिखा है कि हमें किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है और है भी तो केवल मनुष्य की—

नाई दानव, नाई असूर; चाई ने सूर, चाई मानव !

वस्तुतः जिस दिन वह मानव मानवता के संग भू पर अपने चरण-पद्म को रखेगा, उसी समय, उसी क्षण, यह संसार स्वर्गमय हो जायगा। यही मानव हमारा ईश्वर है। जिस रोज ऐसे मनुष्यों का आविर्भाव होगा, उसी रोज के लिए पंत ने 'ज्योत्सना' के एक गीत में लिखा है—

न्योछावर स्वर्ग इसी भू पर, देवता यही मानव शोभन,
अविराम प्रेम की बाँहों में है मुक्ति यही जीवन-बंधन !

—ज्योत्स्ना से

अब प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार जो भू-स्वर्ग होगा, वह क्या संसार से विरक्त एवं विमुख होकर ? कवि के अनुसार कदापि नहीं। इसीका

विशद वर्णन कवीन्द्र रवीन्द्र की पंक्तियों में हो पाया है। निम्नलिखित पंक्तियों को देखिये—

वैराग्य - साधने मुक्ति से आमार नय
असंख्य - बंधन माझे महानन्दमय
लभिव मुक्तिर स्वाद एइ बसुधार
मृतिकार पात्र खानि भरि बारम्बार
तोमार अमृत ढालि दिबे अविरत
नाना वर्णं गन्धमय ! प्रपीपेर य तो
समस्त संसार मोर लक्ष बत्तिकाय
ज्वालाये तुलिबे आलो तोमारि शिखाय
तोमार मन्दिर माझे !

इन्द्रियेर द्वार
रुद्ध करि योगासन, से नहे आमार,
जे किछु आनन्द आछे दृश्य गन्धे गाने
तोमार आनन्द र'बे ता'र माझखाने।
मोह मोर मुक्ति रूपे उठिबे ज्वलिया,
प्रेम मोर भक्ति रूपे रहिबे फलिया।

अर्थात्—'वैराग्य-साधन से जो मुक्ति होती है वह मुझे नहीं चाहिये। मैं तो असंख्य (सांसारिक) बंधनों के बीच में पड़ा हुआ महानंदमय (सच्चिनानंदमय) मुक्ति का स्वाद पाऊँगा। इस वसुधा की मिट्टी के बने हुए प्याले में ही तुम (प्रभु) नाना वर्ण-गन्धमय अपना अमृत बार-बार ढाल दोगे। प्रदीप की नाईं मेरा यही संसार (जीवन) लाखों बत्तियों के प्रकाश से, तुम्हारी ही ज्योति-शिखा से उद्भासित होकर, तुम्हारे ही मन्दिर (विश्व) में जगमगा उठेगा। 'योगासन करने से यदि इन्द्रियों के द्वार रुद्ध होते हैं तो मुझे योगासन का दरकार नहीं। (संसार के) दृश्य, गन्ध, गान में जो कुछ भी आनन्द है, उनके बीच मुझे तुम्हारा ही आनन्द उपलब्ध होगा। तब मेरा मोह ही मुक्ति रूप में खिल उठेगा, मेरा प्रेम ही भक्ति रूप में सुफल हो जायगा।'

सचमुच मानव को इन सब वस्तुओं से परे रहना चाहिये। वह विहग की भाँति स्वच्छन्द रहे और इसी में उसके जीवन का सौन्दर्य है। कवि ने मानव-जीवन के क्रम का एक ढाँचा तैयार किया है—

सुन्दर से नित सुन्दरतर सुन्दरतर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे सुन्दर-सुन्दर-जग-जीवन।

और वह कोरे ज्ञान से बहुत घबराता है। इसे 'शून्यजृम्भामात्र निद्रित बुद्धि' मानता है। इसीलिए कवि ने जीवन को निर्लिप्त दृष्टि से देखकर कहा है—

मैं प्रेमी उच्चादर्शों का, संस्कृति के स्वर्गिक स्पर्शों का
जीवन के हर्ष-विमर्शों का, लगता अपूर्ण मानव-जीवन,
मैं इच्छा से उन्मन-उन्मन।
जग जीवन में उल्लास मुझे, नव आशा, नव अभिलाष मुझे
चाहिये विश्व को नवजीवन, मैं आकुल रे उन्मन-उन्मन।
(गुंजन)

यहाँ पर पंत ने यह जिज्ञासा प्रकट की है कि 'विश्व को नवजीवन' चाहिये परन्तु उसका स्वरूप क्या हो? इसका स्पष्टीकरण उन्होंने ज्योत्स्ना के शब्दों में किया है—'आदर्श चिरंतन अनुभूतियों की अमर प्रतिमाएँ हैं। वे तार्किक सत्य नहीं, अनुभावित सत्य हैं! आदर्शों को सापेक्ष दृष्टि से देखने पर ही मनुष्य उनकी आत्मा तक पहुँच सकता है। निरपेक्ष सत्य शून्य नहीं, वह सर्व है। प्रत्येक वस्तु का निरपेक्ष मूल्य भी है। आदर्श व्यक्ति के लिए असीम है। देश, काल, समाज आदर्श की सीमाएँ हैं, सार नहीं; उनके इतिहास हैं, तत्त्व नहीं।' इससे स्पष्ट होता है कि उनके आदर्श परम्परागत एवं रूढ़िगत नहीं हैं। 'उनके आदर्श स्वभाव के अनुरूप चलते हैं। प्रवृत्ति-निवृत्तिमार्ग (Positive negative attitudes) सदैव ही रहेंगे, दोनों ही अपने-अपने स्थान पर सार्थक हैं, पहला भोक्ता के लिए, दूसरा द्रष्टा के लिए, जिसे ज्ञान प्राप्त करना है।'

पंत ने नवजीवन का जो स्वप्न देखा है, वह यह है कि—'संसार से यह तामसी विनाश उठ जाय और सृष्टि प्रेम की पलकों में, अपने ही स्वरूप पर मुग्ध, सौंदर्य का स्वप्न बन जाय।'

पंत का कवि भौतिकवादी एवं अध्यात्मवादी कलामय सिद्धन्तों का अनूठा संकर चाहता है, पर उसकी मनःकामना परिपूर्ण न हो सकी, क्योंकि—'ज्योत्स्ना' के वेदव्रत के शब्दों में—'पाश्चात्य जड़वाद की मांसल प्रतिमा में पूर्व-अध्यात्म-प्रकाश की आत्मा भर एवं अध्यात्मवाद के अस्थि-पंजर में भूत या जड़ विज्ञान के रूप-रंग भर हमने नवीन युग की सापेक्षित परिपूर्ण मूर्ति का निर्माण किया।' और 'इसलिए इस युग ('ज्योत्सना' में सांकेतित का भावी युग) का मनुष्य न पूर्व का रह गया है, न पश्चिम का रह गया है; पूर्व और पश्चिम दोनों ही मनुष्य के बन गए हैं।' पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में—'यह पंत का सापेक्षिक दृष्टिकोण है, किन्तु पंत का एक निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है। वे अपनी दार्शनिक सूक्ष्मता में बहुत ऊपर उठ जाते हैं। एक ओर तो सापेक्षिक दृष्टिकोण से वे यह कहते हैं—

सुख - दुख के मधुर मिलन से यह जीवन हो परिपूरन।

दूसरी ओर उनका यह निरपेक्ष दृष्टिकोण भी है—

सुख - दुख के पुलिन डुबाकर लहराता जीवन - सागर
सुख - दुख से ऊपर मन का जीवन ही रे अवलम्बन।

पंत का यही निरपेक्ष दृष्टिकोण सापेक्षिक दृष्टिकोण को सन्तुलन देता है। सुख-दुःख तथा आत्मा और भूत को पंत का कवि निमित्तमात्र मानता है। इसीलिए उनके प्रति अनावश्यक लोभ न रखकर उनका समुचित संकलन कर लेता है। यों कहें कि उभय-द्वन्द्वात्मक तत्त्वों के परे एक परम सत्य को पा लेने के लिए कवि अपने निरपेक्ष दृष्टिकोण में एक तटस्थ द्रष्टा है। हाँ, उसकी तटस्थता मनुष्य की आत्मसाधना की ओर अधिक ममतालु है।' पंत की कविताओं में कवि-कल्पना की भाँति विचारों का भी गुंफन है। उनकी कविता दार्शनिक विचारों का एक शब्द-कोष है, जिसमें इच्छा, व्यक्ति, समाज, ईश्वर

और सुख-दुःख-सम्बन्धी चिंतन-सामग्री है। इसमें साधना का भरपूर उपकरण है, परन्तु अतिशय साधना लोक-कल्याण के लिए लाभप्रद नहीं। इसलिए 'समइच्छा' ही जीवन की भीख है—

साधन भी इच्छा ही है समइच्छा ही रे साधन।

विश्व की सृष्टि के समय ईश्वर ने मानव के शरीर का सृजन इसलिए किया है कि वह विश्व-जीवन के प्रति प्रेम और सहानुभूति प्रकट करेगा। कवि ने भी मानव का आदर्शमय सुसज्जित मूर्त्त रूप प्रस्तुत किया है—

तुम मेरे मन के मानव मेरे गानों के गाने;
मेरे मानस के स्पन्दन, प्राणों के चिर पहचाने!

+ + + +

सीखा तुमसे फूलों ने मुख देख मन्द मुस्काना,
तारों ने सजल नयन हो करुणा-किरणें बरसाना।

('मानस' से)

अब पंत का कवि कल्पनामय छायालोक से यथार्थ की भूमि पर आ उतरा और मानव-जीवन के उलझे हुए सुख-दुःख, जन्म-मरण, मानव-प्रकृति, नारी-रूप, राजनैतिक, सामाजिक, धार्मिक—गुत्थियों के विचारों का सजीव रूप प्रस्तुत किया, क्योंकि आज की परिस्थिति ऐसी हो गई है कि मानव भाव-प्रवण नहीं रह सकता; कवि के शब्दों में—

उपसंहार

अपने मधु में लिपटा कर कर सकता मधुप न गुंजन,
करुणा से भारी अंतर खो देता जीवन-कंपन।

जीवन, प्रकृति, प्रेम और सौंदर्य

पंत जीवन को परिवर्तन मानते हैं, साथ ही उसे शाश्वत भी। इन परिवर्तनों के भीतर अपरिवर्तन छिपा बैठा है। जीवन-सरिता प्रवहमान है, चिरंतन है। सुतरां, उसमें जन्म-मरण का सूत्र गुम्फित है। इसलिए जन्म और मृत्यु इस जगत्-जीवन के दो द्वार हैं। कवि ने जन्मान्तरवाद को माना है। वह मुक्ति की कामना नहीं करता है, क्योंकि 'जबतक हमलोग विश्व के मनस्तत्त्व के इन नाम-रूप के कोषों को धारण किए रहेंगे, मानव जाति विश्राम नहीं ले सकेगी। अतएव हमें पुनः अनन्त में लय होकर अव्यक्त हो जाना चाहिए। बीज संसार को पत्र-पुष्प-फल देकर फिर बीज में ही परिणत हो जाता है। यही सृष्टि का रहस्य है।' इसलिए उन्होंने कहा है—

जीवन

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन।

जीवन असीम है। पंत की कविताओं से ज्ञात होता है कि मानव और मानवेतर दोनों चेतन हैं। चेतनता असीम में है, पर ससीम कणों में असीम की अभिव्यंजना भी छायावाद का महत्त्वपूर्ण उपादान है। Life is eternal and life is all pervading—पंत की कविताएँ इसी अनुभूति की अभिव्यंजना करती हैं। जीवन सुखमय है, पर कवि का कथन है कि—

बिना दुख के सुख निस्सार बिना आँसू के जीवन भार !

इतना ही नहीं,

दुख इस मानव - आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन
दुख के तम को खा - खा कर भरती प्रकाश से वह मन।

दुख कवि-जीवन के लिए इसलिए प्यारा है कि वह सुख को मधुर बना देता है। सुख के माधुर्य को बढ़ाने के लिए दुःख है। इसके उपरान्त जीवन में सुख-दुख का सामंजस्य चाहता है—

सुख - दुख के मधुर मिलन से, यह जीवन हो परिपूरण।

पंतजी की प्रकृति चेतन है, सजीव है, जड़ नहीं। फूल प्रकृति नहीं, बल्कि इसके अन्दर जो चेतन है, वह प्रकृति है। यह अणु-अणु में व्याप्त है, इसलिए प्रकृति मुर्झाती नहीं है। यह मुर्झाना नवीनोल्लास का बीजारोपण है। प्रकृति आनन्दमय है और मानव भी, क्योंकि दोनों एक ब्रह्म के ही दो खंड हैं।

चेतना और प्रकृति

संसार की प्रत्येक वस्तु ब्रह्म है। जड़-चेतन भी ब्रह्म है अर्थात् ब्रह्म ही से सबकी उत्पत्ति हुई है। 'असंख्य कोटि के जीवों एवं मनुष्यों से युक्त—वन, उपवन, मरु, उर्वर, पर्वत, समुद्रों से निर्मित यह पृथ्वी समस्त विभिन्नताओं के रहते हुए भी एक है। यह अभ्रभेदी पर्वत और दुस्तर समुद्र भी इसकी एकता को नष्ट नहीं कर सकते।' जो भी हो, प्रकृति मानव के लिए अपरिचित नहीं है। दोनों का परिचय युग-युग से है। वह देवि, माँ, सहचरि और प्राण के रूप में है। देवि में Admiration है, माँ इसलिए कि प्रकृति से शान्ति (Solace)

सौंदर्य और नारी

मिलती है। सहचरि और प्राण इसलिए कि उसमें कवि का प्राण स्पन्दित है। सौन्दर्य को नारी की मूर्ति दी गई है। सौंदर्य का सम्बन्ध कोमलता है। कवि के शब्दों में—'प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखनेवाली नारी के रूप में देखा है।

'उस फैली हरियाली में
कौन अकेली खेल रही मा,
वह अपनी वयवाली में—

पंक्तियाँ मेरी इस धारणा की पोषक हैं। जब-जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य अनुभव किया है तब-तब मैंने अपने को भी नारी-रूप में अंकित किया है।' यही कारण है कि उन्होंने प्रकृति के पुरुष-पक्ष को सर्वथा अपने से दूर रखा (सिर्फ 'परिवर्तन' को छोड़कर)। यों तो बलिदान होनेवाले युवकों में कम

सौन्दर्य नहीं है, पर पंत का कवि इसे अंकन नहीं करता। उदाहरण स्वरूप 'मधुवन'-शीर्षक गीत को लीजिये। प्रेयसी की उपस्थिति के कारण प्रकृति में वसंत का आगमन हो गया है—

आज वन में पिक, पिक में गान, विटप में कलि, कलि में सुविकास,
कुसुम में रज, रज में मधु-प्राण, सलिल में लहर, लहर में लास।

—मधुवन

सौन्दर्य

सौन्दर्य प्रत्येक जीवन में एक स्निग्ध भावना का आविर्भाव करता है, इसलिए पंत के साथ भी यह सहज (Natural) है। सौन्दर्य कवि पंत को अपनी ओर खींचता है। यही कारण है कि उनके हृदय में सौन्दर्य की जितनी भावना व्याप्त रही है, उसी अनुपात के अनुसार उन्होंने सौन्दर्य की सृष्टि की है। पंत का सौन्दर्य रूप-सौन्दर्य नहीं; बल्कि भावात्मक (Ethereal Aesthetic) है। इनका भाव-सौन्दर्य अंग्रेजी के कवि शेली की भाँति है। कीट्स और शेली में यही अन्तर है कि कीट्स रूप-सौन्दर्य की ओर झुका हुआ है, पर शेली भाव-सौन्दर्य की ओर। कालिदास ने अपने काव्य में भाव-सौन्दर्य को ही प्रधानता दी है, पर वे रूप-सौन्दर्य को सर्वथा त्याज्य वस्तु नहीं मानते। यही बात पंत के साथ भी है। नीचे की पंक्तियों में यह देखिये कि पंत ने सौन्दर्य में किस प्रकार विश्व का निर्माण किया है—

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन, चिर-सुन्दर सुख-दुख का मन,
सुन्दर शैशव यौवन रे—सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन!
सुन्दर वाणी का विभ्रम, सुन्दर कर्मों का उपक्रम,
चिर-सुन्दर जन्म-मरण रे—सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन!

कवि का हृदय सुन्दर का ही निरूपण करता है। सृष्टि के कण-कण में सौन्दर्य की चाँदनी है। सौन्दर्य के प्रति कवि के हृदय में तन्मयता है। सौन्दर्य के प्रति स्वयं कवि खिंचा चला जा रहा है, पर पहचानने में असमर्थ है। इसी को एक उर्दू शायर ने कहा है—

कुछ खटकता तो है पहलू में मेरे रह-रह कर,
अब खुदा जाने तेरी याद है या दिल मेरा ।

हृदय में जो अगोचर सौन्दर्य है, उसी रहस्यमय सौन्दर्य का पाना जीवन का सच्चा आनन्द है। सौन्दर्य हृदय में भरा है, उसके बाहर नहीं है। उस अगोचर तथा अरूप सौन्दर्य के उद्‌घाटन के लिए ब्रह्म के एक तंतु का आलंबन होना आवश्यक है और जहाँ वह मिला कि उसका सौन्दर्य निखरकर हमारे सम्मुख आ पड़ता है। श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी के शब्दों में—'सौन्दर्य का प्रथम कमल, प्रेम के क्षीरसागर में सोए हुए भगवान की नाभि में फूटा था न कि वासना के क्षार-समुद्र में। सौन्दर्य को देखने के लिए हमारी दृष्टि क्षीर-सागर की ही तरह प्रशस्त और उज्ज्वल होनी चाहिए। माताओं ने इसीलिए सौन्दर्य के शिशु को, दूध से सींच-सींचकर लाड़-प्यार किया।' सौन्दर्य निराकार एवं निर्विकार है। एक अंग्रेज कवि ने लिखा है— Beauty is God and God is beauty. अर्थात् 'ईश्वर ही सौन्दर्य है और सौन्दर्य ही ईश्वर।' कवि ने सौन्दर्य को परियों का संसार मानकर कितनी सुन्दर कल्पना की है—

दूर उन खेतों के उस पार, जहाँ तक गई नील झंकार
छिपा छायावन में सुकुमार, स्वर्ग की परियों का संसार
वहीं उन पेड़ों में अज्ञात, चाँद का है चाँदी का वास
वहीं से खद्योतों के साथ, स्वप्न आते उड़-उड़ कर पास।

कवि सौन्दर्य का उपासक है, पर उस अज्ञात सौन्दर्य के प्रति अनजान है, वह एक प्रश्न उपस्थित करता है—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर,
हो उठता चंचल-चंचल ?
सोए वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से मरमर,
बज उठते प्रतिपल-प्रतिपल ?

सौन्दर्यमयी भावना दो प्रकार की है—एक व्यापक और दूसरी व्यक्तिगत। 'व्यापक भावनामय सौन्दर्य का दृष्टि-बिन्दु अंत में आध्यात्मिक रूप पाकर अनन्त सागर की लहरों में लहरा जाता है, पर व्यक्तिगत भावनामय सौन्दर्य अथवा प्रेम के संबंध की क्रीड़ा हृदय में मोद-मधुरिमा की झलक दिखा, स्वर्गीय सुषमा से आह्लादित हो उठती है।' व्यक्तिगत भावात्मक सौन्दर्य का रूप 'भावी पत्नी के प्रति' में है—

प्रिय प्राणों की प्राण,
न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान !
नवल कलिकाओं की सी वाण,
बाल-रति-सी अनुपम असमान
न जाने, कौन, कहाँ, अनजान,
प्रिय प्राणों की प्राण।

\+ + +

सुमुखि वह मधुक्षण ! वह मधुबार !
धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर-नारी संसार
मिलेगा नव सुख से नव-बार,
अधर उर से उर अधर समान,
पुलक से पुलक, प्राण से प्राण,
कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान
प्रिय प्राणों की प्राण।

—भावी पत्नी के प्रति

इसी सौन्दर्य से कवि को प्रेम है। उनका प्रेम शाश्वत है, चिरंतन है और नित्य है। उनके प्रेम में वह विरह नहीं, वह तड़पन नहीं, वह छटपटाहट नहीं जो सूर की राधा में है। यह उनके गीतों में स्पष्ट है।

प्रेम

उनके आध्यात्मिक प्रेम में विकलता नहीं, बल्कि मिलन-ही मिलन है। ग्रन्थि में विरह और व्याकुलता है, पल्लव में तो कवि की आँखों

में सावन-भादो सजे हैं, पर गुंजन में नहीं। पंत के प्रेम का आलंबन स्थूल नहीं है, भावात्मक ही है। प्रेम का आलंबन असीम होते हुए भी असीम नहीं। वे साम्प्रदायिक रहस्यवादी कवि नहीं हैं, बल्कि छायावादी हैं। असीम के प्रति जिज्ञासा अवश्य है, पर प्रेम नहीं ; उनका प्रेम परोक्ष प्रकृति से है।

सुतरां, हम देखते हैं कि जीवन में प्रकृति है, प्रकृति में सौन्दर्य और सौन्दर्य के प्रति प्रेम है। इस प्रकार जीवन, प्रकृति, सौन्दर्य और प्रेम एक सूत्र में बँधे हुए हैं। इनके प्रति उनका जो विचार है उससे अपूर्व मिठास का रसास्वादन मिलता है और असीम जगत् एक उल्लास, मादकता एवं मधुरता प्रदान करता है। एवमस्तु !

पंत की सौन्दर्यानुभूति

"पंतजी सुन्दरम् के ही कवि हैं—यद्यपि उनका सुन्दरम् शिवम् और सत्यम से शून्य नहीं है।"—डा० नगेन्द्र

मानव के चारों ओर सौन्दर्य की चाँदनी छिटकी हुई है, वह किसी एक को प्यार देता है तो दूसरे को तिरस्कार। सौन्दर्य मानव-नयन को चौंका डालता है। यों तो देखने में सौन्दर्य बाहर की वस्तु है, किन्तु बात ऐसी नहीं है। इस सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है कि 'जैसे वीरकर्म से पृथक कोई पदार्थ नहीं, वैसे ही सुन्दर वस्तु से पृथक सौन्दर्य कोई पदार्थ नहीं। कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हमारे मन में आते ही थोड़ी देर के लिए हमारी सत्ता पर अधिकार कर लेती है कि उनका ज्ञान ही हवा हो जाता है और हम उन वस्तुओं की भावना के रूप में ही परिणत हो जाते हैं। हमारी अंतःसत्ता की यही तदाकार—परिणति सौन्दर्य की अनुभूति है। इसके विपरीत कुछ रूप-रंग की वस्तुएँ ऐसी होती हैं जिनकी प्रतीति या जिनकी भावना हमारे मन में कुछ देर टिकने ही नहीं पाती और मानसिक आपत्ति-सी जान पड़ती है। जिस वस्तु के प्रत्यक्ष ज्ञान या भावना से तदाकार—परिणति जितनी ही अधिक होगी उतनी ही वह वस्तु हमारे लिए सुन्दर कही जायगी। इस विवेचन से स्पष्ट है कि भीतर-बाहर का भेद व्यर्थ है। जो भीतर है वही बाहर है।'[1] जब भी कोई व्यक्ति किसी वस्तु को देखता है तब उस वस्तु के रूप में जितनी ही पूर्ण परिणति होगी उतनी ही उसकी सौन्दर्यानुभूति। 'जिस प्रकार की रूपरेखा या वर्ण-विन्यास से किसी की तदाकार परिणति होती है उसी प्रकार की रूपरेखा या वर्ण-

सौन्दर्य की व्याख्या

१. रस-मीमांसा, पृष्ट २६-३०।

विन्यास उसके लिए सुन्दर है। मनुष्यता की सामान्य भूमि पर पहुँची हुई संसार की सब सभ्य जातियों में सौन्दर्य के सामान्य आदर्श प्रतिष्ठित है। भेद अधिकतर अनुभूति की मात्रा में पाया जाता है। न सुन्दर को कोई एकबारगी कुरूप कहता है और न बिलकुल कुरूप को सुन्दर। सौन्दर्य का दर्शन मनुष्य-मनुष्य में नहीं करता है प्रत्युत् पल्लव-गुम्फित पुष्पहास में, पक्षियों के पक्षजाल में, सिंदूराभ सांध्य-दिगंचल के हिरण्य-मेखला-मंडित घनखण्ड में, तुषारावृत्त तुंग गिरि-शिखर में, चन्द्रकिरण से झलमलाते निर्झर में और न जाने कितनी वस्तुओं में वह सौन्दर्य की झलक पाता है।'[२]

काव्य और सौंदर्य

काव्य के लिए सौन्दर्य एक अभिन्न अंग है और सौन्दर्य काव्य का एक प्रमुख उपकरण। सौन्दर्य की अनुभूति मानव-मन को होती है जिसकी अभिव्यक्ति ही काव्य-कला की आत्मा है। यही कारण है कि जो कवि भावुक होता है उसमें सौंदर्य-ग्राहिणी वृत्ति अवश्य होती है। 'सौन्दर्य' की कोई निश्चित व्याख्या उपस्थित नहीं की जा सकती है क्योंकि इस सम्बन्ध में काफी मतभेद है। सौन्दर्य का कोई निश्चित मानदण्ड नहीं है। उसका आदर्श देश-विशेष की सभ्यता और संस्कृति पर आश्रित है। इसके अतिरिक्त 'सौन्दर्य' के संबंध में हम व्यक्तिगत और रुचिगत वैचित्र्य पाते हैं। सौन्दर्य के प्रति असभ्य जातियों की भावना अत्यन्त अविकसित है। इस संबंध में कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है कि 'यह बात देखी जाती है कि बर्बर जाति जिसे सुन्दर समझकर आदर देती है, उसे सभ्य जाति दूर कर देती है। इसका कारण यही है कि बर्बरों का मन जिस क्षेत्र में रहता है उस क्षेत्र में सभ्यों का मन नहीं रहता। भीतर और बाहर, देश और काल में सभ्य जाति का जगत् ही बड़ा है और उसके अंग-प्रत्यंग ही अत्यन्त विचित्र हैं। इसीसे बर्बरों के संसार और सभ्यों के संसार में वस्तुओं का एक-सा मूल्य नहीं आँका जा सकता।' अतएव यह स्पष्ट है कि सौन्दर्य की कोई व्याख्या नहीं जो सर्वमान्य हो और साथ-ही-साथ रुचि की भिन्नता भी स्पष्ट है।

---

२. वही।

पंत छायावाद-युग के एक प्राणवंत कवि हैं। छायावाद की मुख्य प्रवृत्तियों में 'सौन्दर्य-भावना' भी अपना अन्यतम स्थान रखती है। छायावाद-युग में सौन्दर्य की स्थिति क्या थी? इस संबंध में श्री शंभूनाथ सिंह ने अपनी पुस्तक

छायावाद युग में सौंदर्य की स्थिति—

'छायावाद युग' में विशेष रूप से प्रकाश डाला है जिसे उद्धृत करना अप्रासंगिक न होगा। उन्होंने लिखा है कि 'छायावाद-युग में रति-भावना केवल दाम्पत्य और आध्यात्मिक क्षेत्र तक ही सीमित नहीं रही। जीवन और जगत् की अन्य भूमियों पर भी उसका प्रसार हुआ। वस्तुतः इसके मूल में इस युग की व्यापक सौन्दर्य-भावना थी। इस युग के सभी कवियों ने सौन्दर्य की एक नई चेतना लेकर काव्य-रचना की और इसी व्यापक सौन्दर्य-चेतना के कारण उन्होंने प्रेम को जीवन-दर्शन के रूप में स्वीकार किया। वस्तुतः सौन्दर्य ही इस युग के कवियों का धर्म बन गया था और यही उनकी कविता की सफलता और असफलता का कारण भी बना। यह सौन्दर्य-प्रेम आन्तरिक जीवन के उद्घाटन, स्वतंत्रता की भावना, नारी-जाति के आदर और प्रेम-भावना, प्रकृति-चित्रण, विश्वचेतना के स्पन्दन की अनुभूति, जीव और परोक्ष सत्ता के सम्बन्ध के रागात्मक स्वरूप, आत्मा की नित्यता आदि बातों की अभिव्यक्ति में दिखलाई पड़ी। इस आदर्शवादी सौन्दर्य-बोध के कारण ही इस युग की कविता व्यावहारिक जीवन से दूर, स्वप्न के एकान्त शीशमहल में रहनेवाली, असामाजिक और अतिशय कल्पनाजीवी बन गई। फिर भी इस सौन्दर्य-बोध के कारण जिस प्रेम-भावना का उदय हुआ वह बहुत ही व्यापक, शक्तिशाली और जीवन्त थी।... अन्य क्षेत्रों में प्रेम-भावना का जो प्रसार हुआ उसके मूल में भी कवियों का सौन्दर्य-प्रेम ही था। छायावादी कवि अत्यन्त संवेदनशील थे और अपने संवेगों की अनियंत्रित धारा में बहते हुए वे प्रत्येक वस्तु में अपने भावानुकूल सौन्दर्य का आरोप कर लेते थे।

'यहाँ सौन्दर्य की स्थिति पर विचार कर लेना चाहिए। इस युग में सौंदर्य को वस्तु में नहीं, द्रष्टा के मन में स्थित माना गया। पूँजीवाद के विकास के साथ सौन्दर्य-सम्बन्धी इस विचारधारा का भी योरप में प्रचार हो रहा था।

वस्तुत: इस विचारधारा में व्यक्ति की सामाजिक बंधनों से मुक्ति पाने की कामना निहित थी। इसी से व्यक्ति का मन ही सौंदर्य का आधार माना गया, वस्तु अथवा द्रव्य (Matter) नहीं। यूरोप के रूसो, वाल्टेयर, कान्ट, हीगेल, फीश्ते (Fichte), सेलिंग, श्लीगल, कालरिज, गेटे, वर्गसां आदि विद्वानों और कवियों ने इस विचारधारा का प्रसार और प्रचार किया था। फीश्ते का कहना था कि दृश्य-जगत असत्य है, वह मनुष्य के चेतन-जगत की छायामात्र है। यह विचारधारा प्लेटो के आदर्श-लोक (World of Ideals) और भारतीय अद्वैतवाद के सिद्धांत का ही परिवर्तित रूप है। छायावादी कवियों पर इन सभी विचारधाराओं का प्रभाव पड़ा था। अत: वे भी सौन्दर्य को वस्तु-निरपेक्ष मानते थे। वे मन को सौन्दर्य ग्रहण करनेवाला नहीं, उसका निर्माण करनेवाला मानने लगे। इटली के दार्शनिक क्रोचे ने भी अपनी 'सौंदर्यशास्त्र' नामक पुस्तक में इसी से मिलती-जुलती विचारधारा का प्रतिपादन किया। उसके अनुसार मनुष्य की स्वयंप्रकाशज्ञान (Intuition) ही, जो बिना बुद्धि की क्रिया या सोच-विचार से उत्पन्न होता है, किसी वस्तु के सौन्दर्य का निर्माता होता है। किसी वस्तु को देखकर जो मूर्त भावना या कल्पना द्रष्टा के मन में उत्पन्न होती है वही उस वस्तु का सौन्दर्य है, क्योंकि वस्तु तो उपादानमात्र है और उसकी प्रतीति जड़ होती है, किन्तु स्वयंप्रकाशज्ञान अथवा कल्पना एक सांचे की तरह है जो वस्तु की तरह परिवर्तनशील नहीं, बल्कि शाश्वत और एकरस होती है। उसी स्वयंप्रकाश ज्ञान के साँचे में वस्तु ढल कर सौन्दर्य का रूप धारण करती है। इस दृष्टि से सौन्दर्य एक आध्यात्मिक वस्तु है जो द्रव्य से परे है। अत: चाहे किसी भी वस्तु पर कविता लिखी जाय, उसमें अभिव्यक्त सौन्दर्य का उस वर्ण्य-वस्तु में मिलना आवश्यक नहीं है। सौन्दर्य संबंधी इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लेने पर युग में सामंती सौन्दर्य-सिद्धान्त का लोप हो जाना अनिवार्य था। छायावादी कवियों पर रोमाण्टिक सौंदर्य-दर्शन का अधिक प्रभाव पड़ा था, क्रोचे के सिद्धान्त का नहीं।'[२]

---

२. छायावाद-युग, पृष्ठ १२०-२१।

उपयुक्त कथन से यह स्पष्ट है कि पंत भी रोमाण्टिक सौंदर्य-दर्शन से प्रभावित हैं। आधुनिक कवियों में पंत ही 'सुन्दरम्' के एकमात्र कवि हैं और उनकी सौंदर्य-चेतना मध्यवर्गीय मशीनयुगीन सौंदर्य-चेतना से प्रभावित है। इसे पंत ने स्वयं स्वीकार किया है और लिखा है कि 'पल्लव काल में मैं उन्नीसवीं सदी के अंग्रेजी कवियों—मुख्यतः शेली, वर्ड सवर्थ, कीट्स और टेनीसन – से विशेष रूप से प्रभावित रहा हूँ, क्योंकि इन कवियों ने मुझे मशीनयुग का सौंदर्य-बोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है। रवि बाबू ने भी भारत की आत्मा को पश्चिम की, मशीन-युग की, सौंदर्य-कल्पना में ही परिधानित किया है। पूर्व और पश्चिम का मेल उनके युग का नारा (Slogan) भी रहा है। इस प्रकार मैं कवीन्द्र की प्रतिभा के गहरे प्रभाव को भी कृतज्ञता-पूर्वक स्वीकार करता हूँ।' परन्तु कवि पंत की सौंदर्य-दृष्टि सदैव विकसित होती गई है जिसकी सूचना कवि की 'नव दृष्टि' शीर्षक कविता देती है—

पंत की सौंदर्य-चेतना मध्य-वर्गीय मशीन युगीन सौंदर्य-चेतना से प्रभावित

सुन्दर, शिव, सत्य —
कला के कल्पित माप-मान —
बन गए स्थूल,
जन-जीवन से हो एक प्राण।
मानव स्वभाव ही
बन मानव आदर्श सुकर
करता अपूर्ण को पूर्ण,
असुन्दर को सुन्दर।

[आधुनिक कवि : पृ० ७२]

पंत एक सौंदर्य-प्राण कवि हैं जैसा कि उनके कवित्व एवं व्यक्तित्व से स्पष्ट होता है और उनकी कविता का सार-अंश है सौन्दर्य। 'पंत की कविता ने सौन्दर्य का अबोध कैशोर्य्य लिया है,' उनकी 'सौन्दर्य में अनजान मधुरता है' परन्तु 'कवि ने सौन्दर्य के लिए सत्य और शिव को विस्मृत नहीं किया, उन्हें सौन्दर्य में ही

पंत की टेक है—सौंदर्योल्लास

समाविष्ट कर दिया।' 'पंत का सौन्दर्य जितना अबोध है, उस सौंदर्य का प्रेम भी उतना ही अबोध है।' आरंभ से ही पंत की एक शाश्वत टेक है—सौंदर्योल्लास। कवि का सौंदर्योल्लास 'वीणा' से लेकर 'अतिमा' तक विद्यमान है इसीलिए 'पल्लव' में कहा था—

अकेली सुन्दरता कल्याणि!
सकल ऐश्वर्यों का सधान।

और पीछे चलकर 'उसी कवि ने यह छवि-चित्र भी दिया है'—

आह्लाद, प्रेम औ' यौवन का
नव स्वर्ग : सद्य सौन्दर्य सृष्टि,
मंजरित प्रकृति, मुकुलित दिगन्त,
कूजन - गुंजन की व्योम-वृष्टि! [युगान्त]

'वस्तु जगत् आधारपट पर पंत इसी भाव-जगत् को प्रतिफलित देखना चाहते हैं। पहले वे जिस जीवन-सौन्दर्य के कवि थे आज वे उसी सौन्दर्य के वैरूप्य (कुरूपता) के संशोधक हैं।' इसीलिए डा० नगेन्द्र ने लिखा है कि 'सौन्दर्य—प्राकृतिक, मानसिक और आत्मिक ही इनकी कविता का असली विषय है।'

पंत का प्राकृतिक सौंदर्य

पंत का काव्य-जीवन प्राकृतिक-सौन्दर्य से आरंभ पाता है क्योंकि काव्य-प्रेरणा उसे उसीसे प्राप्त हुई है। 'पल्लव-काल' तक कवि को प्राकृतिक-सौंदर्य के प्रति मोह रहा है, ममता रही है। वह उसमें इतना तल्लीन हो गया है कि प्राकृतिक सौंदर्य के सिवा वह किसी दूसरी वस्तु पर ध्यान भी नहीं ले जा सकता है। इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि प्रकृति के आकर्षण ने कवि के भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर उनकी चेतना को तन्मय कर दिया जिसके हेतु वह नारी-सौंदर्य को भी नहीं देख पाता। प्राकृतिक सौन्दर्य के समक्ष नारी-सौंदर्य का कोई भी महत्त्व नहीं है। इसीलिए कवि ने कहा है—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?

प्रकृति के सौन्दर्य ने ही कवि के हृदय में एक आश्चर्य-भावना भर दी है जिसके फलस्वरूप वह एक चिंतक बन बैठा। पंत ने प्रकृति के स्वच्छन्द सौन्दर्य रूप का ही विशेष रूप से अंकन किया है। उनके सौन्दर्य में कोमलता है, परुषता नहीं। उन्होंने प्रकृति के सुन्दर रूप का ही अंकन विशेष रूप से किया है। हाँ 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में उन्होंने उसकी कुरूपताओं की ओर दृष्टि फेरी है। प्राकृतिक सौन्दर्य ने ही जगत् और जीवन के प्रति एक आश्चर्य भावना को जन्म दिया। 'गुंजन' में आकर कवि मानव-सौन्दर्य की ओर आकृष्ट हुआ, फिर भी प्रकृति के प्रति उसका प्रेम सजग ही रहा, कवि उसे विस्मृत नहीं कर पाया। कवि के प्राकृतिक सौन्दर्य के विराट् रंगमंच हैं—पल्लव, वसंत, वीचि-विलास, तितली, फूल, मधुपकुमारी, भ्रमर, ओसकण, चाँदनी, अप्सरा, मधुकरी, बादल, जुगनू, संध्या, ज्योत्सना, सुरभि, पवन, छाया, इन्दु, विहगों का कलरव आदि। कवि ने प्रकृति को कभी सखि, कभी सजनी, कभी माँ कहकर सम्बोधित किया है।[४] पंत को प्राकृतिक सौन्दर्य-अंकन में पर्याप्त सफलता मिली है। इस दृष्टि से पंत का वही महत्त्व है जो अंग्रेजी कवि वर्ड्सवर्थ का।

पंत का मानसिक सौन्दर्य

पंत की सौन्दर्य-भावना का दृष्टिकोण धीरे-धीरे बदल जाता है और वह मानसिक सौन्दर्य के अंकन में लग जाता है। जब तक कवि नायिका के प्रणय के आदान-प्रदान से अपरिचित रहा तब तक वह प्राकृतिक सौन्दर्य-अंकन में ही तल्लीन रहा। परन्तु ग्रन्थि की नायिका से साक्षात्कार होने के पश्चात् उसके नयनों में नारी की सौन्दर्यानुभूति नाचने लगी। अब वह मानसिक (इसे काल्पनिक भी कह सकते हैं) सौन्दर्य की सृष्टि करने लगे—

---

४. हाँ, सखि आओ, बाँह खोल हम
लग कर गले, जुड़ा लें प्राण,
फिर तुम तम में, मैं प्रियतम में!
हो जावें द्रुत अन्तर्धान।

लाज की मादक सुरा-सी लालिमा
फैल गालों में नवीन गुलाब से,
छलकती थी बाढ़-सी सौन्दर्य की
अधखुले सस्मित-गढ़ों से सीप। (ग्रन्थि)

परन्तु वह अधिक दिनों तक स्थिर न रहा। कवि की सौन्दर्य-भावना मानव-रूप में टिकी रही। कवि मानव को सौन्दर्य-सृष्टि की चरम अभिव्यक्ति मानता है—

सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर, मानव, तुम सबसे सुन्दरतम,
निर्मित सबकी तिल सुषमा से; तुम निखिल सृष्टि में चिर निरुपम!
यौवन ज्वाला से वेष्टित तन, मृदु त्वच सौन्दर्य प्ररोह अंग
न्योछावर जिन पर निखिल प्रकृति, छायाप्रकाश के रूप-रंग!

इस स्थल पर यह बतला देना अनिवार्य है कि पंत और प्रसाद की सौन्दर्य-भावना में वैषम्य है, परन्तु दोनों उसे (सौन्दर्य को) चेतना का वरदान मानते हैं। यथा—

(क) वरदान चेतना का उज्ज्वल, सौन्दर्य जिसे सब कहते हैं
जिसमें अनन्त अभिलाषा के सपने सब जगते रहते हैं।
[कामायनी : प्रसाद]

(ख) एक छवि के असंख्य उडुगण, एक ही सबमें स्पन्दन।
[नित्य जग : पंत]

परन्तु कवि 'पंत की सौन्दर्य-भावना भावात्मक होकर भी उस अर्थ में अतीन्द्रिय नहीं जिस अर्थ में प्रसाद की। प्रसादजी सौन्दर्य को यौन-भावना या युग्म भावना (Sex) के ऊपर मानते हैं। इसलिए तो—

शशिमुख पर घूंघट डाले अंचल में दीप छिपाये।
जीवन की गोधूली में कौतूहल से तुम आये॥
[आँसू : प्रसाद]

—कहना संगत है। किन्तु पंत की सौन्दर्य-चेतना यौन-सत्ता के धरातल से बिलकुल अलग नहीं हो पाती है। कवि पंत में उपचेतना में सौन्दर्य-संस्कार

नारी-आकार ग्रहण करते रहते हैं। 'भावी पत्नी के प्रति', अप्सरा', 'स्वीट पी के प्रति', 'छाया' आदि रचनाओं द्वारा यह स्पष्ट है।' पंत की सौन्दर्यानुभूति 'गुंजन' में आकर संयत और संतुलित हो उठी है, क्योंकि वह भावुक से चिंतक बन गया है। पहले जिस नारी के सौन्दर्य से कवि का हृदय प्रसन्न हो उठता था अब वह उसी नारी के अन्तःकरण में प्रवेश करने की चेष्टा करता है। कवि अपने मन में 'भावी पत्नी' की कल्पना करता है—

न जाने किस गृह में अनजान
छिपी हो तुम स्वर्गीय विधान!
नवल कलिकाओं की-सी वाण
बाल-रति-सी अनुपम असमान—
न जाने, कौन, कहाँ अनजान,
प्रिय, प्राणों की प्राण! (गुंजन)

इन पंक्तियों में कवि का भावात्मक सौन्दर्य मुखरित हुआ है। कवि की प्रेयसी प्राकृतिक सौन्दर्य के कण-कण में व्याप्त है।

खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूँघता होगा अनिल समोद
सीखते होंगे जड़ खग-बाल,
तुम्हीं से कलरव केलि-विनोद। (गुंजन)

इस संबंध में प्रो० शिवनन्दन प्रसाद ने लिखा है कि 'कवि सत्य और सौन्दर्य का वास्तविक साक्षात्कार कर पाता है। ·· सौन्दर्य अब उसके लिए बाह्य-पार्थिव, आकृति या शारीरिक रूपरेखा पर अनिवार्य रूप से आधारित नहीं है। उन्होंने मानसिक और आध्यात्मिक सौन्दर्य का साक्षात्कार कर लिया है—उस सौन्दर्य को देखा है जो मरता नहीं, बदलता नहीं, छीना नहीं जाता, जो अजर, अमर, अविनाशी है। यह सौन्दर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व की सीमाओं में आबद्ध नहीं, व्यक्ति-निरपेक्ष का सार्वभौम तत्त्व है जो विविध नामरूप (प्रेयसी, मधुवन, अप्सराएँ, चाँदनी) द्वारा समय-समय पर अपनी अभिव्यक्ति करता है। कवि ने जिस सौन्दर्य का वर्णन किया है वह शारीरिक सौन्दर्य नहीं है।

वह अतीन्द्रिय और भावात्मक है। कवि ने जहाँ-जहाँ सौन्दर्य का चित्रण किया है वहाँ रूप का नहीं, प्रभाव का प्रेषण करना उसको अभीष्ट रहा है।'

पंत का आध्यात्मिक सौन्दर्य

'अप्सरा' शीर्षक कविता में मानसिक सौन्दर्य मुखर है जिसके फलस्वरूप प्रस्तुत कविता अत्यन्त सुन्दर एवं आकर्षक बन गई है। 'अप्सरा' में नारी-सौन्दर्य विराट् और महिम तो है ही, पर आध्यात्मिकता के शिखर पर जाकर आसीन है। उनका सौन्दर्य विश्व के कण-कण में व्याप्त है। पंत ने इस विराट सौन्दर्य को इस ढंग से व्यक्त किया है—

प्रति युग में आती हो रंगिणि !
रच - रच रूप नवीन,
तुम सुर-नर-मुनि ईप्सित अप्सरि,
त्रिभुवन में लीन।
अंग अंग अभिनव शोभा
नव वसन्त सुकुमार,
भृकुटि - भंग नव - नव इच्छा के
भृंगों का गुंजार,
शत - शत मधु - आकांक्षाओं से
स्पंदित पृथु उर - भार,
नव - आशा के मृदु मुकुलों से
चुम्बित लघु - पदचार (अप्सरा)

—प्रस्तुत काव्य-संदर्भ की अंतिम पंक्तियों से ऐसा आभास मिलता है कि पंत को उस विराट् सत्य और सौन्दर्य का यथार्थ (Real) प्रत्यक्षीकरण हो गया है, तभी तो वह कह उठता है—

हो गए तुममें एकाकार
प्राण में तुम औ तुममें प्राण। (गुंजन)

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का रूप-सौन्दर्य भाव-सौन्दर्य में क्रमशः परिवर्तित होकर आध्यात्मिक सौन्दर्य बन बैठा है जिसके फलस्वरूप सत्यं, शिवं

और सुन्दरम् में कोई तात्विक अंतर दृष्टिगत नहीं होता है। धीरे-धीरे कवि वस्तुवादी सौन्दर्यलोक से अध्यात्मवादी सौन्दर्यलोक में जाकर बैठ गया और विश्राम की ठंढी साँस लेने लग गया। जब मनुष्य इस स्थिति को प्राप्त कर लेता है तो उसे सुख-दुःख की कोई अनुभूति नहीं होती। पंत ने स्वयं यह स्वीकार किया है कि 'गुंजन और ज्योत्स्ना' में मेरी सौन्दर्य-कल्पना क्रमशः आत्मकल्याण और विश्व-मंगल की भावना की अभिव्यक्ति करने के लिए उपादान की तरह प्रयुक्त हुई है।' वस्तुतः पंत की सौन्दर्यानुभूति न सिर्फ सक्रिय है, वरन् विशद भी ; और यही सौन्दर्य उनकी कविता की आत्मा है।

सिंहावलोकन

यह हम लिख आये हैं कि पंतजी सुन्दरं के कवि हैं और उनका मन सौंदर्य-जीवी है। उनमें सौन्दर्य की बुभुक्षा-सी है। उनके काव्य में असुन्दर को कोई स्थान नहीं है। पंत का सौन्दर्य रीतिकालीन संस्कृति के पोषित सौन्दर्य से बिल्कुल भिन्न है। रीतिकाल का सौन्दर्य संकीर्ण है पर छायावादी पंत का सौन्दर्य व्यापक है। रीतिकालीन सौन्दर्य जड़ है पर छायावादी सौन्दर्य चेतन। छायावादी पंत ने रीतिकालीन सौन्दर्य भावना का पुनर्मूल्यांकन किया है। उनकी सौन्दर्यानुभूति में कुरूपता को कोई स्थान नहीं मिला है। कवि ने अपनी सौन्दर्य-क्षुधा की शान्ति के लिए एक ओर 'उन्मन मधुवन' की ओर दृष्टिपात किया है तो दूसरी ओर 'निखिल छवि की छवि' नारी की ओर। उनकी कविता में सर्वत्र सौन्दर्य की आत्मा का दर्शन होता है। पंत के सौन्दर्य में कीट्स की-सी मादकता है। जोशीजी को लिखे गये पत्र से यह विदित होता है कि सौन्दर्यान्वेषण के लिए पंतजी कम्यूनिज्म की ओर आकृष्ट हुए थे और तत्पश्चात् वे 'कुत्सित् स्वरूप' में सौन्दर्य का दर्शन करने लगे थे, लेकिन आधुनिक पंत आत्मिक सौन्दर्य से सम्मोहित हैं। अतएवं हम कह सकते हैं कि पंत की सौन्दर्य-भावना स्थिर नहीं है प्रत्युत् गतिशील है, उसमें निरन्तर विकास हो रहा है।

पंत ने स्वयं लिखा है कि 'मैं पल्लव से गुंजन में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते पाता हूँ।' इस 'शिवम' से पंत का तात्पर्य है जीवन की कल्याणमयी साधना, 'जो कि उनके आत्मचिन्तन और लोक-

चिन्तन में व्यक्त हुई है। शिवम् की प्रतिष्ठापना पंतजी की ऐतिहासिक और सांस्कृतिक रचनाओं में हुई है, गुंजन में मुख्यतः सुन्दरम् का ही संदेश है—

गाता खग प्रातः उठ कर
सुन्दर, सुखमय जग-जीवन !
गाता खग संध्या-तट पर
मंगल, मधुमय जग-जीवन !

वस्तुतः सुन्दरम् और शिवम् में सीमाओं का अंतर है, आत्मा का नहीं। दोनों की आत्मा एक है, अनुभूति एक है; जो 'सुन्दर सुखमय' है, वही 'मंगल मधुमय' है। अन्तर केवल अभिव्यक्ति की दिशाओं (भाव मुद्राओं) में है—सुन्दरम् में नटवर की और शिवम् नटराजन् की अंग-भंगिमा है, भीतर दोनों ही कलात्मक हैं, कल्याणकलित हैं। सौन्दर्य में व्यापकता आ जाने से वही शिव हो जाता है। पल्लव में प्रकृति का चित्रपट विस्तृत था, किन्तु सौन्दर्य शोभा में ही सीमित था। 'गुंजन' में कवि की सौन्दर्य का विशद परिचय मिल गया है, वह उसे जीवन की सर्वांगीणता में देखने लगा है। पहले की रमणीयता ही सुन्दर जान पड़ती थी, अब वह समस्त 'जग जीवन' ही 'सुन्दर-सुन्दर' जान पड़ता है। सुख-दुःख, शैशव-यौवन, जन्म-मरण, नूतन-पुरातन इन सब में सौन्दर्य ही प्रशस्त हो गया है—

सुन्दर से नित सुन्दरतर,
सुन्दरतर से सुन्दरतम,
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर-सुन्दर जग-जीवन !

हम कह सकते हैं कि 'पल्लव' का अलौकिक सौन्दर्य ही 'गुंजन' में विश्व-जीवन में जीवन्त हो गया है।[५]

कुछ आलोचकों का कथन है कि पंत की कविता में 'सुन्दरं' और 'शिवं' की झाँकी तो मिलती है, परन्तु 'सत्यं' का रूप दृष्टिगत नहीं होता है। इसके

५. ज्योति विहग, पृ० १८६-६०।

साथ-साथ उनलोगों ने यह भी कहा है कि 'उनमें अनुभूति की तीव्रता नहीं मिलती जो सत्य की अभिव्यक्ति के लिए आवश्यक है।' इस आक्षेप पर पंतजी ने स्वयं लिखा है कि 'यह सत्य है कि व्यक्तिगत सुख-दुख के सत्य को अथवा अपने मानसिक संघर्ष को मैंने अपनी रचनाओं में वाणी नहीं दी है, क्योंकि वह मेरे स्वभाव के विरुद्ध है। मैंने उससे ऊपर उठने की चेष्टा की है। 'गुंजन' में 'तप रे मधुर-मधुर मन', 'मैं सीख न पाया अब तक सुख से दुःख को अपनाना' आदि अनेक रचनाएँ मेरी इस रुचि के द्योतक हैं। मुझे लगता है कि 'सत्य शिवं में स्वयं निहित है। जिस प्रकार फूल में रूप रंग है, फल में जीवनोपयोगी रस; और फूल की परिणति फल में सत्य के नियमों ही द्वारा हो सकती है। यदि कोई वस्तु उपयोगी (शिव) है तो उसके आधारभूत कारण उसकी उपयोगिता से सम्बन्ध रखनेवाले सत्य में अवश्य होने चाहिए, नहीं तो उपयोगी नहीं हो सकती। इसी प्रकार अनुभूति की तीव्रता भी सापेक्ष है, और मेरी रचनाओं में उनका संबंध मेरे स्वभाव से है। सत्य के दो रूप हैं—शराबी शराब पीता है यह सत्य है; उसे शराब नहीं पीना चाहिए यह भी सत्य है। एक उसका वास्तविक (Factual) रूप है, दूसरा परिणाम से सम्बन्ध रखनेवाला। मेरी रचनाओं में सत्य के दूसरे पक्ष के प्रति मोह मिलता है; वह मेरा संस्कार है, आत्म विकास (Sublimation) की ओर जाना। अनुभूति की तीव्रता का बोध बहिर्मुखी (Extrovert) स्वभाव अधिक करवा सकता है, मंगल का बोध अन्तर्मुखी स्वभाव (Introvert) क्योंकि दूसरा कारण रूप अन्तर्द्वन्द्व को अभिव्यक्त न कर उसके फलस्वरूप कल्याणमयी अनुभूति को वाणी देता है। मेरे पल्लवकाल की रचनाओं में, तुलनात्मक दृष्टि से, मानसिक संघर्ष और हार्दिकता अधिक मिलती है, और बाद की रचनाओं में आत्मोत्कर्ष और सामाजिक अभ्युदय की इच्छा।'

अतएव हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंतजी सुन्दरम, शिवम् और सत्यम् के अनन्य पुजारी हैं।

पंत की प्रतीक योजना

मानव अपनी मनोगत भावनाओं एवं अनुभूतियों की विशद् अभिव्यक्ति चाहता है, परन्तु जब वह सीधे-सादे तरीकों से व्यक्त नहीं कर पाता है तब भावाभिव्यक्ति के लिए उसे प्रतीकों का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। शब्द-

'प्रतीक' शब्द की व्याख्या और उसका इतिहास

कोष के अनुसार प्रतीक वह है जो किसी समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में और उसकी सब बातों का सूचक या प्रतिनिधि (Symbol) हो। काव्य में अधिकांश प्रतीक बाह्य जगत् से ही सम्बन्धित होते हैं क्योंकि वे सभी के हृदय में एक-सी भावना को जाग्रत करते हैं।[1] अन्य देशों के लिए 'प्रतीक' भले ही कोई नवीन शब्द प्रतीत हो, किन्तु भारत के लिए यह बहुत ही पुराना शब्द है। सच तो यह है कि निर्गुण ब्रह्म की जो सूक्ष्म भावना होती है उसे हृदयंगम कराने के लिए जिन मूर्त्त रूपों का आश्रय ग्रहण किया जाता है, वे 'प्रतीक' की संज्ञा से विभूषित हैं। भारत में प्रतीक-प्रयोग की प्रवृत्ति अनादि काल से चली आ रही है।[२] वेदों, उपनिषदों और योग वशिष्ठ के समस्त उपाख्यानों में

---

1 The term given to a visible object representing to the mind the semblance of something which is not shown but realised with it. Ship, a symbol represented the Church, in which the faithful are carried over the sea of life. Peacock stands for immortality, the phoenix for the resurrection; the dragon or the serpent for satan. (Encyclopaedia Brittanica, 1947, page 700).

२. 'स य नाम ब्रह्मोत्युपास्ते इत्येवमादिषु प्रतीकोपासनेषु संशयः।

(ब्रह्मसूत्र)

प्रतीक-स्थापना हो पायी है। उस समय धर्मोपदेश के लिए जो भी लिखा गया, वे सब प्रतीकात्मक ही हैं। सूफी कवियों की काव्यभित्ति प्रतीकों पर ही आधारित है। इस सम्बन्ध में पं० चन्द्रवली पाण्डेय ने लिखा है कि 'प्रतीक ही सूफी साहित्य के राजा हैं। उनकी अनुमति के बिना सूफियों के क्षेत्र में पदार्पण करना एक सामान्य अपराध है। प्रतीकों के महत्व को समझ लेने पर तसव्वुफ एक सरल चीज हो जाती है।'[३] इससे स्पष्ट होता है कि प्रतीक योजना हिन्दी कविता के लिए कोई नई वस्तु नहीं है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार' प्रतीक वे वस्तुएँ हैं जो किसी-न-किसी अंश तक ब्रह्म के स्थान में उपास्य कही जा सकती हैं।'[४] इस संबंध में श्री रामानुजाचार्य का कथन भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनका कहना है कि जो वस्तु ब्रह्म नहीं है उसे ब्रह्म मानकर उसमें भक्तिपूर्वक मन को लगा देना ही प्रतीक है। इसका तात्पर्य यह है कि 'प्रतीक' शब्द की एक व्यापक भावना है, वह यह कि वे सूक्ष्म के स्थान पर प्रयुक्त स्थूल पदार्थ होते हैं। यह रही भारतीय साहित्य की बात।

पाश्चात्य साहित्य में भी प्रतीक का महत्वपूर्ण स्थान है। कहा जाता है कि उन्नीसवीं शताब्दि में फ्रांस और बेलजियम में यथार्थवाद के अनर्गल एवं निस्सार वर्णन के प्रति विद्रोही भावनाओं का प्रचार एवं प्रसार हुआ जिसके फलस्वरूप साहित्य और संगीत के बीच 'प्रतीक-विधान' को एक विशिष्ट पद प्राप्त हुआ।[५] सन् १८८६ में 'फिगारो' नामक एक पत्र के द्वारा प्रतीकवाद (Symbolism) एक विशेष सम्प्रदाय के रूप में स्वीकृत हुआ जिसके लेखकों ने प्रतीकों के माध्यम से अपनी विभिन्न मानसिक स्थितियों को अभिव्यक्त किया। तत्कालीन

---

३. तसव्वुफ अथवा सूफीमत, पृष्ठ ९७।

४. शंकर भाष्य, ४/१/५ (स्वामी विवेकानन्द कृत 'भक्तियोग' से उद्धृत)

५. In France and Belgium at the end of the 19th century the Symbolists were members of a School of literature and music that rebelled against realism and sought to express themselves by indirect rather than direct suggestion. (A Dictionary of English Literature by Watt, Page-316).

प्रतीकवाद का 'आन्दोलन चित्रकला और संगीत में प्रभाववाद के साथ-साथ और उपचेतना के दर्शन के साथ-साथ उन्नीसवीं शताब्दि के अंतिम भाग के आंदर्शवाद से मिलकर उस स्वैरवाद (Romanticism) की एक शाखा बन गया जिसके साथ वह निर्बाध रूप से सम्बद्ध है।'[६] पीछे चलकर उसके दो दल हो गए—एक है बर्ले का दल और दूसरा है मलार्मे का दल, परन्तु, बर्ले के प्रतीक में मलार्मे के प्रतीक की अपेक्षा अत्यधिक स्पष्टता एवं सरलता है।

आधुनिक हिन्दी कविता (छायावाद-रहस्यवाद-युग) पर भी पाश्चात्य प्रतीकवाद के कुछ रूपों का प्रभाव पड़ा है और वे रूप हैं—(क) मैटरलिंग का प्रतीकवाद' (ख) ईसाई मत का प्रतीकवाद और (ग) फ्रांसीसी प्रतीकवादी आन्दोलन।

'प्रतीक' शैली के रूप में

पंतजी छायावाद के आधारभूत स्तंभों में एक हैं। छायावादी कवि होने के कारण वे मानव-हृदय की प्रस्तुत भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए साम्य के आधार पर अप्रस्तुत प्रतीकों का व्यवहार करते हैं और उसीके द्वारा उन्होंने प्रस्तुत की व्यंजना की है। कहीं-कहीं प्रतीक-प्रयोग छायावाद की काव्यशैली के रूप में होकर स्वतंत्र काव्य-प्रवृत्ति के रूप में परिलक्षित हुआ है। 'सन् १८८५ में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (Symbolists) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुतों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसीसे उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वरप्रेम सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीक शैली की वही प्रवृत्ति रही। हिन्दी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ—रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में भी ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीक शैली में छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ। प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का

---

६. समीक्षाशास्त्र—सीताराम चतुर्वेदी, पृष्ठ संख्या १२७३।

कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।' ७

आधुनिक हिन्दी कविता में प्रतीकों का प्रयोग प्रचुर परिमाण मे पाया जाता है, क्योंकि अभिव्यक्ति के लिए कवि इन प्रतीकों की महत्ता को अच्छी तरह समझते हैं। 'ये जानते हैं कि साधारण वक्तव्य की अपेक्षा प्रतीकों के द्वारा सत्य को अधिक प्रभावोत्पादक, मार्मिक और संक्षिप्त रूप में प्रकट किया जा सकता है। ये जानते हैं कि प्रतीकों का प्रयोजन उपादेयात्मक नहीं है। इनका उद्देश्य सत्य को सौन्दर्य से समन्वित करना है। वे यह भी जानते हैं कि काव्य में प्रतीकों का उद्देश्य केवल सजावट नहीं है, प्रत्युत् ये काव्य के आधारभूत अंग हैं। केवल कवि के भावावेश में उद्भूत प्रतीक ही पाठकों में वैसी भावना जगाने में समर्थ होते हैं। ऊपरी बुद्धि द्वारा सजावट के लिए गढ़े हुए प्रतीकों का विश्लेषण करने पर उनमें सच्ची सौन्दर्य-भावना का अभाव तथा शिथिलता लक्षित होती है। सुन्दर लय के समान सौन्दर्यपूर्ण उपमान और प्रतीक भी कवि की सच्ची भावानुभूति के द्योतक होते हैं। इन प्रतीकों का अपने देश की परम्परा, इतिहास, जलवायु तथा जाति के आचार-विचार से घनिष्ठ संबंध होता है।* प्रत्येक देश के प्रतीकों का अपना समूह होता है जिनके द्वारा देशवासी अपने सुख, दुःख, मृत्यु, स्वर्ग, नरक आदि की भावना को प्रकट करते हैं। इस प्रकार उष्ण देशों की भीषण उष्णता नरक की ज्वाला की

प्रतीक की उद्भावना के रहस्य

---

७. हिन्दी साहित्य का इतिहास—पं० रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ६६८-९।

* इस संबंध में पं० रामदहिन मिश्र ने लिखा है कि 'प्रतीकों के प्रादुर्भाव के ये ही मूल कारण हैं। इन्हीं कारणों से एक देश के प्रतीक दूसरे देश के प्रतीक नहीं हो सकते। फारसी कविता में शराब और प्याले का जो प्रतीकवत् व्यवहार होता है वैसा हमारे यहाँ प्रणय-पिपासा के लिए नहीं हो सकता। भले ही ऐसी कुछ कविताएँ दिखायी पड़ जायँ। (क्रमशः)

प्रतीक बन गई और ठंढे देशों की घोर शीतलता भी नरक मानी जाने लगी। वसंत तथा ग्रीष्म हर्ष और दुःख के द्योतक माने गए। इसलिए दूसरी भाषाओं के प्रतीकों का अपने साहित्य में समावेश करते समय अत्यन्त सावधानी की आवश्यकता है, क्योंकि उन भाषाओं से अपरिचित पाठकों के लिए अधिकांश विदेशी प्रतीक अर्थहीन सिद्ध होंगे।'[८]

प्रतीक और उसके भेद

प्रतीक के अनेक भेद हैं। श्रीलक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के अनुसार उसके दो भेद हैं पर डा० सुधीन्द्र के मत में अनेक। डा० सुधीन्द्र ने लिखा है कि 'जहाँ प्रतीक से राष्ट्रीय भावना की अभिव्यक्ति हो वहाँ 'राष्ट्रीय प्रतीकवाद' होगा, जहाँ प्रेम, करुणा, आशा, अभिलाषा, आकांक्षा आदि वेदनाओं की आन्तरिक अनुभूति साध्य हो वहाँ 'भावोत्पाद प्रतीकवाद' होगा। जहाँ दार्शनिक चिंतन अभिप्रेत हो 'यहाँ दार्शनिक प्रतीकवाद' होगा और जहाँ अध्यात्म-चिंतन अभिप्रेत हो वहाँ 'अध्यात्मिक प्रतीकवाद' होगा। दार्शनिक और आध्यात्मिक प्रतीकवाद अतीन्द्रिय तत्व होने के कारण 'संकेतवाद' भी कहे जा सकते हैं। प्रकृतिगत प्रतीकवाद को छायावाद के अंगभूत देखा जा सकता है।'[९] श्री सुधांशु के अनुसार उसके जो दो भेद हैं, वे हैं—भावोत्पादक (Emotional

---

सुमुखि, तुम्हारा सुन्दर मुख ही माणिक मदिरा का प्याला।
छलक रही है जिसमें छल-छल रूप मधुर मादक हाला॥ [बच्चन]

ऐसे ही गुल, बुलबुल आदि प्रतीक हैं जो हमारे काम के नहीं। ग्रीष्म ऋतु भारत के लिए दुःखदायी और यूरोप के लिए सुखदायी होता है। मेघ मेदुर अम्बर हमारे सुख के और यूरोपवालों की खिन्नता के कारण होते हैं रूपान्तर में कुछ प्रतीक एक दूसरे से मिलते हैं। जैसे हमारे लिए दीप-पतंग के प्रतीक सुपरिचित हैं वैसे फारसीवालों के शमा-परवना हैं। ये प्रतीक प्रेमी और प्रेमिका के लिए व्यवहृत होते हैं। दोनों के भाव एक ही हैं। कुछ प्रतीक ऐसे भी होते हैं जो सार्वभौमिक होते हैं। (काव्य विमर्श, पृ० २७६)

८. आधुनिक काव्यधारा, पृ० २१७।

९. हिन्दी कविता में युगान्तर, पृष्ठ ३६४।

Symbols) और विचारोत्पादक (Intellectual Symbols) प्रतीक। लेकिन दोनों का ठीक-ठीक उदाहरण देना अत्यन्त कठिन कार्य है। 'प्रायः सब भावोत्पादक प्रतीकों में विचार मिलते रहते हैं और उसी प्रकार प्रायः सब विचारोत्पादक प्रतीकों में भाव की स्थिति बनी रहती है। दो भेद करने का तात्पर्य भाव और विचार की प्रधानता तथा गौणता से है। 'कमल' से सौंदर्य का जैसा कोमल भाव जागरित होता है वैसा 'साँप' से क्रूरता तथा कुटिलता का भाव उद्बुद्ध नहीं होता। साँप में भाव से अधिक विचार का सम्पर्क है। इसी प्रकार सब प्रतीकों में मनोविकारों की थोड़ी-बहुत जटिलता बनी रहती है।'[१०] सुधांशुजी की इस युक्ति को प्रमाणित करने के लिए पं० रामदहिन मिश्र ने दो उदाहरण प्रस्तुत किये हैं—

तरल मोती से नयन भरे
मानस से ले, उठे स्नेह घन कसक विधु पलकों के हिमकण,
सुधि स्वाती की छाँह पलक की सीपी में उतरे। [महादेवी]

'इसमें आँसुओं का प्रतीक मोती है। यह प्रतीक आँसुओं की अमूल्यता प्रतीत कराता है जिससे वेदना का भाव जाग्रत होता है।

तेरी आभा का कण नभ को देता अगणित दीपकदान।
दिन को कनक राशि पहनाता विधु को चाँदी का परिधान॥

इसमें दिव्यलोक का प्रतीक कनक-राशि और चन्द्रलोक का प्रतीक चाँदी का परिधान है। इनसे विचार ही उद्भूत होते हैं। यह दावे के साथ नहीं कहा जा सकता कि ये उदाहरण विशुद्ध विचार या विशुद्ध भाव के ही हैं; क्योंकि विचारमूलक प्रतीकों में भाव का अभाव नहीं रहता और भावमूलक प्रतीकों में विचार मिला रहता है। एक में दूसरे की स्थिति रहती है, फिर यह भेद मुख्यता को लेकर ही किया गया है। पहले के उदाहरण में भाव प्रधान और विचार गौण है और दूसरे में विचार प्रधान और भाव गौण। हमारे हिंदी साहित्य में मोती आँसू के प्रतीक का काम सदा से करता आया है जिससे हम

---

१०. काव्य में अभिव्यंजनावाद, पृष्ठ १२७।

कह सकते हैं कि इस पर दीर्घकाल से हमारी सांस्कृतिक वासना का प्रभाव पड़ा है, पर दूसरे उदाहरण के प्रतीकों में यह बात नहीं। फिर भी उनमें व्यंजना की सामर्थ्य अद्भुत है।'[११]

प्रतीक की विशेषताएँ

काव्य में गोचर और अगोचर दोनों प्रकार के प्रतीक होते हैं, परन्तु प्रतीक के लिए यह कोई जरूरी नहीं है कि वे गोचर ही हों; क्योंकि ऐसे प्रतीक काव्य में अनेक प्रयोजन सिद्ध करते हैं; वरन् प्रतीक गोचर हों या अगोचर, इससे हमें कोई बहस नहीं। हाँ, उन प्रतीकों के लिए एक शर्त है, वह यह कि उसमें भाव या विचार को जाग्रत करने की क्षमता होनी चाहिए।

लाक्षणिक प्रतीक

हिन्दी में प्रतीकों के प्रतीकवत प्रयोग अत्यन्त कम मिलते हैं क्योंकि वे प्रायः अलंकार योजना के अन्तर्गत उपमान के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। छायावादी कविता में लाक्षणिक प्रतीकों का आधिक्य रहता है, शुद्ध प्रतीक कम। इस संबंध में श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' कहते हैं कि 'लाक्षणिकता के बल पर आधुनिक कविताओं में कुछ ऐसे उपमान के गुण तो पूरे नहीं रहते, किन्तु प्रतीकत्व मिलते हैं। ऐसे उपमानों के विधान में प्रायः लाक्षणिक चमत्कार दिखाने के लिए धर्म के स्थान में धर्मी का उल्लेख कर दिया जाता है। इस प्रकार के प्रयोग शुद्ध प्रतीक नहीं, बल्कि लाक्षणिक प्रतीक हैं। जैसे—

करुण भौंहों में था आकाश, हास में शैशव का संसार;
तुम्हारी आँखों में कर वास प्रेम ने पाया था आकार!
उषा का था उर में आवास, मुकुल का मुख में मृदुल विकास;
चाँदनी का स्वभाव में भास विचारों में बच्चों के साँस।

—कवि की कल्याणी की करुण भौंहों में उच्चता का आभास था, यह न कहकर आकाश ही कहा गया। उसकी हँसी विश्व के पक्षपातपूर्ण वातावरण से निरपेक्ष थी, शुद्ध थी, इसके लिए शिशुओं का संसार उठा लिया गया।

---

११. **काव्य-विमर्श, पृष्ठ २१६।**

हृदय में उल्लास था, यह न कहकर उषा का आवास ही बना दिया गया। मुख से वाणी के जो उद्गार निकलते थे वे रमणीय होते थे, यह न कहकर अधखिली कली का मृदुल विकास ही उसमें दिखाया गया। कवि की मनोरमा का स्वभाव बहुत ही स्निग्ध तथा आह्लादक था, यह बताने के लिए उसने चाँदनी की शरण ली। विचारों के भोलेपन के उपमान के लिए बच्चों से भोला कहाँ मिलता! 'बच्चों के साँस' से कवि ने इसी भोलेपन का निर्देश किया है।'

'अब यह देखना है कि शुद्ध प्रतीक और लाक्षणिक प्रतीक में कितना अंतर है। उपर्युक्त पंक्तियों में आकाश और उषा शुद्ध प्रतीक माने जायँगे,

लाक्षणिक प्रतीक और शुद्ध प्रतीक

परन्तु शैशव का संसार, मुकुल का मृदुल विकास, चाँदनी का भास तथा बच्चों की साँस के प्रतीकत्व लक्षणा के सहारे व्यक्त हुए हैं। अतएव उल्लिखित वाक्य-खंड लाक्षणिक प्रतीक के ही उदाहरण माने जायँगे। आधुनिक हिन्दी-कविताओं में ऐसे प्रयोग सीधे अंग्रेजी से आए हैं। सुकवि सुमित्रानन्दन पंत को छोड़कर हिन्दी के अन्य कवियों की रचनाओं में लाक्षणिक प्रतीक प्रयोग बहुत ही कम मिलते हैं।'[१२] पंतजी ने अपनी रचनाओं को मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक बनाने के लिए नए प्रतीकों की उद्भावना की है। इनके प्रमुख प्रतीक हैं—उषा, मधु, मधुकर, गुंजार, सरिता, सरोवर, कली, किसलय, शूल, फूल, स्वर्ण, वीणा, गंध आदि। पंतजी के द्वारा कतिपय रचनाओं में प्रतीकों का व्यवहार हुआ है, इसलिए इनकी ओर पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना अनिवार्य है। यथा—

(१) कभी तो अब तक पावन प्रेम, नहीं कहलाया पापाचार।
हुई मुझको ही मदिरा आज, हाय क्यों गंगाजल की धार।

—यहाँ गंगाजल पवित्रता का और मदिरा अपवित्रता का प्रतीक है।

(२) जीवन-मधु-संचय को उन्मन, करते प्राणों के अलि गुंजन।

—इसमें मधु जीवन की सरस अनुभूति का प्रतीक है।

(३) आँखों की खिड़की से उड़-उड़ आते ये आते मधुर-विहग।

—इसमें 'विहग' मधुर भावों का प्रतीक है।

---

१२. काव्य में अभिव्यंजनावाद, पृ० १३३-४।

(४) अरुण कलियों से कोमल घाव कभी खुल पड़ते हैं असहाय
—इसमें 'घाव' वेदना का प्रतीक है।

(५) शिशिर सा भर नयनों का नीर
झुलस देता गालों के फूल ! (अनित्य जग)
—इसमें 'फूल' सुख का प्रतीक है।

(६) आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर में भरता सूनी सांस। (अनित्य जग)
—इसमें 'सौरभ' सौन्दर्य 'मधुमास' यौवन (संयोग काल), 'शिशिर' वृद्धावस्था (या विरह घड़ी) के प्रतीक हैं।

(७) प्रात का सोने का संसार,
जला देती संध्या की ज्वाल। (अनित्य जग)
—इसमें 'सोने का' आनन्द का और 'संध्या' अवसाद का प्रतीक है।

(८) सुख सुषमा के मधुर स्वर्ण से
सूने जग गृह द्वार भरो हे। (सांध्य वंदना)
—इसमें 'स्वर्ण' संवेदनशील पवित्र भावतत्व के प्रतीक हैं।

(९) बरसो कुसुमों में मधु बन
प्राणों में अमर प्रणय धन। (प्रार्थना)
—इसमें 'मधु' जीवन की रसपूर्ण अनुभूति के प्रतीक हैं।

(१०) यह साँझ उषा का आँगन,
आलिंगन विरह - मिलन का। [सुख-दुःख]
—'साँझ' वेदना का और 'उषा' उल्लास का प्रतीक है।

(११) देखूँ सबके उर की डाली—
किसने रे क्या - क्या चुने फूल
जग के छवि-उपवन से अकूल ?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम शूल ! [उर की डाली]
—इसमें 'कलि' आशा का, 'किसलय' प्रेम का, 'कुसुम' सुख का और 'शूल' दुःख का प्रतीक है।

(१२) आएगी मेरे पुलिनों पर
वह मोती की मछली सुन्दर
मैं लहरों के तट पर बैठा
देखूँगा उसकी छवि जी भर ।

—यहाँ भावों के लिए प्रतीक रूप में मछलियों का व्यवहार हुआ है और निर्गुण ब्रह्म के लिए 'मोतीवाली मछली' को प्रतीक माना गया है।

(१३) धूल की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।

(धूल की ढेरी = असुंदर वस्तुएँ । मधुमय गान = सुंदर वस्तुएँ ।)

(१४) मर्म पीड़ा के हास
(हास = विकास, समृद्धि)

(१५) कौन तुम अतुल अरूप अनाम।
(अतुल अरूप = शिशु के लिए)

(१६) उठ - उठ री लघु-लघु लोल लहर
करुणा की नव अँगड़ाई-सी, मलयानिल की परिछाईं-सी
इस सूखे तट पर छहर छहर।
(छहर = कोमल भाव। सूखा तट = शुष्क जीवन।)

(१७) तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन
गंधहीन तू गंधयुक्त बन [तव]
(गंध = गुण)

(१८) सागर की लहर - लहर में
है हाय स्वर्ण - किरणों का
वह स्वर्ण - भोर को ठहरी [गुंजन]
(स्वर्ण-भोर = आशाप्रद क्षण)

(१९) रे गूँज उठा मधुवन में
नव गुंजन, अभिनव गुंजन

जीवन के मधु-संचय को
उठता प्राणों में स्पन्दन । [गुंजन]

(मधुवन = मन, गुंजन = नवीन अन्तःसंगीत)

(२०) नयन नीलिमा के लघु नभ में अलि ? किस सुषमा का संसार
विरत इन्द्रधनुषी बादल - सा बदल रहा निज रूप अपार

—'यहाँ सादृश्य का उतना प्रभाव नहीं, जितना इन्द्रधनुष का प्रतीकत्व सुषमा-संसार पर रंग चढ़ा देता है !'

अपनी कविता में चमत्कार-सृष्टि एवं रमणीयता लाने के लिए पंत ने कुछ नये-नये प्रतीकों की उद्भावना की है—

(क) कनक छाया में जबकि सकाल खोलती कलिका उर के द्वार ।
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार ।

(ख) अरुण कलियों से कोमल घाव कभी खुल पड़ते हैं असहाय ।

प्रतीकवाद का दार्शनिक रूप

प्रतीकवाद का दार्शनिक स्वरूप भी है जिसके संबंध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—'यह कायदे की बात है कि कोई बात वाद के रूप में किसी सम्प्रदाय-विशेष के भीतर ग्रहण की जाती है तब वह बहुत दूर तक घसीटी जाती है—इतनी दूर तक कि वह सबके काम की नहीं रह जाती है—और उसे कुछ विलक्षणता प्रदान की जाती है। रहस्यवाद को लेकर जो प्रतीकवादी सम्प्रदाय यूरोप में खड़ा हुआ उसने परोक्षवाद (Occultism) का सहारा लिया । प्रतीक के रूप में गृहीत वस्तुओं में भावों के उद्बोधन की शक्ति कैसे संचित हुई, इसका वैज्ञानिक उत्तर यही होगा कि कुछ तो उन वस्तुओं के स्वरूपगत आकर्षण से, कुछ चिर-परिचित आरोप के बल से और कुछ वंशानुगत वासना की दीर्घ परम्परा के प्रभाव से । पर रहस्यवादी इसका उत्तर दूसरे ढंग से देंगे। वे कहेंगे कि हमारे मन का विस्तार घटता-बढ़ता रहता है और कभी-कभी कई एक मन-संचित होकर एक दूसरे से मिल जाते हैं और इस प्रकार एक मन या एक शक्ति का उद्घाटन करते हैं । हमारी स्मृति का विस्तार भी ऐसे ही घटता-

बढ़ता रहता है और वह महास्मृति प्रकृति की स्मृति का एक अंग है। इस महामन और महास्मृति का आह्वान प्रतीकों द्वारा उसी प्रकार हो सकता है जिस प्रकार तांत्रिकों के विविध चक्रों या यत्नों द्वारा देवताओं का। इस प्रवृत्ति के अनुसार वे रचना में प्रवृत्त करनेवाली कवियों की प्रतिभा के जगाने को वही दशा कहते हैं जिसे सूफी 'हास आना' कहते हैं, जिसमें कुछ घड़ियों के लिए कवि की अंतःसत्ता ईश्वरीय सारसत्ता (Divine Essence) में मिल जाती है।' सुतरां, हम देखते हैं कि शुक्लजी के इस कथन के आधार पर काव्य का लक्ष्य जगत् और जीवन से विलग हो जाता है। कवि प्रकृति के जिन रूपों और व्यापारों को काव्य में स्थान देगा, वे प्रतीक-मात्र होंगे। सच तो यह है कि कवि की दृष्टि प्रतीकों की ओर नहीं जाती है, प्रत्युत अज्ञात सत्ता के प्रति स्थिर रहती है।

पंत ने अपनी कविताओं में मुख्यतया लाक्षणिक प्रतीकों को स्थान दिया, न कि शुद्ध प्रतीकों को। उनके प्रतीक प्रकृति के क्षेत्र से चुने गए हैं जो अमूर्त

उपसंहार

भावनाओं की प्रतीति करने में बहुत दूर तक सहायक प्रमाणित हुए हैं। प्रतीक योजना की दृष्टि में 'प्रथमरश्मि' 'वायु के प्रति', 'एक तारा', 'चाँदनी', 'छाया', 'अप्सरा', 'विहग के प्रति' आदि कविताएँ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

रससिद्धान्त और पंत

'रस अलौकिक चमत्कारी उस आनन्द-विशेष का बोधक है जिसकी अनुभूति सहृदय के हृदय को द्रुत, मन को तन्मय, हृदय-व्यापारों को एकतान, नेत्रों को जलाप्लुत, शरीर को पुलकित और वचन-रचना को गद्गद रखने की क्षमता रखती है। यही आनन्द काव्य का उपादेय है और इसी की जागर्ति वाङ्मय के अन्य प्रकारों से विलक्षण काव्य नामक पदार्थ की प्राण-प्रतिष्ठा करती है।'[1] वास्तव में आचार्यों ने रस को बहुत बड़ा महत्त्व दिया है। काव्य में भले ही वाग्वैदग्ध की प्रधानता हो, फिर भी रस ही काव्य का जीवन माना गया है।[2] 'आचार्य लोचन' में रस की ध्वनि को ही काव्य की आत्मा स्वीकार किया गया है।[3]

रस-परिचय

रस की महत्ता को स्वयं ध्वन्यालोककार ने भी स्वीकार किया है। उनकी दृष्टि में कवि को ऐसी कविता नहीं लिखनी चाहिए जिससे रस का सम्बन्ध न हो। 'रस' धातु का अर्थ है—आस्वादन करना। जिस वस्तु का आस्वादन किया जाय वही रस है—'रस्यते' इति रसः। वस्तुतः भावों का आस्वादन ही 'रस' की संज्ञा पाने का अधिकारी है।

रस की महत्ता

रस की परिभाषा भारतीय आचार्यों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से प्रस्तुत की है। साहित्य-दर्पणकार विश्वनाथ ने रस की परिभाषा इस प्रकार दी है।

परिभाषा

---

१. रसायन की भूमिका से।

२. वाग्वैदग्ध्य-प्रधानेऽपि रस एवात्र जीवितम्। अग्निपुराण !

३. तेन रस एव वस्तुत आत्मा।
वस्त्वलंकारस्तु सर्वथा रसं प्रति पर्यंव्यसतीति।

विभावेनानुभावेन व्यक्तः संचारिणा तथा।
रसतामेति रत्यादिः स्थायी भावः सचेतसाम् ॥

अर्थात् 'सहृदयों के हृदय में वासना या चित्तवृत्ति या मनोविकार के स्वरूप से वर्तमान रति आदि स्थायी भाव ही विभाव, अनुभॉव और संचारी भावों के द्वारा व्यक्त होकर रस बन जाते हैं।'

भरत मुनि ने रस-सिद्धांत को सूत्ररूप में लिखते हुए कहा है—'विभावानुभावव्यभिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्तिः' अर्थात् विभाव, अनुभाव और व्यभिचारी के संयोग से रस-निष्पत्ति होती है।

लोक-व्यवहार में स्थायी भावों के जो कार्य और सहकारी होते हैं, वे ही नाटक और काव्य में क्रमशः विभाव, अनुभाव और सहकारी कहलाते हैं।[४] इन्हीं तीनों की सहायता से जो स्थायी भाव होता है वही 'रस' कहलाता है।

भरत मुनि ने अपने पूर्वाचार्य द्रुहिण के प्रमाण पर आठ ही रसों का उल्लेख किया है—

शृंगार - हास्य - करुण - रौद्र - वीर - भयानकाः
वीभत्साद्भुत-संज्ञो चेत्यष्टौ नाट्ये रसः स्मृताः ॥
[नाट्यशास्त्र : : अध्याय ६ : : श्लोक १५]

उनके अनुसार रसों की संख्या आठ है—शृंगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत। इसके अतिरिक्त, उन्होंने इन रसों के स्थायी भावों की तालिका भी उपस्थित की है—शृंगार (रति), हास्य (हास), करुण (शोक), रौद्र (क्रोध), वीर (उत्साह), भयानक (भय), वीभत्स (घृणा) और अद्भुत (विस्मय)। भरत के उत्तरवर्ती आचार्यों ने रसों की संख्या में

---

४. कारणान्यथ कार्याणि सहकारीणि यानि च।
रत्यादेः स्थायिनो लोके तानि चेन्नाट्य-काव्ययोः ॥
विभावा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः।
व्यक्तः स तैर्विभावाद्यैः स्थायी भावो रसः स्मृतः ॥

एक रस की और वृद्धि की है। वह है शान्त रस। शान्त रस की अवतारणा सर्वप्रथम उद्भट ने ही की।[५] इस प्रकार नौ रस माने गए, परन्तु नवें शम के विषय में दशरूप में 'शममिति केचित्याहुः पुष्टिर्नाट्येषु नैतस्य' लिखा हुआ है; किन्तु यह कथन तथ्यरहित है। अतएव नौ रसों के साथ-साथ नौ स्थायी भाव हुए। वस्तुतः स्थायी भाव से ही रस की पहचान होती है। साहित्य-दर्पण-कार ने स्थायी भाव (Primary Emotion) इस प्रकार गिनाये हैं—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहौ भयं तथा
जुगुप्सा विस्मयश्चेत्थमष्टौ प्रोक्ताः शमोऽपि च ॥

इन स्थायी भावों की व्याख्या साहित्यदर्पणकार के अनुसार इस प्रकार है—

रतिर्मनोनुकूलेऽर्थे मनसः प्रवणायितम्।
वागादिविकृतैश्चेतोविकासो हास इष्यते ॥
इष्टनाशादिभिश्चेतो वैक्लव्यं शोकशब्दभाक।
प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यावबोधः क्रोध इष्यते ॥
कार्य्यारम्भेषु संरम्भः स्थेयानुत्साह उच्यते।
रौद्रशक्त्या तु जनितं चित्त-वैक्लव्यदं भयम् ॥
दोषेक्षणादिभिर्गर्हा जुगुप्सा विषयोद्भवा।
विविधेषु पदार्थेषु लोक - सीमातिवर्त्तिषु ॥
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृतः।
शमो निरीहावस्थायां स्वात्मविश्रामजं सुखम् ॥

अर्थात्—मन की अनुकूल वस्तु अर्थात् प्रीति के विषय को—नायक अथवा नायिका के मन की स्वाभाविक प्रवृत्ति को रति कहते हैं। वाणी, वेश भूषणादि की विपरीतता से जो चित्त का विकास होता है वह हास कहलाता है। इष्ट-नाशादि के कारण चित्त के वैक्लव्य अर्थात् व्याकुलता को शोक कहते हैं। विरोध, शत्रु आदि के विषय में तीक्ष्णता के ज्ञान को क्रोध कहते

५. वीभत्साद्भुतशान्ताश्च नव नाट्ये रसाः स्मृताः। का० स०

हैं। (हम इसको किसी प्रकार नष्ट कर सकें, ऐसी दुर्भावना को तीक्ष्णता कहते हैं।) युद्ध एवं अन्य सत्कार्यादि के आरंभ में दृढ़ता तथा उत्कट आवेश को उत्साह कहते हैं अर्थात् किसी भी दुर्घट कार्य के समारंभ में ऐसा विचार करना कि हम इसको अवश्य करेंगे, चाहे जीवित रहें या मर जायँ; ऐसा दृढ़ निश्चय उत्साह कहलाता है। किसी रौद्र भयंकर वस्तु की शक्ति से उत्पन्न, चित्त की व्याकुलता देनेवाला भाव भय कहलाता है। किसी वस्तु में दोष देखने पर जो घृणा उत्पन्न होती है उसे जुगुप्सा कहते हैं। लोक की सीमा को उल्लंघन करनेवाले अलौकिक शक्ति से युक्त किसी वस्तु के दर्शनादि से उत्पन्न चित्त के विस्तार को विस्मय कहते हैं। किसी वस्तु के लिए इच्छा न होने को निस्पृहा कहते हैं। ऐसी निस्पृहता की अवस्था में अपनी आत्मा के आश्रय लेने का जो सुख होता है, उसको शम कहते हैं।'

यह तो हुई स्थायी भाव की व्याख्या। इन नौ रसों के सिवा प्रेय [६], वात्सल्य [७], कौल्य, कार्पण्य और भक्ति [८] को भी कुछ आचार्यों ने रस माना है। इसी के आधार पर हम पंत के रस-सिद्धान्त-संबंधी दृष्टिकोण पर विचार करेंगे।

छायावादी कविताओं में रस

अनेक विद्वानों का कथन है कि छायावादी कवि काव्यशास्त्र के नियमों को मान्य नहीं ठहराते हैं। इसलिए उनकी कविताओं में शास्त्रीय दृष्टि से रस की निष्पत्ति पूर्णरूपेण नहीं हो पाता है। फलतः छायावादी कविताओं से काव्यानंद की प्राप्ति नहीं होती। आधुनिक काव्य विवेचक छायावादी कविता को फूहड़ वस्तु समझकर उससे नाक-भौं सिकोड़ लिया करते हैं। तब यह देखना है कि क्या सचमुच छायावादी कविताओं में रस के अभाव के कारण प्रभाव-प्रेषणीयता का अभाव रहता है? क्या रस की दृष्टि से छायावादी

---

६. प्रेयः प्रियतराख्यानम् (काव्यादर्श)

७. स्फुटं चमत्कारितया वत्सलं च रसं विदुः (साहित्यदर्पण

८. निगमकल्पतरोर्गलितं फलं शुकमुखादमृतद्रवसंयुतम् !
पिबत भागवतं रसमालयं मुहुरहो रसिका भुवि भावुकाः ॥ (भागवत)

कविताएँ असफल प्रमाणित होंगी। इन्हीं प्रश्नों को दृष्टिपथ में रखते हुए हमें पंत की कविताओं का मूल्यांकन करना है। शास्त्रीय दृष्टि से रस के प्रकार ऊपर बताये जा चुके हैं और सबका परिपाक छायावादी गीतों में होना आवश्यक नहीं है; क्योंकि उसका क्षेत्र संकुचित है। सच तो यह है कि प्रबन्धकाव्य के अन्तर्गत ही इन सब रसों का समावेश हो सकता है; क्योंकि उसमें मानव-जीवन की समस्त परिस्थितियों का सन्निवेश रहता है। छायावाद के मुक्तक गीतों के अन्तर्गत मानव-जीवन के कुछ खण्ड-भाव रहते हैं जिसके फलस्वरूप उनमें सभी रसों की निष्पत्ति नहीं पायी जाती। छायावादी कविताओं में आत्मनिष्ठ भावनाओं को प्रधानता मिली है जिसके हेतु रसों की विविधता नहीं पायी जाती है। इसलिये यदि इस प्रकार की कविताओं में रस का वैचित्र्य न रहे तो कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पंत की रस-योजना

पंत की कविताओं में प्रायः चार रस पाये जाते हैं—शृंगार, अद्‌भुत, करुण और शान्त, और शेष रसों के लिए इनकी कविता में स्थान नहीं है। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने वात्सल्य रस की सृष्टि की है जो पंत की कविताओं में नहीं मिलता है; क्योंकि छायावादी कविता में लौकिक पारिवारिक संबंधों को प्राय: स्थान नहीं मिलता। भक्ति-रस का समावेश इसलिए नहीं होता कि छायावाद के कवि का आराध्य आलम्बन सगुण ईश्वर नहीं होता। वह तो किसी व्यापक अनन्त सत्ता की अनुभूति अपने मन में करता है। यदि परोक्ष सत्ता के प्रति श्रद्धा का भाव भी भक्ति रस में अन्तर्हित कर लिया जाय तो पंत की कविताओं में भक्ति रस के चंद छींटे नजर आयँगे। यथा—

चरण कमल में अर्पित कर मन
रज - रंजित कर . तन
मधु रस-मज्जित कर मम जीवन,
चरणामृत आशय में
नीरव तार हृदय में—

छायावादी पंत की रस-योजना परिपूर्ण और प्रौढ़ है एवं उसकी लेखनी से जिन रसों को कविता में स्थान मिला है, वह प्रशंसनीय है। कवि में सौंदर्य के प्रति प्रेम है, उसका 'मन सर्वदा प्रेयसी के सौंदर्य का कल्पनात्मक या मानसिक रसपान कर लेने में समर्थ है।' रस की निष्पत्ति के लिए स्थायी-भाव, विभाव, अनुभाव एवं संचारीभाव नामक चार तत्त्वों की आवश्यकता है, जिसकी सम्यक् योजना पंत की कविताओं में हो पायी है।

शृंगार-रस के परिपाक में पंत की प्रतिभा अप्रतिभ है। उन्होंने इसके दोनों पक्षों (संयोग और वियोग) को अपनी कविताओं में स्थान दिया है। शृंगार-रस का स्थायी भाव है रति (प्रेम) और रति का सफल अंकन पंत की कलागत विशेषताओं में एक है। पंतजी एक ओर लौकिक प्रेम का वर्णन करते हैं तो दूसरी ओर उसे अलौकिक आवरण दे देते हैं। 'पल्लव' और 'गुंजन' की कुछ कविताओं में प्रेम का सूक्ष्म, सांकेतिक एवं अलौकिक रूप मिलता है। कवि ने स्थूल प्रेम का तीव्रतर विरोध किया है और इस सत्य की पुष्टि के लिए 'पल्लव' की भूमिका पर्याप्त है। इस सम्बन्ध में पंत का जो दृष्टिकोण है, उससे परिचित होने के लिए कवि की लिखी कुछ सारगर्भित पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :—शृंगार-प्रिय कवियों के लिए शेष रह ही क्या गया? उनकी अपरिमेय कल्पना शक्ति कामना के हाथों द्रौपदी के दुकूल की तरह फैलकर 'नायिका' के अंग-प्रत्यंग में लिपट गई। बाल्यकाल से वृद्धावस्था पर्यन्त,—जब तक कोई 'चन्द्रवदनि मृग-लोचनी' तरस खाकर, उनसे 'बाबा' न कह दे,—उनकी रस-लोलुप सूक्ष्मतम-दृष्टि केवल नख से शिख तक, दक्षिणी ध्रुव से उत्तरी ध्रुव तक, यात्रा कर सकी! ऐसी विश्वव्यापी अनुभूति! ऐसी प्रखर प्रतिभा! एक ही शरीर-यष्टि में समस्त-ब्रह्माण्ड देख लिया! अब इनकी अक्षय कीर्ति-काया को जरामरण का भय? क्या इनकी 'नायिका', जिसके वीक्षण-मात्र से इनकी कल्पना तिलक की डाल की तरह खिल उठती थी, अपने सत्यवान को काल के मुख से न लौटा लायेगी? इसी विराट-रूप का दर्शन कर ये पुष्प-धनुषधर कवि रति के महाभारत में विजयी हुए। समस्त देश की वासना के वीभत्स

शृंगार रस

समुद्र को मथकर इन्होंने कामदेव को नव जन्म दान दे दिया, वह अब सहज ही भस्म हो सकता है ? इन वीरों ने ऐसा सम्मोहनास्त्र देश के आकाश में छोड़ा कि सारा संसार कामिनीमय हो गया ! 'एक के भीतर बीस' डिब्बेवाले खिलौने की तरह, एक ही के अन्दर सहस्र-नायिकाओं के स्वरूप दिखला दिये। सारे देश को, जादू के बल से, कामना के चमकीले पारे से मढ़े हुए कच्चे काँच के टुकड़ों का एक ऐसा विचित्र अजायब-घर, 'सब जग जीतन को' काम का ऐसा 'काय-व्यूह-शीशमहल' बना दिया कि आर्य-नारी की एकनिष्ठ, निश्चल, पवित्र प्रतिमा वासनाओं के असंख्य रंग-विरंगी बिम्बों में बदल गई, —जिनकी भूलभुलैया में फँसकर, देश के लिए अपनी सरल सुशील सती को पहचानना कठिन हो गया !' ('पल्लव' की भूमिका, पृ० ७) । इससे स्पष्ट होता है कि कवि ने सामन्तवाद के वासनात्मक दृष्टिकोण को अत्यन्त तीव्र शब्दों में विरोध किया है और आगे चलकर नारी के प्रति जो रूढ़िग्रस्त प्राचीन दृष्टिकोण है, उसकी भी कठोर भर्त्सना की गई है, लीजिए::—
"और इनकी वियोग-वहिन ने क्या किया ? इनकी और्क के नेत्रों की ज्वाला-सी आह ने ? देश की प्राण-संचारिणी, शक्ति-संजीवनी वायु को ग्रीष्म की प्रचण्ड लू में बदल दिया ? सकल सद्भावनाओं के सुकुमार पौधे जल कर छार हो गये ; शान्ति, सुख, स्वास्थ्य, सदाचार सब भस्म हो गये ; पवित्र प्रेम का चन्दन-पंक सूख गया ; भारत का मानस भी दरक गया ; और उसकी सती इन कवियों की नुकीली लेखनी से उस गहरी खुदी हुई दरार में समा गई ; शक्ति की कमर खो गई ; समस्त दुर्बलता का नाम अबला पड़ गया ।" ('पल्लव' की भूमिका, पृ० ७-८ ।) अतः यह साफ जाहिर हो गया कि आधुनिक युग के कवियों ने नारी के प्रति एक स्वस्थ्य दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, इस कोटि के कवियों में सुकुमार पंत भी हैं। अंग्रेजी और उर्दू कवियों ने हिन्दी कवियों पर ऐसा पुरजोर असर डाला कि लौकिक-अलौकिक प्रेम-अंकन एक-सा मालूम पड़ने लगा। नारी के प्रति कवि की प्रेम-भावना 'ग्रन्थि' में अभिव्यक्त हुई है।" यहाँ पूर्णतया रोमानी दृष्टिकोण का परिचय नहीं मिलता परन्तु प्रेम-भावना की मुखरता (जो द्विवेदी युग में एक अपराध-सी

समझी जाती थी) तथा स्थूल सौन्दर्य-अंकन के साथ-साथ मानसिक प्रेम की व्यंजना अवश्य आरम्भ हो जाती है। प्रेम मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में से एक है। प्राचीन विचारकों ने तो 'रति' के अनेक रूपों में ही अन्य भावनाओं का वर्णन किया है परन्तु उन्होंने 'रति' शब्द का व्यापक अर्थ किया है। मनुष्य की सारी क्रियाओं के पीछे आकर्षण या विकर्षण—रति और विरति—राग और द्वेष ये ही दो भावनाएँ प्रधान दिखाई पड़ती हैं, अन्य भावनाएँ इन्हीं के विविध रूप मात्र हैं। यही आकर्षण नारी व पुरुष के बीच 'रति' शब्द से व्यंजित होता है और साथ ही सभी 'आकर्षण' से संबंधित—रागात्मक भावनाएँ श्रद्धा, सहानुभूति, भक्ति, उत्साह, विस्मय आदि 'रति' शब्द से कथित हो सकती हैं। रीतिकाल में 'रति' को संकुचित अर्थ में—केवल नारी व पुरुष के बीच आकर्षण के अर्थ में गृहीत किया गया और केवल 'रति' की ही वर्णना—रति के प्रवृत्यात्मक (Instinctive) रूप की ही व्यंजना होती रही—अर्थात् 'रति' का वर्णन इस प्रकार किया गया जिससे रति के उच्च रूप 'प्रेम' की व्यंजना कम हुई, ('देव' आदि कवियों में वह अवश्य हुई) विलास को उद्दीप्त करने की प्रवृत्ति अपनी चरम-सीमा पर पहुँच गई। सौन्दर्य व विलास का भेद लुप्त होता गया। पुष्प के सौन्दर्य को देखकर कवि जिस प्रकार आनन्दित होता है, नारी के सौन्दर्य को देखकर भी उसी सौन्दर्य-भावना से वह युक्त हो सकता है। ऐसा कवि नख-शिख वर्णन की परम्परा न अपनाकर नारी को सौन्दर्य की एक इकाई के रूप में देखेगा। परिणामतः उसके वर्णन में सौन्दर्य-अंकन सूक्ष्म होगा। वह रूप के प्रभाव, दीप्ति, कान्ति, उल्लास का वर्णन अधिक करेगा। अनासक्त दृष्टि से ही इस प्रकार का सौन्दर्य उत्पन्न होता है। इस सौन्दर्य में कोमलता व रमणीयता को तराजू पर तौलने का प्रयत्न नहीं होता जैसा कि रीतिकाल में हुआ अपितु इसमें कोमलता व रमणीयता आदि को देखकर हृदय की सामान्य आनन्द वृत्ति को सन्तुष्ट करने की प्रक्रिया रहती है और यह पद्धति सामाजिक दृष्टिकोण के अनुकूल पड़ती है। सौन्दर्य को विलास का साधन मान कर उसका वर्णन करना सामन्तकालीन प्रवृत्ति है। पुष्प को देखकर मुग्धता

उत्पन्न होती है, उसके रूप की अनुपमता को देखकर विस्मय व आनन्द उत्पन्न होता है। जिस प्रकार एक चित्र में रेखाओं के सामंजस्य को देखकर तथा उनके द्वारा सांकेतिक भाव भंगिमाओं या तथ्य-विशेष की ओर हमारा मन चला जाता है और हम चित्र पर मुग्ध हो जाते हैं, उसी प्रकार नारी के सौन्दर्य को देखकर हम मुग्ध हो सकते हैं। सौन्दर्य में एक सीमा तक तटस्थता आवश्यक है। मछली को एक मछुआ देखता है और एक कवि भी पर दोनों में जो अन्तर है वही अन्तर रीतिकालीन दृष्टिकोण व छायावादी दृष्टिकोण में दिखाई पड़ता है। चूकि छायावादी सौन्दर्य-भावना परिस्थितियों के अभाव से अधिक सूक्ष्म, अधिक सांकेतिक, अधिक मानसिक और अधिक मार्मिक थी। अतः छायावाद में नारी-सौन्दर्य का रूप पिछली कविता में अभिव्यक्त रूप से भिन्न मिलता है। 'ग्रन्थि' में सौन्दर्य-वर्णन की पिछली पद्धति को पूर्णतया कवि नहीं छोड़ सका। अतः यहाँ स्थूलता-सूक्ष्मता के संयोग से 'ग्रंथि' को हम 'छायावादी नख-शिख-प्रधान कविता' कह सकते हैं। 'ग्रंथि' प्रथमकालीन प्रयास था। अतः पूर्व-युगों की कला-पद्धति से इतनी शीघ्रता से कोई कवि अलग नहीं हो सकता था।'[१] 'ग्रंथि' एक छोटा-सा प्रेमकाव्य है जिसमें एक विफल प्रणय तरुण-हृदय की बड़ी ही मार्मिक वेदना है। इसीलिए कवि को 'रति' के संयोग और वियोग के चित्रांकन में काफी सफलता मिली है। प्रथम मिलन का मार्मिक चित्र देखिये :—

शीश रख मेरा सुकोमल जाँघ पर
शशि-कला-सी एक बाला व्यग्र हो
देखती थी म्लान मुख मेरा अचल
सदय, भीरु, अधीर, चिंतित दृष्टि से।
इंदु पर, उस इंदु-मुख पर, साथ ही
थे पड़े मेरे नयन, जो उदय से,
लाज से रक्तिम हुए थे; पूर्व का
पूर्व था, पर वह द्वितीय अपूर्व था!

---

१. पंतजी का नूतन काव्य और दर्शन, पृ० ४६१-७१।

एक पल मेरे प्रिया के दृग पलक
थे उठे ऊपर सहज, नीचे गिरे
चपलता ने इस विकंपित-पुलक से
दृढ़ किया मानो प्रणय संबंध था ।

उपर्युक्त पंक्तियों में नायिका आलंबन, नायिका का सौन्दर्य उद्दीपन, नायिका का निरीक्षण अनुभाव, लज्जा आदि संचारी तथा रति स्थायी है। यहाँ संयोग-सुख की ही प्राप्ति है, संभोग-सुख की नहीं; क्योंकि प्रिय को प्रिया की प्राप्ति नहीं हुई।

और अब इसी काव्य ग्रंथ 'ग्रन्थि' से वियोगजन्य विषाद का तलस्पर्शी चित्र देखिये :—

हाय मेरे सामने ही प्रणय का
ग्रन्थि बंधन हो गया, वह नवकुसुम
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर, किसी—
अन्य मानस का विभूषण हो गया।

'ग्रन्थि' के अध्ययनोपरांत हम देखते हैं कि इस लघु काव्य में दर्शन, सौन्दर्य, प्रेम, नियति, सृष्टि, ज्ञान, उन्माद, कल्पना, आँसू, वेदना, विरह, सुख आदि विरह के उपकरणों पर सुंदर उद्‌गार फूट पड़े हैं। इसमें पूर्वराग का सुंदर वर्णन हो पाया है जो संयोग की सीमा पर जा पहुँचा है। समस्त काव्य में विरह की कसक है, पर वह भाव-प्रधान न होकर विचार-प्रधान है।

पंत ने जिस प्रेम का शृंगार किया है, वह उदात्त-भावना से सरावोर है। उसमें वासनात्मक गंध नहीं, प्रत्युत् मानसिक सुरभि है। कवि के लिए प्रेम सिर्फ शारीरिक भोग मात्र नहीं है, वह इससे अत्यन्त ऊँची वस्तु है। 'उससे ही हृदय की मुक्ति होती है जो वास्तविक सुख और आनन्द का मूल है।' 'स्वर्ण किरण' में स्वयं कवि ने कहा है ::

देह नहीं है परिधि प्रणय की,
प्रणय दिव्य है, मुक्ति हृदय की। (पृ० ३८)

रसशास्त्र की दृष्टि से पंत के प्रणय गीतों का रस भी शृंगार ही है जिसमें कवि का प्रेम (रति) स्थायी भाव है; प्रेयसी का रूप-सौन्दर्य आलंबन; प्रकृति का मादक सौन्दर्य-वर्णन उद्दीपन ; कवि और उसकी प्रेयसी के पुलक, कंपन, स्तब्धता, नमित पलक आदि अनुभाव; एवं प्रेयसी की स्मृति, लालसा, अभिलाषा तथा रूप-अभिमान आदि संचारी भाव हैं । "भावी पत्नी के प्रति" शीर्षक कविता में शृंगार रस का सुंदर आकलन हो पाया है, उदाहरण द्रष्टव्य है—

स्थायी भाव : : प्रेम

शलभ-चंचल मेरे मन-प्राण;
प्रिये, प्राणों की प्राण !
या
बाल रति-सी अनुपम, असमान—
न जाने, कौन, कहाँ, अनजान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

आलंबन-विभाव : : भावी पत्नी का सौन्दर्य

अरुण-अधरों की पल्लव-प्रात,
मोतियों सा हिलता-हिम-हास,
इन्द्रधनुषी-पट से ढँक गात
बाल-विद्युत् का पावस लास;
हृदय में खिल उठता तत्काल
अधखिले अंगों का मधुमास,
तुम्हारी छवि का कर अनुमान
प्रिये, प्राणों की प्राण !

उद्दीपन-विभाग : : प्रकृति का मादक सौन्दर्य

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण, सुख, श्री, सौरभ का सार,

मनोभावों का मधुर विलास,
विश्व सुखमा ही का संसार ;
दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योमबाला का शरदाकाश ;
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान,
प्रिये, प्राणों की प्राण !

अनुभाव : : भावी पत्नी की शारीरिक अवस्था

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकंपित मृदु-उर, पुलकित गात,
सशंकित ज्योत्स्ना सी चुपचाप
जड़ित-पद, नमित पलक-दृग-पात,
पास जब आ न सकोगी, प्राण !
मधुरता में-सी मरी अजान,
लाज की छुई-मुई-सी म्लान
प्रिये प्राणों के प्राण !

संचारी भाव :: स्मृति

हृदय के पलकों में गतिहीन
स्वप्न-संसृति-सी सुखमाकार;
बाल भावुकता बीच नवीन
परी-सी धरती रूप अपार;
झूलती उर में आज, किशोरी !
तुम्हारी मधुर-मूर्ति छविमान,
लाज में लिपटी उषा समान,
प्रिये प्राणों की प्राण !

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि पंत ने शृंगार रस की निष्पत्ति के लिए रस के सभी अंगों को जुटाया और इसमें उन्हें सफलता भी हाथ

लगी है। कवि का एक सुप्रसिद्ध गीत है—'आज रहने दो यह गृहकाज'; इसमें संयोग शृंगार का वर्णन है और इसकी निष्पत्ति में पूर्णतया सफल है। पर सबसे बड़ी बात यह है कि इस कविता में रस की सभी सामग्रियाँ उपलब्ध हैं, सिर्फ आलंबन विभाव का चित्रण नहीं मिलता। देखिये—

स्थायी भाव :: प्रेयसी के प्रति प्रेम व्यंजित

आज रहने दो यह गृहकाज,
प्राण ! रहने दो यह गृहकाज !

आलंबन विभाव :: प्रेयसी का सौन्दर्य-वर्णन

[उस संबंध में कवि की वाणी मौन है]

उद्दीपन विभाव :: प्राकृतिक सौन्दर्य

आज जाने कैसी वातास
छोड़ती सौरभ-श्लथ उच्छ्वास,
प्रिये, लालस-सालस वातास,
जगा रोओं में सौ अभिलाष !

अनुभाव :: प्रेयसी की शारीरिक अवस्था।

आज चंचल-चंचल मन-प्राण,
आज रे शिथिल शिथिल तन भार;

संचारी भाव : स्मृति आदि

आज उर के स्तर स्तर में, प्राण !
सजग सौ-सौ स्मृतियाँ सुकुमार !

आलंबन विभाव का अभाव होते हुए प्रस्तुत कविता शृंगार रस की दृष्टि से सफल है।

पंत रचित 'मधुवन' शीर्षक कविता में कवि की प्रियतमा की रूपमाधुरी का भुवनव्यापी प्रभाव है। यह कविता तीन खंडों में विभक्त है पर 'तीनों में भाव की एक ही अन्तर्धारा प्रवाहित है वसंतकालीन वनस्थली की

प्राकृतिक सुषमा के सहारे प्रिया के सौन्दर्य की प्रशस्ती।' प्रिया प्रकृति को प्रभावित कर रही है, प्रकृति कवि को। एक ओर प्रिया की रूपमाधुरी से प्रभावित भौंरे नयन-पलकों के पंख पसारे चारो ओर उड़ रहे हैं तो दूसरी ओर प्रकृति के पंचतत्वों में प्रणय की आकुलता समाविष्ट है। शास्त्रीय दृष्टि से 'मधुवन' शीर्षक कविता (के तीनों खंडों) में शृंगार रस का सम्यक परिपाक हुआ है क्योंकि आलंबन, उद्दीपन, स्थायी भाव, रति संचारी भाव और अनुभाव सब इसमें वर्त्तमान है

स्थायी भाव :: प्रेयसी के प्रति प्रेम व्यंजित

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार
लग गई मधु के वन में ज्वाल।

आलंबन विभाव :: कवि की प्रेयसी का चित्रण

आज नव मधु की प्रात
झलकती नभ पलकों में प्राण !
मुग्ध यौवन के स्वप्न समान,—
झलकती, मेरी जीवन-स्वप्न ! प्रभात
तुम्हारी मुख छवि सी रुचिमान !

उद्दीपन-विभाव :: प्रकृति का मादक वर्णन

आज स्वर्णिम मधु प्रात
व्योम के विजन कुंज में, प्राण !
खुल रही नवल गुलाब समान,
लाज के विनत-वृंत पर ज्यों अभिराम
तुम्हारा मुख अरविन्द सकाम।

अनुभाव :: प्रेयसी की शारीरिक अवस्था

तुम्हारी तनु-तनिमा लघु भार
बनी मृदु व्रतति-प्रतति का जाल,
मृदुलता सिरिस मुकुल सुकुमार,
विपुल पुलकावलि चीना-डाल !

संचारी भाव :: सुधि स्वप्न आदि

वितरती गृह वन मलय-समीर
सांस, सुधि स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार, केशर-शर मलय समीर
हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण !
और
देह में पुलक, उरों में भार,
भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण,
अधर में अमृत हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान !

हाँ, कहीं-कहीं कवि ने सिर्फ आलंबन, सिर्फ उद्दीपन, सिर्फ संचारी भाव आदि का वर्णन किया है. पर ऐसे स्थलों पर रस-निष्पत्ति नहीं हो पायी है। निम्नांकित पंक्तियों में सिर्फ आलंबन विभाव का वर्णन मिलता है :—

तुम्हारे नयनों का आकाश
सजल, श्यामल, अकूल आकाश !
गूढ़, नीरव, गंभीर प्रसार
न गहने को तृण का आधार !

सुतरां, इन पंक्तियों में रसोत्पत्ति की शक्ति नहीं है ! कहीं-कहीं कवि ने आलंबन के रूप में प्रकृति का चित्रण किया है पर वह शृंगार रस का आलंबन नहीं है। ऐसे स्थलों पर कवि की सौन्दर्यानुभूति मुखरित है, शृंगार रस नहीं। कवि पंत रचित "विहग के प्रति" शीर्षक कविता की पंक्तियाँ लीजिये :—

विजन वन के ओ विहग कुमार,
आज घर-घर रे तेरे गान ;
मधुर मुखरित हो उठा अपार
जीर्ण जग का विषण्ण उद्यान !
या

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि !

[चाँदनी]

पंत की कविता में शृंगार रस के उद्दीपन के रूप में प्रकृति के अनेक सुन्दर चित्र मिलते हैं। कुछ पंक्तियाँ उद्धृत की जाती हैं :—

देखता हूँ, जब उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये भर-भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को ;
नवोढ़ा बाल लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुक कर
सरकती है सत्वर ;
अकेली आकुलता-सी प्राण!
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात !

['आँसू' से]

संचारी भाव का कुछ उदाहरण लीजिये :—

अचल पलकों में मूर्ति सवार
पान करता हूँ रूप अपार ;
पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल चलती है दृग जल धार !
बालकों-सा ही तो मैं हाय !
याद कर रोता हूँ अनजान :

['आँसू' की बालिका

पंत की शृंगार-रस सम्बन्धी कविता बहुलांश में भावात्मक है, इसीलिए जितना आलंबन, उद्दीपन और संचारियों का वर्णन हुआ है, उतना आलंबन का विशद वर्णन नहीं मिलता। शृंगार-रस से वेष्ठित कविताओं में स्नेह, उच्छ्वास की बालिका, आँसू की बालिका, ग्रंथि, गुंजन के गीत (संख्या २०, २१, २२, २३, २४, २५, २७, ३६ और अप्सरा) आदि! कवि द्वारा शृंगार रस की व्यंजना अत्यन्त विस्तृत एवं सूक्ष्म हुई है।

यह सच है कि छायावादी पंत ने शास्त्रीय दृष्टि से शृंगार-रस की व्यंजना में काफी सफलता प्राप्त की है, पर इसका यह अर्थ नहीं कि उनकी कविता में शृंगार-रसाभास के उदाहरण नहीं है। 'जब रस की अनुचित प्रवृत्ति से अपूर्ण परिपाक होता है तो उसे रसाभास कहते हैं। विभावादि की अनौचित्यपूर्ण योजना से ऐसा होता है। गुरु-मुनि, माता-पिता आदि की रति, पर स्त्री या पर पुरुषगत रति, जड़ या निरीन्द्रिय पदार्थों जैसे प्राकृतिक वस्तुओं में दाम्पत्य रति का आरोप, एकांगी प्रेम या पशु-पक्षीगत रति आदि का वर्णन लोक-दृष्टि से अनुचित माना जाता था। जहाँ केवल भाव की अनुचित प्रवृत्ति होती है वहाँ भावाभास मात्र होता है, भावानुभूति नहीं। छायावादी कविता में रसाभास और भावावास वाली कविताओं की कमी नहीं है क्योंकि सामन्त-युग की लोक-दृष्टि बदल जाने और ज्ञान-विज्ञान की नई दृष्टि मिल जाने से समाज और व्यक्ति की औचित्य-अनौचित्य विषयक धारणा भी बदल गई है। अतः पहले जो बातें अनुचित समझी जाती थीं अब वे उचित और पहले जो उचित समझी जाती थीं अब अनुचित समझी जाती हैं।'[१०] पंत की कविता की कुछ पंक्तियाँ लीजिये जिसमें रसाभास पाया जाता है :—

रसाभास

कौन, कौन तुम परिहत वसना म्लानमना, भू-पतिता सी।
धूलि-धूसरित मुक्त कुंतला, किसके चरणों की दासी?
विजन निशा में सहज गले तुम लगती हो फिर तरुवर के।
आनन्दित होती हो सखि! तुम उसकी पद-सेवा करके॥

१०. छायावाद-युग, पृष्ठ २३८।

यहाँ पर निरिन्द्रियों में रतिविषयक आरोप से शृंगार रसाभास है। "यहाँ 'छाया' के लिए 'परिहत वसना' तथा निर्जन एकान्त स्थान में तरु से गले लगना आदि व्यापार जो संभोग-शृंगारगत दिखलाए गए हैं, उनके छाया और तरु जैसी निरिन्द्रिय वस्तु में होने के कारण अनौचित्य है। इससे रसाभास है।"

छायावादी पंत की काव्य चेतना में आश्चर्य-भावना कूट-कूट कर भरी हुई है। बचपन से ही कौतूहल की भावना कवि के अन्तःस, में विद्यमान रही है। उसमें प्रकृति के प्रति औत्सुक्य-भाव रहा है, वह प्रकृति की रहस्यमयी सत्ता को देखकर आश्चर्यचकित हो उठता है। पंत की 'अप्सरा' शीर्षक कविता में अद्भुत रस का सुन्दर सामंजस्य है। कुछ पंक्तियाँ लीजिए—

निखिल-कल्पनामयि अयि अप्सरि।
अखिल विस्मयाकार!
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर
भावों की आधार!
गूढ़, निरर्थ असंभव, अस्फुट
भेदों की शृंगार!
मोहिनि, कुहकिनि, छल विभ्रममयि,
चित्र-विचित्र अपार!

[गुंजन :: अप्सरा]

इस काव्य-संदर्भ में 'अद्भुत रस का स्थायी भाव आश्चर्य स्पष्ट है। आलंबन अप्सरा है जो 'छल विभ्रममयि' और अत्यन्त विचित्र है। उद्दीपन का स्पष्ट कथन नहीं हुआ लेकिन असामान्य, अलौकिक कुहुक का वातावरण उद्दीपन का काम करता है। अनुभाव का वर्णन भी नहीं है यद्यपि उसका अनुमान सहज ही किया जा सकता है और संचारी भाव उत्कंठा (जिज्ञासा) आदि के रूप में है।'

'जिज्ञासा' शीर्षक कविता में भी अद्‌भुत रस ध्यातव्य है ::—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल चंचल।

इसमें आश्चर्य मिश्रित जिज्ञासा की व्यंजना हुई है जो अद्‌भुत रस की सृष्टि में सहायक है।

'पंत' की 'परिवर्तन' शीर्षक कविता में करुण, वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स एवं शान्त रस की पूर्ण योजना हुई है। रौद्र रस का उदाहरण देखिये—

रौद्ररस

अहे निष्ठुर परिवर्तन !
तुम्हारा ही तांडव नर्तन
विश्व का करुण विवर्तन
तुम्हारा ही नयनोन्मीलन
निखिल उत्थान पतन !
अहे वासुकि सहस्र फन !
लक्ष अलक्षित चरण तुम्हारे चिह्न निरन्तर
छोड़ रहे हैं जग के विक्षत वक्ष-स्थल पर !
शत-शत फेनोच्छ्वसित, स्फीत फूत्कार भयंकर
घुमा रहे हैं घनाकार जगती का अंबर !
मृत्यु तुम्हारा गरल दंत, कंचुक कल्पान्तर,
अखिल विश्व ही विवर,
वक्र कुंडल
दिङ् मंडल !

इसी 'परिवर्तन' शीर्षक कविता से शान्त रस का उदाहरण लीजिये—

एक औ' बहु के बीच अजान
घूमते तुम नित चक्र-समान,

जगत के उर में छोड़ महान
गहन चिह्नों में ज्ञान !
परिवर्तित कर अगणित नूतन दृश्य निरन्तर
अभिनय करते विश्व-मंच पर तुम मायाकर !
जहाँ हास के अधर, अश्रु के नयन करुणतर
पाठ सीखते संकेतों में प्रकट अगोचर ;
शिक्षास्थल यह विश्व-मंच तुम नायक नटवर,
प्रकृति नर्तकी सुघर
अखिल में व्याप्त सूत्रधर !

पंत की कविता में शान्तरस की अधिकता है। शृंगाररस के पश्चात् पंत की कविता में इसी रस की सम्यक् योजना पाते हैं। शान्तरस वही कहा जाता है जहाँ न सुख है, 'न दुःख है, न द्वेष है, न मात्सर्य और जहाँ पर सब भूतों में समान भाव रहता है। * शान्तरस का स्थायी भाव है निर्वेद। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

शान्तरस

हाय ! सब मिथ्या बात !—
आज तो सौरभ का मधुमास,
शिशिर में भरता सूनी साँस
वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार
अकिंचनता में कर तत्काल
सिहर उठती—जीवन है भार
....
शून्य साँसों का विधुर वियोग
छुड़ाता अधर-मधुर - संयोग

* नास्ति यत्र सुखं दुःखं न द्वेषो न च मत्सरः ।
समः सर्वेषु भूतेषु स शान्तः प्रथितो रसः ।।

मिलन के पल केवल दो-चार
विरह के कल्प अपार
....
प्रात ही तो कहलाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार
मधुर उर इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल आकार
छिन गया हाय ! गोद का बाल
गड़ी है बिना बाल की नाल

'सुख-दुःख' शीर्षक कविता में समत्व-भावना ने कवि के मानसिक निर्वेद को अभिव्यक्ति दी है—

जग पीड़ित है अति दुख से जग पीड़ित है अति सुख से
मानव जग में बँट जावें दुख सुख से और सुख दुख से।

कवि की वैराग्य-भावना को देखिए—

रह - रह मिथ्या - पीड़ा से दुखता दुखता मेरा मन
मिथ्या ही बदला देती मिथ्या का रे मिथ्या मन।

दार्शनिक भावों से समन्वित 'एक तारा'-शीर्षक कविता की पंक्तियाँ शान्त-रस के अन्तर्गत निहित हैं—

चिर अविचल तारक अमन्द।
जानता नहीं वह छन्द - बंध।
वह रे अनन्त का मुक्त मीन अपने असंग सुख में विलीन,
स्थित निज स्वरूप में चिर-नवीन।
निष्कंप शिखा-सा वह निरुपम, भेदता जगत-जीवन का तम
वह शुद्ध प्रबुद्ध शुक्र वह सम।

या 'नौका विहार' शीर्षक कविता की अन्तिम पंक्तियों को देखिये, उनमें आपको शान्तरस का दर्शन करने का सुअवसर प्राप्त होगा—

हे जग - जीवन के कर्णधार ! चिर जन्म - मरण के आर-पार,
शाश्वत जीवन नौका - विहार।

मैं भूल गया अस्तित्व - ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व दान।

इसके अतिरिक्त 'नित्य जग', 'अनित्य जग', 'उर की डाली', 'तप', 'सुख-दुःख', 'चाँदनी', 'ताज' आदि कविताओं में हम शान्त रस की निष्पत्ति पाते हैं।

पंत की कविताओं में करुण रस की व्यंजना नहीं हो पायी है; क्योंकि उसने मुक्तक गीत लिखे हैं न कि प्रबन्ध। प्रबन्ध में ही रसों की योजना सम्यक् रूप से हो पाती हैं। अस्तु, करुण रस की मार्मिक व्यंजना के लिए कवि को गुंजाइश नहीं है। एक उदाहरण लीजिये—

अभी तो मुकुट बँधा था माथ
हुए कल ही हलदी के हाथ

खुले भी न थे लाज के बोल
खिले भी चुम्बन-शून्य कपोल

हाय रुक गया यहीं संसार
बना सिंदूर अंगार

—इसमें पति-वियोग काव्यगत आलंबन है और विधवा रसिकगत। पति की वस्तुओं का दर्शन काव्यगत और हलदी के हाथ होना, संसार का रुक जाना अर्थात् चूड़ी पहनना, सुहाग की बिन्दी लगाना आदि का अभाव हो जाना काव्यगत उद्दीपन है, रुदन आदि अनुभाव और चिन्ता, विषाद आदि संचारी भाव हैं।

सच तो यह है कि पंत भावों के कवि हैं, न कि रसों के। भावों के माध्यम से पंत का कवि रसों का उद्रेक करता है। उसका लक्ष्य रसोत्पत्ति पर अवलम्बित नहीं रहा, बल्कि अपने अंतःप्रदेश के भावों की व्यंजना पर। यही कारण है कि कवि ने रस-सृष्टि की बारीकियों की ओर कतई ध्यान न देकर भावों के माध्यम से रस की सृष्टि की। पंत की काव्य-तूलिका ने सिर्फ शृंगार, करुण और शान्त रस के भावों को ही चित्रों में अंकित किया है, जो अपने ढंग के मूल्यवान वस्तु है।

उपसंहार

छायावाद और पंत

पंत आधुनिक युग के कवि हैं और आज का युग 'वादों' का युग है। इस युग में अनेक वादों ने जन्म ग्रहण किया है और वे हैं छायावाद और रहस्यवाद। वादों के कोलाहल ने किसी का मूल्यांकन ठीक से नहीं करने दिया है। फलत: किसी ने छायावाद को रहस्यवाद का अंग माना, किसी ने उसे वस्तु माना और किसी ने शैली। इस प्रकार सभी का दृष्टिकोण अपना-अपना है। पिछले चार शतकों में 'छायावाद-काव्य' से इतर अनेक अन्य प्रकार के काव्य की सृष्टि बराबर होती रही और उसकी परम्परा आज तक चली आ रही है। पंत, काव्य की परम्परा से संबंधित हैं; पर अभी तक इन वादों का रूप स्थिर नहीं हो पाया है। इससे 'वाद' के सम्बन्ध में अनेक भ्रान्तियाँ फैली हुई हैं जिनका निराकरण सही तौर पर नहीं हो पाया है। छायावाद क्या है, इस सम्बन्ध में विचार करने के पूर्व हिंदी के विद्वानों के बीच इस 'वाद' के संबंध में काफी विचार-भेद है। इस विषय पर विचार करने के पूर्व हम साहित्य के कुछ प्रमुख आलोचकों के विचार उद्धृत करेंगे और देखेंगे कि वे विचार केवल मतभेद ही नहीं रखते हैं, वरन् स्वयं अपने में उलझे हुए हैं।

छायावाद और उसके आलोचक

[क]

'छायावाद शब्द का प्रयोग दो अर्थों में समझना चाहिये। एक तो रहस्यवाद के अर्थ में जहाँ उसका सम्बन्ध काव्य-वस्तु से होता है अर्थात् जहाँ कवि उस अनन्त और अज्ञात प्रियतम को आलंबन बनाकर अत्यन्त चित्रमयी भाषा में प्रेम की अनेक प्रकार से व्यंजना करता है। रहस्यवाद के अन्तर्भूत

रचनाएँ पहुँचे हुए पुराने संतों या साधकों की उस वाणी के अनुकरण पर होती हैं जो तुरीयावस्था या समाधि-दशा में नाना रूपकों के रूप में उपलब्ध आध्यात्मिक ज्ञान का आभास देती हुई मानी जाती थीं। रूपात्मक आभास को योरप में छाया (Phantasmata) कहते थे। इसीसे बंगाल में उस समाज के बीच उक्त वाणी के अनुकरण पर जो आध्यात्मिक गीत या भजन बनते थे वे 'छायावाद' कहलाने लगे। धीरे-धीरे यह शब्द धार्मिक क्षेत्र से वहाँ के साहित्य-क्षेत्र में आया और फिर रवीन्द्र बाबू की धूम मचने पर हिन्दी के साहित्य-क्षेत्र में भी प्रकट हुआ।'

रामचन्द्र शुक्ल

'छायावाद' शब्द का दूसरा प्रयोग काव्यशैली या पद्धति-विशेष के व्यापक अर्थ में है। सन् १८८५ में फ्रांस में रहस्यवादी कवियों का एक दल खड़ा हुआ जो प्रतीकवादी (Symbolists) कहलाया। वे अपनी रचनाओं में प्रस्तुतों के स्थान पर अधिकतर अप्रस्तुत प्रतीकों को लेकर चलते थे। इसी से उनकी शैली की ओर लक्ष्य करके 'प्रतीकवाद' शब्द का व्यवहार होने लगा। आध्यात्मिक या ईश्वर-प्रेम-सम्बन्धी कविताओं के अतिरिक्त और सब प्रकार की कविताओं के लिए भी प्रतीकशैली की ओर वहाँ प्रवृत्ति रही। हिन्दी में 'छायावाद' शब्द का जो व्यापक अर्थ में—रहस्यवादी रचनाओं के अतिरिक्त और प्रकार की रचनाओं के सम्बन्ध में भी—ग्रहण हुआ वह इसी प्रतीकशैली के रूप में। छायावाद का सामान्यतः अर्थ हुआ प्रस्तुत के स्थान पर उसकी व्यंजना करनेवाली छाया के रूप में अप्रस्तुत का कथन। इस शैली के भीतर किसी वस्तु या विषय का वर्णन किया जा सकता है।'[1]

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

[ख]

'मनुष्य को बाह्य सौन्दर्य की ओर से हटाकर उसे प्रकृति के साथ अपने अविच्छिन्न सम्बन्ध की स्मृति दिलाने का श्रेय भी छायावाद को ही है। स्मृति दिलाई इसलिए कहती हूँ कि यह संबंध शाश्वत है, केवल हमलोग उसे भूल-से गये थे। हममें से प्रायः

महादेवी वर्मा

१. हिन्दी-साहित्य का इतिहास पृ० सं० ८०६-७ :

सभी बचपन में तितलियों के साथ दौड़े हैं, चिड़ियों के साथ गाते रहे हैं, कोई फूल खिला देखकर ऐसे प्रसन्न होते रहे हैं, मानो वह हमारे हृदय में ही फूला हो। परन्तु बड़े होने पर हमारा जीवन ऐसे कृत्रिम बंधनों में जकड़ जाता है कि उस ओर ध्यान देने की न तो इच्छा होती है, न अवकाश मिलता है। वास्तव में प्रकृति में सान्त्वना और आनन्द देने की अपूर्व शक्ति होती है। तारों से जड़ी चाँदनी रात रोगी को नर्स से अधिक सुख दे सकती है, यदि वह उसकी भाषा समझने में समर्थ हो।'[२]

—सुप्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा

[ग]

डा॰ नगेन्द्र

'स्वातंत्र्य, भावयोग, अनेकरूपता, कल्पना और विद्रोह इन सभी तत्वों ने मिलकर द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मक कविता के विरुद्ध काव्य क्षेत्र में एक नव-जागृति उपस्थित की, जिसको विद्वानों ने (कदाचित् उपहास करने के लिए) छायावाद का नाम दिया.......आजकल अधिकतर मनीषी समालोचकों की यह प्रवृत्ति हो रही है कि वे पहले तो इस स्कूल को धार्मिक रहस्यवादी सम्प्रदाय से एकरूप कर देते हैं और फिर आधुनिक कवियों की जीवन-चर्य्या का उक्त काव्यगत धार्मिकता से सामंजस्य न पाकर एक उलझन में पड़ जाते हैं। यदि वास्तव में देखा जाय तो आधुनिक छायावाद का रहस्यवाद एक अंग तो है, पर्याय नहीं। इसके अन्तर्गत और भी बहुत-सी विचारधाराएँ काम कर रही हैं जिनका आध्यात्मिकता से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं।'[३]

—डा॰ नगेन्द्र, एम॰ ए॰; डी॰ लिट्

[घ]

'इस प्रकार हम देखते हैं कि 'मिस्टिसिज्म' के हिन्दी पर्यायवाची 'रहस्यवाद' और 'छायावाद' में मूलत: कोई तात्त्विक भेद नहीं है। कुछ समालोचक वाद-

---

२. सांध्यगीत की भूमिका से

३. सुमित्रानन्दन पंत, पृ॰ ३-४

विवाद के जोश में छायावाद और रहस्यवाद में मूलतः भेद न रहने पर भी भेद का निरूपण करने लगते हैं। इसी से 'छायावाद' की विभिन्न और कभी-कभी विरोधी व्याख्याएँ की जाती हैं।..............इस प्रकार हम देखते हैं कि छायावाद से भिन्न अर्थों का बोध होता है। आध्यात्मिक विषय से सम्बन्धित होने पर यह रहस्यवाद से भिन्न नहीं है, परन्तु प्रक्रिया से सम्बन्ध होने पर उसकी व्यापकता बढ़ जाती है और इसका प्रयोग प्रतीकात्मक रचना के लिए होता है।[४]

डा० केसरी नारायण शुक्ल

—डा० केसरीनारायण शुक्ल

[ङ]

'छायावाद या रहस्यवाद है क्या? हमारी समझ में ये दोनों एक ही चीज नहीं है। द्विवेदी-युग में जिस स्थूल सत्य या वस्तु पाठ (Matter of fact) का निर्देश कर चुके हैं, ठीम उसी की दूसरी दिशा में छायावाद है, जो विषय की इतिवृत्तात्मक को न लेकर केवल उसकी जीवन-स्पर्शिता को ग्रहण करता है। इतिवृत्तात्मक कविता का संबंध यदि स्थूल शरीर से है तो छायावाद का सूक्ष्म प्राण से। इतिवृत्तात्मक दृष्टि का पद्यकार यदि एक पुष्प के सर्वांग का विवरणात्मक वर्णन करेगा तो जीवन का छायावादी कवि उस पुष्प के भीतर से केवल प्राणमय जीवन को अपनायेगा जो उसके साथ आत्मीयता स्थापित किये हुए है। इस प्रकार की काव्यानुभूति, विश्व की समग्र सृष्टि के साथ कवि-हृदय को एकात्म कर देती है। अनेक में एक ही चेतन के अभास से ही तो परब्रह्म के एकोहं द्वितीयो नास्ति' का बोध होता है। छायावाद इस बोधमार्ग का एक साहित्यिक सोपान है, जिसकी पूर्णता रहस्यवाद में है।'[५]

शान्तिप्रिय द्विवेदी

—पं० शान्तिप्रिय द्विवेदी

[च]

'तब छायावाद क्या है? अच्छा यह हो कि जिस प्रकार रहस्यवाद को आत्मा-परमात्मा का प्रणय-व्यापार स्वीकार किया जाय उसी प्रकार छायावाद

४. आधुनिक काव्यधारा, पृ० सं० २६३-४।
५. कवि और काव्य, पृ० सं० १५०-५१।

को प्रकृति में चेतना की अनुभूति और प्रणय-व्यापार मान लिया जाय। 'आरोप' और 'अनुभूति' में जो अन्तर है उसे समझने की अधिक आवश्यकता नहीं।'[६] और 'प्रकृति में चेतना के आरोपक को छायावाद कहते हैं। यह आरोप आलंकारिक रूप में न हो, वास्तविक ढंग का हो। कहने का तात्पर्य यह कि प्रकृति में चेतना की अनुभूति की प्रतीति पाठक को वर्णन से ही होने लगे। मनुष्य को इस बात में कुछ आनन्द आता है कि वह यह देखे कि जैसे सुख दुःख का अनुभव वह करता है, उसी प्रकार और सभी करें। दूसरे शब्दों में प्रकृति में मानवीय भावों का आरोप भी छायावाद है।'[७]

प्रो० 'मानव'

—श्री विश्वम्भर 'मानव'

[छ]

डा० वर्मा

'परमात्मा की छाया आत्मा में पड़ने लगती है और आत्मा की छाया परमात्मा में। यही छायावाद है।'

—डा० रामकुमार वर्मा

[ज]

'छायावाद नाम से ही उसकी छायात्मकता स्पष्ट है। विश्व की किसी वस्तु में एक अज्ञात सप्राण छाया की झाँकी पाना अथवा उसका आरोप करना ही छायावाद है।[८]..................रहस्यवाद के विषय आत्मा-परमात्मा हैं.............।छायावाद परमात्मा को छोड़कर आत्मा और जगत् के प्रदेश में विचरण करता है। दूसरे शब्दों में जिस प्रकार छायावाद स्थूल वस्तुवाद के आगे की चीज है उसी प्रकार रहस्यवाद छायावाद के आगे की चीज है।.........जिस समय क्रौंच पक्षी की मर्म-वेदना का आघात आदिकवि वाल्मीकि को बेसुध कर गया, जिस समय उनके हृदय की सम्वेदना तथा करुणा प्रथम श्लोक के रूप में मुखरित

गंगा प्रसाद पाण्डेय

६. महादेवी की रहस्य-साधना; पृ० सं० —३५

७. सुमित्रानन्दन पंत—शचीरानी गुर्टू, पृ० सं०—१८३

८. छायावाद और रहस्यवाद, पृ० सं०—२४

हो उठी, उसी समय छायावाद की आत्मा सिहर उठी थी।[९]......उस अव्यक्त तथा अस्पष्ट सत्ता की खोज मानव प्रकृति का एक अनिवार्य स्वरूप है। इस चेष्ठा की काव्य-भावना ही छायावाद है।[१०]..........आध्यात्मिक ध्वनि के प्राधान्य के बल से छायावाद वस्तु-विशेष की सीमा पार कर जाता है।'[११]

—श्री गंगा प्रसाद पाराडेय एम० ए०

[म]

डा० भटनागर

'छायावाद' आधुनिक काव्य की वह परम्परा है जो १९०६ से अबतक चली आती है। आधुनिक रहस्यवादी कविता इसका एक अंगमात्र है। परन्तु १९१३ के बाद जनता का ध्यान विशेष रूप से इसी अंग ने आकर्षित किया। नयी शैली और अभिव्यंजना के कारण लोकप्रिय होने पर भी इसको सरलता से नहीं समझा जा सकता था, इसलिए आधुनिक काव्य को कई व्यंग्य-प्रधान नाम दिये गए। अस्पष्टता के कारण इसे 'छाया-वाद' भी कह दिया जाता है और 'रहस्यवाद' इस काव्य का एक विशिष्ट अंगमात्र है : वास्तव में 'छायावाद' में 'छाया'—अंश की प्रधानता थी (छाया = अस्पष्टता)। इस छाया के कई कारण थे; कुछ का संबंध विषय से था और कुछ का टेकनिक से। छायावाद काव्य के विषय थे ईश्वर की रहस्यमयी सत्ता, उसके प्रति आत्मसमर्पण, विरह, मिलन, प्रेम, प्रकृति, नारी-सौंदर्य, राष्ट्र, मानव। विशेष नवीनता नहीं, परन्तु इन सबका आधार था सहजानुभूति। काव्य में चिंतन और बौधिकता को कोई स्थान नहीं। फलत: इन सब विषयों पर जो लिखा गया, वह नवीन, परन्तु जनता को अस्पष्ट था। सब छाया-छाया स्थूल कुछ भी नहीं। स्वयं नारी का चित्रण भी स्थूल नहीं—भावना-प्रधान, उड़ते-उड़ते। छायावाद एक प्रकार से महावीर प्रसाद द्विवेदी के युग (१९००-२०) के नीति-प्रधान, शुष्क, इति-

---

९. वही, पृ० सं० ३५
१०. वही, पृ० सं० २७
११. वही, पृ० सं० ३०

वृत्तात्मक काव्य के विरुद्ध एक सजीव प्रतिक्रिया थी। दूसरे शब्दों से उसे अंग्रेजी और बंगला काव्य का प्रभाव एवं पलायनवादी, व्यक्तित्वनिष्ठ कवियों की 'वहक' कहा जा सकता है।'[१२]

—डा० रामरतन भटनागर, एम० ए०, डी० फिल्

[ञ]

प्रो० अवस्थी

'छायावाद शब्द किसी लम्बे इतिहास से दबा नहीं है। भारतीय साहित्यशास्त्र के लिए तो यह एक नितान्त अर्वाचीन शब्द है। ....वस्तुरूप में छाया की भाँति अग्राह्य, अरूप तथा आभामात्र को पकड़कर सरूप करने के यत्न को छायावाद कहना चाहिये। फिसल-फिसल जानेवाली परिस्थितियाँ जब अधिकारी के अनुभव के दर्पण में कौंधती रहती हैं और व्याकुल होकर उन्हें यावत्-किंचित् किसी-न-किसी ढंग से, किसी-न-किसी प्रकार को कथन की मेंड़ में समेटता है तो उसके इस कलम से उतारने की करामात को 'छायावाद' कहेंगे और छाया को ही बुला-बुला के उतारने के अभ्यासी को 'छायावादी'। ...आज दिन 'छायावाद' के नाम से जो कुछ हिंदी में प्रसिद्ध है उसे केवल अभिव्यंजन-चमत्कार ही समझना चाहिये। भारतीय लक्षण ग्रंथों में अभिव्यंजना-विधान का इतना ऊहापोह किया गया है कि आज के छायावाद का यदि विश्लेषण किया जाय तो उसके समस्त कण कहीं-न-कहीं बिखरे हुए संजोये मिल जाएँगे। फिर भी छायावाद का आज एक पृथक् रूप बन गया है। वस्तु से उसका कम लगाव रह गया है। इसीलिए छायावाद को केवल अभिव्यंजन-विधान समझना चाहिये, वस्तु की चीज नहीं।'[१३]

—प्रो० सद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए०

[ट]

'कवि के गूढ़ आन्तरिक भावों के प्रच्छन्न प्रवाह को छायावाद कहते हैं, परन्तु यह प्रच्छन्न प्रवाह इतना अधिक प्रच्छन्न न हो कि पढ़नेवाले की समझ में

---

१२. छायावाद, पृ० ४२

१३. 'रहस्यवाद और छायावाद' शीर्षक निबंध से

ही न आवे। छायावाद क्रमहीन कल्पना-समूह को नहीं कहते। किसी भी साहित्य में छायावाद का स्थान सबसे अन्त में आता है। सृष्टि-सौन्दर्य का निरीक्षण करना तो कवि का सर्वप्रथम कर्त्तव्य है, द्वितीय स्थान सांसारिक वस्तुओं का और तृतीय आध्यात्मिक विषयों का हुआ करता है। छायावाद का स्थान तो इन सब-के पीछे आता है। शेली ने भी कहा है कि अन्त में सभी नास्तिक हो जाते हैं। इन शब्दों में तो सत्य कूट-कूटकर भरा पड़ा है। यह पथ हमें मन और बुद्धि के परे एक अशान्त प्रदेश में ले जाता है। यद्यपि यह प्रदेश मेघाच्छन्न होता है तथापि उसपर विद्युल्लता की अपूर्व छटा होती है, उसके दर्शन से जो आनन्द प्राप्त होता है वह अनिर्वचनीय है। छायावाद काव्य-कला का एक अपूर्व निदर्शन है। कवि की लेखनी का चातुर्य और सूक्ष्माति-सूक्ष्म चमत्कार छायावाद ही में दीख पड़ता है। यह आन्तरिक गूढ़ भावों के प्रकाशन की एक विलक्षण शैली है। हिन्दी में छायावाद कोई नवीन विषय नहीं है, कबीर, सूर तथा अन्य भक्त कवियों ने इस पर बहुत कुछ लिखा है। मध्यकालीन कवियों ने, जो प्रायः शृंगार के ही उपासक थे, इसका प्रयोग करना छोड़ दिया था। आधुनिक काल में इसका पुनर्जन्म हुआ। परन्तु आजकल का छायावाद पहले से बहुत भिन्न है। वैसे तो इसका प्रथम स्रोत अंग्रेजी साहित्य है, जहाँ से यह बंगला साहित्य में आया और इसकी कुछ-कुछ छाया हिन्दी के आधुनिक छायावाद में भी दीख पड़ी। परन्तु तुलनात्मक अध्ययन करने से यह निर्विवाद सिद्ध हो जाता है कि हमारा आजकल का छायावाद हमारे कवियों की स्वाधीन उपज है और उनकी कल्पना, उनकी भाव-व्यंजना, उनका कौशल पूर्णरूप से उन्हीं का है। केवल थोड़ी-सी समानता यह नहीं सिद्ध कर सकती कि यह कहीं अन्यत्र से लिया गया है।' [१४]

प्रो० ललिता प्रसाद शुक्ल

—प्रो० ललिता प्रसाद शुक्ल

[ठ]

'छायावाद प्रकृति में मानव-जीवन का प्रतिबिंब देखता है, रहस्यवाद समस्त

१४. 'वीणा' में प्रकाशित निबंध से

सृष्टि में ईश्वर का। ईश्वर अव्यक्त है और मनुष्य व्यक्त है। इसलिए छायावाद मनुष्य की, व्यक्ति की ही देखी जा सकती है, अव्यक्त की नहीं। अव्यक्त रहस्य ही रहता है।'

रामकृष्ण शुक्ल

—रामकृष्ण शुक्ल

[ङ]

'छायावाद क्या है, इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि वह (१) गीतिकाव्य है, (२) प्रकृति-काव्य है, और (३) प्रेम-काव्य अथवा रहस्यवादी-काव्य है। छायावाद के ये वर्णन मिथ्या न होंगे, पर वे एकान्त सत्य भी नहीं। शेली, कीट्स और टेनीसन का काव्य गीतिकाव्य है, पर उसे छायावाद नहीं कहा जा सकता, वर्ड्स्वर्थ का काव्य प्रकृति-काव्य है, पर वह भी छायावाद नहीं, और कबीर, जायसी तथा रवीन्द्र रहस्यवादी हो सकते हैं, पर वे छायावादी नहीं है। वस्तुतः छायावाद साधारण गीतिकाव्य, प्रेम-काव्य या रहस्यवादी काव्य नहीं है, न्यूनाधिक यह सब होते हुए भी उसकी कुछ अपनी विशेषताएँ हैं जो उसे एक निराली स्थिति देती हैं। ये विशेषताएँ हमारी समझ में तीन हैं, अर्थात्—

डा० देवराज

(१) धूमिलता या अस्पष्टता, (२) बारीकी या गुंफन की सूक्ष्मता (३) काल्पनिकता और कल्पना-वैभव। हमारा विचार है कि छायावाद के निराले गुण-दोषों का रहस्य उसकी उक्त विशेषताओं में निहित है।'[१५]

—डा० देवराज, एम० ए०, पी० एच डी०

[ढ]

छायावाद को हम काव्य की अंतमुखी प्रवृत्ति कह सकते हैं। उसमें 'जीवात्मा को दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपने शान्त और निश्छल संबंधी चेष्टा' की मात्रा ही नहीं पाई जाती ; स्थूल सौन्दर्य के प्रति मानसिक आकर्षण के उच्छ्वास भी अंकित देखे जा सकते हैं। इस तरह छायावाद के लिए

---

१५. छायावाद का पतन पृ० ११

अलौकिक सत्ता-प्रकाशन की आवश्यकता नहीं है। उसमें व्यष्टि की किसी अभाव-जनित अन्तर्व्यथा भी झलक सकती है और बाह्य प्रकृति के प्रति आसक्ति भी। द्विवेदी-युग की इतिवृत्तात्मकता (Matter of fact) रचनाओं की रुक्षता की प्रतिकृति के रूप में जब आभ्यन्तर भावों का विशेष ढंग से प्रकटीकरण होने लगा तब उसमें नवीनता देख उसे 'छायावाद' की संज्ञा दी गई। उनकी शब्द-योजना और छन्दविन्यास में रीतिकाल के काव्य की अपेक्षा निश्चय ही वैचित्र्य पाया जाने लगा। छायावाद की रचनाओं में 'भावों की नवीनता' की अपेक्षा, भावों को व्यक्त करने की कला में नवीनता अवश्य थी और कवि की दृष्टि भी 'बाह्यजगत्' से हटकर अपने 'भीतर' ही रमने लगी—और वह जब अन्तर्मुखी हुई, तो उसने बाह्य जगत् को भी अपने ही में प्रतिबिंबित कर लिया। यदि एक वाक्य में कहें तो कह सकते हैं कि वे सब रचनाएँ जो अन्तर्वृत्ति-निरूपक हैं, 'छायावाद' के अन्तर्गत आ जाती हैं। अतः रहस्यवादी रचनाएँ भी जो अन्तर्वृत्ति-निरूपक ही होती हैं, 'छायावाद' शैली की कृतियाँ कहला सकती हैं। उसमें निराली अभिव्यक्ति का लावण्य दिखाई देता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि मानव-अनुमिति को छायावाद कहलाने के लिए 'स्वच्छन्द छंद' में ही चित्रित होना चाहिये। हाँ, निरालापन लाने के लिए शब्द और अर्थ की स्वाभाविक वक्रता छायावाद का विशिष्ट गुण अवश्य है। इसलिये 'छायावाद' की रचना में शब्दों की अभिधा की अपेक्षा लक्षणा और व्यंजना शक्ति से अधिक काम लिया जाता है। छायावाद ही प्रतीक-पद्धति या चित्र-भाषा-शैली भी कहलाती है।' [१६]

डा० विनय मोहन शर्मा

—डा० विनय मोहन शर्मा

[ण]

'छाया भारतीय दृष्टि से अनुभूति और अभिव्यक्ति की भंगिमा पर अधिक निर्भर करती है। ध्वन्यात्मकता, लाक्षणिकता, सौन्दर्यमय प्रतीक-विधान तथा

---

१६. 'रहस्यवाद-छायावाद' निबंध से

उपचार-वक्रता के साथ स्वानुभूति की विवृति छायावाद की विशेषताएँ हैं।

जयशंकर प्रसाद

अपने भीतर से मोती की तरह अंतर-स्पर्श करके भाव-समर्पण करनेवाली अभिव्यक्ति-छाया कान्तिमय होती है।'[१७]

—जयशंकर प्रसाद

[त]

'छायावाद की रचना के लिए हृदय में केवल वेदना ही चाहिये, वह स्वयं अभिव्यक्ति का मार्ग ढूँढ़ लेती है।'

केशव प्रसाद मिश्र

—पं० केशव प्रसाद मिश्र

[थ]

'छायावाद को हम शुक्लजी के कथनानुसार केवल अभिव्यक्ति की लाक्षणिक प्रणाली नहीं मान सकते। इसमें एक नूतन सांस्कृतिक मनोभावना का उद्गम है और एक स्वतंत्र दर्शन की नियोजना भी।'[१८]

वाजपेयी

—प्रो० नंददुलारे वाजपेयी

'छायावाद हिंदी में उद्दाम वैयक्तिकता का पहला विस्फोट था। वह केवल साहित्यिक शैलियों का ही नहीं, अपितु, समग्र जीवन की परम्पराओं, रूढ़ियों, शास्त्र-निर्धारित मर्यादाओं एवं मनुष्य की चिन्ता को सीमित करनेवाली तमाम परिपाटियों के विरुद्ध जन्मे हुए एक व्यापक विद्रोह का परिणाम था और मनुष्य की दबी हुई स्वतंत्रता की भावना को प्रत्येक दिशा में उभारनेवाला था। छायावाद का इतिहास उस युग का इतिहास है जब मनीषियों ने पहले-पहल अपने-आपको पहचाना और रूढ़ियों के संकेत पर चलने से इनकार कर दिया।[१९]

दिनकर

—श्री रामधारी सिंह 'दिनकर'

---

१७. काव्य और कला तथा अन्य निबंध
१८. जयशंकर प्रसाद, पृ० १८
१९. मिट्टी की ओर; पृ० १२-१३

विस्तार-भय के कारण हम यहाँ अन्य विद्वानों के विचार उद्धृत नहीं कर पाये हैं, पर हिंदी के मान्य विद्वानों के कथनों में मतभेद हैं जिन्हें हम दो कोटि में रख सकते हैं। विद्वानों का एक दल ऐसा है, जो छायावाद और रहस्यवाद को एक ही वस्तु मानता है, लेकिन दूसरा दल दोनों में भेद मानता है, क्योंकि रहस्यवाद का संबंध अध्यात्म से है तो छायावाद में 'सचेतन-सप्राण सौन्दर्य-सत्ता की अनुभूति' है, जिसके कारण छायावाद-रहस्यवाद में ऐक्य नहीं है। इसके अतिरिक्त छायावाद का संबंध शैली से भी है। अतएव यहाँ पर छायावाद और रहस्यवाद के अन्तर को स्पष्ट कर देना अनिवार्य है। आधुनिक हिंदी-कविता में छायावाद और रहस्यवाद दो भिन्न, परन्तु सम्बद्ध वस्तुएँ हैं। दोनों में अनेक साम्य और वैषम्य हैं। छायावाद अपेक्षाकृत अधिक नवीन है, पर रहस्यवाद का मूल वेदों और उपनिषदों में है। छायावाद और रहस्य-वाद दोनों में आत्मनिष्ठता होती है। छायावाद एक लौकिक काव्य है तो रहस्यवाद एक आध्यात्मिक काव्य। 'इस प्रकार छायावादी अनुभूति का मूल आलंबन हृदय से बाहर ही रहता है, पर रहस्यात्मक अनुभूति का आलंबन व्यक्त जगत् में कभी नहीं हो सकता। रहस्यवाद में सूक्ष्म आध्यात्मिकता की स्थूल भौतिकता का सूक्ष्म प्रकाशन होता है।' 'विषय की दृष्टि से दोनों में अन्तर यह है कि छायावाद में आत्मा और आत्मा या ससीम और ससीम का संबंध रहता है, लेकिन रहस्यवाद में ससीम और असीम या आत्मा और परमात्मा का संबंध है। दूसरे शब्दों में, छायावाद के अन्तर्गत प्रकृति और मानव-हृदय के बीच तादात्म्य की स्थापना होती है, लेकिन रहस्यवाद के अन्तर्गत विश्व-व्यापी अखण्ड चेतन-सत्ता के प्रति प्रणय-निवेदन होता है। भावना की दृष्टि से दोनों में अन्तर यह है कि छायावाद में सूक्ष्म अथवा चेतन-सत्ता के प्रति जिज्ञासा, कौतूहल अथवा हल्के आकर्षण की भावना होती है, लेकिन रहस्यवाद में इस विराट् चेतन सत्ता को अपना प्रियतम मानकर उपासना की जाती है। निर्गुण परमात्मा से पति-पत्नी-भाव से प्रेम रहस्यवाद की कविता के लिए अनिवार्य है।' प्रकृति के प्रति छायावाद और रहस्यवाद

छायावाद और रहस्यवाद में अंतर

की दृष्टि भी भिन्न है। छायावाद की कविता में प्रकृति के प्रति कुतूहलपूर्ण आकर्षण का भाव सन्निहित रहता है, पर रहस्यवाद की कविता में ऐसी बात नहीं है। छायावाद की सबसे बड़ी विशेषता है उसकी अभिव्यंजना-शैली जिसमें लाक्षणिक वैचित्र्य और हृदय की प्रस्तुत भावनाओं के वर्णन के लिए प्रकृति आदि के क्षेत्र से चुने हुए अप्रस्तुत प्रतीकों की योजना रहती है। रहस्यवाद की कविता में इन विशेषताओं का होना अनिवार्य है, परन्तु छायावादी कविता के लिए आवश्यक नहीं है। विधान की दृष्टि से दोनों 'वादों' में वैधर्म्य यह है कि छायावादी कविता में छन्दों का नित नूतन प्रयोग होता है, लेकिन रहस्यवाद की कविता में किसी विशिष्ट पदावली या किसी विशेष ढंग के गीतों का ही रूप पाया जाता है।

उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट हो जाता है कि छायावाद और रहस्यवाद में क्या साम्य है और क्या वैषम्य। दोनों के अन्तर को स्पष्ट करने के बावजूद भी छायावाद की विशिष्टताएँ क्या हैं, इसका पूर्णरूपेण परिचय हमें प्राप्त नहीं होता है। अतएव अब हम छायावाद की विशिष्टताओं को निम्नांकित पंक्तियों में प्रस्तुत करते हैं, जिसके आधार पर पंत की कविता का अध्ययन करेंगे।

छायावाद की विशिष्टताएँ

(१) छायावाद का जन्म द्विवेदी-युग की अतिशय इतिवृत्तात्मकता की प्रतिक्रिया के रूप में हुआ। अतः इसमें स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह है। पंतजी की विशेष रुचि सूक्ष्म की ओर रही है और उनकी यह रुचि 'वीणा' से लेकर 'गुंजन' तक की कविताओं में परिलक्षित है। स्थूल जगत् का साकार सौन्दर्य कवि को आकृष्ट नहीं करता है और न उनको प्रिय मालूम पड़ता है, प्रत्युत उसमें अन्तर्निहित सूक्ष्म महाप्राण सौन्दर्य-तत्त्व है, वही उन्हें अनुप्राणित करता है। उनकी यह प्रवृत्ति निम्नांकित संदर्भ में मुखर है—

स्थूल के प्रति सूक्ष्म का विद्रोह

प्रथम कल्पना कवि के मन में
प्रथम प्रकम्पन उडुगन में,

प्रथम प्रात जग के आँगन में,
प्रथम वसंत विभा वन में,
....

मूल जगत् की उर - कंपन में
पुलकावलि में हंस अविराम,
मृदुल कल्पनाओं से पोषित
भावों से भूषित अभिराम

या

नवल-मधु ऋतु-निकुंज में प्रात
प्रथम कलिका-सी अस्फुट गात,
नील नभ-अंतःपुर में, तन्वि !
दूज की कला-सदृश नवजात ;
मधुरता, मृदुता-सी तुम प्राण !
....

मुकुल मधुपों का मृदु मधुमास,
स्वर्ण-सुख, श्री, सौरभ का सार,
मनोभावों का मधुर - विलास
विश्व - सुषमा ही का संसार

या

अँधियाली घाटी में सहसा
हरित स्फुलिंग-सदृश फूटा वह।
वह उड़ता दीपक निशीथ का,—
तारा - सा आकर टूटा वह !
जीवन के घन अंधकार में
मानव - आत्मा का प्रकाश - कण
जग सहसा, ज्योतित कर देता
मानस के चिर - गुह्य कुंज-वन !

या

सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर,
झूम रहे थे, घूम द्वार पर,
प्रहरी - से जुगनू नाना ;
शशि - किरणों से उतर-उतर कर
भू पर कामरूप नभचर
चूम नवल कलियों का मृदु मुख
सिखा रहे थे मुसकाना।

(२) छायावाद की दूसरी विशेषता है अन्तः-प्रकृति और वाह्य-प्रकृति में तादात्म्य स्थापित करना। पंत की कविताओं में इस प्रकार की भावना सर्वत्र विद्यमान है। कुछ लोग इसे सर्ववाद या सर्वात्मवाद कहते हैं। अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवि विलियम वर्ड्स्वर्थ में यह गुण विशेष रूप से पाया जाता है। पंत में भी सर्वात्मवाद (Pantheism) की भावना विशेष रूप से पायी जाती है, क्योंकि कवि को विश्वास है कि समस्त जड़ प्रकृति में भी किसी चेतन सत्ता का आवास है जिसके प्रभाव से उसके प्रत्येक कण में सौन्दर्य है, रस है और है प्राणों का स्पन्दन। उस चेतन के अभाव में जड़ प्रकृति में आकर्षण संभव नहीं है। यह व्यापक चेतन-सत्ता विभिन्न नाम-रूपों से कवि के संवेदनशील हृदय को अपनी ओर आकृष्ट करती है। पंत की 'मौन निमंत्रण' कविता इसका अत्यन्त सटीक उदाहरण है, क्योंकि इसमें नक्षत्रों से, तड़ित से, कलिका से, सौरभ से, लहरों से, खद्योतों से, ओसकणों से और स्वप्नों से कोई अज्ञात चेतन सत्ता कवि को मौन-निमंत्रण देती है—

'सर्वात्मवाद' की भावना

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान ;

न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमंत्रण देता मुझको मौन !
....

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर-कुल की झंकार;
कँपा देती तन्द्रा के तार;
न जाने खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !

पंत की दृष्टि में विश्व का प्रत्येक पदार्थ चेतना एवं स्पन्दन से युक्त है। उन्होंने पर्वत को जड़ नहीं माना है। जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में आकांक्षाएँ उठती हैं उसी प्रकार कठोर पर्वत के हृदय में भी आकांक्षाएँ आन्दोलित हो उठती हैं, जो अपनी नीरव भाषा में कुछ कह जाती है—

गिरिवर के उर से उठ-उठकर
उच्चाकांक्षाओं - से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष; अटल, कुछ चिन्ता पर ! (पर्वत प्रदेश में पावस)

स्थूल जगत् चेतन् सत्ता की छाया

(३) बाह्य जगत् जो स्थूल है, वह किसी व्यापक एवं सूक्ष्म चेतन-सत्ता का प्रतिबिम्ब या छाया है। इसी चेतन के स्पन्दन के कारण जड़ प्रकृति का सौन्दर्य निखर आता है—

उस फैली हरियाली में,
कौन अकेली खेल रही माँ !
वह अपनी वयवाली में ?
सजा हृदय की थाली में—
क्रीड़ा - कौतूहल; कोमलता
मोद - मधुरिमा, हास - विलास,

लीला, विस्मय, अस्पष्टता, भय
स्नेह, पुलक, सुख, सरल-हुलास ।
या
मैं भी उसके गीत सीखने
आज गई थी उसके पास ;
उसके कैसे मृदुल भाव हैं,
उज्ज्वल तन, मन भी उज्ज्वल !
या
निराकार तम मानों सहसा
ज्योतिपुंज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगत्-जाल में,
धर कर नाम रूप नाना ;
सिहर उठे पुलकित हो, द्रुम दल,
सुप्त समीरण हुआ अधीर,
झलका हास कुसुम अधरों पर
हिल मोती का-सा दाना ;
खुले पलक, फैली सुवर्ण - छवि
खिली सुरभि, डोले मधु - बाल,
स्पन्दन - कंपन औ' नव - जीवन
सीखा जग ने अपनाना,

(४) 'मानव और प्रकृति के इस तादात्म्य-सम्बन्ध के कारण मानव-भावनाओं और प्राकृतिक दृश्यों के अर्थ एवं मर्म में कोई अन्तर नहीं। मनुष्य के अश्रु और प्रकृति के ओसकण एक ही अर्थ रखते हैं। अतः भाषा में एक के बदले दूसरे का प्रयोग हो सकता है। 'पंतजी' ने मानव-हृदय में उठनेवाली प्रस्तुत-भावनाओं के स्थान पर प्रकृति के प्रांगण से चुने हुए अप्रस्तुत प्रतीकों का प्रयोग किया है।

प्रतीकवाद

काव्यगत प्रभाव-प्रेषणीयता की दृष्टि से उसकी आवश्यकता होती है। कुछ उदाहरण लीजिए—

(क) मुग्ध रोओं में मेरे, प्राण !
बना पुलकों के सुख का नीड़,
फूँकता तू प्राणों में गान
हृदय मेरा तेरा आक्रीड़ ?
दूर वन के ओ राजकुमार !
अखिल उर - उर में तेरे गान,
मधुर इन गीतों से, सुकुमार
अमर मेरे जीवन औ' प्राण !

इस संदर्भ में कवि के हृदय के अनन्त भावों के प्रतीक-रूप में विहगों का वर्णन किया गया है।

(ख) अब फैला फूलों में विकास,
मुकुलों के उर में मदिर - वास,
अस्थिर सौरभ से मलय-श्वास,
जीवन - मधु - संचय को उन्मन
करते प्राणों के अलि गुंजन।

—इसमें अप्रस्तुत वसंत और भ्रमर के वर्णन द्वारा प्रस्तुत आध्यात्मिक नव-जागरण की व्यंजना है।

(ग) करुण भौंहों में था आकाश
हास में शैशव का संसार।
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार॥

—करुण भौंहों में उच्चता का आभास था, इसके स्थान पर आकाश ही कह दिया। हास निर्विकार था, इसके लिए शैशव का संसार रख दिया। इनमें आकाश शुद्ध प्रतीक है और दूसरा लाक्षणिक प्रतीक।

(घ) देखूँ सबके उर की डाली—
किसने रे क्या - क्या चुने फूल
जग के छबि-उपवन से अकूल?
इसमें कलि, किसलय, कुसुम, शूल!

—इसमें कलि आश का, किसलय प्रेम का, कुसुम सुख का और शूल दुःख का प्रतीक है।

(५) छायावाद में सूक्ष्म जगत् की अभिव्यक्ति रहती है जिसके कारण भाषा में अधिक शक्ति होनी चाहिए और भाषा की बलवती शक्ति को बनाये रखने के लिए अभिधा के अतिरिक्त लक्षणा और व्यंजना शक्तियों का विशेष साहाय्य ग्रहण किया जाता है। लाक्षणिक पदों का प्रयोग अधिकांश निरर्थक या निष्प्रयोजन नहीं होता। पंत की कविता में लक्षणा और व्यंजना-वृत्तियों का प्रयोग अधिक मात्रा में विद्यमान है। पंत ने लक्षणा का प्रयोग सदैव अर्थ की अभिव्यक्ति को अधिक सटीक एवं सफल बनाने के उद्देश्य से किया है। लाक्षणिक वैचित्र्य निम्नांकित संदर्भ में देखिये—

लाक्षणिक वैचित्र्य

देख वसुधा का यौवन - भार
गूँज उठता है जब मधुमास।
—मौन-निमंत्रण

—'इसमें मधुमास के गूँजने में (वाच्यार्थ में) असंगति होने के कारण इसका लक्ष्यार्थ 'मधुमास आने के कारण भौंरे का गूँजना' ग्रहण करेंगे। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ में कार्य-कारण संबंध है। लक्षणा के प्रयोग का प्रयोजन भौंरे के गुंजन का मधुमास में प्राधान्य व्यंजित करना है। इसी प्रकार 'कौन तुम अतुल, अरूप, अनाम' में अल्पार्थक के स्थान पर निषेधार्थक शब्दों के प्रयोग में लक्षणा है।'

सुरभि - पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुंजार;

—इसमें भौरों के व्यक्तित्व में गुंजार की प्रधानता व्यंजित करना लक्षणा का प्रयोजन है।

कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) छाया उन्मन-उन्मन गुंजन

—इसमें 'उन्मन गुंजन' में लक्षणा है। इसका अर्थ विशेषण-विशेष्य संबंध के आधार पर लक्षणा द्वारा उन्मन भौरों का गुंजन लिया जायगा।

(ख) रे गंध-अंध हो ठौर-ठौर

—सादृश्य संबंध के आधार पर 'गन्ध-अंध' का अर्थ होगा, गंध के कारण बेसुध यानी परिणाम देखने में असमर्थ।

कार्य-कारण-लक्षणा के उदाहरण—

(ग) यही तो है बचपन का हास,
खिले यौवन का मधुप-विलास
प्रौढ़ता का वह बुद्धि-विकास,
जरा का अन्तर्नयन-प्रकाश।
जन्म-दिन का है यही हुलास,
मृत्यु का यही दीर्घ निश्वास।

(घ) आँखों की खिड़की से उड़-उड़
आते ये आते मधुर, विहग।

उपादान-लक्षणा के उदाहरण—

(ङ) आज शिशु के कवि को अनजान
मिल गया अपना गान।

(च) कनक-छाया में जबकि सकाल,
खोलती कलिका, उर के द्वार।

आधार-आधेय-लक्षणा का उदाहरण—

(छ) मर्म पीड़ा के हास
सिड़ी के गूढ़ हुलास।

व्यंग्य-व्यंजक-सबंध की लक्षणा—

(ज) आह मेरा गीला गान।

(६) द्विवेदी-युग के इतिवृत्तात्मक काव्य की भाषा इतिवृत्त के स्वभाव के अनुकूल अभिधामूलक थी, परन्तु छायावाद की परिवर्तित अनुभूति के कारण शैली-वैचित्र्य और नवीनता की प्रवृत्ति ने आकर आवास बनाया। फलतः शैली के क्षेत्र में परम्परानुमोदन की प्रवृत्ति इसमें नहीं रही; प्रत्युत छायावाद का कवि स्वच्छन्द मनोवृत्ति का हुआ। नवीन छन्द, नवीन भाषा, उपचार-वक्र और नूतन अलंकार-विधान (मानवीकरण, विशेषण-विपर्यय) छायावाद के शैलीगत उपादान बने। पंत ने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्ति प्रदान करने के लिए ऐसे शब्दों को चुना है जो भावों की व्यंजना में समर्थ हों। उनके प्रत्येक शब्द में व्यंजना-शक्ति और ध्वनिमयता रहती है। इसके लिए उन्होंने व्यंजनापूर्ण तत्सम शब्दावली के अतिरिक्त ब्रजभाषा, फारसी और अंग्रेजी के शब्दों तक की सहायता ग्रहण की है। अलंकार-विधान में पाश्चात्य ढंग की अप्रस्तुत-योजना को अपनाया है। पश्चिम के विशेषण-विपर्यय और मानवीकरण—इन दोनों अलंकारों को पंतजी ने चुना है। विशेषण-विपर्यय का उदाहरण लीजिए—

शैली के नवीन प्रसाधन

गूढ़ कल्पना-सी ऋषियों की
अज्ञाता के विस्मय-सी।
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी
बच्चों के तुतले भय-सी

मानवीकरण का एक उत्कृष्ट उदाहरण लीजिए—

वह स्वर्ण-भोर की ठहरी
जग के ज्योतित आंगन पर
तापसी विश्व की बाला
पाने नव जीवन का वर!

या

पर नहीं तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं।

कवि स्वप्नों को मूर्त्त रूप देता हुआ कहता है—

विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते थे जब स्वप्न अजान!

अथवा

अतल से उठ - उठ हो - हो लीन
खो रहे बंधन गीत उदार।

छायावाद का कवि काव्य-शास्त्र में वर्णित रूढ़िगत और परम्परानुमोदित छन्दों का प्रयोग नहीं करता है, प्रत्युत 'विषय की सूक्ष्मता-गंभीरता के अनुपात में वह अपने स्वतंत्र छन्दों की योजना करता है। छायावाद-युग में इसी हेतु अनेक नूतन छन्दों का आविष्कार हुआ। वस्तुतः इस दिशा में छायावादी कवि की दृष्टि प्रयोगात्मिक होती है।' अब हम एक ऐसा उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, जिसमें शब्द-चयन, अलंकार-विधान और छन्द-योजना, छायावाद की प्रवृत्ति के अनुकूल है—

न पत्रों का मर्मर- संगीत,
न पुष्पों का रस, राग, पराग;
एक अस्फुट, अस्पष्ट, अगीत,
सुप्ति की ये स्वप्निल-मुसकान;
सरस शिशुओं के शुचि-अनुराग,
वन्य विहगों के गान
हृदय के प्रणय-कुंज में लीन
मूक कोकिल का मादक गान,
बहा जब तन - मन -बंधन -हीन
मधुरता से अपनी अनजान;
खिल उठी रागों - सी तत्काल
पल्लवों की यह पुलकित डाल!

(७) 'छायावाद का विषय संसार नहीं, समाज नहीं, कवि का अपना

आत्माभिव्यंजन

हृदय है। छायावाद का कवि वहिर्जगत् की नहीं, अन्तर्जगत् की तस्वीर खींचता है। बाह्य विश्व या मानवेतर प्रकृति (जड़ अथवा चेतन) उसकी कविता में आती है तो उसके हृदय का अंग बनकर, उसकी भावना, कल्पना और अनुभूति में स्नात होकर। अपनी अंतःप्रकृति पर बाह्य प्रकृति की प्रतिक्रिया को ही उसकी काव्य दृष्टि महत्त्व प्रदान करती है।' पंत की उन्हीं काव्य-पुस्तकों को हम छायावाद के अन्तर्गत स्थान देते हैं, जिनमें कवि की निजी भावनाओं की अभिव्यक्ति हो पायी है। इस दृष्टि से, निम्नांकित संदर्भ में, कवि के 'अहम्' भाव का विस्फोट हुआ है, जो द्रष्टव्य है—

मधुरिमा के मधुमास।
मेरा मधुकर का - सा जीवन
कठिन कर्म है, कोमल है मन,
विपुल मृदुल सुमनों से सुरभित;

विकसित है विस्तृत जग - उपवन !
यही हैं मेरे तन, मन, प्राण,
यही हैं ध्यान, यही अभियान,
धूल की ढेरी में अनजान
छिपे हैं मेरे मधुमय गान।

या

प्राण ! तुम लघु - लघु गात !
नील नभ के निकुंज में लीन,
नित्य नीरव, निःसंग नवीन,
निखिल छवि की छवि ! तुम छवि-हीन
अप्सरी - सी अज्ञात !

अधर मर्मरयुत, पुलकित अंग
चूमतीं चल पद, चपल तरंग,
चटकतीं कलियाँ पा भ्रू-भंग
थिरकते तृण; तरु-पात !

हरित-द्युति चंचल अंचल-छोर
सजल छवि, नील-कंचु, तन गौर,
चूर्ण कच, साँस सुगन्ध - झकोर,
परों में सायं - प्रात !

विश्व हृत्-शतदल निभृत निवास
अहर्निशि साँस - साँस में लास
अदृश्य, अस्पृश्य, अजात !

—वायु के प्रति

—इसमें कवि अपनी आन्तरिक भावना स्पष्ट करता है ।

छायावाद के कवियों में सुमित्रानन्दन पंत का एक विशिष्ट स्थान है । पंत को इस क्षेत्र में लोकप्रियता मिली और उनका अनुकरण भी सबसे अधिक हुआ । उनकी काव्य-रचना सन् १९१६ के आसपास आरंभ होती है । तब से आजतक वे लिखते आ रहे हैं । छायावाद के कवियों में 'प्रसादजी' का नाम सर्वप्रथम आता है, क्योंकि इस नये काव्य के जन्म और विकास में उनका विशेष हाथ रहा है और पंत ने उसे लोकप्रिय बनाया और साथ-ही-साथ 'उसे रूप की कोमलता, मन की प्रसन्नता और वाणी की स्निग्धता दी ।' पंत की रचनाओं में छायावाद की सभी विशेषताएँ विद्यमान हैं । सुतरां, यह स्पष्ट है कि पंत-जी एकमात्र छायावादी कवि के रूप में प्रसिद्ध हैं । छायावाद के क्रान्तिकारी कवियों के सम्बन्ध में लिखते हुए 'दिनकर' जी ने लिखा है कि 'पंतजी ही ऐसे कवि हैं, जिन्होंने अपने पक्ष की प्रबलता को भली-भाँति जाननेवाले कर्म-पुरुष की स्पष्टता के साथ आरम्भ में ही 'पल्लव' की भूमिका में उन सभी उद्देश्यों की घोषणा कर दी थी, जिनकी स्थापना के लिए वे साहित्य में आए । 'पल्लव'

की भूमिका छायावाद का मेनीफेस्टो (Manifesto) थी और आन्दोलन का रूप उस लेख में जितनी स्पष्टतापूर्वक प्रकट हुआ उतना साफ और किसी निबन्ध में नहीं। यह भी ध्यान देने की बात है कि नए कवियों में जनता ने पंतजी को ही अपना स्वाभाविक प्रेम अर्पित किया और आज वे ही छायावाद का सुधार भी कर रहे हैं।'

रहस्यवाद और पंत

आधुनिक हिन्दी-साहित्य में 'रहस्यवाद' एक आधुनिक शब्द है, अंग्रेजी के मिस्टिसिज्म (Mysticism) का पर्यायवाची समझा जाता है। इसी शब्द के अनुसार मिस्टिक शब्द के लिए रहस्यवादी शब्द का प्रयोग होता है। 'रहस्यवाद' एक भ्रामक शब्द है, जिसके कारण इसकी परिभाषाओं में इतना बड़ा मतभेद है कि किसी एक निश्चित सिद्धांत पर पहुँचना अत्यन्त दुर्वार है। यों तो यह काव्य-साहित्य का एक 'वाद'-विशेष है, पर भ्रम के हेतु काव्य की अपेक्षा उसकी दार्शनिकता में उलझ जाना हमारे लिए स्वाभाविक है। रहस्य-वाद के वाद के नाम पर वेदों और उपनिषदों के समय से लेकर आज तक काफी लिखा गया है। प्रसिद्ध विद्वान तथा समालोचक स्पर्जियन (Spurgeon) ने रहस्यवाद को पूर्व की ही देन मानी है। इस संबंध में उसने गीता के अट्ठारहवें अध्याय की निम्न पंक्तियाँ प्रस्तुत की है।

> There is True knowledge, Learn thou it is this
> To see one changeless Life in all the Lives
> And in the separate, one preparable !

समस्त जीवों में एक जीव ऐसा है जो अनादि तथा अनन्त है, जो समस्त प्राणिमात्र को एक सूत्र में बाँधे हुए है। यह बिल्कुल सच है कि भारतीय ईश्वर-चिंतन और तत्संबंधी साधना की एक प्रमुख धारा 'रहस्यवाद' रही है। पर अर्वाचीन और प्राचीन रहस्यवाद एक दूसरे से नितान्त भिन्न है। खड़ी बोली में रहस्यवादी काव्य का स्फुरण सन् १९१३ के आसपास कवीन्द्र रवीन्द्र की 'गीतांजलि' के कारण हुआ। रहस्यवाद के सम्बन्ध में विद्वानों के बीच विचार-विभेद है। अतएव हम नीचे हिंदी के मान्य विद्वानों के विचारों

को प्रस्तुत करते हैं, जिसके आधार पर रहस्यवाद की विशेषताओं पर पूर्णरूपेण प्रकाश डालते हुए पंत की रहस्य-भावना का विश्लेषण करेंगे।

[क]

'आज गीतों में हम जिसे रहस्यवाद के रूप में ग्रहण कर रहे हैं···उसने परा-विद्या की अपार्थिवता ली, वेदान्त के अद्वैत की छायामात्र ग्रहण की, लौकिक प्रेम से तीव्रता उधार ली और इन सबको कबीर के सांकेतिक दाम्पत्यभाव-सूत्र में बाँधकर एक निराले स्नेह-संबंध की सृष्टि कर डाली, जो मनुष्य के हृदय को पूर्ण अवलम्ब दे सका। उसे पार्थिव प्रेम के ऊपर उठा सका तथा मस्तिष्क को हृदयंगम और हृदय को मस्तिष्कमय बना सका।[१] ·······साधारणतः हमारी अनुभूतियों के पीछे हमारे अन्तर्जगत् में ऐसा व्यापक, अखण्ड और संवेदनात्मक धरातल है जिसपर सारी विविधताएँ ठहर जाती हैं। इस अखण्ड और व्यापक चेतन के प्रति कवि का आत्मसमर्पण ही आधुनिक रहस्यवादी काव्य है। अखण्ड चेतन से तादात्म्य का रूप केवल बौद्धिक भी हो सकता है, पर रहस्यानुभूति में बुद्धि का ज्ञेय ही हृदय का प्रेम हो जाता है। इस प्रकार रहस्यवादी का आत्मसमर्पण बुद्धि की सूक्ष्म व्यापकता से सौन्दर्य की प्रत्यक्ष विविधता तक फैल जाने की क्षमता रखता है। अतः उससे सत् और चित् की एकता में आनन्द सहज संभव रहेगा। रहस्योपासक का आत्मसमर्पण हृदय की ऐसी आवश्यकता है जिसमें हृदय की सीमा एक असीमता में अपनी ही अभिव्यक्ति चाहती है। और हृदय के अनेक रागात्मक संबंधों में माधुर्यभावमूलक प्रेम ही उस सामंजस्य तक पहुँच सकता है, जो सब रेखाओं में रंग भर सके, सब रूपों में सजीवता भर सके और आत्मनिवेदक को इष्ट के साथ समता के धरातल पर खड़ा कर सके। भक्त और उसके इष्ट के बीच में वरदान की स्थिति संभव है जो इष्ट नहीं, इष्ट का अनुग्रह दान कहा जा सकता है। माधुर्यभाव-मूलक प्रेम में आधार और आधेय का तादात्म्य अपेक्षित है और वह तादात्म्य उपासक-उपास्य नहीं। इसी

महादेवी वर्मा

१. सांध्यगीत की भूमिका से

से तन्मय रहस्योपासक के लिए आदान संभव नहीं, पर प्रदान या आत्मदान उसका स्वभावगत धर्म है।'[२]

—सुश्री महादेवी वर्मा

[ख]

डा० रामकुमार वर्मा

'रहस्यवाद जीवात्मा की उस अन्तर्हित प्रवृत्ति का प्रकाशन है जिसमें वह दिव्य और अलौकिक शक्ति से अपना शांत और निश्चल संबंध जोड़ना चाहती है, और यह संबंध यहाँ तक बढ़ जाता है कि दोनों में कुछ भी अन्तर नहीं रह जाता। जीवात्मा की सारी शक्तियाँ इसी शक्ति के अनन्त वैभव और प्रभाव से ओत-प्रोत हो जाती हैं। जीवन में केवल उसी दिव्य शक्ति का अनन्त तेज अन्तर्हित हो जाता है और जीवात्मा अपने अस्तित्व को एक प्रकार से भूल-सी जाती है। एक भावना, एक वासना हृदय में प्रभुत्व प्राप्त कर लेती है और वह भावना सदैव जीवन के अंग-प्रत्यगों में प्रकाशित होती रहती है। यही दिव्य संयोग है। आत्मा उस दिव्य शक्ति से इस प्रकार मिल जाती है कि आत्मा में परमात्मा के गुणों का प्रदर्शन होने लगता है और परमात्मा में आत्मा के गुणों का प्रदर्शन।'[३]

—डा० रामकुमार वर्मा, एम० एम०; पी० एच डी०

[ग]

डा० वियय मोहन शर्मा

'रहस्य का अर्थ है गुप्त, प्रच्छन्न या अव्यक्त। और जिसमें गुप्त, प्रच्छन्न और अव्यक्त का उल्लेख है वही रहस्यवाद है। सावरण को निवारण करने की प्रवृत्ति है। उपनिषदों में उसी 'प्रच्छन्न' को देखने का कुतूहल है। रूप-जगत् क्या है—मैं (आत्मा) क्या हूँ? आत्मा और जगत् का क्या संबंध है? 'जगत्' किसकी सृष्टि है? वह (सः) कौन है? सः जगत् और आत्म के बीच क्या कोई शृंखला है? ये प्रश्न हैं जो दर्शनों में अनेक तर्क-वितर्कमय उत्तरों के पश्चात्

---

२. दीपशिखा की भूमिका, से

३. कबीर का रहस्यवाद पृ० ७

भी प्रश्न ही बने हुए हैं। उनका निष्कर्ष है; वह (सः) अनुभव किया जा सकता है—उसका वर्णन नहीं हो सकता। ईसाई दार्शनिक कहते हैं, 'प्रेमिका के उसाँस भरे वक्षस्थल का जैसे कोई उन्मुक्त प्रेमी आलिंगन करता है और उससे जो कुछ मीठा, कुछ भीतर-ही-भीतर घुटने लगता है—कुछ ऐसा ही उसके सान्निध्य का अनुभव होता है। बौद्ध इस प्रश्न पर मौन धारण कर लेता है, वेदांती 'नेति-नेति' (यह नहीं, यह नहीं) कहकर रुक जाता है।··· 'दर्शन' तर्क और ज्ञान से 'रहस्य' को समझने का आग्रह करता है, काव्य उसे अपने में आच्छादित कर लेने की व्याकुलता प्रकट करता है। दर्शन चिंतन है—विचार है; कविता अनुभूति है, भाव है। दर्शन उसे दूर रखकर खुली आँखों से देखने की चेष्टा करता है, काव्य उसे अपने ही में उतारकर निमीलित नेत्रों से उसका दर्शन करता है। जहाँ रहस्य के प्रति हमारा 'राग' जाग उठता है, हम उसकी ओर अपने को भूलकर खिंचने लगते हैं, वहीं काव्य की भूमिका प्रस्तुत हो जाती है। 'रहस्य' की ओर खिंचाव—आकर्षण ही रहस्यवादी काव्य को जन्म देता है। रहस्य जैसा कि अभी तक के विवेचना से स्पष्ट है, उस परोक्ष सत्ता को कहते हैं जो हमारी पार्थिव आँखों से ओझल है, परे है। उसी के अनुभव करने, पहचानने की ललक—चाह—रहस्यवादी काव्य में दीख पड़ती है। अपनी प्रवृत्ति और विश्वास-भावना के अनुसार एक रहस्यवादी जगत् में परोक्ष सत्ता का आभास पाकर, उसके साथ अपना सम्बन्ध जोड़कर, हर्ष-पुलक से भर जाता है, दूसरे जगत् को असत्य मान, उससे विरक्त हो, अपने भीतर ही उस सत्य के दर्शन कर आत्मविभोर हो जाता है। इस प्रकार के द्रष्टा को आत्मवादी या व्यक्तिवादी भी कह सकते हैं। तीसरा किसी व्यक्ति ही को 'उसका' प्रतीक मानकर उसमें अपनी भावनाओं को केन्द्रित कर उसी का सान्निध्य चाहता है। इस प्रकार रहस्यवादी अपनी आत्मा के चेतन को झाँकने के लिए उन्मुख होता है। स्थूल प्रकृति से, समष्टिरूप से चेतना का आरोपन कर उससे अपना रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है और उसे अपना ही अंश अनुभव करने लगता है। और वह व्यक्ति ही में परोक्ष चेतना का आरोप कर भी आत्मविस्मित हो जाता है। प्रत्येक

रहस्यवादी के लिए आकर्षण के आधार पर एक होना आवश्यक नहीं, पर उस आधार में, उस रहस्यमयी परोक्ष सत्ता की अनुभूति में सबका एक होना निश्चय ही आवश्यक है।' ४

—प्रो० विनयमोहन शर्मा, एम० ए०, बी० एल०

[घ]

'इस प्रकार कभी दर्शन के क्षेत्र में, सौन्दर्य के लोक में और कभी प्रेम की भूमि में विचरण करता हुआ कवि रहस्योन्मुख हो जाता है····दर्शन के क्षेत्र का तात्पर्य है, हमारा उपास्य सूक्ष्म-से-सूक्ष्म और महान्-से-महान् है। सौन्दर्य भावना पर चलनेवाली रहस्य-भावना का भाव है कि ब्रह्म सौन्दर्य का आदि अजस्र स्रोत है और प्रेमाश्रयी रहस्य-भावना का अर्थ है कि इसी चिर-सुन्दर से हमारा प्रेम-सम्बन्ध है।'५

प्रो० विश्वम्भर 'मानव'

—प्रो० विश्वम्भर मानव, एम० ए०

[ङ]

'रहस्यवाद विश्व की 'परम सत्ता' (Transcendental Reality) का बोध और साक्षात्कार है। ब्रह्म या ईश्वर से आत्मा के ऐक्य या सान्निध्य की धारणा रहस्यवाद कहलाती है। यह वस्तुतः धार्मिक मनःस्थिति है। रहस्यवाद और धर्म में तात्त्विक भेद यह है कि रहस्यवादी उपासक को ईश्वर तक पहुँचने के लिए पुजारी या अन्य माध्यम की आवश्यकता नहीं पड़ती। रहस्यवादी को अपना पथ अपने-आप चलना पड़ता है। रहस्यवाद तात्त्विक रूप में ऐक्य की धारणा है और बुद्धि द्वारा अद्‌भुत द्वैत की भावना का निरूपण करता है। रहस्यवाद आध्यात्मिक क्रिया है। उसका उद्देश्य भी आध्यात्मिक है। रहस्य में अपरिवर्तनशील 'एकं ब्रह्म' से साक्षात्कार की उत्कट इच्छा रहती है। रहस्यवादी उसे तर्क या विवाद के द्वारा प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करता। रहस्यवादी का ब्रह्म या ईश्वर उसका प्रिय या प्रेमी बन जाता है। रहस्यवादी का सबसे प्रधान साधन प्रेम है। इसी के कारण रहस्यवादी का अपने ब्रह्म से व्यक्तिगत संबंध स्थापित हो जाता है।' जहाँ पर दार्शनिक

डा० केशरी-नारायण शुक्ल

४. प्रसाद, आँसू तथा अन्य कृतियाँ
५. महादेवी की रहस्य-साधना, पृ० ४१

तर्क या कल्पना करता है वहाँ पर रहस्यवादी प्रेम करता है। इसी से रहस्यवादी का ब्रह्म प्रिय और प्राप्य है।' रहस्यवाद में मनुष्य का रागात्मक पक्ष अधिक विकसित और उन्नत रहता है। रहस्यवाद में प्रेम की प्रधानता का यह आशय नहीं है कि इसमें जीवन के अन्य पक्षों का अभाव है। सच्ची रहस्यात्मकता का मनुष्य के संपूर्ण व्यक्तित्व की आंशिक संतुष्टि से विरोध है। वह कहती है कि परिभाषा, वर्णन और अभिव्यंजना से अधिक (व्यापक) मनुष्य की इच्छा, जीवन और अनुभव है'। सच्चे रहस्यवाद में केवल 'समाधि' या 'हाल' का धार्मिक भावावेश नहीं होता। इसमें सामान्यतया एक-दूसरे से पृथक् समझे जानेवाले रागात्मक और बौद्धिक पक्षों में पुनः सामंजस्य स्थापित होता है और मस्तिष्क या बुद्धि द्वारा विभक्त ये दोनों पक्ष फिर एक में मिल जाते हैं। रहस्यवाद से संपूर्ण व्यक्ति का संबंध रहता है। रहस्यवादियों का कहना है कि उस 'परम-सत्ता' की प्राप्ति ऊपरी मस्तिष्क से नहीं हो सकती: क्योंकि यह तो लौकिक सत्ता और भेद-भावना (Spatial Conception) में ही लीन रहता है। वे मनुष्य की दूसरी सुप्त शक्ति प्रातिभ ज्ञान (Intuition) की ओर संकेत करते हैं। यह प्रातिभ ज्ञान (Intuition) रहस्यवादियों का प्रधान साधन और रहस्यवाद का प्रधान अंग है। साधना के कुछ उपाय—जिनमें ध्यान प्रमुख है—चेतनावस्था में ऐसा परिवर्तन उपस्थित कर देते हैं जिससे यह सोई शक्ति जग पड़ती है। ज्यों-ज्यों इस शक्ति (प्रातिभ ज्ञान) का प्रवेश हमारे चेतन जीवन में होता जाता है त्यों-त्यों मनुष्य रहस्यवादी बनता जाता है। अपनी अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए प्रतीकों या उपलक्षणों (यद्यपि ये अपरिपूर्ण सिद्ध होते हैं) का आश्रय रहस्यवादी के लिए अनिवार्य हो जाता है। इसके द्वारा अपनी अनुभूति की तीव्रता का प्रकाशन असंभव है। केवल साम्य के सहारे आभासमात्र देकर पाठकों के सोए हुए प्रातिभ ज्ञान को उद्बुद्ध कर रहस्यवाद के प्रतीक काव्य के प्रचलित प्रतीकों के समान अपने अर्थ से कुछ अधिक व्यंजित करते हैं। यह प्रतीकात्मकता केवल सांकेतिक है।[६] —**डा० केसरी नारायण शुक्ल, एम० ए०, डी० लिट्०**

६. आधुनिक काव्यधारा, पृ० सं० २३५-८

जिस प्रकार मैटर आफ फैक्ट (Matter of fact) से आगे की चीज है, उसी प्रकार छायावाद से आगे की चीज रहस्यवाद है। छायावाद में यदि एक जीवन के साथ दूसरे जीवन की अभिव्यक्ति है अथवा आत्मा का आत्मा के साथ सन्निवेश है तो रहस्यवाद में आत्मा-परमात्मा के साथ। एक में लौकिक अभिव्यक्ति है तो दूसरे में अलौकिक। एक पुष्प को देखकर जब हम उसे भी अपने ही जीवन-सा सप्राण पाते हैं तो यह हमारे छायावाद की आत्माभिव्यक्ति है, परन्तु उसी पुष्प में जब हम किसी विश्व-व्याप्त परम-चेतन का विकास पाते हैं तो यह हमारी रहस्यानुभूति हो जाती है।..................निखिल सृष्टि में एक परोक्ष सत्ता का आभास ही रहस्यवाद है।'[७]

शान्तिप्रिय द्विवेदी

—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी

[छ]

छायावाद में रहस्यवृत्ति का प्राधान्य है। एक प्रकार से अदभुद् और रहस्य उसके आधारभूत तत्त्व हैं। इसका कारण है भौतिकता के विरुद्ध प्रतिक्रिया। द्विवेदीकालीन कवियों की क्रीड़ा-भूमि उसका निकटवर्ती पार्थिव संसार रह गया था, अतः स्वभावतः ही उनका विरोध करनेवाले कवि दूर, धुँधले एवं रहस्यमय लोक की ओर बढ़ने लगे। इसके लिए उन्हें कवीन्द्र रवीन्द्र की गीतांजलि, अंग्रेजी के भावयोगी कवि तथा हिन्दी के प्राचीन रहस्यवादियों से विशेष प्रोत्साहन मिला और वे उस अज्ञात के प्रति जिज्ञासा प्रकट करने लगे। वास्तव में यह प्रतिक्रिया का ही फल था और हमारे भावुक कवि किसी धार्मिक प्रेरणा से इस ओर इतने आकृष्ट नहीं हुए थे जितने कि अपनी भावुकता और कल्पना के व्यायाम के लिए विस्तृत क्षेत्र पा जाने के कारण। इसी कारण आधुनिक छायावाद को विशेष आध्यात्मिक दृष्टि से देखना उचित न होगा ; क्योंकि एक

डा० नगेन्द्र

७. कवि और काव्य, पृ० सं० १२१-२

तो यह युग धार्मिकता का नहीं है, दूसरे हमारे प्रतिनिधि कवियों का जीवन भी अधिकांश में पाश्चात्य प्रभावों से निर्मित है। केवल काव्यवस्तु के रूप में उन्होंने इस काव्य-जिज्ञासा और उससे सम्बन्ध रखनेवाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों को अपनाया है। हाँ, अपनी विकसित चिंतन-शक्ति और विस्तृत दार्शनिक अध्ययन के द्वारा उसको पहचानने का सफल प्रयत्न अवश्य किया है। श्रीमती वर्मा ने बौद्ध दर्शन, एवं कविवर प्रसादजी व निरालाजी ने भारतीय अद्वैतवाद का अच्छा मनन किया है। फलतः उनके काव्यों में भावुकता और दार्शनिकता का सुन्दर समन्वय है। कविवर पंत ने भी पौर्वात्य और पाश्चात्य दर्शन के अध्ययन द्वारा कुछ मौलिक सिद्धान्तों की सृष्टि और उनका सुन्दर काव्यमय प्रयोग किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हमारे कवियों का रहस्यवाद उनकी धार्मिक आत्मानुभूति का फल तो किसी प्रकार नहीं हो सकता। रहस्य-प्रवृत्ति के कारण उनकी वृत्ति इसमें काफी रमी और अपनी कल्पना एवं चिन्तन-शक्ति के बल पर उन्होंने इन रहस्यमय प्रश्नों पर काव्य का सुनहरा आवरण बड़े सुचारु रूप से चढ़ाया है।'[८]

—डा० नगेन्द्र, एम० ए०, डी० लिट्०

[ज]

गंगाप्रसाद पांडेय

आध्यात्मिक उद्भावना तथा उपासना का ही एक स्वरूप रहस्यवाद है। मनुष्य जब से अपनी मानवीय विवशता में अथवा प्राकृतिक व्यापारों की विशालता में किसी एक अलक्षित शक्ति के प्रभाव तथा अस्तित्व की कल्पना करने लगा, तभी से रहस्यवाद का बीजारोपण हुआ। जिस समय उन्होंने यह समझा कि उसकी परिमित शक्तियों और विश्व की अपरिमित शक्तियों का संचालक एक ही है सर्वशक्तिमान है और उसकी प्राप्ति ही जीवन का साफल्य है उसी समय रहस्यवाद की भावना सिहर उठी। मानव-हृदय में धार्मिक भावना भी उसी तरह सार्वभौम है जिस तरह प्रेम, ईर्ष्या की भावनाएँ। अस्तु, रहस्यवाद की आधारभूमि धार्मिक भावना

---

८. सुमित्रानन्दन पंत, पृष्ठ सं १२—४

मालूम पड़ती है। इसके विषय हैं आत्मा, परमात्मा और जगत्। संसार के भिन्न-भिन्न साधकों ने इसके विषय में अपने भिन्न-भिन्न अनुभव बताए हैं; किन्तु सभी में उस महान अखण्ड शक्ति के आलोक का आभास उनकी आत्मा को मिला है। फिर भी इतना तो निश्चित है कि रहस्यवाद हृदय की वह दिव्य अनुभूति है जिसके भावावेश में प्राणी अपने ससीम और पार्थिव अस्तित्व से उस असीम एवं अपार्थिव महाअस्तित्व के साथ एकात्मकता का अनुभव करने लगता है।'[१]

—श्री गंगाप्रसाद पाण्डेय, एम० ए०

[झ]

फूलचंद्र पांडेय

'रहस्यवाद वाद नहीं, वरन अनुभूति है। छायावाद को अनुभूति मानने में हृदय थोड़ा संकोच अवश्य करता है और उसका कारण है कि उसमें प्रकृतिमयता का प्राधान्य रहता है। सिद्धान्त रूप में प्रकृति की मान्यता स्वीकार करते हुए हम उससे तादात्म्य स्थापित करते हैं। हम प्रकृति से अपना कोई स्पष्ट सम्बन्ध स्थापित नहीं करते। छायावाद में भावना आत्म-प्रकृति के क्रिया-व्यापारों के साथ-साथ तादात्म्य स्थापित करते हुए अपनी आन्तरिक पृष्ठभूमि के मार्मिक तत्त्वों का प्रकाशन करती है। वह प्रकृति से सम्बन्ध स्पष्ट नहीं करती, वह विकारात्मक परिवर्तनशील प्रकृति से दूर रहना चाहती है। छायावाद में भावनाएँ प्रकृतिमय हो जाती है, प्रकृति-चिन्तन का साधन बन जाती हैं, फिर भी आत्मा और प्रकृति का अलग-अलग अस्तित्व रहता है। प्रकृति मानव की क्रिया, कल्पना तथा व्यापारों को क्यों न अपना ले, फिर भी वह प्रकृति ही रह जाती है, मानव नहीं बन जाती। यह आत्मसमर्पण ब्रह्म (चिरन्तन सत्ता) के प्रति होता है। प्रकृति को देखकर मन में कुतूहल होता है। प्रश्न पर प्रश्न उठने लगते हैं। जहाँ तक प्रकृति के आन्तरिक शक्ति के प्रति कुतूहल है वहाँ तक शुद्ध छायावाद चलता है। ज्यों ही कुतूहल आसक्ति में परिणत होता है, रहस्यवाद का प्रारम्भ हो जाता है। आत्मा-परमात्मा में

१. छायावाद और रहस्यवाद, पृष्ठ ६३-४

मिलकर एक होने से, एक हो जाने तक की परिधि रहस्यवाद की है। इस क्षेत्र में एक और एक मिलकर भी एक ही रह जाते हैं। रहस्यवाद सम्पूर्ण रूप में पूर्ण ब्रह्म से ही संबंधित है।'

'दार्शनिक क्षेत्र में जीव-प्रकृति और ब्रह्म सृष्टि की ये तीनों विभूतियाँ मानी गयी हैं। इनमें जीव (चेतन) चिंतनशील है, प्रकृति क्रियाशील है और ब्रह्म चिंतन और क्रिया के समन्वित रूप की चरम सीमा। इन तीनों पक्षों के आधार पर प्रेम की तीन कोटियाँ निश्चित की जाती हैं—मानव का मानव के प्रति आकर्षण प्रेम कहा जाता है, मानव का प्रकृति की ओर आकर्षण छायावाद कहा गया तथा मानव का ब्रह्म की ओर आकर्षण रहस्यवाद है।'[१०]

—श्री फूलचन्द्र पाण्डेय, एम० ए०

[ञ]

रामचन्द्र शुक्ल

'किसी अगोचर और अज्ञात के प्रेम में आँसुओं की आकाश-गंगा में तैरने, हृदय की नसों का सितारा बजाने, प्रियतम असीम के संग नग्न प्रलय-सा ताण्डव करने या मुंदे नयन-पलकों के भीतर किसी रहस्य का सुखमय चित्र देखने को कविता कहना कहाँ तक ठीक है?...जो कोई यह कहे कि अज्ञात और अव्यक्त की अनुभूति से हम मतवाले हो रहे हैं, उसे काव्य-क्षेत्र से निकल मतवालों (साम्प्रदायियों) के बीच अपना हाव-भाव और नृत्य दिखाना चाहिये।[११]....जो चिंतन के क्षेत्र में अद्वैतवाद है वही भावना के क्षेत्र में रहस्यवाद।'[१२]

—आचार्य रामचन्द्र शुक्ल

[ट]

श्यामसुन्दर दास

'रहस्यवाद के मूल में अज्ञात शक्ति की जिज्ञासा काम करती है। संसार-चक्र का प्रवर्तन किसी अज्ञात शक्ति के द्वारा होता है। इस बात का अनुभव मनुष्य आदिकाल से करता चला आया है। उस अज्ञात शक्ति को जानने की इच्छा सदैव मनुष्य को रही है

१०. आधुनिक कवि पृष्ठ ४६-७
११. काव्य में रहस्यवाद
१२. जायसी-ग्रंथावली, पृष्ठ १६५

और रहेगी। परन्तु वह शक्ति उस प्रकार स्पष्टता से नहीं दिखाई दे सकती जिस प्रकार जगत् के अन्य दृश्य रूप; और न उसका ज्ञान ही उस प्रकार साधारण विचारधारा के द्वारा हो सकता है जिस प्रकार इन दृश्य रूपों का होता है। अपनी लगन से जो इस क्षेत्र में सिद्ध हो गए हैं उन्होंने जब-जब अपनी अनुभूति का निरूपण करने का प्रयत्न किया है, तब-तब अपनी उक्तियों को स्पष्टता देने में अपने-आपको असमर्थ पाया है। परमात्मा को पिता, माता, प्रिया, प्रियतम, पुत्र अथवा सखा के रूप में देखना रहस्यवाद ही है; क्योंकि लौकिक अर्थ में परमात्मा इनमें से कुछ भी नहीं है। आदर्श पुरुषों में परमात्मा की विशेष कला का साक्षात्कार कर उनको अवतार मानकर उन्हें मस्तक नवाना आदिम रहस्यवाद है। — डा० श्यामसुन्दर दास बी० ए०

रहस्यवाद की विशेषताएँ

विभिन्न आचार्यों के बीच रहस्यवाद के कारण एक वितंडावाद फैला हुआ है। समष्टिरूप से विचार करने पर हम रहस्यवाद की रूपरेखा इन विचारों के आधार पर निर्मित कर लेते हैं; पर हम इनकी विशेषताओं से पूर्णतया परिचित नहीं होते हैं। अब हम संक्षेप में, इन्हीं विचारों के आधार पर रहस्यवाद की विशेषताओं को प्रस्तुत करते हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि इस 'वाद' का संबंध आध्यात्मिक प्रेम से है। इसमें निर्गुण, असीम और अद्वैत ब्रह्म के साथ सगुण, ससीम और परिधिबद्ध जीवात्मा का माधुर्यभाव-भरित दाम्पत्य संबंध है। इसमें परमात्मा के सगुण रूप की आराधना नहीं, प्रत्युत उसका निराकार रूप ही मान्य है।

दूसरी बात यह है कि इसमें प्राय: आलंबन और जीवात्मा का आश्रय हुआ करता है, परन्तु कभी-कभी परमात्मा का आश्रय रूप अंकन करता है।

तीसरी बात यह है कि रहस्यवाद की दो पद्धतियाँ हैं—भारतीय पद्धति और सूफी पद्धति। भारतीय पद्धति के अंतर्गत परमात्मा पति और आत्मा पत्नी माना गया है तथा सूफी पद्धति के अन्तर्गत परमात्मा पत्नी और आत्मा पति।

चौथी बात यह है कि 'दार्शनिक होकर, अद्वैतवाद का आधार लेकर ही रहस्यवाद की काव्यगत योजना होती है। अद्वैतवाद के सिद्धान्त के अनुसार

ब्रह्म एक है और विश्व भर में केवल एक उसीका अस्तित्व है। उसके सिवा दूसरा कोई नहीं है। सब-कुछ ब्रह्म ही है। हम आप सभी ब्रह्म हैं। यह सर्वव्यापी ही नहीं, सब-कुछ को आत्मसात् करनेवाला ब्रह्म निर्गुण है और यह जो सगुण धरातल पर अनेक रूपात्मक जगत् हम देख रहे हैं वह माया है, मिथ्या है। तो माया? यह भी ब्रह्म की ही इच्छा है, उसी की चेतना का एक हल्का-सा स्पंदन है। माया का पृथक और वास्तविक अस्तित्व नहीं। इस अद्वैत की भावना में, द्वैत (Duality) के नितांत निषेध में, केवल जिज्ञासा और ज्ञान की वृत्तियों के लिए अवकाश है, क्योंकि ब्रह्मज्ञान का मतलब आत्मज्ञान तो हो सकता है; पर स्नेह और प्रेम नाम की हृदय की रागात्मिका वृत्तियों के लिए स्थान नहीं; क्योंकि प्रेम की सत्ता में व्यक्तियों का द्वैत निहित है। ज्ञाता और ज्ञेय की एकता तो समझी जा सकती है, पर प्रेमी और प्रेमिका के तादात्म्य (सान्निध्य नहीं) में विरह और मिलन की अनेक अवस्थाओं की कल्पना भी नहीं की जा सकती। इस दृष्टि से देखने पर अद्वैतवाद और रहस्यवाद के बीच एक विरोधाभास की दीवार-सी खड़ी दिखती है। अद्वैतवाद के अन्तर्गत प्रेमी और प्रेमिका, असीम और ससीम के अलग-अलग व्यक्तित्वों की धारणा के लिए अवकाश नहीं है और रहस्यवाद में इन अलग व्यक्तित्वों की कल्पना केवल सापेक्ष धरातल (Relative plane) पर तबतक के लिए की जाती है जबतक ससीम को यह अनुभूति नहीं प्राप्त हो गयी कि असीम उससे भिन्न नहीं, वह स्वयं असीम है। जीवात्मा भी असीम ब्रह्म ही तो है, पर जब-तक वह मायाबद्ध है, हम अपने असल स्वरूप को भूले हुए हैं, तभी तक उसकी अनूभुतियाँ प्रेम और विरह की अनंत दशाओं से अभिषिक्त हो रहस्यवाद की उद्भावना कर सकती हैं। स्वतः अद्वैतवाद की दृष्टि निरपेक्ष होने के कारण उसके अंतर्गत ब्रह्म को अपने असली रूप में देखा जाता है, पर रहस्यवाद की दृष्टि की सापेक्षता के फलस्वरूप उसके अंतर्गत निर्गुण ब्रह्म भी एक विशिष्ट व्यक्तित्व-सा धारण कर लेता है, प्रेम करना और किया जाना, विरह में तपना आदि तो उसके गुण कहे ही जा सकते हैं। फिर भी वह ब्रह्म रहता है निर्गुण ही, भक्तों की पुकार सुनकर नर-लीला करनेवाले राम और कृष्ण के समान

सगुण नहीं। इस दृष्टि से रहस्यवाद के निर्गुण की भावना (Concept) भी सापेक्ष ही है। अद्वैतवाद और रहस्यवाद में यही थोड़ा-सा अन्तर भी है।'[१३]

इस भावात्मक रहस्यवाद के अतिरिक्त साधनात्मक रहस्यवाद भी है जिसके अंतर्गत हठयोग की क्रियाएँ और शारीरिक-आध्यात्मिक साधनाएँ आती हैं। इसमें इन्हीं यौगिक साधनाओं के सहारे आत्मा और परमात्मा का योग उपस्थित कर देने की चेष्टा की जाती है।

संबंध की दृष्टि से, स्परजन के अनुसार रहस्यवाद के अनेक प्रकार माने गये हैं—

(क) भक्ति-संबंधी रहस्यवाद (Devotional Mysticism)—दादू, मीरा,, महादेवी।
(ख) दर्शन-संबंधी रहस्यवाद (Philosophical Mysticism)—निराला।
(ग) प्रकृति-संबंधी रहस्यवाद (Nature Mysticism)—पंत, वर्ड्स्वर्थ।
(घ) प्रेम-संबंधी रहस्यवाद (Love Mysticism)—प्रसाद, शेली।
(ङ) सौन्दर्य-संबंधी रहस्यवाद (Beauty Mysticism)—कीट्स।
(च) शिशु-संबंधी रहस्यवाद (Child Mysticism)—रवीन्द्र, ब्लेक।

पंत प्रधानतया प्रकृति, प्रेम, सौन्दर्य और जीवन के कवि हैं न कि साधक। वह जीव-ब्रह्म के पचड़े में बहुत नहीं पड़े हैं, पर उनपर उपनिषद् एवं दर्शन के अध्यन का विशेष प्रभाव है जिसके हेतु उनकी दार्शनिक भावना कुछ प्रबल हो गई है। 'वीणा' से लेकर 'गुंजन' तक की कविताओं में हमें कुछ ऐसी रचनाओं के दर्शन होते हैं जिन्हें हम कुछ सीमा तक 'रहस्यवादी' कह सकते हैं। उनके इस रहस्यवाद के कई पक्ष हैं। रहस्यवादी कवियों की पंक्ति में पंत को ला बिठाने का श्रेय वाह्य प्रभावों को है। इन प्रभावों में कवीन्द्र रवीन्द्र की

१३ काव्यालोचन के सिद्धान्त पृष्ठ ७५-६.

गीतांजलि मुख्य है। 'वीणा' की रचनाएँ इसके प्रत्यक्ष उदाहरण हैं। सौन्दर्य के प्रति कवि को ममत्व रहा है और वही आकर्षण कवि को रहस्यवादी बनने में सहायक सिद्ध हुआ। कवि के अन्दर जिज्ञासा की भावना सर्वदा कार्य करती रही और उसी ने उनकी रहस्यवृत्ति को मुखर बनाया। 'वीणा' की रचनाओं को देखने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि ने परोक्ष सत्ता को कहीं 'माँ' और कहीं 'प्रियतम' के रूप में देखा है; लेकिन भावना की यह अनिर्दिष्टता अन्य कवियों में भी पायी जाती है (कबीर)। कवि की 'माँ' बहुत बड़ी है और समस्त सृष्टि की जननी है। अन्य रहस्यवादियों के समान कवि ने यह स्वीकार किया है कि उसकी माँ और उसमें अंतर अंधकार (माया, अविधा) के कारण है। अतएव जबतक ज्ञान का दीपक नहीं जलेगा तबतक उनके मुख का दर्शन न होगा—

माँ के रूप में परमात्मा

जब मैं थी अज्ञात प्रभात
माँ! तब मैं तेरी इच्छा थी
तेरे मानस की जलजात!
तब तो यह भारी अंतर
एक मेल में मिला हुआ था,
एक ज्योति बनकर सुन्दर
तू उमंग थी, मैं उत्पात।
अब तेरी छाया सुखमय
अंधकार में नीरवता बन
माँ उपजाती है विस्मय,
उठ रे, उद्यत हो अज्ञात।
यह सुहाग की है प्रिय रात
यह दीपक अपने सम्मुख धर
जिसके पीछे गिरे मोह की
पाया अंतर हो गोचर;
वह भविष्य होवे अवदात!

—कवि की दृष्टि में माँ के मिलन में सब से प्रबल बाधक शक्ति है अज्ञान। पंत ने सृष्टि के आकर्षण-शक्ति स्वीकार किया है, यथा—

(क) उस छवि के मंजुल उपवन को उस मरु से पथ जाता है,
पर मरीचिका से मोहित हो मृग मग में दुख पाता है।

(ख) बढ़ा और भी तो अंतर
जिनको तूने सुखद सुरभि दी
माँ! जिनको छवि दी सुन्दर
मैं उनके ढिग गई व्यग्र हो
तुझे ढूँढ़ने को सत्वर!
मधुबाला बन मैंने उनके
गाए गीत गूँज मृदुतर
पर मैं अपने साथ तुझे भी
भूल गई मोहित होकर।

'इस बोध के लौटते ही कवि की आत्मा विकल हो जाती है। वह माँ के चरणों की निकटता के लिए फिर प्रयत्न करती है।' विश्व में एक महान् शक्तिशाली मातृत्व की कल्पना करते हुए पंत कहता है—

माँ! वह दिन कब आयेगा जब
मैं तेरी छवि देखूँगी
जिसका यह प्रतिबिंब पड़ा है
जग के निर्मल दर्पण में—

—कवि द्वारा जिस 'माँ' की कल्पना की गई है, वह अद्वैतियों की ब्रह्म की कल्पना से भिन्न नहीं है। इस समस्त चराचर के सभी रहस्यों के पीछे वही एक अलौकिक शक्ति है जिससे परिचित होकर हम सब कुछ जान पाते हैं—

वैसे ही तेरा संसार अति अपार यह पारावार
नहीं खोलता है माँ! अपने अद्भुत रत्नों का भण्डार;
प्रत्युत, अपने ही शृंगार (तुलसी-माला या मणि हार)
माँ! प्रतिबिंबित होकर इसमें दिखलाई देते निस्सार

चला प्रेम की दृढ़ पतवार, इसके जल को हिला अपार
दिखलाई देगी तब इसकी विश्व-मूर्ति अति सदय उदार !

लेकिन पंत के रहस्यवाद का एक अंग प्रकृति-रहस्यवाद भी है। कवि आश्चर्यचकित होकर एक बालक के सदृश प्रकृति के वैभव की कल्पना करता है और वह स्वीकार करता है कि उस प्रकृति के पीछे एक जीवित, जागृत, स्पंदित अतीन्द्रिय सत्ता है—

प्रकृति-रहस्यवाद

छवि की चपल अँगुलियों से छू मेरे हृत्तंत्री के तार
कौन आज यह मादक अस्फुट राग कर रहा है गुंजार।

कवि को इस विश्व के सायं-प्रात अत्यन्त रहस्यमय प्रतीत होते हैं जिनके पीछे एक अलौकिक सत्ता कार्य कर रही है और यह सारा आकर्षण भी एक-मात्र उसी के लिए है—

कनक - छाया में जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार
सुरभि - पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प बन जाते हैं गुंजार;
न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता है मेरे दृग मौन

यह जीवन भी कवि को रहस्यमय प्रतीत होता है—

अहे विश्व ! ऐ विश्व - व्यथित मन !
किधर बह रहा है यह जीवन ?
यह लघु-पोत, पात, तृण, रजकण,
अस्थिर भीरु वितान,
किधर, किस ओर, अछोर अजान
डोलता है यह जीवन-यान

'व्यापक दृष्टि से पंत प्रकृति के कण-कण में माँ की छवि का आभास पाते हैं। सुविधा के लिए सृष्टि को उन्होंने दो भागों में विभाजित कर लिया है—एक प्राणियों की, दूसरी प्रकृति की। सांसारिक वैभव को तो वे माँ के

मिलन में बाधक मानते हैं, पर प्रकृति-वैभव को ज्ञान-पथ में साधक। अज्ञान के अंधकार से मुक्ति पा ज्ञान के आलोक की ओर बढ़ने के लिए कवि निरंतर उत्सुक है। पंत की रहस्यानुभूति का माध्यम विशेष रूप से प्रकृति ही है। प्रकृति के अनेक रूपों में अपने को परिवर्तित करने में उन्हें बड़ा सुख मिलता है। कहीं वे ओसकण बनकर माँ के पाद-पद्म धोना चाहते हैं, कहीं विहग-बालिका बन उसके गीतों से वन को गुंजरित करने का निश्चय करते हैं। इस प्रकार कहीं अपने को चकोर और उसे राकापति, अपने को विहग-रव और उसे सौन्दर्य-लालिमा, अपने को भ्रमर और उसे सुमन तथा अपने को करील और उसे ऋतुराज समझते हैं। प्रकृति में उस माँ की छवि की झलक पर एक प्रकार

अलौकिक ज्योति और विस्मय-भावना

के कोमल स्पर्श सुख का अनुभव करते हैं। उनकी दृष्टि से सरिता उनके लिए बहती, पपीहा पुकारता, भ्रमरी गान संजोती और सौरभ वेणी का गंध लेकर वितरण करता फिरता है। उनके समस्त प्रतीक भी प्रकृति से ही संबंध रखते हैं; जैसे विकार-भरे मन के लिए बादल, ज्ञान के लिए अरुणोदय-वेला, भगवान के लिए सूर्य आदि।' कवि प्रकृति के साथ घुल-मिल गया है, उसके साथ उसने अपनी रागात्मक वृत्ति का संबंध जोड़ दिया है। जिस प्रकार कवि चेतन एवं सहृदय है, उसी प्रकार उसकी प्रकृति भी। जब कवि सरोवर में लहरियों को उठते हुए देखता है तब उसकी प्रतिच्छवि अपनी अन्तरात्मा में देख पाता है इस पर कवि को प्रबल जिज्ञासा होती है कि—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल - चंचल ?

कवि को यह पता नहीं है कि ये लहरें क्यों उठती हैं तथा इनके हृदय में कौन-सी इच्छा है जिससे अनुप्राणित होकर ये चंचल हो उठती हैं? इनको अनुप्राणित करने में कौन-सी ऐसी शक्ति या प्रेरणा है जो मानस के जलकणों को आन्दोलित करती है। यह औत्सुक्यपूर्ण जिज्ञासा (Mystic

quest) है, जो रहस्यवाद की विशेषताओं में एक है। पंत की इन पंक्तियों के पढ़ने से अनायास ही कवीन्द्र रवीन्द्र की उक्ति भी याद पड़ जाती है—

> Of what lover thinks the sun flower with face upturned ?
> What desire is borne by the flowing stream ?

पंत और कवीन्द्र के भावों में कितना साम्य है। इन पंक्तियों का सौन्दर्य इनके रहस्य के आँचल में अन्तर्हित है। यह सोचने की बात है कि इन निर्जीव लहरों में कौन-सी इच्छा है, जिसके कारण ये चंचल होकर लहरा उठती हैं। साधारण पाठक इसे कवि की मूर्खता कहेंगे। रस्किन के अनुसार भावात्मक भूल (Pathetic fallacy) यही है। पर यह कवि की सच्ची भावुकता है। प्रकृति की विराट् सत्ता में एक अनन्त शक्ति है, जिसके द्वारा वह एक अज्ञात दिशा की ओर भ्रमण कर रही है। इसी औत्सुक्यपूर्ण जिज्ञासा से अथर्ववेद के एक ऋषि ने प्रश्न किया—

> कथं वातो नेलयति कथं न रमते मनः।
> किमापः सत्यं प्रेप्संतीर्नेलयन्ति कदाचन॥ (?)

अथत् वायु शांति क्यों नहीं रहती ? मन रमता क्यों नहीं है ? यह जल की धारा क्यों और किसकी खोज में दौड़ी जा रही है तथा वह एक क्षण के लिए भी क्यों नहीं रुकती ? तुलनात्मक दृष्टि से देखने पर इस श्लोक की अंतिम पंक्ति में और पंत की पंक्तियों में कितना साम्य पाते हैं, यह कहने की बात नहीं है। कवि पुन: जिज्ञासा करता है—

> सोए वीणा के सुर
> क्यों मधुर स्पर्श से मर, मर,
> बज उठते प्रतिपल - प्रतिपल !

कवि को आश्चर्य होता है कि वीणा के स्वर तो उसके तारों में सोए हुए हैं, पर नन्हीं कोमल अँगुलियों के स्पर्श से ही मर-मर शब्द क्यों ध्वनित हो उठते हैं ? वस्तुत: वह कौन-सी ऐसी अज्ञात, अरूप, अनाम शक्ति है जो वीणा के तारों से स्वर निकालती है। रवि बाबू ने भी लिखा है—

बाजिले काहार बीना मधुर स्वरे
आमार निभृत नव जीवन परे ॥
सीमार माझे असीम तुमि बाजाओ आपन सुर;
आमार मध्ये तोमार प्रकाश ताई एतो मधुर।

इसी को कवीन्द्र ने अपनी सुप्रसिद्ध कविता 'अनसीन म्यूजिसियन' (Unseen Musician) में लिखा है—

Who sweeps his finger over my lyre with such power
I know not what great voice thrills with distracting Music.

अर्थात् 'मेरी वीणा पर जो कोई भी अंगुलियों को सीमा के बीच रखेगा उससे जो संगीतात्मक नाद का उद्भव होगा, उसके बारे में नहीं कह सकता हूँ'। पंत का कवि अपनी जिज्ञासा को सुन्दर तथा कवित्वपूर्ण बनाने के लिए 'आशा के लघु अंकुर' का निर्माण करता है और कहता है—

आशा के लघु अंकुर,
किस सुख से फड़का कर पर, फैलाते नव दल पर दल !
मानव का मन निष्ठुर,
सहसा आँसू में झर-झर क्यों जाता पिघल-पिघल गल ?

कवि का प्रश्न यह है कि मानव-हृदय में आशा के जो लघु अंकुर फैलते हैं, उससे उसे कौन-सा सुख या प्रेरणा मिलती है। जब परम-पिता परमेश्वर के मिलन की एक भी झाँकी साधक को मिल जाती है, तब उसके हृदय में आशा की शीतल चंद्रिका छिटक पड़ती है और मन-मंदिर आलोकमय हो जाता है—इससे आनन्द की प्राप्ति होती है, सुख मिलता है। उसी मिलन के

मिलनोत्कंठा

प्रयत्नार्थ साधक की आशा नए-नए पत्ते के सदृश मुकुलित होकर भिन्न-भिन्न मार्ग से मन्दाकिनी-सी बहती रहती हैं। यों तो मानव-हृदय अपने जन्म से ही कठोर होता, निष्ठुर होता है, पर जब सहसा वेदना होती है, तब वह पाषाण-हृदय द्रवित होकर आँसू-रूप में निकल पड़ता है। यह द्रवित करने की शक्ति उस अलौकिक को प्राप्त है, जिसका रूप अगोचर है। आत्मा परमात्मा की ओर उन्मुख होती है

और उसकी अपूर्व एवं असीम शक्ति को देख विमुग्ध हो उठती है। इसी कारण मन की निष्ठुरता के स्थान पर सहानुभूति और समवेदना का भाव जाग्रत् होता है। आत्मा अपनी सीमा से बाहर होकर विश्वात्मा में अन्तर्हित होना चाहती है तथा इसी में आनन्द का रहस्य है, यथा—

मैं चिर उत्कण्ठातुर
जगती के अखिल चराचर
यों मौन-मुग्ध किसके बल !

इस संसार में जो हलचल है उसका मूल क्या है? उसका संचालन करनेवाला कौन है? यहाँ पर कवि अपने प्रश्न को स्पष्ट रूप देता है और उस अनन्त, अपूर्व तथा असीम शक्ति की ओर निर्देश करता है, जो संसार के चराचर जीवों का नियंत्रण करती है। इस कविता में कवि की अन्तर्दृष्टि जग-जीवन के मर्म में प्रवेश करने के लिए उत्कंठातुर है। यह उत्कंठा, यह जिज्ञासा ही कवि को अनजाने आत्मसाधना के पथ पर अग्रसर कर रही है।

'विहग-विहग' में नवयुग का वसन्त फैल रहा है। यह वसंत कवि का प्राण है। उसके आगमन से कवि का हृदय-कमल खिल उठा है। यह वसंत किसी चेतन धरातल पर नहीं है, भाव की अभिव्यंजना को बलशाली बनाने के लिए लाक्षणिक वैचित्र्य का व्यवहार किया गया है।

प्रणय की पीर

उसके रूप-विभव की मादकता से कवि का हृदय उमड़ पड़ा है। उसके मादक सौन्दर्य की मिठास ने कवि की प्राणरूपी कोयल को अधीर कर दिया। उसकी व्यग्रता की जो मधुर पुकार है, वह हृदय-द्वार को चीर डालनेवाली है। जिस प्रकार वसंत के आगमन के समय कोयल मनुहार करती है, उसी प्रकार नवयुग के वसंत (कवि की प्रेयसी) के आगमन से कवि-हृदय की कोकिला कूक उठती है—

यह रे किस छवि का मदिर तीर
मधु - मुखर प्राण की पिक अधीर
डालेगा क्या उर चीर-चीर !

इसकी अंतिम पंक्ति में, प्रणय के पीर की जो थोड़ी-सी उत्कंठा दिखाई गयी है, वह रहस्यवाद को स्पर्श करती है।

'एक तारा' में प्रकृति का स्थिर रूप है, पर उसमें एकाकीपन पर दार्शनिक विवेचना की गई है—

रे उडु, क्या जलते प्राण विकल! क्या नीरव, नीरव नयन सजल!
जीवन निसंग रे व्यर्थ - विफल!
एकाकीपन का अंधकार - दुस्सह है इसका मूक भार,
इसके विषाद का रे न पार!

—एक तारा

कवि को एकाकीपन की वेदना अखरती है।

विश्व में प्रकृति की भी सत्ता है। वह भी चेतना-सम्पन्न है। यह सम्पूर्ण प्रकृति सुन्दर और अनादि है। इस संसार में चेतना यत्र-तत्र बिखरी हुई है और अविच्छिन्न रूप से बह रही है। जिस प्रकार मानव की प्राण-धारा शाश्वत है, उसी प्रकार नौका की सत्ता भी चिरंतन है। इसीलिए पंत ने लिखा है—

सृष्टि-दर्शन और रहस्यवाद

हे जग - जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर - पार,
शाश्वत जीवन - नौका - विहार।
मैं भूल गया, अस्तित्व - ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण,
करता मुझको अमरत्व - दान।

—नौका-विहार

संसार की एक छोटी-सी वस्तु भी अपना महत्त्व रखती है, पर उसका व्यवहार ऐसे स्थलों पर हुआ करता है, जहाँ हम आशा नहीं करते हैं और जब उसकी महत्ता को देखते हैं तब दाँतों तले अंगुली दबाना पड़ता है।' 'रेशनल मिस्टिसिज्म' (Rational Mysticism) के लेखक ने लिखा है—

Even the atom is infinite. The real atom, in stead of being the smallest of the small, is the largest of the large, for every so called atom is nothing less in substance than the one

substance which is the only thing in the universe which can not be divided or cut.

वास्तव में कवि की आत्मा परमात्मा में लीन होने जा रही है और वहाँ उसे आनन्द की प्राप्ति होगी। वह जीवन-मरण से मुक्त होकर 'शाश्वत नौका-विहार' की आशा करता है, जो कवि को खींचे लिए जा रही है। 'एक तारा' में पंतजी को आत्मा का दर्शन हुआ है। उनका शुद्ध ज्ञान आत्मा का प्रतीक है। वह इस विराट् एवं शक्तिशाली ब्रह्म का एक अंश, 'अनन्त का एक मीन' है। इसमें आत्मा को जीवन के अंधकार का बोध हुआ है—

वह शुद्ध, प्रबुद्ध शुद्ध वह सम।

—एक तारा

यह आत्मा का बौद्धिक तत्त्व है। आत्मा किसी अज्ञात सत्ता से मिलने को व्यग्र है। वह विरह-वेदना की ज्वाला में घुल रहा है, पर वेदना मधुमय है। इस मधुरता के हेतु उसमें एक आशा और अभिलाषा है। जग-जगमगा रहा है। इसी में आत्मा और जग-दर्शन अन्तर्हित है—

जगमग-जगमग नभ का आँगन
लद गया कुन्द - कलियों से मन
वह आत्म और वह जग-दर्शन।

—एक तारा

कवि को सौन्दर्य या तो मानव-जीवन से मिला या अपनी प्रेयसी की मन्द-मन्द मुसकान से। यह दर्शन आत्म-दर्शन-प्रधान है। जीवन में आत्म-दर्शन का विशेष महत्त्व है—

आत्मा है सरिता के भी
जिससे सरिता है सरिता

—में आत्मदर्शन अपने अभीष्ट पर पहुँचा हुआ है। यह उसका चरम उत्कर्ष है। इस वस्तुजन्य प्रकृति में कवि ने अपनी आत्मा का समन्वय देखा तथा अब दोनों का एकीकरण हो गया। वस्तु और जीवन में अभिन्न सम्बन्ध

है और वह है भी तो बहुत सूक्ष्म। पंत का कवि इस रहस्य का उद्घाटन करता है—

> दूर वन के ओ राजकुमार अखिल उर-उर में तेरे ज्ञान!
> मधुर इन गीतों से, सुकुमार। अमर मेरे जीवन ओ प्राण!

इससे स्पष्ट होता है कि जीवन और प्राणों के सम्बन्ध को करनेवाली कोई अनन्त, अरूप, अदृश्य शक्ति अवश्य है। यहीं पर कवि की रहस्यमयी भावना है। रहस्यवाद में आत्मा और परमात्मा का सम्बन्ध किसी भी रूप में रहे, परन्तु जितने भी सम्बन्ध हैं उनमें प्रेमी और प्रेमिका का सम्बन्ध उच्चतम कोटि का है। इसमें हृदय की सारी मनोगत भावनाओं का प्रकटीकरण हो जाता है और सारी रागात्मक वृत्तियाँ जागरूक हो जाती हैं। उषा अपनी प्रेयसी की प्रतीक्षा में है और वह मिलने को आतुर है। यथा—

प्रेमी और प्रेमिका का संबंध

> कब से विलोकती तुमको उषा आ वातायन से?
> संध्या उदास फिर जाती सूने गृह के आँगन से?
> लहरें अधीर सरसी में तुमको तकतीं उठ-उठ कर
> सौरभ समीर रह जाता प्रेयसि? ठण्ढी साँसें भर

जिस प्रकार नित्य जीवन के लौकिक प्रेम में प्रिया-प्रेयसी के रूप-सौन्दर्य का निरूपण किया जाता है, उसी प्रकार रहस्यवादी कवि भी उस रूप का चिंतन करता है। इसका कारण यह है कि ब्रह्म निराकार है, अनन्त है, असीम है, जिसका प्रत्यक्ष दर्शन नहीं हो सकता। अस्तु, रूप-वर्णन से सिर्फ उसकी प्रभा का वर्णन होता है तथा प्रकृति उसकी आभा को देखती है। 'मधुवन'—शीर्षक कविता की प्रेयसी का स्वरूप अगर अनिर्दिष्ट हो तो वह रहस्यवाद की रचनाओं के अंतर्गत आ सकता है। प्रेयसी के आगमन से जग-जीवन में एक चमक आ गई है, उसकी अपूर्व छवि छिटक पड़ी है, जिससे प्राणी उन्मत्त हो उठे। इसके रूप-विभव की मादकता से—

तुम्हारी मंजुल मूर्ति निहार लग गई मधु के वन में ज्वाल,
खड़े किंशुक, अनार, कचनार लालसा की लौ से उठ लाल
कपोलों की मदिरा पी, प्राण आज पाटल गुलाब के जाल,
विनत शुक - नासा का धर ध्यान बन गये पुष्प पलास अराल।
प्रिये, कलि कुसुम-कुसुम में आज मधुरिमा, मधु, सुषमा, सुविकास,
तुम्हारी, रोम-रोम छवि आज छा गया मधुवन में मधुमास।
—मधुवन

कवि ब्रह्म में मिलनेकी कामना नहीं करता है, क्योंकि उसे यह निश्चय नहीं हो पाया है कि वहाँ आनन्द की प्राप्ति होगी। पर वह उस आनन्द को भी कतई नहीं चाहता है, क्योंकि अगर मिलन में सुख-प्राप्ति होती है तो सुख की आशा नहीं रहेगी। कवि प्रयत्नशील होना चाहता है, क्योंकि उस मृग-तृष्णा में ही आनन्द की उपलब्धि है, प्राप्ति में नहीं। पर जीवन का रहस्य उसमें मिल जाने में है—

उठ-उठ लहरें कहती यह हम कूल विलोक न पावें,
पर इस उमंग से बह-बह नित आगे ही बढ़ते जावें।

वह आगे बढ़ता है, पर तूफान की तरह नहीं, बल्कि पानी के बुलबुला के समान अपने अस्तित्व को खोकर जीवन के प्रत्येक क्षण में रस-ग्रहण करता है। यही जीवन का रहस्य समझा जाता है। देखिये—

कँप-कँप हिलोर रह जाती रे मिलता नहीं किनारा
बुद्-बुद् विलीन हो चुपके, पा जाता आशय सारा।

इसमें जो रहस्य है, उसका उद्घाटन तो आत्मा और परमात्मा के एकीकरण में है। बुलबुला आगे बढ़ने के लिए पागल न होकर, जीवन का रस ग्रहण करने के लिए, अपना अस्तित्व खोकर समुद्र में एकाकार हो गया है। ठीक ही कहा गया है—

बूँद समानी समुद्र में सो कत हेरा जाय।
अथवा
जानत तुम्हहिं - तुम्हहिं होइ जाई।

कवि मुक्ति को एक व्यवधान समझता है। वह चाहता है कि वह और भी मूर्तिमान बने—

तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन गंधहीन तू गंधयुक्त बन;
निज अरूप में भर स्वरूप मन ! मूर्तिमान बन निर्धन !

कवि अपने आराध्यदेव के चरण-रज से अपने को रंजित करना चाहता है—

चरण - कमल में अर्पण कर मन,
रज-रंजित कर तन
मधु - रस - मज्जित कर मन जीवन
चरणामृत आशय में ।

सर्वांशेन दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि पंत का रहस्यवाद भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। वह अपने आराध्य देव की उपासना करता है, पर उसका दर्शन नहीं हुआ है; तो भी भावना की दृष्टि से वह अपने साध्य का साक्षात् दर्शन कर लेता है और तब कवि उसे भिन्न-भिन्न नामों से सम्बोधित करने लगता है। उसकी भावना शुष्क नहीं है। वह अज्ञात शक्ति कवि को मार्ग दिखलाता है। वह नि:संकोच आगे बढ़ता जाता है और अतृप्त होने के हेतु उसकी लालसा प्रबल हो जाती है। इससे उसके जीवन में अनिर्वचनीय सरसता वर्त्तमान रहती है। मार्ग का अंत शुष्क जिज्ञासा से नहीं होता है, बल्कि साधक उत्फुल्लता से आगे बढ़ता जाता है। देखिये भक्त कहता है—

कहाँ दुरे हो मेरे ध्रुव ! हे पथ-दर्शक ! द्युतिमान ।
दृगों में बरसा यह अपिधान देव ! कब दोगे दर्शन-दान ।

स्वाभाविक रहस्य-भावना।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 'हिन्दी-साहित्य के इतिहास' में पंतजी की रहस्य-भावना पर प्रकाश डालते हुए लिखा है कि—'पंतजी की रहस्य-भावना अधिकतर स्वाभाविक पथ पर पायी जाती है। दूर तक फैले हुए खेतों और मैदानों के छोर पर वृक्षावली की जो धुँधली हरिताभ रेखा-सी क्षितिज से मिली दिखाई पड़ती है, उसके उधर किसी मधुर लोक की कल्पना स्वभावतः होती है—

दूर उन खेतों के पार जहाँ तक गई नील झंकार,
छिपा छायावन में सुकुमार स्वर्ग की परियों का संसार ।

कवि की रहस्य-दृष्टि प्रकृति की आत्मा—जगत् के रूपों और व्यापारों में व्यक्त होनेवाली आत्मा—की ओर जाती है, जो 'निखिल छवि की छवि है' और जिसका 'अखिल जग-जीवन हास-विलास' है। इस व्यक्त प्रसार के बीच उसका आभास पाकर कुछ क्षण के लिए आनन्द-मग्न होना ही मुक्ति है, जिसकी साधना सरल और स्वाभाविक है, हठयोग की-सी चक्करदार नहीं। मुक्ति के लोभ से अनेक प्रकार की चक्करदार साधना तो बंधन है—

है सहज मुक्ति का मधु क्षण पर कठिन मुक्ति का बंधन।

कवि अपनी इस मनोवृत्ति को एक जगह इस प्रकार स्पष्ट करता है। वह कहता है कि इस जीवन की तह में जो परमार्थ-तत्त्व छिपा हुआ कहा जाता है, उसे पकड़ने और उसमें लीन होने के लिए बहुत-से लोग अन्तर्मुख होकर गहरी-गहरी डुबकियाँ लगाते हैं; पर मुझे तो उसका व्यक्त आभास ही रुचिकर है, अपनी पृथक् सत्ता अलग करते भय लगता है—

सुनता हूँ, निस्तल जल में रहती मछली मोतीवाली,
पर मुझे डूबने का भय है भाती तट की चल-जल-माली।
आएगी मेरे पुलिनों पर वह मोती की मछली सुन्दर,
मैं लहरों के तट पर बैठा देखूँगा उसकी छवि जी भर।

कहने का तात्पर्य यह है कि पंतजी की स्वाभाविक रहस्य-भावना को प्रसाद और महादेवी वर्मा की साम्प्रदायिक रहस्य-भावना से भिन्न समझना चाहिये। परमार्थिक ज्ञानोदय को अवश्य उन्होंने 'कुछ भी आज न लूँगी मोल' नामक गीत में प्रकृति की सारी विभूतियों से श्रेष्ठ कहा है। रहस्यात्मकता की अपेक्षा कवि में दार्शनिकता अधिक पायी जाती है।'

सच तो यह है कि पंतजी हिंदी के छायावादी कवि हैं, न कि रहस्यवादी।

उपसंहार

हाँ, पंत की कविताओं में जिज्ञासा की भावना है, पर प्रणय-निवेदन नहीं। इनकी कृतियाँ छायावाद के अन्तर्गत रखी जायँगी, न कि रहस्यवाद के अन्तर्गत।

———

प्रगतिवाद और पंत

आधुनिक युग वादों का युग है। जिस प्रकार राजनीति, धर्म और दर्शन आदि में वादों की भरमार है उसी प्रकार साहित्य-क्षेत्र में भी वादों का बवंडर फैला हुआ है। समयानुसार काव्य-विषय और अभिव्यंजना-पद्धति में अंतर आता रहता है। एक युग था, जबकि प्रेम और युद्ध के गीत गाये जाते थे, भक्तिपूर्ण रागों की रागिनी गूँजती थी, कामिनी के नूपुरों की छमछम् होती थी; पर अंग्रेजों के आगमन के पश्चात् हिंदी-कविता में अनेक परिवर्तन हुये। भारतेन्दु-युग में शृंगार-रस के साथ-साथ कुछ राष्ट्रीय गीतों का राग भी अलापा गया, द्विवेदी-युग में इतिवृत्तात्मक कविताओं का ढेर लगा जिसके प्रतिक्रिया-स्वरूप 'रहस्यवाद-छायावाद' कही जानेवाली रचनाओं की इमारत खड़ी हुई। छायावाद-रहस्यवाद कही जानेवाली कविताओं में कल्पना का स्वर्णजाल बुना गया था जिसे आम जनता कतई पसंद नहीं करती थी, क्योंकि आधुनिक समाज में निर्धनों का शोषण हो रहा था, साम्राज्यवाद एवं पूँजीवाद की जंजीरों से समाज जकड़ा चला जा रहा था, चारों ओर हाहाकार मचा हुआ था, भला उस समय कल्पना के पंखों पर उड़नेवाली छायावादी कविता किसे पसन्द आती! अंत में प्रतिक्रिया हुई जिसके फलस्वरूप 'प्रगतिवाद' ने जन्म लिया। यह कोई नवीन वाद नहीं है, बल्कि यह सामाजिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करनेवाली रचनाओं की संज्ञा है। इसमें सामाजिक रूढ़ियों के विरुद्ध संघर्ष करनेवाली भावना अन्तर्व्याप्त है। इस दृष्टि से कबीरदास भी प्रगतिवादी हैं। प्रगतिवादी पुरातन के प्रति वैराग्य या घृणा प्रकट करता है, वह अतीत पर आस्था न रखकर क्रान्ति द्वारा भविष्य को उज्ज्वल बनाने का आकांक्षी बना रहता है।

प्रगतिवाद की पृष्ठभूमि

'प्रगतिवाद' शब्द का काव्य-साहित्य में सामान्यरूप से दो अर्थ लिया जाता है। एक प्रकृत अर्थ है और दूसरा स्थूल साम्प्रदायिक अर्थ। 'प्रगति' शब्द का अर्थ है—'आगे बढ़ना'। सुतरां यह स्पष्ट हुआ कि जो साहित्य मानव को विकास-पथ पर ले चलता है वही सच्चा प्रगतिशील साहित्य है। तब (डा० शिवनन्दन प्रसाद के शब्दों में)—प्रश्न किया जा सकता है कि मानव की व्यष्टि और समष्टि रूप से उन्नति-मार्ग पर अग्रसर करना तो साहित्यमात्र का उद्देश्य है, क्योंकि साहित्य का उद्देश्य मानव-अनुभूतियों और संस्कारों को परिष्कृत और उसकी बर्बर वृत्तियों का दमन कर उसके अन्दर देवत्व का विकास करना ही तो है। सामाजिक पक्ष भी लें तो साहित्य मानव-जीवन के विभिन्न अंगों तथा मानव-लोक की विविध समस्याओं आदि का चित्रण-विश्लेषण कर समस्त मानव-जाति के कल्याण का मार्ग प्रशस्त करना अपना लक्ष्य रखता है। तो फिर प्रगतिशील साहित्य में अंतर कहाँ रहा? शर्त्त यही है कि वह 'साहित्य' हो! ऐसा प्रश्न किया जा सकता है। बात यह है कि 'प्रगतिशील' साहित्य की विशिष्टता उसके लक्ष्य के वैचित्र्य में निहित नहीं है, लक्ष्य तो सामान्य साहित्य और प्रगतिशील साहित्य दोनों का एक ही हो सकता है। हम दोनों में जो मौलिक अन्तर है, वह है दृष्टिकोण का। सभी साहित्य अन्ततः मानव का कल्याण—समस्त मानवता की उन्नति—अपना लक्ष्य बनाएँगे ही, पर साहित्य की प्रगतिशीलता इसमें है कि वह सचेत हो। सचेतरूप से, उत्साहपूर्वक, आग्रहपूर्वक उन्नति को अपनाने की व्यग्रता ही प्रगतिशील साहित्य के मूल में है। अतः प्रगतिशील साहित्यकार स्वान्तः सुखाय नहीं लिखेगा, वह जानबूझकर समाज-हित लिखेगा। गति और विश्राम का समुचित संतुलन ही यदि जीवन है, तो वह गति को अधिक प्रधानता देगा। गति अर्थात् मानव के शरीर और मन की वह क्रियाशीलता जिससे इस विश्व में उसकी स्थिति अधिक सुदृढ़, अधिक प्रभुत्वशाली, अधिक व्यापक हो सके। विकासवाद के सिद्धान्त के अनुसार तो मानव की स्थिति स्वतः विकासशील अथवा उन्नतमुख है। पर प्रगतिशील साहित्यकार

प्रगतिवाद का प्रकृत अर्थ और उसका विवेचन

मानता है कि इस विकासवाद को मानव अपने प्रयत्नों द्वारा तीव्रतर कर सकता है; क्योंकि वह मानता है कि मनुष्य में इच्छा और ज्ञानपूर्वक कर्म करने की क्षमता और स्वतंत्रता है, वह नियति द्वारा निर्धारित कर्म से परिचालित एक सजीव पुतला-मात्र नहीं। उन्नति की ओर मानव की गति में यही तीव्रता लाने का प्रयास प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य है। यह प्रयास प्रकृत नहीं, मानवीय है; जैसे भौतिक-विज्ञान के सहारे मानव-जीवन और मानव-जगत् की समृद्धि का प्रयास। अत: इस उद्योग में ऐसी बाधाएँ आ ही सकती हैं और आती ही हैं जिनका जीवन के स्वाभाविक या प्राकृतिक गतिक्रम के अन्तर्गत कोई स्थान नहीं होता। अतएव इन बाधाओं को जीतने के लिए, विपरीत परिस्थितियों को विजित कर अपनी तीव्रतम सचेतन उन्नति का मार्ग प्रशस्त करने के लिए मानव की चेतना के अन्तर्गत स्वाभाविक से कुछ अधिक उत्साह, कुछ अधिक साहसिकता, कुछ अधिक संघर्ष-शीलता का उद्बोधन आवश्यक है। अत: प्रगतिशील साहित्यकार का कर्त्तव्य हो जाता है कि वह मानवात्मा को अजेय, मानव-हृदय को अक्षय, उत्साहपूर्ण और मानव-मस्तिष्क को सतत जागरूक, मंथनशील और संघर्षशील बनाने का प्रयास करे। प्रगतिशील साहित्य में इसीलिए मानव की प्रतिष्ठा होती है, मानव की मानवता को महत्त्व प्रदान किया जाता है। साहित्य-साधना का केन्द्रबिन्दु स्वयं मनुष्य और उसकी शक्ति है, ईश्वर नहीं, परोक्ष सत्ता नहीं, नियति नहीं, प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीकरूप देवी-देवता नहीं (जैसा कि भारतीय और ग्रीक साहित्यों में हम देखते आये हैं)। साहित्य में मूल्यांकन भी मनुष्य की इन्हीं प्रगतिशील वृत्तियों (वीरता, संघर्ष जागरूकता) के मानदण्ड से होगा; धन, आकस्मिक लौकिक प्रभुत्व, व्यावहारिक विद्या या शरीर-बल अथवा सौन्दर्य के आधार पर नहीं (जैसा कि आधुनिक यूरोप की अधिकांश भाषाओं के साहित्य में हम पाते हैं। आधुनिक रूसी साहित्य अपवाद में है)। अत: प्रगतिशील साहित्य का मानव पहले शक्तिशाली, स्वतंत्र और स्वावलंबी है, तब और कुछ। स्वतंत्र और स्वावलंबी का अर्थ यह नहीं कि मानव की विभिन्न इकाइयों अथवा व्यक्तित्वों में कोई परस्पर सम्बन्ध, कर्त्तव्य,

उत्तरदायित्व अथवा अधिकार ही न हो। मानव जाति की सर्वांगीण यथेच्छ उन्नति के लिए जिस संघर्षशीलता और अजेय क्रियात्मक गतिशीलता की आवश्यकता है, उसमें सामंजस्य (Harmony) अनिवार्य है। अतः मानव-मानव का परस्पर सहयोग, विभिन्न मानव इकाइयों के व्यापारों में सामंजस्य आदि के ही बल पर मानवता की उन्नति के लिए व्यापक और अनन्त कार्य-शृंखला को इस ढंग से आगे बढ़ाया जा सकता है जिसमें उन इकाइयों के उद्योग आपस में टकराकर नष्ट प्रभाव न हो जाएँ; क्योंकि मानवमात्र के स्थायी कल्याण का तकाजा है कि मानव-उद्योगों में सामंजस्य हो, विश्व-भर के मानवों के चरम लक्ष्य में एकता हो। इसके लिए मानव के विभिन्न वर्ग, जाति, राष्ट्र और संस्कृतियों का टुकड़ियों में बंटा रहना घातक होगा। जब-तक समस्त मानव-जाति अपने को एक नहीं अनुभव करेगी, जबतक विभिन्न वर्ग, जाति, राष्ट्र और संस्कृतियों की चेतना से हीन मानव-समाज की स्थापना नहीं हो जायगी, तबतक मावनता की सर्वतोमुखी उन्नति के उद्योग का मार्ग स्वयं मानव द्वारा बाधित और अवरुद्ध होता रहेगा। इसी से प्रगति का भी साहित्य अखण्ड मानवता का निर्माण करना चाहता है। प्रगतिशील साहित्य की इन्हीं विशेष-ताओं को संक्षेपतः हम इस प्रकार समझ सकते हैं—

प्रकृति अर्थ में प्रगतिशील साहित्य की विशेषताएँ

(१) प्रगतिशील साहित्य व्यक्तिनिष्ठ नहीं, समाजनिष्ठ होगा। (२) उसमें जागरूकता और सचेत चिंतन (Conscious Thinking) होगा। अतः यथार्थ को ठीक-ठीक उचित अनुपात में समझने की उसकी ओर अधिक प्रवृत्ति रहेगी, मनोरंजन के लिए 'स्वप्न' और 'कल्पना' का प्रयोग अभीष्ट नहीं होगा। रहस्यवादवाली 'विस्मृति' और 'अवसाद' को भी स्थान नहीं मिलेगा; क्योंकि प्रगतिवाद का उद्देश्य—जगाना है, सुलाना नहीं। आदर्श का उपयोग अवांछित और अनुचित यथार्थ को बदलने के लिए ही होगा। (३) प्रगतिशील साहित्य की मान्यता है कि ईश्वर अथवा अन्य मानवेतर सत्ताओं अथवा शक्तियों के अधीन मानव-संकल्प और व्यापार नहीं हैं, वरन् मानव स्वयं अपने भाग्य का विधाता, दुनिया का रूप बदल देने में समर्थ-

अपनी इच्छाओं और कर्मों के अनुष्ठान में स्वतंत्र है। प्रगतिशील साहित्य में ईश्वर आदि के स्थान में मनुष्य को प्रतिष्ठा मिली है। (४) प्रगतिशील साहित्य का उद्देश्य मानवता की तीव्रतम उन्नति का उद्योग है। (५) यह तीव्रता का उद्योग निसर्ग-सिद्ध नहीं होने के कारण और मानवेच्छाजन्य होने के कारण निसर्ग-नियमों से टकरा कर अनेक बाधाओं का सूत्रतपात कर सकता है। इन बाधाओं पर विजय पाने के लिए मानव-वृत्तियों को संघर्षशील अक्षय-आशा-उत्साह-मूलक और अजेय बनाना आवश्यक है। इसीलिए संघर्षशीलता, वीरता आदि प्रगतिशील साहित्य के आवश्यक अवयव हैं। (६) जीवन के उत्कर्ष का मानदंड अजेय वीरता अथवा मानवता की अन्य उन्नतिशील सतेज वृत्तियाँ होंगी; जैसे आत्मोत्सर्ग, विश्व-प्रेम, स्वतंत्र चिन्तनशीलता आदि। मानव-जीवन के मूल्यांकन में (जैसा आज हम बहुधा देखते हैं) धन, लौकिक प्रभुत्व आदि इतर वस्तुओं का महत्त्व नहीं रहेगा। (७) मानवता के स्थायी और व्यापक कल्याण के लिए मानव-मात्र के सहयोग और उसके विविध उद्योगों में सामंजस्य के सहारे अखण्ड मानवता का निर्माण आवश्यक है। इस वर्गादि भेदों से हीन मानवता के निर्माण के लिए प्रगतिशील साहित्य उद्योग करेगा।

यह प्रगतिवाद की प्रकृत व्याख्या हुई। हिन्दी में इस व्याख्या के अनुसार प्रगतिवाद की परिधि में दो-एक लेखक ही आ सकेंगे। कथा-साहित्य के क्षेत्र में सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' (शेखर : एक जीवनी) और काव्य-क्षेत्र में 'दिनकर', 'अंचल' आदि इस कोटि के साहित्यकार हैं। सुमित्रानन्दन पंत की इधर की कविताएँ (युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या) सैद्धान्तिक रूप से इस कोटि के उपयुक्त होते हुए भी रागात्मक तत्त्व (रस) के सम्यक् परिपाक के अभाव के कारण प्रगतिवाद के उदाहरण से भी वंचित हो जाती हैं। प्रगतिशील साहित्य होने के लिए साहित्य होना भी तो आवश्यक है और साहित्य का प्राण है रस। प्रगतिवाद में बुद्धितत्त्व को आदर का स्थान मिला अवश्य है, पर इसका उद्देश्य भाव और बुद्धि का संतुलन ही है, अकेले बुद्धिमात्र की प्रतिष्ठा नहीं। केवल बौद्धिक होकर साहित्य (१) हृदय का स्पर्श करने में समर्थ नहीं

होगा।"[१] आगे चलकर डा० शिवनन्दन प्रसाद ने उसके दूसरे अर्थ का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि प्रगतिवाद के अब दूसरे, अर्थात् सीमित साम्प्रदायिक अर्थ को भी हम समझने की चेष्टा करें। आज प्रगतिवाद राजनीतिक, आर्थिक, समाजवाद के साहित्यिक संस्करण के रूप में भारत और यूरोप में अत्यधिक प्रचारित हो रहा है। इसमें मार्क्स और एंजिल्स के सिद्धान्तों का लेनिन के माध्यम से प्रतिफलन और सफलता तथा उनकी नवीनता और संभावना-वैचित्र्य बहुत-से लेखकों को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है। हिन्दी में छायावाद के प्रतिक्रिया-रूप में जो प्रगतिवाद आया है, उसका रूप बहुत-कुछ यही है। इसकी विशेषताओं पर हम थोड़ा दृष्टिपात करें। समाजवाद मूलतः एक आर्थिक समाज-व्यवस्था का सिद्धान्त है जिसके अन्तर्गत पूंजी के निराकरण का उद्योग निहित है। पूंजी व्यक्ति के हाथ में होने से समाज के अनुचित रूप से शोषण का साधन बनती है, और व्यक्तियों को धनलिप्सा के कारण उनके हितों के संघर्ष के फलस्वरूप भयानक नरसंहारकारी युद्ध तथा अन्य कुटिल विभीषिकाओं का सूत्रपात करती है। मानव का कल्याण इसमें है कि व्यक्तिगत पूंजीवाद का नाश हो और उत्पादन तथा वितरण के साधन व्यक्ति के बदले समाज के कल्याण के नियंत्रण में हो। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सामाजिक क्रांति की आवश्यकता है और इस क्रांति के सूत्रधार होंगे श्रमिक और कृषक वर्ग, जो आज अपनी उत्पादित-सम्पत्ति के समुचित उपभोग से नितान्त वंचित हैं। प्रोत्साहित क्रांति की सफलता पूंजीपतियों के हाथों से अर्थ-सत्ता और राज्य-सत्ता छीनकर श्रमिकों के हाथों में सौंप देगी और मानव द्वारा हिंसा, शोषण, उत्पीड़न और पद-दलन सदा के लिए मिट जायगा। दुनिया से गरीबी और गुलामी दूर हो जायगी तथा सुख समृद्धि छा जायगी। यह क्रांति इतिहास-प्रसूत शक्तियों के प्रतिफलन-रूप में अवश्यम्भावी है। दुनिया की कोई ताकत इसे रोक नहीं सकती। मानव अपने प्रयास से इस

प्रगतिवाद का साम्प्रदायिक अर्थ और उसका विश्लेषण

---

१. काव्यालोचन के सिद्धान्त, पृ० ७९-८१

क्रांति को निकाल ला सकता है। सामान्यत: समाजवाद का तत्त्व इन्हीं विचारों में निहित है। प्रगतिवाद इसी समाजवादी उद्देश्य—सामाजिक क्रांति—को निकट लाने का प्रयास करता है। दलितों के हृदय में पूंजीपति मालिकों के प्रति विद्रोह की भावना भरना, श्रमिकों में वर्ग-चेतना भरना और पूंजीवादी वर्ग के हितों से श्रमिक वर्ग के हितों के संघर्ष के प्रति उन्हें जागरूक बनाना, उनमें नवीन आशा, नवीन उत्साह और मानवोचित अधिकारों की प्यास जगाना आदि इस उद्देश्य की सफलता के साधन हैं। प्रगतिवादी साहित्य इसी उद्देश्य से गरीबी, बेबसी आदि का करुण चित्रण कर पूंजीवाद के अभिशापों पर नूतन प्रकाश डालता है। प्रगतिवाद के कवि की आँखें मलयज-सेवित-कुसुम-कलियों की नीड़ में सौन्दर्य की खोज नहीं करतीं, वरन् इन्हीं दीन श्रमिकों के विशाल जन-समुदाय को अपनी अतुल शक्ति की पहचान कराकर उन्हें उद्बुद्ध करने का प्रयास करती हैं। इस दृष्टि से वर्ग-संघर्ष, श्रमिकवर्ग की करुण अवस्था का चित्रण, पूंजीवादियों के प्रति क्रोध और घृणा की भावना का संचार; वर्तमान रूढ़ि-जर्जर कठोर समाज-व्यवस्था के विध्वंस की प्रकृति और एक अधिक उन्नत, समताशील एवं न्याय-सम्मत समाज का स्वर्गिक स्वप्न—ये हैं प्रगतिवाद के विभिन्न अवयव, उसकी अनेक विशेषताएँ। प्रगतिवाद का यह अर्थ पहले अर्थ का विरोधी नहीं होते हुए भी उससे संकुचित और सीमित तो है ही। इस अर्थ को लेकर चलनेवालों की मनोवृत्ति असह्य तब हो जाती है जब प्रतिक्रिया के आवेश में वे साहित्य का राजनीतिक समाजवाद के प्रचार का केवल एक हल्का-सा माध्यम के रूप में प्रयोग करते हुए साहित्य के मूल तत्त्वों पर ही कुठाराघात करने लगते हैं। साहित्य के साहित्यत्व की रक्षा करते हुए प्रगतिवाद के इस अर्थ के अनुसार भी जो साहित्य प्रस्तुत किया जायगा, वह सामयिक दृष्टि से ही सही, अभिनन्दनीय अवश्य होगा। हिन्दी गद्य के क्षेत्र में यशपाल इस प्रकार एकान्त प्रगतिवादी हैं। साम्प्रदायिक प्रगतिवाद की राष्ट्रीय सीमाओं का विरोधी होने और अखिल विश्व पूँजीपतियों और श्रमिकों के केवल दो वर्गों में विभाजन का हिमायती होने के

कारण हिन्दी के राष्ट्रीय कवि इस स्थूल दृष्टि से प्रगतिवादी नहीं कहे जा सकेंगे।'[२]

अबतक प्रगतिवाद का सैद्धान्तिक विश्लेषण हुआ। इधर हिंदी में 'प्रगतिवाद' की संज्ञा से अभिभूत जो साहित्य लिखा जा रहा है, वह वस्तुतः 'मार्क्सवाद का साहित्यिक संस्करण है'। ऐतिहासिक दृष्टि से प्रगतिवाद का

संक्षेप में प्रगतिवाद का इतिहास

जन्म सन् १९३५ ई० के नवम्बर महीने में लंदन में हुआ था। वहाँ विश्व के मान्य क्रान्तिकारी लेखकों एवं कवियों की बैठक हुई और उनके द्वारा 'प्रगतिशील लेखक संघ (Progressive Writers' Association) की स्थापना हुई, जो अब एक अंतर्राष्ट्रीय संघटन के रूप में हो गया है। इनकी शाखाएँ अनेक देशों में है। उसी वर्ष इस संस्था का प्रथम अधिवेशन पेरिस में वहाँ के प्रसिद्ध उपन्यासकार ई० एम० फारेस्टर के सभापतित्व में हुआ। इसी की देखा-देखी डा० मुल्कराज आनन्द और सज्जाद जहीर के उद्योग से 'भारतीय प्रगतिशील-लेखक-संघ' (Indian Progressive Writers' Association) की स्थापना सन् १९३६ में हुई जिसका प्रथम अधिवेशन लखनऊ में, प्रेमचंद के सभापतित्व में, उसी वर्ष हुआ। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रगतिवाद अभी पंद्रह-सोलह वर्ष का बच्चा है। फिर भी इसकी शोहरत साहित्य के रंगमंच पर खूब रही। यों तो यह प्रगतिवाद मार्क्सवाद का सहोदर भाई है जिसके कारण इसमें उसके गुणों का होना स्वाभाविक है।

प्रगतिवाद के स्वर का आभास पंत के 'गुंजन' में ही मिलता है, पर उस समय उनकी दृष्टि केन्द्रीभूत न थी; क्योंकि उनके प्राणों का तार उन्मन गुंजन

प्रगतिवादी कवि के रूप में पंत का आगमन

बना हुआ था। वे चिंतन कर रहे थे, समाज की ओर वृत्ति उन्मुख हो रही थी, पर दृढ़ नहीं हो पायी थी। कवि की प्रगतिवादी मनोवृत्ति की धूमिल रेखाएँ हमें सन् १९३८ में श्री सुमित्रानंदन पंत और नरेन्द्र शर्मा के सम्पादकत्व में प्रकाशित होनेवाले पत्र 'रूपाभ' में मिलीं, जो आगे चलकर बन्द हो गया।

२. वही, पृ० ८३-४

इसी पत्र में संपादकीय टिप्पणी के रूप में पंत ने लिखा कि 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा उग्र आकार ग्रहण कर लिया है उससे प्राचीन विश्वासों में प्रतिष्ठित हमारे भाव और कल्पना के मूल हिल गए हैं। श्रद्धा-अवकाश में पलनेवाली संस्कृति का वातावरण आन्दोलित हो उठा है और काव्य की स्वप्न-जड़ित आत्मा जीवन की कठोर आवश्यकता के उस नग्न रूप में सहम गई है। अतएव इस युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती। उसकी जड़ों को अपनी पोषण-सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का आश्रय लेना पड़ रहा है।'[३] इसी समय से छायावादी कवि पंत युगवाणी सुनने का प्रयत्न करने लगे। और इसके साथ-साथ पंतजी ने सौन्दर्य-युग का अंत 'युगान्त' के द्वारा कर दिया जिसमें एक अन्तर्धारा मिलती है, वह है तत्कालीन विचार और भाव। 'पल्लव का करुणाक्लिष्ट भाव जो गुंजन में आकर समझौते का रूप धारण कर चुका था, युगान्त में आकर पूर्णतया मांगलिक कामनाओं का वाहक हो गया है। इन कृतियों में कवि जगत् के जीर्ण उद्यान में मधु प्रभात लाने की शुभाकांक्षा बार-बार करता हुआ देखा जाता है। उसका करुणातप्त हृदय मानव-हित से पूर्ण हो गया है। वह मानवता के विकास द्वारा जीवन की पूर्णता स्थापित करने की शुभेच्छाओं से आकुल है।' वह कहता है—

मैं झरता जीवन-डाली से साह्लाद शिशिर का शीर्ण पात
फिर से जगती के कानन में आ जाता नव मधु का प्रभात !

'युगान्त' की अन्य रचनाओं में भी, कवि का हृदय मानवता की दीन दशा का स्मरण कर कराह उठता है—

है पूर्ण प्राकृतिक सत्य ! किन्तु मानव-जग !
क्यों म्लान तुम्हारे कुंज, कुसुम, आतप, खग ?

जिसका कारण स्वयं मुखर है। वह कहता है—

जो एक, असीम, अखण्ड, मधुर व्यापकता
खो गई तुम्हारी वह जीवन-सार्थकता।

---

३. रूपाभ, वर्ष १, संख्या १, जुलाई, १९३८।

कवि समाज की विषम व्यवस्था को देखकर क्षुब्ध है, वह नई मानवता से सिंचित समाज का निर्माण करना चाहता है। कवि पुरातन को एक निर्जीव तथा जड़ पथावरोध के रूप में पाता है। इसलिए वह नवीन की आशा में कहता है—

द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र हे स्रस्त-ध्वस्त, हे शुष्क-शीर्ण !
हिम - ताप - पीत मधुपात-भीत तुम वीतराग, जड़, पुराचीन !
निष्प्राण विगत-युग ! मृत विहंग ! जग नीड़ शब्द औ' श्वास-हीन,
च्युत, अस्त-व्यस्त पंखों से तुम झर-झर अनन्त में हो विलीन !
कंकाल - जाल जग में फैले फिर नवल रुधिर, पल्लव-लाली !
प्राणों की मर्मर में मुखरित जीवन की मांसल हरियाली !
मंजरित विश्व में यौवन के जग कर जग का पिक, मतवाली
निज अमर प्रणय-स्वर-मदिरा से भर दे फिर नवयुग की लाली !

हमारा मानव जड़-बंधनों में जकड़ा हुआ कराह रहा है, इसलिए वह उसी की जागृति की कामना करता है। जो भी वस्तु मानव-जग के लिए कल्याण-प्रद है, वही वरेण्य है, इसीलिए वह कोयल-से कोमल गीत गाने न कहकर आग्नेय गीत गाने का आग्रह करता है—

गा कोयल, बरसा पावक-कण
नष्ट-भ्रष्ट जग हो जीर्ण-पुरातन,
ध्वंस-भ्रंश जग के जड़ बंधन,
पावक पग धर आये नूतन,
हो पल्लवित नवल मानव-पन।

और कवि को विश्वास है कि नवोदित मानवता और नया समाज सशक्त होगा और साथ-साथ नई मानवता अखण्ड एवं अविभाज्य होगी। उसमें वर्गगत भेद-भाव नहीं होंगे। मानव शाश्वत एवं अमर ज्योति है और उसका किसी प्रकार विभाजन करना ठीक नहीं है—

गा कोकिल, संदेश सनातन
मानव दिव्य स्फुलिंग चिरन्तन
वह न देह का नश्वर रज-कण,

देश-काल है उसे न बंधन,
मानव का परिचय मानव-पन।

चारों ओर जड़वाद का आंतक फैला हुआ है, मानव उससे अभिभूत है, अतएव वह मानवता का परित्राण चाहता है। इसी यंत्रवादिता और जड़वाद के हेतु 'युद्ध-गर्जनाएँ, उत्पीड़न और अत्याचार दिखाई पड़ते हैं' जिससे मानवता का परित्राण अनिवार्य है—

जड़वाद जर्जरित जग में अवतरित हुए आत्मा महान,
यंत्राभिभूत जग में करने, मानव-जीवन का परित्राण।

—बापू के प्रति

पंत का नवीन दृष्टिकोण

'युगान्त में जिस नवीन दृष्टिकोण का कवि ने आभास-मात्र दिया है, युगवाणी में उसी की व्याख्या की है और ग्राम्या में उसी के व्यावहारिक पक्ष की स्थापना। युगांत पंत के नवीन दृष्टिकोण की भूमिका है, युगवाणी उसका दर्शन-पक्ष है और ग्राम्या उसी का व्यावहारिक प्रयोग। यह नवीन दृष्टिकोण क्या है? एक सर्वथा नवयुग की कल्पना काव्य में पंत का नवीन चरण है। यह नवीन दृष्टिकोण ऐसा नहीं है जो उनके मानसिक विकास के सामंजस्य में न हो। अध्यात्म से प्रकृति, प्रकृति से प्रेम, प्रेम से जीवन और जीवन से जगत् की रूपरेखा ही इस भाव-विकास की कोटियाँ हैं। पंत सूक्ष्मता से स्थूलता की ओर, कल्पना से सत्य की ओर बढ़ते रहे हैं। युगवाणी और ग्राम्या में ठोस और सत्य जगत् ही उनके चिंतन का विषय रहा है। प्रत्यक्ष जगत्, हँसता-क्रंदन करता जगत्, उठता-गिरता जगत्, सुन्दर-कुत्सित जगत्, सोने-मिट्टी का जगत् ही अब उनकी कल्पना का आधार है। चिंतन के आधार के बदलते ही चिंतन के माप-दंड बदल जाते हैं; अतः पहली उल्लेखनीय बात जो हम युगवाणी में पाते हैं वह यह कि वह सूक्ष्म वस्तुओं के स्थान पर रक्त-माँस लाना चाहता है। कोरे भाव, कोरे स्वर, कोरी कल्पना उसे अपेक्षित नहीं। वह अपने भाव की सजीव प्रतिमा देखना चाहता है, झंकार को निश्चित गीत के रूप में बदलना चाहती और चाहती है, कि उसकी कल्पना सजीव हो उठे।

आत्मा की चर्चा के स्थान पर पवित्र आत्मवान्, स्नेह की चर्चा के स्थान पर अमित स्नेहशील व्यक्ति उसे चाहिए। हम मानसी विभूतियों की चर्चा न करें, प्रत्येक व्यक्ति का मन स्वर्गीय हो। हमारे चिंतन हमारे कर्मों में परिवर्तित हो जायँ। सबसे बड़ी बात यह कि व्यक्ति के रूप में सोचना छोड़ दें, समष्टि के रूप में सोचें, केवल अपनी मुक्ति न चाहें, सभी को स्वतंत्र रखने के लिए प्रयत्नशील हों और कवि लोग भी अब व्यक्तिगत सुख-दुःख की बात न उठा जनता के सुख-दुःख से एकाकार हों—

सर्व-मुक्ति हो मुक्ति तत्त्व अब,
सामूहिकता ही निजत्व अब।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कवि का ध्यान खिंचकर आज मानव पर केन्द्रित हो गया है। यह मानव रहता है धरती पर और अपने रहने के लिए उसने कुछ आदर्श बना लिये हैं। इस प्रकार कवि को तीन बातों पर चिंतन करना आवश्यक हो गया है—(१) धरती (२) मानव (३) कला और संस्कृति।' ४

'युगवाणी' का कवि कल्पना का गायक न रहकर 'ठोस जगत्' का मीमांसक बन गया है। पहले कवि कल्पना-यान पर चढ़कर स्वर्ग में विचरण करता था, पर अब धरती पर आवास करता है। यह परिवर्तित दृष्टिकोण पंत को मार्क्स-दर्शन के अध्ययन के फलस्वरूप प्राप्त हुआ। धरती को वह प्यार करने लगा और उसी का यश-गान लिखने लगा। अब वही कल्पना-जीवी पंत मानव से स्पष्ट कहता है कि आज के मानव को आकाश की ओर नहीं देखना होगा, उसमें आशा की स्वर्णिम किरण खोजना व्यर्थ है। उसे भविष्य की आशा को छोड़कर भूमि को देखना होगा, जीवन के मर्म को समझना होगा, पल्लवित एवं मर्मरित भू पर निवास करना होगा। अब आकाश की ओर देखनेवाली प्रवृत्ति को त्याग कर मानव को चाहिये कि वह नई मानवता की सृष्टि करे। मानव की लीला-भूमि यही है, इसी पर उसे जीना और मरना है—

धरती के प्रति ममत्व

---

४. सुमित्रानंदन पंत—'मानव', पृ० २०१-२

ताक रहे हो गगन ?
मृत्यु—नीलिमा—गहन गगन ? —
अनिमेष, अचितवन, काल-नयन ?
नि-स्पन्द, शून्य, निर्जन, निःस्वन ?
देखो भू को !
जीव-प्रसू को !
हरित - भरित
पल्लवित-मर्मरित
कूजित-गुंजित
कुसुमित
भू को !
कोमल
चंचल
शाद्वल
अंचल
कलकल
छलछल
चल जल निर्मल—
कुसुम-खचित
मारुत-सुरभित
खगकुल-कूजित
प्रिय पशु-मुखरित—
जिस पर अंकित
सुर-मुनि-वंदित
मानव-पद-तल !
देखो भू को,
स्वर्गिक भू को
मानव-पुण्य-प्रसू को !

—इसमें धरती के प्रति कवि का व्यक्तिगत आकर्षण मुखरित है, पर दूसरी ओर उनकी विचारधारा में परिवर्तन भी सन्निहित है। पहले कवि को सुंदर रूप से प्यार था, उसी के प्रति आकर्षण था, उसी को काव्य की कड़ियों में स्थान था। तात्पर्य्य यह कि उनकी दृष्टि सिर्फ 'सुंदर' पर ही टिकी रहती थी। पर आज युगधर्म ने उनकी दृष्टि में भी परिवर्तन लाकर रख दिया है। धरती को प्यार करते अब असुन्दर—कुरूप—को भी उसी तरह देखता है जिस प्रकार सुन्दर को, रूप को। नवसमाज की मानवता के निर्माण में वह दोनों को एक स्तर पर लाना चाहता है जिसे उन्होंने स्पष्ट शब्दों में स्वीकार करते हुए कहा है—

कुरूप के प्रति पंत का स्वस्थ दृष्टिकोण

हे कुरूप, हे कुत्सित प्राकृत,
हे सुन्दर, हे संस्कृत, सस्मित,
आओ जग-जीवन परिणय में
परिचित से मिल वाह भरो !

आज पंत एक ऐसी सौन्दर्य-वृत्ति की खोज में हैं जो कुरूप को भी सहन कर सके—

वह अन्तःसौंदर्य, सहन कर सके
बाह्य वैरूप्य विरोध !

इसी प्रकार पंत का कवि जीवन-संघर्ष का स्वागत करता है। वह यह नहीं चाहता कि वह संघर्षों से ऊब जाय और अपने-आप-को उसके चरणों पर समर्पण कर दे। इस समर्पण-भाव से कवि को आन्तरिक घृणा है। वह जीवन-संघर्षों से मुँह नहीं मोड़ता है, वह कहता है—

जीवन-संघर्ष से प्यार

जीवन-संघर्षण देता सुख लगता ललाम !

विश्वास जीवन का संबल है। वह विश्वास 'चाहे सत्य हो या असत्य; परन्तु वही जीवन का आधार होता है। यों तो सत्य की कल्पना सापेक्षिक है; परन्तु एक समय-विशेष में जब कोई तत्त्व सत्य होता है तब ठीक उसका विरोधी तत्त्व असत्य होगा। यदि

सत्य की व्याख्या

पश्चिम का जाना सत्य है तो निश्चय ही पूरब का जाना असत्य। सत्य के अतिरिक्त जीवन के सभी पक्ष इसी सापेक्ष -सिद्धांत पर बने हुए हैं। प्रारंभिक रचनाओं में कवि एक सतत और शाश्वत सत्य-सिंधु की कल्पना करता रहा है; परन्तु युगवाणी में उसकी यह मान्यता यथार्थ से धक्के खाकर चूर-चूर हो गई है। उसका सत्यगत दृष्टिकोण बदल गया है। उसके दृष्टिकोण में सत्य अपने बाह्य रूप में ही सत्य नहीं है, वरन् उसकी वस्तुगत सत्यता तब पूर्ण होती है जब उसकी उपयोगिता समाज के लिए—जन के लिए—हो।' युगवाणी का पंत विश्व की प्रत्येक वस्तु को जनता और जनहित की दृष्टि से देखता है—

धर्म नीति औ' सदाचार का मूल्यांकन है जन हित
सत्य नहीं है वह, जनता से जो नहीं प्राण संबंधित !

सामूहिक हित की दृष्टि से पंतजी मार्क्स-दर्शन के अध्ययन की ओर झुके; क्योंकि उस समय चारों ओर इसीकी चर्चा सुनाई पड़ रही थी। पत्रों में

मार्क्सवादी दर्शन का प्रभाव

मार्क्सवादी विचारों से रंगे लेखों के दर्शन होने लगे। बहुत-से लोग देश में मार्क्सवादी सिद्धांतों का प्रचार कर रहे थे। अतएव पंत का सहृदय कवि मार्क्सवादी सिद्धांतों के प्रभावों से अपने को अभिषिंचित होने से किसी प्रकार कैसे बचा सकता था ? उसपर उसका प्रभाव पड़ा और उसने उससे प्रभावित होकर अनेक रचनाएँ लिखीं। इन भौतिकबाद विचारों को लक्ष्य में रखकर पहले-पहल लिखी गई इनकी प्रगतिवादी रचनाएँ 'युगवाणी', 'मानव पशु' 'मूल्यांकन' और 'रूपाभ' के कई अंकों में प्रकाशित हुईं। यथा—

[१]

'आत्मा ही बन जाय देह नव,
ज्ञान ज्योति ही विश्व-स्नेह नव
हास, अश्रु, आशा, आकांक्षा
बन जायँ खाद्य, मधु पनी
युग की वाणी !'—युगवाणी

[२]

युग, युग से रच शत-शत नैतिक बंधन,
बाँध दिया मानव ने पीड़ित पशु-तन।
विद्रोही हो उठा आज पशु दर्पित,
वह न रहेगा अब नवयुग में गर्हित।
नहीं सहेगा रे वह अनुचित ताड़न,
रूढ़ि नीतियों का गत निर्मम शासन।
वह भी क्या मानव-जीवन का लांछन ?
वह मानव के देह-भाव का वाहन।
नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित,
जीवन-यापन कर न सके तब इच्छित।
नैतिक सीमाएँ कर बहु निर्धारित,
जीवन इच्छा की जन ने मर्यादित।

× × ×

देव और पशु भावों में जो सीमित,
युग युग में होता परिवर्तित, अवसित,
मानव-पशु ने किया आज भव अर्जित,
मानव - देव हुआ अब वह सम्मानित।
मानव के पशु के प्रति,
मध्यम-वर्ग को ही रति।'

—मानव पशु

—रूपाभ, जुलाई, १९३८

[३]

आज सत्य शिव, सुन्दर केवल वर्गों में है सीमित,
ऊर्ध्वमूल संस्कृति को होना अधोमूल है निश्चित !

—मूल्यांकन

—रूपाभ, अगस्त, १९३८

इन संदर्भों में कवि ने शोषित जन-समूह की विपन्नावस्था का अंकन किया है जिसे शोषकों, पूँजीपतियों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के निमित्त साधन बनाया। अब वह रूढ़ियों और नीतियों के अनुचित बंधन को छिन्न-भिन्न कर इस धरती पर ऐसा स्वर्ग संस्थापित करेगा जिसमें न तो वर्ग-भेद होगा, न रूढ़ियों का बंधन रहेगा और न जन-श्रम का शोषण होगा। इस प्रकार पंत ने ही सर्वप्रथम प्रगतिवादी मूल विचारधारा को कविता में स्थान दिया जिसके फलस्वरूप वे ही प्रगतिवादी काव्य के सूत्रपात कर्त्ता सिद्ध होते हैं। पंत प्रगतिवादी कवि रहे जरूर, पर उन्होंने वर्ग संघर्ष एवं हिंसात्मक क्रान्ति को अपने काव्य में स्थान नहीं दिया है। पंत का प्रगतिवादी कवि सर्वदा अपने विचारों को सजेस्टिव् फार्म (Suggestive form) दिया है। उन्होंने अपने नवीन दृष्टिकोण के संबंध में कहा है कि 'ऐतिहासिक भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म-दर्शन में मुझे किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा, क्योंकि मैंने दोनों का लोकोत्तर कल्याणकारी सांस्कृतिक पक्ष ही ग्रहण किया है। मार्क्स वाद के अंदर श्रमजीवियों के संगठन, वर्ग संघर्ष आदि से संबंध रखने वाले वाह्य दृश्य को, जिसका वास्तविक निर्णय आर्थिक और राजनीतिक क्रान्तियाँ ही कर सकती हैं, मैंने अपनी कल्पना का अंग नहीं बनने दिया है। इस दृष्टि से मानवता एवं सर्वभूत हित की जितनी विशद भावना मुझे वेदान्त में मिली, उतनी ऐतिहासिक दर्शन में भी। भारतीय दार्शनिक जहाँ द्रष्टा की खोज में,सापेक्ष के उस पार, 'अवाङ-मनस-गोचर' की ओर चले गए हैं वहाँ पाश्चात्य दर्शनिकों ने सापेक्ष के अंतस्तल तक डुबकी लगाकर, उसके आलोक में, जनसमाज के सांस्कृतिक विकास के उपयुक्त राजनीतिक विधान देने का भी प्रयत्न किया है। पश्चिम में वैधानिक संघर्ष अधिक रहने के कारण नवीनतम समाजवादी विधान का विकास भी वहीं हो सकता है।.......मैं अध्यात्म और भौतिक, दोनों दर्शनों के सिद्धान्तों से प्रभावित हुआ हूँ। पर भारतीय दर्शन की, सामंतकालीन परिस्थितियों के कारण जो एकांत परिणति व्यक्ति की प्राकृतिक मुक्ति में हुई है (दृश्य जगत् एवं ऐहिक जीवन के माया होने के कारण उसके प्रति विराग आदि की भावना जिसके उपसंहार मात्र है),

और मार्क्स के दर्शन की, पूँजीवादी परिस्थितियों के कारण, जो वर्गयुद्ध और रक्त-क्रान्ति में परिणत हुई है,—ये दोनों परिणाम मुझे सांस्कृतिक दृष्टि से उपयोगी नहीं जान पड़े।'[५] यह तो स्पष्ट है कि पंत मार्क्सवादी विचारधाराओं से प्रभावित रहे हैं। उन्होंने 'मार्क्स के प्रति' कविता में मार्क्स को प्रलयंकर का ज्ञान चक्षु उद्घोषित किया है—

धन्य मार्क्स ! तुम तमच्छन्न पृथ्वी के उदय-शिखर पर,
तुम त्रिनेत्र ज्ञान-चक्षु के से प्रकट हुए प्रलयंकर।

'युगवाणी' की संकलित कविताओं पर मार्क्सवादी दर्शन की छाप है। 'युगवाणी' में कवि का काव्य-विषय है—संसार, समाज, धनपति, कृषक-मजदूर, साम्राज्यवाद, श्रमजीवी आदि। इसमें कवि ने मार्क्सवाद को अपनाया है, पर गाँधीवाद को त्याज्य नहीं समझा। इसीलिए वह 'भूतवाद' और 'अध्यात्मवाद' में एक प्रकार के समन्वय की कल्पना करता है—

भूतवाद उस स्वर्ग के लिए है केवल सोपान,
जहाँ आत्म दर्शन अनादि से समासीन अम्लान !

यह समन्वय 'समाजवाद गाँधीवाद' कविता में कुछ विस्तार के साथ अंकित किया गया है—

साम्यवाद ने दिया जगत् को सामूहिक जनतंत्र महान,
भव-जीवन के दैन्य-दुख से किया मनुजता का परित्राण !
अन्तर्मुख अद्वैत पड़ा था युग-युग से निष्क्रिय-निष्प्राण;
जग में उसे प्रतिष्ठित करने दिया साम्य ने वस्तु-विधान !
गाँधीवाद जगत् में आया ले मानवता का नव मान,
सत्य-अहिंसा से मनुजोचित नव संस्कृति करने निर्माण !
गाँधीवाद हमें जीवन पर देता अंतर्गत विश्वास,
मानव की निःसीम शक्ति का मिलता उससे चिर-आभास !

---

५. आधुनिक कवि में कवि द्वारा लिखित पर्यालोचन से, पृ० २४-५

व्यक्तिपूर्ण बन, जग-जीवन में भर सकता है नूतन प्राण,
विकसित मनुष्यत्व कर सकता पशुता से जन का कल्याण
मनुष्यत्व का तत्त्व सिखाता निश्चय हमको गाँधीवाद,
सामूहिक जीवन-विकास की साम्य-योजना है अविवाद।

पंत ने मार्क्स और मार्क्सवाद के सम्बन्ध में बहुत-कुछ लिखा है जिससे उसके इतिहास के एक बड़े सत्य का उद्घाटन होता है। पंत के ही शब्दों में—

[क] भूत-दर्शन

कहता भौतिकवाद, वस्तु जग का कर तत्त्वान्वेषण—
भौतिक भव ही एकमात्र मानव का अंतर दर्पण!
स्थूल सत्य आधार, सूक्ष्म आधेय, हमारा जो मन,
बाह्य विवर्तन से होता युगपत् अंतर - परिवर्तन!
राष्ट्र, वर्ग, आदर्श, धर्मगत रीति - नीति औ' दर्शन
स्वर्ण-पाश है : मुक्ति-योजना सामूहिक जन-जीवन!
नवोद्भूत इतिहासभूत सक्रिय, सकरण, जड़-चेतन
द्वंद्व-तर्क से अभिव्यक्त पाता युग-युग में नूतन!
साम्यवाद के साथ स्वर्ण-युग करता मधुर पदार्पण,
मुक्त निखिल मानवता करती मानव का अभिवादन!

[ख] साम्राज्यवाद

मुखियों के कुलपति, सामंत, महंतों के वैभव क्षण
बिला गये बहु राजतंत्र—सागर में ज्यों बुद्बुद-कण!
रजत-स्वप्न साम्राज्यवाद ले नयनों में शोभन
पूँजीवाद निशा भी है होने को आज समापन!
विविध ज्ञान, विज्ञान, कला, यंत्रों का अद्भुत कौशल,
जग को दे बहु जीवन-साधन, वाष्प, रश्मि, विदयुद्-बल
मरणासन्न साम्राज्यवाद, कर वह्नि और विष-वर्षण,
अंतिम रण को हैं सचेष्ट, रच निज विनाश-आयोजन!

[ग] मध्यमवर्ग

भोगशील, धनिकों की स्पर्धा, जीवन - प्रिय अति,
आत्मवृद्ध, संकीर्ण हृदय, तार्किक, व्यापक मति ?
पाप - पुण्य संत्रस्त, अस्थियों का वह कोमल,
वाक् - कुशल, धी - दर्पी, अति विवेक से निर्बल !
मध्यवर्ग का मानव, वह परिजन - पत्नी प्रिय,
यशकामी, व्यक्तित्व - प्रसारक, परहित निष्क्रिय ?
श्रमजीवी वह, यदि श्रमिकों का हो अभिभावक,
नवयुग का वाहक हो नेता, लोक - प्रभावक !

[घ] धनपति

वे नृशंस हैं : वे जन के श्रमबल से पोषित,
दुहरे धनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित !
सुरांगना, संपदा, सुराओं से संसेवित,
नर - पशु वे : भू - भार : मनुजता जिनसे लज्जित !
दर्पी, हठी, निरंकुश, निर्मम, कलुषित, कुत्सित,
गत संस्कृति के गरल, लोक - जीवन जिनसे मृत !
जग - जीवन का दुरुपयोग है उनका जीवन,
अब न प्रयोजन उनका, अंतिम हैं उनके क्षण !

[ङ] श्रमजीवी

वह पवित्र है : वह जग के कर्दम से पोषित,
वह निर्माता : श्रेणि, वर्ग, धन, बल से शोषित !
दैन्य - कष्ट - कुंठित—सुन्दर है उसका आनन,
गंदे गात - वसन हो, पावन श्रम का जीवन !
भूख - प्यास से पीड़ित उसकी भद्दी आकृति
स्पष्ट कथा कहती,—कैसी इस युग की संस्कृति !
वह पशु से जघन्य मानव - मानव की है कृति !
जिसके श्रम से सिंची समृद्धों की पृथु संपति !

शीत - ताप औ' क्षुधा - तृषा में सदा संयमित
दृढ़ - चरित्र वह, कष्ट - सहिष्णु, धीर, निर्भयचित !
लोक - क्रान्ति का अग्रदूत, वर वीर, जनादृत;
नव्य सभ्यता का उन्नायक, शासक औ' शासित !
चिर - पवित्र वह : भय, अन्याय, घृणा से पालित !
जीवन का शिल्पी—पावन श्रम से प्रक्षालित !

[च] कृषक

युग - युग का वह भारवाह, आकटि नत - मस्तक।
निखिल सभ्य संसार - पीठ का उसके स्फोटक।
वज्रमूढ़, जड़भूत, हठी, वृष - बांधव कर्षक,
ध्रुव ममत्व की मूर्ति, रूढ़ियों का चिर - रक्षक !
कर जर्जर; ऋणग्रस्त, स्वल्प पैत्रिक स्मृति भू - धन;
निखिल दैन्य, दुर्भाग्य, दुरित दुख का जो कारण,
वह कुबेर - निधि उससे—स्वेद सिंचित जिसके कण,
हर्ष - शोक की स्मृति के बीते जहाँ वर्ष - क्षण !
विश्व विवर्तनशील, अपरिवर्तित वह निश्चल,
वही खेत, गृह - द्वार, वही वृष, हँसिया औ' हल !
स्थावर स्थितियों का शिशु स्थावर स्थाणु कृषीबल,
दीर्घसूत्र, अति दुराग्रही, साशंक औ' वृषल !
वह संकीर्ण, समूह कृपण, स्वाश्रित, पर - पीड़ित,
अति निजस्व - प्रिय, शोषित, लुण्ठित, दलित, क्षुधार्दित !
कृषक का उद्धार पुण्य इच्छा है कल्पित,
सामूहिक कृषि काय-कल्प, अन्यथा कृषक मृत !

[छ] घननाद

ठङ् - ठङ् ठन !
व्यर्थ विचारों का संघर्षण,
अविरत श्रम ही जीवन साधन;

घोषित करता घन वज्र स्वन-

ठङ् - ठङ् ठन !

पंत ने मार्क्सवादी दर्शन को स्पष्टता, विश्वास और पूर्णता के साथ उपस्थित किया है। पंत ने साम्यवादी विचारधारा को उसी रूप में न अपना कर, उसमें पूर्णता देने और उसकी कमियों को पूरा करने के लिए अन्य मनीषियों एवं चिंतकों की विचारधारा को समन्वित किया। उन्होंने साम्यवादी विचारधारा को लोक-कल्याण की भावना का पर्यायवाची मानकर अपनाया। साम्यवादियों के संकीर्ण विचारों को लक्षित कर पंत ने कहा है कि—

हाड़-मांस का आज बनाओगे तुम मनुज-समाज ?
हाथ-पाँव संगठित चलावेंगे जग-जीवन-काज !
दया द्रवित हो गए देख दारिद्र्य असंख्य तनों का ?
अब दुहरा दारिद्र्य उन्हें देगे निरुपाय मनों का ?
आत्मवाद पर हँसते हो भौतिकता का रट नाम ?
मानवता की मूर्ति गढ़ोगे तुम सँवार कर चाम ?
मानव कभी भूल से भी क्या सुधर सकी है भूल ?
सरिता का जल मृषा ? सत्य केवल उसके दो कूल ?
आत्मा और भूतों में स्थापित करता कौन समत्व !
वहिरंतर, आत्मा भूतों से, है अतीत वह तत्त्व !
भौतिकता आध्यात्मिकता केवल उसके दो कूल,
व्यक्ति विश्व से, स्थूल सूक्ष्म से, परे सत्य के मूल !

अध्यात्म और भौतिकतावाद के विषय में पंत का दृष्टिकोण उनके शब्दों में निम्नांकित है—'विशिष्ट व्यक्ति की चेतना सदैव ह्रासोन्मुख समाज की रूढ़ि रीति-नीतियों से ऊपर होती है, उसके व्यक्तित्व की सार्वजनिक उपयोगिता रहती है। अतएव उसे किसी समाज और युग में मान्यता मिल सकती है। विचार और कर्म में किसका प्रथम स्थान है, हीगल की 'आइडिया' प्रमुख है कि मार्क्स का 'मैटर'—ऐसे तर्क और ऊहापोह व्यर्थ जान पड़ते हैं। उन्नीसवीं सदी के शरीर और मनोविज्ञान-सबंधी अथवा आदर्शवाद-वस्तुवाद-संबंधी विवादों की तरह

अध्यात्म और भौतिकवाद का विषय है शाश्वत (निरपेक्ष) चेतना। दोनों ही एक दूसरे के अध्ययन और ग्रहण करने में सहायक होते हैं और ज्ञान के सर्वांगीण समन्वय के लिए प्रेरणा देते हैं।' सुतरां, युगवाणी में हम पाँच विचार-धाराओं को देखते हैं—(क) भूतवाद और अध्यात्मवाद का समन्वय जिससे मनुष्य की चेतना का पथ प्रशस्त बन सके। (ख) समाज में प्रचलित जीवन की मान्यताओं का पर्य्यालोचन एवं नवीन संस्कृति के उपकरणों का संग्रह। (ग) पिछले युगों में उन मृत आदर्शों और जीर्ण रूढ़ि-रीतियों की तीव्र भर्त्सना जो आज की मानवता के विकास में बाधक बन रही है। (घ) मार्क्सवाद तथा फ्रायड के प्राणि-शास्त्रीय मनोदर्शन का युग की विचारधारा पर प्रभाव—जन-समाज का पुनःसंगठन एवं दलित लोक-समुदाय का जीर्णोद्धार। (ङ) बहिर्जीवन के साथ अन्तर्जीवन के संगठन की आवश्यकता : राग-भावना का विकास तथा नारी-जागरण।

ग्राम्य जीवन के प्रति अनुराग

पंत के पहले से ही अनेक कवि ग्रामों का गीत गा रहे थे, लेकिन जब से प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव हुआ तब से हिंदी-कवियों ने ग्रामीणों के उत्पीड़न, बेबसी और वेदना के प्रति गीत लिखे। यह प्रगतिवादी काव्य की एक विशेषता बन गई। इस कोटि के काव्य में शोषितों का ऐसा यथार्थ चित्र उतारा गया कि पूँजीवादियों के नग्न अनाचार एवं अत्याचार पूर्णरूपेण प्रत्यक्ष होने लगे और जन-साधारण के बीच इस प्रकार की भावना फैलने लगी कि इन शोषितों का दुख-निवारण पूँजीवादियों के दान या ईश्वर की प्रार्थना पर अवलंबित नहीं है, प्रत्युत इन शोषकों के विनाश पर ही उनका दुख दर्द दूर हो सकता है। 'कहने का तात्पर्य यह है कि साम्यवाद एक जीवंत और व्यावहारिक दर्शन है जो जीवन के सभी पक्षों को छूता है और अपने विशिष्ट ढंग पर समस्याओं का समाधान करता है।' अब हम यह विचार करेंगे कि पंत का ग्राम्य जीवन के प्रति जो दृष्टिकोण है, वह कहाँ तक साम्यवादी दृष्टिकोण से साम्य रखता है कहाँ तक वैषम्य। ग्राम्य जीवन-सम्बन्धी कविताएँ पंत की 'ग्राम्या' में संगृहीत हैं। इसमें उन्होंने ग्राम के समस्त रूपों को, वहाँ के नर-नारियों को,

नित्यप्रति के जीवन को, उसकी संस्कृति को व्यष्टिरूप में देखा है। इसमें कुछ चित्र व्यक्तियों के भी अंकित किये गये हैं जिनके अन्तर्गत ग्राम्य युवती, ग्राम-नारी, कठपुतले, गाँव के लड़के, वह बूढ़ा, ग्राम-वधू, वे आँखें, मजदूरनी आदि कविताएँ हैं। इसमें कुछ कविताएँ सामान्य जीवन से भी सम्बन्धित है—धोबियों का नृत्य, कहारों का रुद्र नृत्य, चमारों का नाच आदि। इसमें कुछ कविताएँ ग्रामीण दृश्य-सम्बन्धी भी हैं। विवेचनात्मक दृष्टि से इन पर विचार करते हैं तो हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कवि की निरीक्षण-शक्ति अत्यन्त तीव्र है और ग्रामीण जीवन के प्रति उनकी बौद्धिक सहानुभूति है।

पंत एक सजग कवि हैं और चिंतनशील भी। बाह्य प्रचार द्वारा प्रभावित होकर वे किसी 'वाद' के पक्षपाती नहीं बने हैं। अध्ययन और चिंतन के द्वारा उन्होंने कुछ निष्कर्ष स्थिर किये हैं और उनके अनुरूप उनकी कल्पना ने कार्य किया है। पंतजी का यह परिवर्तन प्रगतिवाद के लिए बहुत आशाप्रद है जिसके पीछे उनकी पूर्ण विकसित प्रतिभा एवं साधना है। पंत किसी 'वाद'-विशेष के प्रचारक नहीं रहे हैं, वरन् वे मुख्यतया जीवन के द्रष्टा रहे हैं। 'युगवाणी' प्रगतिवादी पंत का सिद्धांत-वाक्य था—ग्राम्या उसका प्रयोग। युगवाणी में पंतजी अपने नवीन सिद्धांतों की रूपरेखा निश्चित कर रहे थे। सिद्धांत अमूर्त होते हैं, इसलिए युगवाणी में रस से पुष्ट मांस नहीं है। 'ग्राम्या' तक वे सिद्धांत स्थिर कर चुके और अब उन्होंने उसके प्रयोग के लिए एक मूर्त आधार चुन लिया। स्वभावतः 'ग्राम्या' की स्नायुओं में कवित्व का गाढ़ा रस प्रवाहमान है। उसके अंग भरे हुए और यौवन पीन हैं—

> **है माँस-पेशियों में उसके दृढ़ कोमलता,**
> **संयोग अवयवों में, अश्लथ उसके उरोज।**
> **कृत्रिम रति की है नहीं हृदय में आकुलता,**
> **उद्दीप्त न करता उसे भाव-कल्पित मनोज।**

—यह मानों ग्राम्या की भावमयी व्याख्या है। छायावादी पंत में (छायावाद में ही) भाव-कल्पित मनोज की उपासना थी। आज प्रौढ़ता

की ओर बढ़ते हुए उनके काव्य में किसी प्रकार रंगीन कल्पना-चुंबित भावुकता के स्थान पर एक स्वस्थ पौरुषमय भावुकता का समावेश हो रहा है—यही संकेत हम ऊपर की पंक्तियों में ग्रहण कर सकते हैं। प्रगतिवाद का आलंबन है जन-जीवन, और भारत के जन-जीवन का केन्द्र है ग्राम, अतएव पंतजी का आज के राजनीतिज्ञों की भाँति ग्राम की ओर जाना स्वाभाविक ही है। पंतजी का ग्राम-दर्शन जैसा उन्होंने स्वीकार किया है, बौद्धिक सहानुभूति का आश्रित है, उसमें ग्राम-जीवन का निरीक्षण और आलोचन है, निमग्नता नहीं है। ग्राम-जीवन में मिलकर उसके भीतर से ये कविताएँ नहीं लिखी गईं।[६] इसका कारण पंतजी के शब्दों में है—'ग्रामों की वर्तमान दशा में वैसा करना प्रतिक्रियात्मक साहित्य को जन्म देना है।'

प्रत्येक वस्तु के जीवन के दो पक्ष होते हैं। इसी प्रकार ग्राम-जीवन के भी दो पक्ष हैं। एक स्वस्थ पक्ष और दूसरा अस्वस्थ पक्ष। कालाकाँकर के राजमहल में रहकर कवि ने ग्रामों के कुछ स्वस्थ क्षणों को काव्य-बद्ध किया है। इस प्रकार की रचनाओं में धोबियों का नृत्य, चमारों का नाच, कहारों का रुद्र नृत्य, ग्राम-युवती, ग्राम-श्री आदि हैं। निम्नांकित उद्धरणों में स्वास्थ्य, रोमांस, आनन्द आदि की कुछ झलक मिलती है—

(क)
उन्मद यौवन से उभर
घटा-सी नव असाढ़ की सुन्दर
अति श्याम वरण,
श्लथ, मंद चरण,
इठलाती आती ग्राम-युवति
वह गज - गति
सर्प डगर पर!
सरकाती पट
खिसकाती लट
शरमाती झट

---

६. डा० नगेन्द्र

वह नमित दृष्टि से देख उरोजों के युग-घट !
हँसती खल-खल
अबला चंचल
ज्यों फूट पड़ा हो स्रोत सरल
भर फेनोज्ज्वल दशनों से अधरों के तट ?
जब जल से भर
भरी गागर
खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिंचते संग युग रसभरे कलश ;
तन पर यौवन सुषमाशाली
मुख पर श्रम-कण, रवि की लाली
शिर पर धर स्वर्ण शस्य डाली,
वह मेड़ों पर आती - जाती,
उरु मटकती
कटि लचकाती,
चिर-वर्षातप-हिम की पाली,
छवि श्याम वरण
अति क्षिप्र चरण
अधरों से धरे पकी बाली ।

(ख) ऊँची अरहर में लुका - छिपी खेलतीं युवतियाँ मदमाती,
चुंबन पा प्रेमी युवकों के श्रम के श्लथ जीवन बहलाती ।

(ग) अररर....

मचा खूब हुल्लड़ हुड़दंड, धमक धमाधम रहा मृदंग,
उछल, कूद, बकवाद, झड़प में, खुल रही खुल, हृदय उमंग,
यह चमार-चौदस का ढंग ।

मजलस का मसखरा करिंगा, बना हुआ है रंग-बिरंगा,
भरे चिरकुटों में वह सारी, देह हँसाता खूब लफंगा,
स्वांग युद्ध का रच बेढंगा।
बँधा चाम का तवा पीठ पर; पहुँचे पर बद्धी का हंटर,
लिए हाथ में ढाल टेढ़ुही, दुमुहा-सी बल खाई सुन्दर,
इतराता बन वह मुरलीधर।

(घ) लो, छुन - छुन, छुन - छुन,
छुन - छुन, छुन - छुन,
नाच गुजरिया हरती मन!
उसके पैरों में घुँघुरू कल, नट की कटि में घंटियाँ तरल
वह फिरकी-सी फिरती चंचल, नट की कटि खाती सौ-सौ बल,
लो, छुन - छुन, छुन - छुन,
छुन - छुन, छुन - छुन,
ठुमुक गुजरिया हरती मन!
वह काम-शिखा-सी रही सिहर, नट की कटि में लालसा भँवर,
कँप - कँप नितम्ब उसके थर-थर भर रहे घंटियों में रति - स्वर,
उड़ता लँहगा लहर - लहर, उड़ रही ओढ़नी फर - फर - फर,
चोली के कन्दुक रहे उघर (स्त्री नहीं गुजरिया, वह है नर)
उर की अमृत वासना उधर प्रिय जनगण को उत्सव अवसर,
लो, छुन - छुन, छुन - छुन,
छुन - छुन, छुन - छुन,
चतुर गुजरिया हरती मन!

—ये आह्लादकारी चित्र ग्राम्य जीवन के स्वस्थ पक्ष हुए। अब इसके प्रतिकूल पक्ष के कुछ चित्रों को देखिये, जिनमें दारिद्र्य, पीड़ा, गरीबी आदि के स्वर मुखरित हैं। कवि द्वारा अंकित यह पक्ष यथार्थवादी दृष्टिकोण का परिचायक है—

(क) यह धरा का मुख कुरूप है; कुत्सित गर्हित जन का जीवन
सुन्दरता का मूल्य वहाँ क्या जहाँ उदर है क्षुब्ध, नग्न तन?

जहाँ दैन्य - जर्जर असंख्य जन पशु जघन्य क्षण करते यापन,
कीड़ों-से रेंगते मनुज-शिशु, जहाँ अकाल वृद्ध है यौवन !

(ख) घर - घर के बिखरे पन्नों में नग्न क्षुधार्त कहानी,
जन - मन के दयनीय भाव कर सकती प्रकट न वाणी !
मानव - दुर्गति की गाथा से ओत - प्रोत मर्मांतक
सदियों के अत्याचारों की सूची यह रोमांचक

(ग) यहाँ खर्व नर (बानर) रहते युग-युग से अभिशापित
अन्न-वस्त्र-पीड़ित, असभ्य, निर्बुद्धि, पंक में पालित !
यह तो मानव - लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित,
यह भारत का ग्राम,—सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित !
झाड़-फूँस के विवर—यही क्या जीवन-शिल्पी के घर ?
कीड़ों - से रेंगते कौन ये ? बुद्धि प्राण नारी-नर
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग में, !
गृह-गृह में कलह, खेत में कलह, कलह है मग में !

(घ) मिट्टी से भी मटमैले तन अधफटे, कुचेले जीर्ण वसन,
ज्यों मिट्टी के हों बने हुए ये गँवई लड़के—भू के धन !
कोई खण्डित, कोई कुंठित, कृश वाहु, पसलियाँ रेखांकित,
टहनी - सी टाँगें, बड़ा पेट, टेढ़े - मेढ़े, विकलांग घृणित !
विज्ञान - चिकित्सा से वंचित, ये नहीं धात्रियों से रक्षित,
ज्यों स्वास्थ्य-सेज हो, ये सुख से लौटते धूल में चिर-परिचित

(ङ) अन्धकार की गुहा-सरीखी इन आँखों से डरता है मन,
भरा दूर तक उनमें दारुण दैन्य-दुःख का नीरव रोदन !
फूट रहा उनसे गहरा आतंक क्षोभ, शोषण, संशय, भ्रम,
डूब कालिमा में उनकी काँपता मन, उनमें मरघट का तम !
आँखों में ही घूमा करता वह उसकी आँखों का तारा,
कारकुनो की लाठी से जो गया जवानी में ही मारा !

बिका दिया घर - द्वार, महाजन ने न ब्याज की कौड़ी छोड़ी,
रह - रह आँखों में चुभती वह कुर्क हुई बरधों की जोड़ी।

(च) रे दो दिन का उसका यौवन !
सपना छिन का रहता न स्मरण !
दुःखों से पिस, दुर्दिन में घिस
जर्जर हो जाता उसका तन !
ढह जाता असमय यौवन-धन !
बह जाता तट का तिनका
जो लहरों से हँस-खेला कुछ क्षण !!

—इन कविताओं में कवि ने हमारे गांवों की परिस्थितियों का आभास देकर हमारे समाज को उनके प्रति उद्बुद्ध करने का प्रयास किया है और कवि को सफलता भी हाथ आयी है। कवि ग्रामीणों के प्रति सहानुभूति जाग्रत् करने में सफल हुआ है और एक प्रकार से उसका कवि-कर्म सफल हो गया।

भौतिकता और संस्कृतिक समस्या का समन्वय

पंत भौतिकवादी हैं, वे विज्ञान पर आस्था रखते हैं और वे यह चाहते हैं कि हमारा देश वैज्ञानिक अनुसंधानों से लाभान्वित हो, यहाँ के निवासी 'अपने जीवन को समृद्धि से परिपूर्ण करें।' यंत्रों के पक्ष में प्रशस्ति भी लिखा है[७], फिर भी उसकी एकांगिता को पसंद नहीं करते। भौतिक साधनों को ही कवि-ने- सब कुछ नहीं माना है; क्योंकि कवि को ऐसी संभावना है कि

---

७. जड़ नहीं यंत्र : वे भाव - रूप : संस्कृति - द्योतक :
वे विश्व शिराएँ, निखिल सभ्यता के पोषक।
रेडियो, तार औ फोन—वाष्प, जल, वायुयान,
मिट गया दिशावधि का जिनसे व्यवधान - मान—
धावित जिनमें दिशि - दिशि का मन—वार्ता - विचार,
संस्कृति, संगीत—गगन में झंकृत निराकार।
जीवन - सौन्दर्य - प्रतीक यंत्र : जन के शिक्षक ;
युग - क्रांति प्रवर्तक औ' भावी के पथ - प्रदर्शक।

इससे अशान्ति भी उद्भूत हो जाय। इसलिए वह इन साधनों के दोषों की ओर भी संकेत करता है—

मानव ने पाई देश काल पर जय निश्चय,
मानव के पास नहीं मानव का आज हृदय !
चर्वित उसका विज्ञान-ज्ञान : वह नहीं पचित :
भौतिक मद से मानव-आत्मा हो गई विजित !

इसीलिए कवि अपने अंत:करण में अनुभव करता है—

राजनीति का प्रश्न नहीं रे आज जगत् के सम्मुख
अर्थ-साम्य भी मिटा न सकता मानव-जीवन के दुख।
आज वृहत् सांस्कृतिक समस्या जग के निकट उपस्थित,
खण्ड मनुजता को युग-युग की होना है नव-निर्मित।

अतएव कवि की इच्छा है—

संस्कृत हों सब जन, स्नेही हों सहृदय, सुन्दर,
संयुक्त कर्म पर हो संयुक्त विश्व निर्भर।
राष्ट्रों से राष्ट्र मिलें, देशों से देश आज,
मानव से मानव—हो जीवन निर्माण-काज।

पंत का कवि सामाजिक जीवन के पुनरुत्थान के लिए क्रांति और शान्ति दोनों का पोषक है, संहार और सृजन दोनों का कायल है। कवि की वाणी में लोक-मंगल की आशा और आकांक्षा के साथ-साथ 'परिवर्तनवाद' का स्वर भरा हुआ है। विगत अवशेषों को भली-भाँति नष्ट करने के लिए कवि मानव को उत्तेजित करता हुआ कहता है—

गर्जन कर मानव-केसरि।
प्रखर नखर नव-जीवन की लालसा गड़ा कर।
छिन्न-भिन्न कर दे गत युग के शव को दुर्धर।

कवि क्रांति के माध्यम से उस पुरातन का, जिसमें पाखण्ड, अनीति, द्वेष और मनोमालिन्य है, विनाश चाहते हैं और उसके स्थान पर नवयुग का निर्माण चाहते हैं जिसमें—

निज कौशल, मति, इच्छानुकूल
सब कार्य-निरत हों भेद मूल,
बन्धुत्व-भाव ही विश्व-मूल

—यही भावना उनकी रचनाओं में विकास पा रही है।

उपसंहार

आरंभ में यह विवेचन कर बतला दिया गया है कि प्रगतिवाद दो अर्थों में प्रयुक्त होता है और पंत की रचनाएँ दोनों अर्थों के अंतर्गत समाहित हैं ; क्योंकि कवि का हृदय-पट विशाल है और वह सर्वदा समन्वय का पोषक रहा है। पंत की प्रगतिशीलता 'ग्राम्या' के बाद की रचनाओं में कायम है और रहेगी ; पर उन रचनाओं में कवि प्रगतिवादियों से दो बातों में मतभेद रखता है। सर्वप्रथम यह कि प्रगतिवादी भौतिकवादी होता है, चेतनावदी नहीं ; पर हमारा पंत का कवि प्रगतिवादी होने के साथ-साथ चेतनावादी भी है। वह दोनों के समन्वय का कायल है। और दूसरी बात यह है कि प्रगतिवादी व्यक्तिवादी न होकर समष्टिवादी होता है ; लेकिन पंत व्यक्तिवादी भी हैं। इसलिए वे दोनों का समन्वय चाहते हैं। पंत की प्रत्येक रचना में कुछ-न-कुछ समस्या है जिसका निराकरण कवि ने अपने दृष्टिकोण से किया है। इसलिए पंत ने जहाँ-कहीं भी अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है, वहाँ वह बिलकुल नवीन एवं प्रगतिशील है। कुछ लोग हाल की रचनाओं को देखकर पंत को प्रगतिवादी माने या न मानें, पर उन्हें मानववादी तो मानना ही पड़ेगा। सच पूछा जाय तो वे इसी अर्थ में प्रगतिवादी कवि हैं।

पंत की अलंकार-योजना

रसात्मक वाक्य ही काव्य है उसके रमणीय अर्थ के प्रतिपादन के लिए अलंकारों की विशेष रूप से योजना की गई है। अलंकार काव्य की आत्मा नहीं है, वरन् उसका आभूषण है। अलंकार-विहीन कविता भी सुंदर हो सकती है और प्राचीन आचार्यों ने उसे काव्य के बाह्य आवरण में तीसरा स्थान दिया है। 'अलंकार का प्रयोजन उस अंग-विशेष को अधिक आकर्षक बना देता है जिसपर वह धारण किया जाय। देखनेवाले की आँखें उस अंगविशेष में गड़ जायँ—इसी प्रयोजन से अलंकारों की सार्थकता है। काव्य में भी अनेकानेक अर्थालंकार और शब्दालंकार बनाये गए हैं जिससे वे पाठकों का ध्यान उस वर्णन-विशेष की ओर आकर्षित कर दें और उनके मन की आँखों को उनमें गड़ा दें। इसका परिणाम यह हो कि इससे चित्र किसी प्रबल मनोवेग से चमत्कृत हो जाय और काव्य रसमय होकर उसके लिए आस्वाद्य बन जाय। धीरे-धीरे उक्त काव्यालंकारों की तालिका बना दी गई, परन्तु यदि विचारपूर्वक देखा जाय तो अलंकारों की गणना नहीं की जा सकती और न सीमा बाँधी जा सकती है। कभी-कभी तो अलंकार काव्य-कामिनी के लिए भार-स्वरूप बन जाते हैं जिससे उसकी स्वच्छ और नैसर्गिक सुंदरता तिरोहित हो जाती है। यह भी देखा जाता है कि एक युग-विशेष के ग्रंथकार जिन अलंकारों को सुरुचि के साथ सजाते हैं, दूसरे युग के लेखक उन्हें हेय समझते हैं। परिपाटी के अनुसार जिस प्रसंग में जो अलंकार शोभा के आगार और सुरस का संचार करनेवाले कहे गए हैं, समय और रुचि के भेद से कुरस का भी प्रसार करते हैं। इसलिए अलंकारों की इयत्ता क्या है, यह निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता।'[1]

अलंकार का स्वरूप

---

१. काव्य साहित्य के उपकरण—डा० श्यामसुंदर दास

आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी के शब्दों में हमें तो यही कहना है कि 'भावों का उत्कर्ष दिखाने और वस्तुओं का रूप, गुण और क्रिया का आधिक्य अनुभव कराने में कभी-कभी सहायक होनेवाली उक्ति ही अलंकार है।' [२] इसी को होम (Home) ने 'भावावेश की अवस्था में स्वतः अलंकार उद्भूत होते हैं [३] और ब्लेयर (Blair) ने 'कल्पना या भावावेश से भाषा अलंकृत होती है [४]—कहा है।

आज का युग अलंकार का युग नहीं है ; क्योंकि छायावादी कवियों की दृष्टि इस ओर नहीं रही। इन कवियों ने भाव को महत्व प्रदान किया, न कि अलंकारों को। इन कवियों की कविताओं में अप्रस्तुत-योजना का संघटन अधिक हुआ है। पंत की कविता में रीतिकालीन कवियों की भाँति अलंकार अस्वाभाविक नहीं उतरे हैं। पंत की कविताओं में अनुप्रास, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति आदि अलंकारों का विधान प्रचुर मात्रा में हुआ है। पंत की कविताओं से कुछ अलंकारों के उदाहरण लीजिये—

[१] अनुप्रास (Alliteration)—जहाँ व्यंजनों की समता हो।

(क) **वह मधुर मधुमास था, जब गंध से**
मुग्ध होकर झूमते थे मधुप-दल।

(ख) **तरणि के ही संग तरल तरंग से**
तरणि डूबी थी हमारी ताल में। (यमक)

(ग) **मधुप बाला का मधुर मधु-मुग्ध राग।**

(घ) **ललित लोल उमंग-सी लावण्य की।**

(ङ) **नव-नव सुमनों से चुनकर धूलि सुरभि मधुरस हिमकण**
मेरे उर की मृदु कलिका में भर दे कर दे विकसित मन।

(च) **चपल चोखी चोट कर अब पंख की।**

(छ) **साधन भी इच्छा ही है, सम इच्छा ही रे साधन।**

---

२. **चिंतामणि**

३. Figures consist in the passional element,

४. Language suggested by imagination or passion.

(ज) तरुणता की उन तरंगों में तरल ।

(झ) हम कूल विलोक न पावें ।

(ञ) तज कर तरल तरंगों को ।

(ट) कोयल का वह कोमल बोल ।

(ठ) रज-रंजित कर तन ।

(ड) पावस ऋतु थी, पर्वत-प्रदेश ;
पल-पल परिवर्तित प्रकृति-वेश ।

(ढ) विहग-वर्ग के गर्भ विधायक ।

(ण) लघु लहरों के चल पलनों में ।

(त) फैला कोमल, रोमिल पंख ।

(थ) विवर्तन जग, जग व्यावर्तन,
अचिर में चिर का अन्वेषण ।

(द) लोल लहरों से कलापति पर लिखी

(ध) ललित लोल उमंग-सी लावण्य की

(न) रसिक पिक से सरस तरुण रसाल थे ।

(प) वन-वन-उपवन
छाया उन्मन, उन्मन गुंजन ।

(फ) मृदु मन्द-मन्द मन्थर-मन्थर
लघु तरणि हंसिनी सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर ।

(ब) तप रे मधुर-मधुर मन ।

(भ) सागर-संगम में है सुख

(म) काँटो से कुटिल भरी हो

[२] यमक--जहाँ निरर्थक वर्णों या भिन्नार्थक सार्थक वर्णों की पुनरावृत्ति हो वा उनकी पुनःश्रुति हो वहाँ यमक अलंकार होता है ।

(क) श्रवण तक आ जाता है मन
स्वयं मन करता बात श्रवण । [स्नेह]
(श्रवण = १. कान २. सुनना)

(ख) पूर्व था पर वह अद्वितीय अपूर्व था। [ग्रंथि से]

(ग) इंदु पर, उस इंदु मुख पर, साथ ही। [ग्रंथि से]

(घ) था इंद्र खलता इंद्रजाल । [पर्वत प्रदेश में पावस]

(ङ) तुम्हारे परस-परस के साथ। [गुंजन]

(परस = १. पारस, २. स्पर्श)

[३] श्लेष (Paronomasia)—जहाँ श्लिष्ट शब्दों से अनेक अर्थ का विधान किया जाय।

समुद पैरते शुचि ज्योत्स्ना में
पकड़ इंदु के कर सुकुमार। [बादल]

(कर = १. हाथ २. किरण)

[४] पुनरुक्ति (Tantology)—भाव को अधिक रुचिकर बनाने के लिए जहाँ एक ही बात बार-बार कही जाय।

विहग-विहग
फिर चहक उठे ये पुंज-पुंज
चिर सुभग-सुभग।

[५] उपमा (Simile)— दो पदार्थों के उपमान-उपमेय-भाव से समान धर्म के कथन करने को उपमा कहते हैं—

(क) सान्ध्य-निःस्वन-से गहन - जल-गर्भ में
था हमारा विश्व तन्मय हो गया।

(ख) ....मैं झट चौंक कर
जग पड़ी हूँ अनिल - पीड़ित लहर-सी।

(ग) कृपण से दान-सी
दैव, से जब प्रेमिका मुझको मिली।

(घ) अवनि से सुख बढ़ रहे थे दिवस-से।

(ङ) ....उस दृश्य की
चारु - चर्चा ने हमारा प्रिय - समय
हर लिया उस हंसिनि के हृदय सा

(च) जब अचानक अनिल की छवि में पला
एक जल-कण जलद-शिशु-सा पलक पर
आ पड़ा, सुकुमारता - सा गान - सा
चाह-सा, सुधि-सा सगुन - सा, स्वप्न-सा

(छ) पवन के उभरे गगनमय पंख - से
परम - सुख के उस विशाल - विलास में
शरद घन - सा लीन हो, गिर पलक - सा
भूल जावें.................................

(ज) तूल - सी माजारि - बाला सामने
निरत थी निज बाल - क्रीड़ा में—

(झ) वह मृगी - सी चकित आँखों को फिरा
थी छिपाना चाहती अपनी दशा

(ञ) कर्णमुक्त चूम कोई गाल पर
प्रतिफलित थे ओस - बूँदों से धवल

(ट) मेरा पावस ऋतु - सा जीवन
मानस - सा उमड़ा अपार मन;
गहरे धुँधले, धुले, साँवले,
मेघों - से मेरे भरे नयन !

[६] पूर्णोपमा (Complete Simile)—जहाँ, उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक चारों हों।

(क) तापस-बाला-सी गंगा कल शशि मुख से दीपित मृदु करतल,
लहरें उर पर कोमल कुंतल
गोरे अंगों पर सिहर - सिहर, लहराता तरल - तरल सुन्दर
चंचल अंचल - सा नीलाम्बर ।
साड़ी की सिकुड़न - सी जिस पर शशि की रेशमी विभा से भर,
सिमटी है वर्तुल मृदुल लहर ।

—इसमें गंगा, नीलाम्बर और लहर उपमेय, तापस-बाला, अंचल और साड़ी की सिकुड़न उपमान, कल, लहराता और सिमटी साधारण धर्म तथा सी, सा वाचक हैं।

(ख) कहो कौन हो दमयन्ती - सी तुम तरु के नीचे सोई
हाय तुम्हें भी त्याग गया अलि नल-सा निष्ठुर कोई ?
× × × ×
गूढ़ कल्पना-सी कवियों की अज्ञाता के विस्मय-सी,
ऋषियों के गंभीर हृदय-सी बच्चों के तुतले-भय-सी।

(ग) बाल-रति-सी अनुपम, असमान प्रिये प्राणों की प्राण !

(घ) जब विमूर्च्छित नींद से था जगा
कौन जाने, किस तरह ? पीयूष-सा
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था
पुनर्जीवन - सा मुझे तब दे रहा।

इसमें नि:श्वास उपमेय, पीयूष उपमान, सा वाचक और पुनर्जीवन देना साधारण धर्म है जिसके कारण पूर्णोपमा अलंकार है।

[७] **लुप्तोपमा** (Incomplete Simile)—जहाँ उपमेय, उपमान, साधर्म्य और वाचक में से किसी एक, दो या तीन अंगों का लोप (कथन नहीं) हो, वहाँ लुप्तोपमा होती है।

(क) तुम्हारी आँखों का आकाश सरल आँखों का नीलाकाश।
खो गया मेरा खग अनजान मृगेक्षणि इसमें खग अनजान !

—इसमें 'मृगेक्षणि' का अर्थ होता है 'मृग-सी बड़ी आँखोंवाली। आँखें मृग-सी नहीं होती, बल्कि मृग की आँखों-सी होती हैं। अत: इसमें उपमान, वाचक और धर्म तीनों का लोप है।

(ख) नवोढ़ा बाल लहर अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर सरकती है सत्वर

—यहाँ वाचक 'सी' का लोप है।

(ग) मदिरा की मादकता-सी औ वृद्धावस्था की स्मृति - सी
दर्शन की अति जटिल ग्रंथि-सी शैशव की निद्रित स्मृति-सी।

—इसमें छाया के अनेक उपमान हैं, पर सबसे साधर्म्य लुप्त हैं।

[८] मालोपमा—जहाँ एक उपमेय के अनेक उपमान कहे जायँ, वहाँ मालोपमा होती है।

(क) जब अचानक, अनिल की छवि में पला
एक जलकण, जलद-शिशु-सा, पलक पर
आ पड़ा सुकुमारता-सा, गान-सा,
चाह-सा, सुधि-सा, सगुन-सा, स्वप्न-सा

(ख) गर्व-सा गिर उच्च-निर्झर-स्रोत से
स्वप्न-सुख मेरा शिलामय-हृदय में
घोष भीषण कर रहा है वज्र-सा,
वात-सा, भूकम्प-सा, उत्पात-सा

—इसमें स्वप्न-सुख उपमेय है, गर्व उपमान, सा वाचक और गिरना वाच्य।

(ग) प्रथम हास-से, प्रथम अश्रु-से, प्रथम पुलक-से, हे छविमान!
स्मृति-से, विस्मय-से तुम सहसा विश्व स्वप्न-से खिले अजान!

(घ) छुपी-सी पी-सी मृदु मुस्कान, छिपी, खिंची सखी-सी साथ।
उसी की उपमा-सी बन, मान गिरा का धरती थी, धर हाथ।

(ङ) तरुवर के छायानुवाद - सी उपमा - सी, भावुकता - सी
अवदित भावाकुल भाषा - सी कटी - छटी नव कविता - सी

(च) पछतावे की परछाँही-सी तुम भूपर छायी हो कौन?
दुर्बलता-सी अँगड़ाई-सी अपराधी-सी भय से मौन।

—यहाँ छाया के चार उपमान समान धर्म के कहे गये हैं।

(छ) नवल मधु ऋतु-निकुंज में प्राप्त
प्रथम कलिका - सी अस्फुट गात,
नील नभ - अंतःपुर में, तन्वि
दूज की कला - सदृश नवजात;
मधुरता, मृदुता - सी तुम प्राण!

[९] स्मरण (Reminiscence)—जहाँ पूर्वानुभूत वस्तु के समान किसी वस्तु (उपमान) के देखने आदि से उसका (उपमेय) स्मरण हो।

(क) देखता हूँ जब पतला इन्द्रधनुषी हलका
रेशमी घूँघट बादल का खोलती है कुमुद-कला।
तुम्हारी मुख का ही तो ध्यान मुझे तब करता अन्तर्धान।

—यहाँ पूर्वदृष्ट मुख का कुमुद-कला से बादल के रेशमी घूँघट के हटने का दृश्य देखकर स्मरण हो आता है।

(ख) दृगों में छा जाता सोल्लास
व्योमबाला का शरदाकाश;
तुम्हारा आता जब प्रिय ध्यान;

(ग) इन्द्रधनुष सा आशा का सेतु
अनिल में अटका कभी अछोर,
कभी कुहरे-सी धूमिल, घोर,
दीखती भावी चारों ओर!
तड़ित-सा सुमुखि! तुम्हारा ध्यान। [आँसू से]

[१०] रूपक (Metaphor)—जहाँ उपमेय में उपमान का निषेधरहित आरोप हो, वहाँ रूपक अलंकार होता है।

(क) जगत् की सुंदरता का चाँद सजा लांछन को भी अवदात।
सुहाता बदल-बदल दिन रात नवलता ही जग का आह्लाद।

—सुन्दरता में चन्द्रमा का आरोप है, लेकिन यह चाँद लांछन को भी अवदात बना देता है। यही अधिकता है। (अभेद-रूपक)

(ख) जीवन की चंचल सरिता में फेंकी मैंने मन की जाली
फँस गई मनोहर भावों की मछलियाँ सुघर भोली-भाली।

—इसमें मछलियाँ फँसाने के सभी साधन हैं। सावयव उपमेय और उपमानों का शब्द द्वारा स्पष्ट कथन है, पर 'मैंने' का उपमान उक्त नहीं है। मछली फँसाने का काम होने से मैंने के स्थान पर धीवर उपमान का सहज ही आरोप हो जाता है।

(ग) कनक-छाया में जबकि सकाल खोलती कलिका उर के द्वार।
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल तड़प बन जाते हैं गुंजार।

—यहाँ उर में द्वार का रूपक है और मधुपों के बाल में गुंजार का रूपक है।

(घ) धूम - धुँआरे काजर - कारे हम ही विकरारे बादर
मदनराज के बीर बहादुर पावस के उड़ते फणधर।

—यहाँ 'बादर' में दूसरी पंक्ति के दो निरवयव उपमानों का आरोप है।

(ङ) मेरा जीवन स्वप्न!

(च) प्रथम यौवन मेरा मधुमास,
मुग्ध उर-मधुकर, तुम मधु, प्राण!

(छ) जग के दुख-दैन्य शयन पर
यह करुणा जीवन बाला
रे कब से जाग रही, वह
आँसू की नीरव माला!

(ज) नयन-नीलिमा के लघु नभ में।

—यहाँ नयन-नीलिमा (उपमेय) में लघु नभ का आरोप है, पर वह षष्ठी द्वारा कहा गया है।

(झ) ओ अकूल की उज्ज्वल हास! अरी अतल की पुलकित श्वास!
महानन्द की मधुर उमंग! चिर-शाश्वत की अस्थिर लास!

—इसमें एक 'वीचि-विलास' में हास, श्वास, उमंग, लास आदि अनेक उपमानों का आरोप है, अतः मालारूप रूपक है।

अहे अनभ्र-गगन के जलकण!
ज्योति-बीज, हिमजल के घन!
बीते दिवसों की समाधि हे!
प्रातः विस्मृत स्वप्न सघन!

—यहाँ एक 'नक्षत्र' में जलकण, ज्योति-बीज, हिमजल के घन आदि अनेक उपमानों का आरोप है, अतः मालारूप निरंग रूपक हैं।

(ञ) रूप का राशि-राशि वह हास !
दृगों की यमुना श्याम,
तुम्हारे स्वर का - वेणु - विलास,
हृदय का यमुना धाम,
देवि ! मथुरा था वह आमोद,
दैव ! व्रज, अह ! यह विरह-विषाद !
आह वे दिन ! द्वापर की बात !
भूति ! भारत को ज्ञात !!

—यहाँ राधा-कृष्ण का रूपक बाँधा गया है।

(ट) व्योमवेलि ताराओं की गति, चलते अचल, व्योम के गान।
हम अपलक तारों के तन्द्रा, ज्योत्सना के हिम, शशि के यान।

—इसमें निरंग रूपक अलंकार है।

अहे दुर्जेय विश्वजित।
नवति शत सुरवर नरनाथ
तुम्हारे इंद्रासन-तल माथ,
घूमते शत-शत भाग्य अनाथ,
सतत रथ के चक्रों के साथ !

तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित
करते हो संसृति को उत्पीड़ित पद-मर्दित,
नष्ट नगर कर, भग्न - भवन, प्रतिमाएँ खंडित,
हर लेते हो विभव, कला, कौशल चिर-संचित !
आधि, व्याधि, बहु वृष्टि, बात, उत्पात, अमंगल,
वह्नि, बाढ़, भूकंप तुम्हारे विपुल सैन्यदल,
अहे निरंकुश ! पदाघात से जिनके विह्वल
हिल-हिल उठता है ढलमल
पददलित धरातल

[ठ] नित्य ही मानव तरंगों में अतल मग्न होते हैं कई पर इस तरह
अमृत की जीवित लहर की बाँह में जगत में कितने अभी डूबे भला।

[ड] अरुण अधरों का पल्लव - प्रात,
मोतियों सा हिलता हिमहास।

[११] उत्प्रेक्षा (Poetical Fancy)—जहाँ प्रस्तुत की – उपमेय की अप्रस्तुत रूप में—उपमान-रूप में संभावना की जाय।

[क] विनत शुक-नासा का धर ध्यान,
बन गये पुष्प - पलाश अराल।

अर्थात् तोते के समान विनत—नीचे की ओर झुकी हुई—नाक का निरन्तर ध्यान करने से ही मानों पलाश—ढाक या टेसू—के फूल अराल—वक्राकार—टेढ़े आकारवाले—बन गये। ढाक के फूलों का वक्र आकार होना स्वाभाविक है। शुक के समान नाकवाली नायिका की नुकीली नाक का निरन्तर ध्यान उसमें हेतु नहीं, परन्तु उसे यहाँ हेतु कहा गया है! अतः अहेतु अर्थात् जो हेतु नहीं है उसको हेतु मानने से यहाँ 'हेतूत्प्रेक्षा' है।

(ख) तुम्हारा पी मुख-वास-तरंग,
आज बौरे भौंरे सहकार,
चुनाती नित लवंग निज अंग,
तन्वि! तुम-सी बनने सुकुमार।

—इसके उत्तरार्द्ध में वर्णन किया गया है कि लवंग-लता जो प्रतिदिन अपने अंगों को चुनाती है, वह इसलिए कि 'हे सुन्दरी, तुम्हारे समान सुकुमार अर्थात् कोमल बन जाऊँ।' लवंग-लता के अंगों—पत्तों आदि का चुना जाना स्वाभाविक है। उसका यह उद्देश्य नहीं कि सुन्दरी के समान मृदुता उसे प्राप्त हो जाय, पर उस अफल का यहाँ फल-रूप में वर्णन किया गया है, अतः 'फलोत्प्रेक्षा' है। पूर्वार्द्ध में हेतूत्प्रेक्षा भी है, क्योंकि भौंरों का उन्मन होना और आम पर बौर आ जाना वसन्त में स्वाभाविक है, उनका हेतु सुन्दरी के मुख की सुगन्ध पीना नहीं, परन्तु यहाँ उसे हेतु-रूप में बताया गया है।

[१२] सन्देह (Doubt)—जहाँ किसी वस्तु के सम्बन्ध में सादृश्य-मूलक संदेह हो, वहाँ संदेह अलंकार होता है।

(क) निद्रा के उस अलसित वन में वह क्या भावी की छाया ?
दृग पलकों में विचर रही या वन्य देवियों की माया ?

—यहाँ स्वप्न में 'भावी की छाया' और 'वन्य देवियों की माया' का संदेह है।

[ख] कल्पना हो, जाने परिमाण !
प्रिये, प्राणों की प्राण !

[ग] विरह है अथवा यह वरदान !

—यहाँ विरह और वरदान का निश्चय नहीं हो पाता, संदेह बना ही रहता है।

[१३] उल्लेख (Representation)—जहाँ एक ही वर्णनीय विषय का निमित्त-भेद से अनेक प्रकार का वर्णन हो।

[क] वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास
काव्य में रस, कुसुमों में वास
अचल तारक पलकों में हास,
लोल लहरों में लास ! [नित्य जग]

(क) बिन्दु में भी तुम सिन्धु अनन्त एक सुर में समस्त संगीत।
एक कलिका में अखिल बसंत धरा पर की तुम स्वर्ग पुनीत।

—यहाँ एक ही व्यक्ति ने प्रेयसी को अनेक रूपों में देखा है।

(ख) तुम मेरे मन के मानव मेरे गानों के गाने;
मेरे मानस के स्पन्दन प्राणों के चिर पहचाने !
मेरे विमुग्ध नयनों की तुम कान्त-कनी हो उज्वल
सुख की स्थिति की मृदु रेखा करुणा के आँसू कोमल।

[१४] अपहनुति (Cencealment)—जहाँ प्रकृत का निषेध करके अप्रकृत की स्थापना हो, वहाँ अपहनुति अलंकार होता है।

न जाने सौरभ के मिस कौन ?
संदेशा मुझको भेजता मौन ?

—कवि को मौन-निमंत्रण मिल रहा है, सौरभ-सुगन्ध के बहाने उसे कोई बुला रहा है, यह सौरभ नहीं, अपितु, किसी का मौन संदेश है। यहाँ सौरभ का निषेध कर उसमें मौन संदेश के आरोप का वर्णन होने से कैतवापह्नुति अलंकार है।

[१५] दृष्टान्त (Examplification)—जहाँ उपमेय, उपमान और साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव हो, वहाँ दृष्टान्त अलंकार होता है।

सुख-दुख के मधुर-मिलन से यह जीवन हो परिपूरण
फिर घन में ओझल हो शशि फिर शशि से ओझल हो घन

—इस संदर्भ में सुख-दुःख और शशि-घन का उपमानोपमेय भाव है और साधारण धर्म का भी बिम्ब-प्रतिबिंब है। यह दृष्टान्त का एक नया रूप है।

[१६] व्यतिरेक (Dissimilitude)—जहाँ उपमान की अपेक्षा उपमेय का उत्कर्ष-वर्णन हो, वहाँ व्यतिरेक अलंकार होता है।

(क) **विजय निशा में सहज गले तुम लगती हो फिर तरुवर के।**
आनन्दित होती हो सखि, नित उसकी पद-सेवा करके।
और हाय ! मैं रोती-फिरती रहती हूँ निशि-दिन वन-वन,
नहीं सुनाई देती फिर भी वह वंशी-ध्वनि मन-मोहन।

(ख) **लहरें अधीर सरसी में तुमको तकतीं उठ-उठकर**
सौरभ समीर रह जाता प्रेयसि ! ठंढी साँसें भर,
है मुकुल मुँदे हाथों पर, कोकिल नीरव मधुवन में,
कितने प्राणों के गाने ठहरे हैं तुमको मन में।

[१७] सहोक्ति (Connected Description)—'सह' अर्थ-बोधक शब्दों के बल से जहाँ एक ही शब्द दो अर्थों का बोधक होता है, वहाँ सहोक्ति अलंकार होता है।

(क) **तरणि के ही संग तरल तरंग में**
तरणि डूबी थी हमारी ताल में।

(ख) निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से उर से मृगेक्षणि ने उठा,
एक पल निज शस्य-श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप से।

—यह 'साथ ही' शब्द की सहायता से नायिका की पलकों का नीचे (भूमि से) और नायक की विकलता का हृदय से उठना कहा गया है। यथासंख्या अलंकार के मिश्रण से इसकी चारुता और भी बढ़ गई है।

[१८] **विनोक्ति**—यदि कोई वस्तु किसी अन्य वस्तु के बिना अशोभन (असुन्दर) या शोभन (सुन्दर) बतायी जाय तो विनोक्ति अलंकार होता है।

बिना दुख के सब सुख निस्सार,
बिना आँसू के जीवन भार।

यहाँ दुःख के बिना सुख और आँसू के बिना जीवन की अरमणीयता कथित है।

[१९] **समासोक्ति** (Speech of Brevity)—यदि प्रस्तुत के वर्णन से अप्रस्तुत की प्रतीति हो तो समासोक्ति अलंकार होता है।

(क) जग के दुख-दैन्य-शयन पर यह रुग्णा जीवन बाला,
रे कब से जाग रही वह आँसू की नीरव माला।
पीली पड़ निर्बल कोमल कृश देह-लता कुम्हलाई,
विवसना लाज में लिपटी साँसों में शून्य समाई।

—इसमें लिंग-समता के कारण चाँदनी के वर्णन से रुग्णा बाला के वर्णन का स्फुरण होता है।

(ख) विजन वन के ओ विहग-कुमार ! आज घर-घर दे तेरे गान;
मधुर-मुखरित हो उठा अपार जीर्ण जग का विषण्ण उद्यान !

(ग) पीली पड़, निर्बल, कोमल, कृश देह - लता कुम्हलाई
विवसना, लाज में लिपटी, साँसों में शून्य समाई।

चाँदनी के इस प्रस्तुत वर्णन से विशेषणों की समानता के कारण पाण्डुवर्णा, क्षीणकाय, किसी कोमल नारी की प्रतीति होती है।

(घ) दिनकर - कुल में दिव्य जन्म पा, बढ़ कर नित तरुवर के संग,
सुरझे पत्रों की साड़ी में ढँककर अपने कोमल अंग,
सदुपदेश सुमनों के तरु के, गूँथ हृदय का सुरभित हार,
पर-सेवा रत रहती हो तुम हरती नित पथ-श्रांति अपार।

—इसमें कार्य-साम्य के आधार पर 'छाया' के प्रस्तुत वर्णन में किसी सत्कुलोत्पन्न, आडम्बरहीन जीवन-यापन करनेवाली परोपकार-परायणा सती साध्वी नारी का बोध होता है।

(ङ) नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शरद-हासिनि!
मृदु करतल पर शशि-मुख पर नीरव अनिमिष एकाकिनि!

[२०] अप्रस्तुत प्रशंसा (Indirect Description)—जहाँ प्रस्तुत के वर्णन के लिए प्रस्तुत के आश्रित अप्रस्तुत का वर्णन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है।

(क) नित्य ही मानव-तरंगों में अतल मग्न होते हैं कई पर इस तरह।
अमृत की जीवित लहर की बाँह में जगत में कितने अभी झूले भला।

—इसमें नायक अपने सौभाग्य पर फूला नहीं समाता। इस कारण को उसने वर्णित कार्य द्वारा प्रकट किया है।

(क) जग-जीवन में है सुख-दुख, सुख दुख में है जग-जीवन।
हैं बँधे विछोह - मिलन दो देकर चिर स्नेहालिंगन।

(ग) सागर की लहर-लहर में हास स्वर्ण-किरणों का
सागर के अन्तस्तल में अवसाद अबाक् कणों का।

—इसमें अप्रस्तुत सागर के वर्णन से प्रस्तुत धीर, वीर, गंभीर व्यक्ति का अंकन हुआ है जो सुख-दुख में बराबर रहता है। सागर की चंचलता या अवसाद उसके कार्य नहीं, प्रत्युत लहरों और कणों का है।

[२१] परिकर (Insinuation, the Significant)—जहाँ साभिप्राय विशेषणों से विशेष्य का कथन किया जाय अर्थात् वक्ता का अभिप्राय विशेषण से प्रकट हो वहाँ यह अलंकार होता है।

हिम परिमल की रेशमी वायु।

[२२] यथासंख्या (Relative Order)—क्रमशः कहे हुए पदार्थों का उसी क्रम से जहाँ अन्वय होता है वहाँ यथासंख्या अलंकार होता है।

बरसो कुसुमों में मधुवन
प्राणों में अमर प्रणय धन ;
स्मिति-स्वान अधर-पलकों में
उर अंगों में सुख यौवन। (प्रार्थना)

[२३] तुल्ययोगिता (Equal Pairing)—जहाँ गुण वा क्रिया के द्वारा अनेक प्रस्तुतों वा अप्रस्तुतों-उपमानों का एक ही धर्म कहा जाय वहाँ यह अलंकार होता है।

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से, उर से मृगेक्षिणि ने उठा। (ग्रन्थि)

[२४] समासोक्ति (Speech of Brevity)—प्रस्तुत के वर्णन के द्वारा समान विशेषणों से— श्लिष्ट हों वा साधारण—जहाँ अप्रस्तुत का स्फुरण हो वहाँ समासोक्ति अलंकार होता है।

(क) विन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त
एक स्वर में समस्त संगीत ;
एक कलिका में अखिल वसंत
धारा में थीं तुम स्वर्ग पुनीत। (आँसू की बालिका)

[२५] रूपकातिशयोक्ति—जहाँ केवल उपमान के द्वारा उपमेय का वर्णन किया जाय वहाँ यह अलंकार होता है।

कमल पर जो चारु खंजन थे प्रथम
पंख फड़कना नहीं थे जानते
चपल चोखी चोट कर अब पंख की
ये विकल करने लगे हैं भ्रमर को।

[२६] अर्थान्तरन्यास (Corroboration)—जहाँ विशेष्य से सामान्य का या सामान्य से विशेष्य का साधर्म्य या वैधर्म्य के द्वारा समर्थन किया जाय।

जगत् की सुन्दरता का चाँद सजा लांछन को भी अवदात।
सुहाता बदल - बदल दिन-रात नवलता ही जग का आह्लाद।

—इस संदर्भ के चतुर्थ चरण की सामान्य बात से पूर्व की विशेष बात का समर्थन है।

[२७] विरोधाभास (Contradiction)—जहाँ वास्तव में विरोध न होकर विरोध के आभास का वर्णन हो, वहाँ यह अलंकार होता है।

(क) **तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन, हे अस्थिशेष, तुम अस्थिहीन,**
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल हे चिर-पुराण, हे चिर-नवीन।

—इसके द्वितीय चरण में द्रव्य-द्रव्य का और चतुर्थ चरण में गुण-गुण का विरोधाभास है जिसका परिहार गाँधीजी के व्यक्तित्व से हो जाता है।

(ख) **निखिल छवि की छवि ! तुम छवि - हीन**

(ग) **विश्वानुरक्त ! हे अनासक्त !**
सर्वस्व त्याग को बना मुक्ति !

—इसमें विरोध का भावपूर्ण प्रयोग है।

[२८] विभावना (Peculiar Causation)—इसमें कारणान्तर की कल्पना की जाती है।

(क) **दुख इस मानव - आत्मा का रे नित का मधुमय भोजन।**
दुख के तम को खा - खाकर भरती प्रकाश से वह मन।

—यहाँ 'तम खाकर' विरुद्ध कारण से प्रकाश से मन भरना कार्य वर्णित है।

(ख) **तुमने भौंरों की गुंजित ज्या कुसुमों का लीलायुध थाम**
अखिल भुवन के रोम-रोम में केशर-शर भर दिये सकाम।

—यहाँ कार्य की दृष्टि से कारण की अपूर्णता वर्णित है।

[२९] निदर्शना (Illustration) जहाँ वस्तुओं का परस्पर संबंध उनके बिंब-प्रतिबिंब-भाव का बोध करें।

हँसमुख प्रसून सिखलाते, पलभर है, जो हँस पाओ;
अपने उर की सौरभ से जग का आँगन भर जाओ।

उठ - उठ लहरें कहतीं यह, हम कूल विलोक न पावें,
पर इस उमंग में बह - बह नित आगे बढ़ती जावें,

—यहाँ कुसुम अपनी हँसने—विकसित होने—की क्रिया से संसार को हँसने—प्रसन्न रहने—का उपदेश देते हैं और सुगन्धि फैलाने की क्रिया से यह बोध कराते हैं कि अपने हृदय के सद्भावों से संसार को पूर्ण कर दो। इसी प्रकार लहरें अपनी उठने की क्रिया से यह बोध कराती हैं कि 'चाहे किनारा—अंत— न दीखे तो भी अपने कर्म-मार्ग पर बढ़ते जाओ।'

[३०] विषम (Incongruity)—जहाँ विषम घटना का वर्णन हो।

(क) कहाँ मेघ और हंस ? किन्तु तुम भेज चुके संदेश अजान ?
तुड़ा मरालों से मंदर-धनु जुड़ा चुके तुम अगणित प्राण।

—यहाँ मेघ के द्वारा संदेश भेजना—मरालों से विशाल धनुष तुड़वाना—संबंध की अयोग्यता बतलाता है।

(ख) सदियों का दैन्य तमिस्र-तूम
धुन तुमने कात प्रकाश-सूत। [बापू के प्रति]

[३१] सम (Equal)—जहाँ परस्पर अनुरूप वस्तुओं का योग्य संबंध हो।

मिल रहे नवल वेलि - तरु, प्राण ! शुकी - शुक हंस-हंसिनी-संग,
लहर-सर सुरभि समीर विहान, मृगी-मृग, कलि-अलि, किरण-पतंग।

[३२] अन्योन्य (Reciprocal)—यदि दो वस्तुएँ परस्पर एक ही क्रिया को करें तो अन्योन्य अलंकार होता है।

(क) कल्पना तुममें एकाकार कल्पना में तुम आठो याम।
तुम्हारी छवि में प्रेम अपार प्रेम में छवि-अविराम।

—यहाँ एक क्रिया से पारस्परिक उपचार वर्णित है।

(ख) अश्रुओं में रहता है हास, हास में अश्रुकणों का भास;
श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास, और उच्छ्वासों में ही श्वास,
[स्नेह]

(ग) नभ में अवनि, अवनि में अम्बर। [बादल]

[३३] विशेष (Extra-ordinary)—जहाँ किसी विशेषता-विलक्षणता का वर्णन हो वहाँ यह अलंकार होता है !

एक ही तो असीम उल्लास विश्व में पाना विविधाभास ;
तरल जलनिधि में हरित विलास, शान्त अम्बर में नील-विकास ;
वही उर-उर में प्रेमोच्छ्वास, काव्य में रस कुसुमों में वास ;
अचल तारक पलकों में हास, लोल लहरों का लास !

—इसमें एक ही सत्ता का स्पन्दन, एक ही समय में, अनेक स्थलों पर विद्यमान है।

[३४] काव्यलिंग (Piactical Reason or Cause)—जहाँ किसी बात को सिद्ध करने के लिए उसका कारण कहा जाय वहाँ काव्यलिंग अलंकार होता है।

और भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ
झूमते गज-से विचरते हो, वहीं
आह है, उन्माद है, उत्ताप है !

—इस संदर्भ में प्रेम का वेदना के हाथों द्वारा बना होना सिद्ध करने के लिए अन्तिम पंक्ति में कारण उक्त है। इसमें पृथक्-पृथक् पदों में कारण उक्त है।

[३५] परिसंख्या (Special mention)—जहाँ किसी वस्तु का एक स्थान से निषेध करके किसी दूसरे स्थान में स्थापना हो वहाँ परिसंख्या अलंकार होता है।

(क) देह में पुलक, उरों में भार, भ्रुवों में भंग, दृगों में बाण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार, गिरा में लाज, प्रणय में मान

—इसमें एक-एक स्थान पर भार, भंग आदि के स्थापन से इनका अन्यत्र प्रश्नरहित निषेध व्यंग्य हैं !

(ख) तुम्हारे छूने में था, संग में पावन गंगा स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि ! त्रिवेणी की लहरों का गान।

अपरिचित चितवन में था प्रात, सुधामय साँसों में उपचार,
तुम्हारी छाया में आधार, सुखद चेष्टाओं में आभार !
['आँसू' की बालिका]

[३६] एकावली (Necklace)—यदि पूर्व-पूर्व वस्तु के प्रति परस्पर वस्तु का विशेषण रूप से स्थापन या निषेध हो तो एकावली अलंकार होता है।

आज वन में पिक, पिक में गान विटप में कलि, कलि में सुविकास,
कुसुम में रज, रज में मधु, प्राण ! सलिल में लहर, लहर में लास।

—इसके प्रत्येक चरण में एकावली की स्थिति है।

[३७] प्रतीप (Converse)—जहाँ उपमान में उपमेय, कल्पना आदि के द्वारा अनेक प्रकार की विपरीतता दिखाई जाय।

[क] **अधरों को लाली से चुपके कोमल गुलाब के गाल लजा**
आया, पंखुड़ियों को काले पीले धब्बे से सहज-सजा।

—यहाँ गुलाब उपमान में उपमेय कल्पित है।

(ख) **विधुर उर के-से मृदु उद्गार,**
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास। [**मौन-निमंत्रण**]

[३८] अत्युक्ति (Exaggeration)—सम्पत्ति, सौन्दर्य, शौर्य, औदार्य, सौकुमार्य आदि गुणों के मिथ्या वर्णन को अत्युक्ति अलंकार कहते हैं—

वह मृदु मुकुलों के मुख में भरती मोती के चुम्बन ?
लहरों के थल करतल में चाँदी के चंचल उडुगण।

—इसमें चाँदनी का वर्णन अत्युक्तिपूर्ण है, पर वह वर्णन अनुपम एवं अपूर्व है।

[३९] तद्गुण (Borrower)—जहाँ अपना गुण छोड़कर संगी के गुण-ग्रहण का वर्णन हो वहाँ तद्गुण अलंकार होता है।

यह शैशव का सरल हास है, सहसा उर से है आ जाता।
यह ऊषा का नव विकास है, जो रज को है रजत बनाता।
यह लघु लहरी का विकास है; कलानाथ जिसमें खिंच आता।

—इस संदर्भ में रज अपना रंग त्यागकर उषा का रंग ग्रहण करता है।

[४०] प्रश्न (Question)—जहाँ किसी अज्ञात जिज्ञासा की शान्ति के लिए प्रश्नमात्र किया जाता है, वहाँ यह अलंकार होता है।

अहे विश्व ! ऐ विश्व व्यथित मन, किधर बह रहा है यह जीवन।
यह लघु पोत, पात, तृण, रजकण, अस्थिर भीरु, वितान,
किधर ? किस ओर ? अपार, अजान, डोलता है यह दुर्बल यान।

[४१] स्वभावोक्ति (Natural Description)—जब किसी के स्वभाव का वर्णन किया जाय तब स्वभावोक्ति अलंकार होता है।

—यहाँ बाल-सुलभ-आशंका का स्वभाविक चित्रण है।

माँ ! अलमोड़े में आये थे जब राजर्षि विवेकानन्द
मग में मखमल बिछवाया दीपावलि की विपुल अमंद।
बिना पावड़े पथ में क्या वे जननि, नहीं चल सकते हैं ?
दीपावलि क्यों की ? क्या वे माँ ! मंद दृष्टि कुछ रखते हैं ?

[४२] भाविक (Vision)—जहाँ भूत और भविष्य भावों का वर्त्तमान की भाँति वर्णन किया जाय वहाँ भाविक अलंकार होता है।

(क) **अरुण अधरों की पल्लव-प्रात, मोतियों-सा हिलता हिम-हास**
इंद्रधनुषी पट से ढँक गात, बाल-विद्युत् का पावस-लास।
हृदय में लिख उठता तत्काल अधखिले अंगों का मधुमास।
तुम्हारी छवि का कर अनुमान प्रिये प्राणों की प्राण !

(ख) **अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात**
विकम्पित मृदु-उर, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना - सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित पलक दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी, प्राण ?
मधुरता में सी भरी अजान,
लाज की छुई-मुई - सी म्लान,
प्रिये प्राणों की प्राण !

कहेंगे नीरव प्रणयाख्यान प्रिये प्राणों की प्राण।

(ग) सुमुखि, वह मधुक्षण ! वह मधुवार ! धरोगी कर में कर सुकुमार !
निखिल जब नर-नारी संसार मिलेगा नव-सुख से नव-बार ;
अधर-उर से उर-अधर समान, पुलक से पुलक, प्राण से प्राण ,

इन उद्धरणों में भावी पत्नी के हृदय में वर्तमानकालिक विकास से भाविक अलंकार है।

(घ) मूँद पलकों में प्रिया के ध्यान को,
थाम ले अब, हृदय ! इस आह्वीन को !
त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी शून्य पावन स्थान को !
तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय ! उसकी व्यथा
अनिल पोंछेगी; करुण उसकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा !

[आँसू की बालिका]

[४३] **संसृष्टि**—जब एक पद्य या वाक्य-समूह में यह सम्मेलन तिल-तण्डुल न्याय से अर्थात् परस्पर-निरपेक्ष-रूप से होता है, तब उसे संसृष्टि कहते हैं।

शब्दालंकार-संसृष्टि—

वितरती गृह - वन मलय - समीर साँस, सुधि, स्वप्न, सुरभि, सुख, गान,
मार के शर - शर मलय - समीर हृदय हुलसित कर, पुलकित प्राण

—'यहाँ द्वितीय चरण में 'स' की अनेक बार, चतुर्थ चरण में 'ह' और 'प' की एक बार आवृत्ति रहने से वृत्यानुप्रास, केशर-सर में यमक और उसी चरण में 'मार 'समीर में 'मर' इस व्यंजन-समूह की एक बार आवृत्ति रहने से छेक है। इस प्रकार वृत्यानुप्रास, छेकानुप्रास और यमक की एक ही पद्य में अलग-अलग स्थिति होने से शब्दालंकार-संसृष्टि है।'

अर्थालंकार-संसृष्टि

बाल्य सरिता के कूलों से
खेलती थी तरंग-सी नित

—इसके पूर्वार्द्ध में रूपक और उत्तरार्द्ध में उपमा के रहने से दो अर्थालंकारों की संसृष्टि है।

मेरा मधुकर का - सा जीवन कठिन कर्म है, कोमल है मन;
विपुल मृदुल-सुमनों से सुरभित विकसित है विस्तृत जग-उपवन ॥

—इसकी प्रथम पंक्ति में उपमा और चतुर्थ (जग-उपवन) में रूपक है। इस हेतु दो अर्थालंकारों की संसृष्टि है।

[४४] संकर—नीर-क्षीर न्याय के समान मिले हुए अलंकारों को संकर अलंकार कहते हैं।

नयन-नीलिमा के लघु नभ में अलि किस सुषमा का संसार,
विरल इन्द्रधनुषी बादल-सा बदल रहा निज रूप अपार।

—इसका रूपक 'बादल-सा' उपमा के बिना अशोभन मालूम होता है और उपमा की स्थिति के बिना रूपक असंभव ही है। (अंगागि-भाव-संकर)

निज पलक मेरी विकलता साथ ही
अवनि से उर से मृगेक्षणि ने उठा
एक पलक निज शस्य - श्यामल दृष्टि से
स्निग्ध कर दी दृष्टि मेरी दीप - सी।

—इसके प्रथम दो चरणों में सहोक्ति, यथासंख्य और लुप्तोपमा का एकाश्रयानुप्रवेश है। अवनि से पलक और उर से विकलता के उठाने में यथासंख्य, पलक और विकलता के एक साथ उठाने में सहोक्ति और मृगेक्षणि में लुप्तोपमा, है। (एकाश्रयानुप्रवेश-संकर)

यह तो हुए प्राच्य अलंकारों के उदाहरण। अब थोड़ी-सी पाश्चात्य अलंकारों की छटा पंत के काव्य में देखिये—

[i] मानवीकरण (Personification)—

(क) पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञान हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं।
बस बिना सोचे हृदय को छीनकर
सौंप देते हो अपरिचित - हाथ में।

—इसमें मानवी कार्य के द्वारा प्रेम का मानवीकरण हुआ है।

(ख) विश्व के पलकों पर सुकुमार विचरते थे जब स्वप्न अजान
या
अतल से उठ - उठ हो लीन खो रहे बन्धन गीत उदार।

(ग) कहो, कौन हो दमयन्ती - सी तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या अलि नल-सा निष्ठुर कोई ?

[ii] ध्वन्यर्थव्यंजना (Onomatopoeia)—

पपीहे की वह पीन पुकार निर्झरों का भारी झर-झर
झींगुरों की झीनी झनकार घनों की गुरु गंभीर लहर।
बिंदुओं की छनती छनकार दादुरों के वे दुहरे स्वर,
हृदय हरते थे विविध प्रकार शैल पावस के प्रश्नोत्तर।

'शब्दों के ऐसे सुन्दर संचय, सुगुम्फन और सुसंगीत पंतजी के ही सहज-साध्य हैं; क्योंकि वे शब्दों के अन्तरंग में पैठकर उनके कलरव सुनते हैं और उनसे भावों को सजाने-सँवारने में सिद्धहस्त हैं।'

[iii] विशेषण-विपर्यय या विशेषण-व्यत्यय

'किसी कथन को विशेष अर्थगर्भित तथा गभीर करने के विचार से विशेषण का विपर्यय कर दिया जाता है। अभिधा वृत्ति से विशेषण की जहाँ जगह है वहाँ से हटाकर लक्षणा के सहारे उसे दूसरी जगह बैठा देने से काव्य का सौष्ठव कभी-कभी बहुत बढ़ जाता है। भावाधिक्य की व्यंजना के लिए विशेषण-विपर्यय-अलंकार का व्यवहार बहुत सुन्दर है।'—सुधांशु

विशेषण-विपर्यय का प्रयोग पंत की कविता में अधिक पाया जाता है, उदाहरण देखिये—

(क) आह ! यह मेरा गीला गान !
कल्पना में है कसकती वेदना
अश्रु में जीता, सिसकता गान है।

—इसमें गान का विशेषण है 'गीला' और 'सिसकता', परन्तु गाना तो न कभी गीला होता है, न सिसकता है; लेकिन ये विशेषण आँसू बहाते और सिसकते हुए मनुष्य के हैं और उसीका दृश्य उपस्थित करते हैं, मनुष्य-जैसा गान सजीव है।

(ख) अकेली आकुलता - सी प्राण कहीं तब करती मृदु आघात।

—निर्जीव होने से आकुलता अकेली नहीं हो सकती। इसलिए अकेलेपन की आकुलता के लिए विशेषण-व्यत्यय से 'अकेली' शब्द लाया गया हैं।

(ग) कल्पने, आओ, सजनी, उस प्रेम की
सजल सुधि में मग्न हो जावें पुनः

—'यहाँ सुधि का सजल विशेषण उस व्यक्ति को सम्मुख ला देती है जो अपनी सुधबुध खोकर आँसू बहा रहा है। बिछुड़े प्रिय पात्र की प्रिय स्मृति में आँखों का सजल होना स्वाभाविक है। सजल नेत्रों से हटकर 'सुधि' के साथ लगा देने से भाषा की अर्थ-व्यंजकता बहुत अधिक बढ़ गई है।'

(घ) बच्चों के तुतले भय सी।
(ङ) ऐ स्वप्नों के नीरव चुम्बन!
(च) वेदना के ही सुरीले हाथ से।
(छ) औ' जिनकी अबोध पावनता!
थी जग के मंगल की द्वार!
(ज) मूक - व्यथा का मुखर भुलाव।
(झ) सुरीले ढीले अधरों बीच, अधूरा उनका लचका गान।

(ञ) जब विमूर्च्छित नींद से मैं था जगा, कौन जाने किस तरह पीयूष-सा,
एक कोमल समव्यथित निःश्वास था पुनर्जीवन-सा मुझे तब दे रहा।

—यहाँ मूर्च्छित नींद नहीं, जागनेवाला मूर्च्छित है। द्वितीय चरण में मूर्त्त नायिक के लिए 'समव्यथित निःश्वास' से अमूर्त का मूर्त-विधान भी किया गया है।

उपसंहार

पंत छायावादी कवि हैं और उन्होंने अपनी कविताओं में भावों की चाँदनी छिटकायी है, न कि अलंकारों के बेल-बूटे सजाये हैं। इन्होंने शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों को काव्य-भाषा की वसन-सज्जा बनाया है। पंत ने तो स्वयं स्वीकार किया है कि वाणी की अभिव्यक्ति के लिए अलंकार की आवश्यकता नहीं है—

तुम वहन कर सको जन-मन में मेरे विचार,
प्राणी मेरी, चाहिये तुम्हें क्या अलंकार?

पंत की भाषा शैली

मानव एक चैतन्य प्राणी है और उसका स्वाभाविक गुण है आत्म-प्रकाशन एवं विचार-विनिमय। जब उसके हृदय-सागर में भावों की लहरियाँ, कल्पनाओं और अनुभूतियों का आरोह-अवरोह होता है तब उन्हें वह भाषा का परिधान पहनाकर सबके सामने प्रस्तुत करता है। सुतरां, भाव-प्रकाशन में उसका आत्म-सुख निहित रहता है, साथ ही जन-सेवा और साहित्य-सेवा। यह जो आकांक्षा रहती है उसको सफल बनाने के लिए वह सतत-प्रयत्नशील रहता है। जब वह व्यक्तिगत और सामाजिक जीवन के विषम वातावरण से क्षुब्ध हो उठता है तब उसका अंतःकरण आलोड़ित हो उठता है जिसके फलस्वरूप वह उसकी अभिव्यक्ति चाहता है। भाषा शैली की सशक्तता के हेतु उसके भाव अंतःकरण से प्रस्फुटित होते हैं। पंत एक संवेदनशील मानव होने के साथ-साथ कवि हैं और जब भी उनके हृदय में भावों का उफान अँगड़ाई लेता है तब उसे अभिव्यक्त करते हैं जिसमें सहायक होती है उनकी भाषा और शैली। भाषा वह साधन है जिसके द्वारा कवि अपने हृदयगत भावों को प्रकाशित करता है। यही कारण है कि भाषा की शक्ति अपरिमित है। और-शैली वह अभिव्यंजना-पद्धति है जिसके द्वारा कोई कविता आकर्षक, मोहक, रमणीय और प्रभावोत्पादक हो जाती है। शैली के अन्तर्गत अलंकार, रीति, ध्वनि, शब्द-शक्ति, वृत्ति आदि आते हैं। इनमें कुछ का संबंध शब्द से है, कुछ का अर्थ से और कुछ का दोनों से। इसलिए शब्द और अर्थ का संबंध अविच्छेद्य है। सच पूछा जाय तो भावों के प्रत्यक्षीकरण का एक सर्वश्रेष्ठ साधन भाषा ही है। भाषा भावों का आभूषण है जिसके अभाव में रस का परिपाक सुन्दर ढंग से नहीं हो सकता है। भावों का रूप-विधान इसी के द्वारा होता है। इसी के द्वारा कलाकार की

भाव और भाषा-शैली

सूक्ष्म ग्राहिणी शक्ति का यथार्थ ज्ञान प्राप्त होता है। जिस कलाकार की यह शक्ति जितनी ही परिष्कृत एवं परिमार्जित होगी उतनी ही उसके भावों के 'अपीलिंग' (Appealing) में क्षमता होगी। उसके एक-एक शब्द में आकार होगा जो भावों की एक सहज प्रतिमा पाठक की धुँधली आँखों के समक्ष खड़ा कर देगा—इसी के आश्रयण से कवि की प्रतिमा, अनुभूति और पर्यवेक्षण-शक्ति का अन्दाज लग जाता है। उसकी लेखनी चित्रकार की तूलिका है जो भावों के आवेग में उसे एक आकार प्रदान कर देती है। इस कर्म में सफल होने के लिए शब्द-चयन और व्याकरण-ज्ञान का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से 'शैली उस कलापूर्ण साधन का नाम है जो रमणीय, आकर्षक एवं प्रभावोत्पादक रूप से रचना के समस्त तत्त्वों की अभिव्यक्ति में अभिनव तथा उचित शक्ति का संचार करता है।'

ब्रज भाषा का स्थान खड़ी-बोली को मिला

हिन्दी के प्राचीन कवियों ने ब्रजभाषा को ही काव्य-भाषा के पद पर प्रतिष्ठित कराया, क्योंकि उसमें लोच-लचक थी; लेकिन बाद में अनेक कवियों ने उसके शब्दों के रूप को विकृत एवं विकलांग कर दिया। ऐसे कवियों ने शब्दों के माध्यम से अपने मन और आश्रितों के हृदय को नचाया, पर कुछ ऐसे कवि शेष रहे जिन्होंने उसके रूप को भावानुकूल बनाये रखा, पर समय ने उसे काव्य भाषा होने के अनुकूल न रहने दिया। बीसवीं शताब्दी के आरंभ होते ही खड़ी बोली ने उसका गला दबाना शुरू कर दिया। खड़ी बोली अबतक बोल-चाल की भाषा थी और काव्य की भाषा थी व्रजभाषा। यों तो उन्नीसवीं शताब्दी में ही खड़ी बोली गद्य की भाषा हो गई थी, लेकिन उसमें शब्दों का बहुत अभाव था, क्योंकि उस समय गद्य में भी साहित्यिक गद्य अत्यन्त अल्पमात्रा में लिखा गया था। व्रजभाषा का शब्द-भण्डार अत्यन्त सीमित था जिसे शृंगारी-कवियों ने गन्दा कर दिया था। बीसवीं शताब्दी के प्रथम दशक में लिखने-बोलने की भाषा तथा कविता की भाषा भिन्न थी, जो साहित्यिकों को अस्वाभाविक जँची। भारतवर्ष की अन्य भाषाओं में ऐसी बात नहीं थी जिससे प्रेरित होकर कुछ सहृदय कलावंतों ने खड़ी बोली में काव्य-रचना आरंभ कर दी। 'युग का

अभाव पड़ा। पहले उसमें इतिवृत्तात्मक कविताओं की भरमार रही, पर बीस-पचीस वर्षों के भीतर वह सज-सँवर कर ऐसी हृदयाकर्षक हो गयी कि अब ब्रजभाषा फूटी आँखों भी न सुहाती।' वास्तव में यह देन छायावाद-युग की है। इसमें प्रसाद, पंत, निराला, महादेवी और आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का बहुत बड़ा हाथ रहा। इन लोगों के प्रयास के कारण भाषा में ऐसी विलक्षण शक्ति आ गई कि वह सूक्ष्म-से-सूक्ष्म भावों को आत्मसात् कर सकती है। यों तो खड़ी बोली का आन्दोलन कब ही आरंभ पा चुका था और गुप्तजी-जैसे प्रतिनिधि कवि इसका रूप स्थिर कर चुके थे, पर सुमित्रानन्दन पंत ने खड़ी बोली के स्थिर रूप को सुकुमारता के साँचे में ढाल दिया है। 'पल्लव' के 'प्रवेश' में पंत ने खड़ी 'बोली' की ताईद करते हुए लिखा है—'अब ब्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच जीवन-संग्राम का युग बीत गया। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह प्रिय कहने लगी है। उसका किशोर कंठ फूट गया, अस्फुट अंग कट-छट गये।....मुझे तो उस तीन-चार सौ वर्षों की वृद्धा (ब्रजभाषा) के शब्द बिलकुल रक्त-मांसहीन लगते हैं, जैसे भारती की वीणा की झंकारें बीमार पड़ गयी हों, उसके उपवन के लहलहे फूल मुरझा गये हों। खड़ी बोली आगे की स्वर्णाशा है, उसकी बाल-कला में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह हमारे भविष्याकाश में स्वर्ग गंगा है। यह समस्त भारत की हृत्कंपन है।' और इसी 'पल्लव' के 'प्रवेश' में पंत ने आगे चलकर घोषित किया कि 'हमें भाषा नहीं, राष्ट्रभाषा की आवश्यकता है; पुस्तकों की नहीं, मनुष्यों की भाषा; जिसमें हँसते-रोते, खेलते-कूदते, लड़ते, गले मिलते, साँस लेते और रहते हैं, जो हमारे देश की मानसिक दशा का मुख दिखलाने के लिए आदर्श हो सके; जो कालानिल के ऊँच-नीच, ऋजु-कुंचित, कोमल-कठोर घात-प्रतिघातों की ताल पर विशाल समुद्र की तरह शत-शत स्पष्ट स्वरूपों में तरंगित-कल्लोलित हो, आलोड़ित-विलोड़ित हो, हँसती-गरजती, संकुचित-प्रसारित होती, हमारे हर्ष रुदन, विजय-पराभव, चीत्कार-किलकार, संधि-संग्राम को प्रतिध्वनित कर सके, उसमें स्वर भर सके। यह अत्यन्त हास्यजनक तथा लज्जास्पद है कि हम सोचें एक स्वर में, प्रकट करें दूसरे स्वर में। हमारे मन

की वाणी न हो; हमारे गद्य का कोष भिन्न, पद्य का भिन्न हो; हमारी आत्मा के सा रे ग म पृथक् हों, वाद्य-यंत्र के पृथक्; हमारी भाव-तंत्री और शब्द-तंत्री के स्वरों में मेल न हो। मूर्धन्य ष की तरह हमारे साहित्य का हृदय, देश की आत्मा, एक कृत्रिम दीवार देकर दो भागों में बाँट दी जाय।'

—इसी व्रत को अपने साथ संजोये पंत हिन्दी-कविता-मंच पर अवतीर्ण हुए। उन्होंने अपने जिस कथन को लिखा है, उसका पालन किया है और प्रचार भी। पंत का अध्ययन सभी दृष्टि से विस्तृत और व्यापक रहा है जिसका प्रभाव उनपर विशेष रूप से पड़ा है। वे शेली, कीट्स, बायरन, वर्ड्स्वर्थ, रवीन्द्र, अरविंद, मार्क्स आदि के प्रभाव को 'आधुनिक कवि' के 'पर्यालोचन' में स्वीकार करते हैं। भाषा के सम्बन्ध में पंत का जो विचार है वह अत्यन्त ही सुलझा हुआ है।

पंत की भाषा

छायावादी पंत भावों की सम्यक् अभिव्यक्ति की कला से पूरी तरह परिचित हैं। उन्होंने भावों की उच्चता, पूर्णता एवं सुन्दरता के अनुरूप ही भाषा-निर्माण किया है। उन्होंने भाषा को बोधगम्य, चित्रमय एवं सस्वर बनाने का सतत प्रयास किया है। फलतः उनके काव्य की हृदयहारिता अधिक तीव्र हो गई है। काव्य-भाषा के संबंध में पंतजी ने लिखा है कि 'भाषा संसार का नादमय चित्र है, ध्वनिमय स्वरूप है। यह विश्व की हृतंत्री की झंकार है, जिसके स्वर में वह अभिव्यक्ति पाता है। विश्व की सभ्यता के विकास तथा ह्रास के साथ वाणी का भी युगपत् विकास तथा ह्रास होता है। भिन्न-भिन्न भाषाओं की विशेषताएँ भिन्न भिन्न जातियों तथा देशों की सभ्यता की विशेषताएँ हैं। संस्कृत की देव वीणा में जो आध्यात्मिक संगीत की परिपूर्णता है वह संसार की अन्य शब्द-तंत्रियों में नहीं, और पाश्चात्य साहित्य के विशद यंत्रालय में जो विज्ञान के कल-पुर्जों की विचित्रता, बारीकी तथा सज-धज है, वह हमारे भारती-भवन में नहीं।'

द्विवेदी-युग के कवियों ने शब्दों का भण्डार संस्कृत के अक्षय कोश से लिया और पंत ने भी भावनाओं एवं विचारों की सफल व्यंजना के लिए संस्कृत

के अक्षय शब्द-भण्डार की शरण ली, और उसमें 'संस्कृत की देववीणा' का संगीत भी भरा। वस्तुतः देखा जाय तो हम पाते हैं कि खड़ी बोली की शब्द-तंत्री में संगीत की अवतारणा करने का श्रेय पंत को ही है। पंत द्वारा विशुद्ध तत्सम भाषा में लिखी गई कविता में कोमल कांतता मिलती है, यथा—

कोमल-कांत तत्समता

(क) स्नेहमयि ! सुन्दरतामयि
तुम्हारे, रोम-रोम से नारि !
मुझे हैं स्नेह अपार ;
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार !
तुम्हारे गुण हैं गान,
मृदुल दुर्बलता, ध्यान ;
तुम्हारी पावनता, अभिमान,
शक्ति, पूजन - सम्मान,
अकेली सुन्दरता कल्याणि !
सकल ऐश्वर्यों की संधान।

(ख) गिरिवर के उर से उठ उठकर उच्चाकांक्षाओं—से तरुवर
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष अटल कुछ चिंता पर !

(ग) अहे अनभ्र गगन के जलकण ! ज्योति-बीज ! हिम-जल के कण !
बीते दिवसों की समाधि हे ! प्रातः विस्मृत स्वप्न - सघन!
अग्नि शस्य ! रवि के चिह्नित पग ! म्लान दिवस के छिन्न वितान!
कह दो हे शशि के प्रिय सहचर ! निशानाथ दे दर्शन दान !

(घ) विपुल कल्पना से त्रिभुवन की विविध रूप धर नभ-अंक
हम फिर क्रीड़ा-कौतुक करते, छा अनन्त उर में निःशङ्क !

(ङ) हेम चूड़ पर स्वर्ण-रश्मि-प्रभ ज्योति-मुकुट जाज्वल्य शीर्ष पर,
शत सूर्योज्ज्वल कुवलय-कोमल स्फुरत् किरण-मण्डित मुख सुंदर ?

नयन अकूल क्षमा-गरिमामय ज्योति-प्रीति के अतल सरोवर
अधर प्रवालों पर चिर गुंजित कौन मधुर स्मिति के मुरली स्वर !

च द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र, हे त्रस्त-ध्वस्त हे शुष्क शीर्ण
हिम-ताप पीत मधुवात भीत, तुम वीतराग, जड़, पुराचीन
निष्प्राण विगत युग ! मृत विहंग जग नीड़ शब्द औ' श्वास हीन,

(छ) जग के सुख दुख पाप-ताप, तृष्णा ज्वाला से हीन,
जरा जन्म भय मरण- शून्य यौवनमयि, नित्य नवीन;
अतल विश्व शोभा वारिधि में, मज्जित जीवन-मीन,
तुम अदृश्य अस्पृश्य अप्सरी, निज सुख में तल्लीन ।

पंत द्वारा प्रयुक्त तत्सम-प्रधान भाषा में सिर्फ कोमलता ही नहीं है,

तत्सम प्रधान पौरुषेय

प्रत्युत उसमें पौरुषेय भी है । पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय के समान पंत के कोष में भी तत्सम-प्रधान शब्दों का अकाल नहीं है । 'परिवर्तन'-शीर्षक कविता से उदाहरण लीजिये—

एक कठोर कटाक्ष तुम्हारा अखिल प्रलयंकर
समर छेड़ देता निसर्ग-संसृति में निर्झर ;
भूमि चूम जाते अभ्रध्वज सौध, शृंगवर
नष्ट-भ्रष्ट साम्राज्य—भूति के मेघाडम्बर !
अये, एक रोमांच तुम्हारा दिग्भू कंपन,
गिर-गिर पड़ते भ्रांत पक्षि-पोतों-से उडुगन,
आलोड़ित अम्बुधि फेनोन्नत कर शत-शत फन,
मुग्ध भुजंगम-सा इंगित पर करता नर्तन ।
दिक-पिंजर में बद्ध, गजाधिप सा विनतानन,
वाताहत हो गगन
आर्त करता गुरु गर्जन !

या

निखिल पलकों का मौन पतन
तुम्हारा ही आमंत्रण !

विपुल वासना विकच विश्व का मानस शतदल
छान रहे तुम, कुटिल काल-कृमि-से घुल पल - पल।
तुम्हीं स्वेद - सिंचित संस्कृति के स्वर्ण-शस्य-दल
दल मल देते, वर्षोत्पल बन, वांछित कृषि फल!
अये सतत ध्वनि-स्पन्दित जगती का दिक्-मण्डल
नैश गगन सा सकल
तुम्हारा ही समाधि-स्थल।

पंतजी द्वारा सिर्फ संस्कृत शब्दों का ही प्रयोग नहीं हुआ है, वरन् उनकी कविताओं में संस्कृत की ज्यों-की-त्यों पदावलियाँ देखने को मिलती हैं, जैसे—

संस्कृत पदावलियों का प्रयोग

'एकोहं बहु स्याम'; 'पत्रं पुष्पम्'; 'नानृतं जयति' 'सत्यं मा भैः'; 'जननी जन्म-भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' आदि। इस प्रकार की पदावलियों का प्रयोग पंत ने धार्मिक वातावरण निर्माण करने के फलस्वरूप किया है। ये तो कवि की अध्ययन-शीलता का परिचायक हैं।

पंत पर संस्कृत-शैली का विशेष प्रभाव पड़ा है। इसीलिए इनकी कविताओं में तत्सम शब्दों का आधिक्य है और पंक्ति-पंक्ति में समास बिछे हुए हैं। लेकिन

अप्रचलित शब्दों का प्रयोग

कहीं-कहीं अप्रचलित शब्दों का प्रयोग मिलता है जिसके हेतु उसके अर्थों को हृदयंगम करने में सर खपाना पड़ता है। इस प्रकार के अप्रचलित शब्द हैं—'अरन्तदु' 'त्वेष', तनु-पनिया, मृदु व्रतति-प्रतति, सिरिस-मुकुल, चीन-डाल, जतु-गृह, ढिंग, द्विरद, व्यावर्तन, रक्तोत्पल, तन्वंगी, वर्तुल, प्रमन, तिर्यक्, अराल, प्रतनु, फेनस्फार, कुड्मल, स्कन्द-मूल, प्रलम्ब, प्ररोह, अयास, निःस्वन, स्थाणु, स्वसन-स्पर्श, वर्ह आदि।

पंत कोमल वृत्ति के कवि हैं और अपनी कविता में कोमलता की व्यंजना

ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग

के लिए उन्होंने ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। सुन्दर शब्द-मैत्री के लिए पंत ने ब्रजभाषा के शब्दों का व्यवहार किया है जिससे उनकी श्रुति-सुखदायकता बढ़ गयी है। जैसे—

(१) आज छाया चहुँदिशि चुपचाप मृदुल मुकुलों का मौनालाप।
(२) वहु काले लाल, हरे, नीले।
(३) गंगा-तट पर सब छोड़ काज।
(४ धूम-धुआँरे, काजर-कारे, हम ही हैं बिकरारे बादर।
(५) भर गई इनमें हाव, हुलास
(६) कान से मिले अजान नयन
(७) खोजना है अजान वह छोर!
(८) जन्म-दिन का है यही हुलास।
(९: खींच लो इसको, कहीं क्या छोर है?
(१०) सिड़ी के गूढ़ - हुलास!
(११) उन्मद यौवन से उभर घटा - सी नव असाढ़ की सुंदर!
(१२) मधुकर ने मादक गुंजार!
(१३) कहाँ मेघ औ' हेष? किन्तु तुम भेज चुके संदेश - अजान।
(१४) मिला देती भू - नभ के छोर;
(१५) तड़प बन जाते हैं गुंजार;
(१६) मुसकानों में उछल-उछल मृदु, बहती वह किस ओर अजान?
(१७) नयन-नलिन में बँधी मधुप-सी करती मर्म मधुर- गुंजार।
(१८) मृदुल पुलकावलि बन चहुँ ओर

पंत ने श्रुति-मधुरता के लिए चहुँदिशि, छोर, दुराव, दई, दीठ, परस, नखत गैल, अजान, गुंजार, बादर, थोर, गह, जुड़ाना, असाढ़, काजर आदि व्रजभाषा के शब्दों का व्यवहार किया है। सच पूछा जाय तो पंत ने व्रजभाषा के शब्दों को नया जन्म दिया है।

फारसी शब्द

भावों की व्यंजनापूर्ण अभिव्यक्ति के लिए कवि ने फारसी के शब्दों का भी साहाय्य ग्रहण किया है। इस प्रकार के शब्दों में ये हैं—नादान, चीज, कसकस, शरमाना आदि। कुछ उदाहरण देखिये—

(१) लो पालें चढ़ीं, उठा लंगर।

(२) अपने मधु में लिपटा पर कर सकता मधुप न गुंजन।

(३) चकित रहता शिशु-सा नादान।

(४) क्षण भर एक चमक है लाती।

(५) तीखी नोक सदृश बन जाती।

(६) ज्यों स्वास्थ्य सेज हो, ये सुख से लोटते धूल में चिर-परिचित!

(७) वह सलाम करता है झुककर।

(८) नभ का चिर निर्मल नील फलक।

(९) लड़के, बच्चे, बूढ़े, जवान।

(१०) मजलिस का मसखरा करिंगा।

(११) वह भी फौरन बद्धी कस कर।

(१२) बच्चों की निगरानी करती।

—फारसी के शब्द विशेषतया 'मधु-ज्वाल' में प्रयुक्त हुए हैं।

जहाँ तक अंग्रेजी के शब्दों के प्रयोग की बात है, वहाँ हम देखते हैं कि पंत ने ऐसे शब्दों को अत्यन्त ही अल्पमात्रा में व्यवहार में लाया है। अंग्रेजी के शब्दों का उपयोग कवि ने चिंतन-प्रधान रचनाओं में किया है। अंग्रेजी शब्दों से युक्त कुछ पंक्तियों को देखियें—

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग

रंग-रंग के खिले फ्लॉक्स वरवीना, छपे डियांथस,
नत दग ऐंटिह्निनम तितली-सी पैंजी पॉपी सालस;
हँसमुख कैंडीटफ्ट रेशमी चटकीले नैशटरशम,
खिलीं स्वीट-पी,—एवंडस, फिलवास्केट औ' ब्लू वैंटम।
दुहरे कार्नेशंस, स्वीट सुलतान सहज रोमांचित
ऊँचे हाली हॉक, लार्कस्पर पुष्प-स्तंभ से शोभित।
फूले बहु मखमली, रेशमी, मृदुल गुलाबों के दल,
धवल मिसेज एंड्रू कार्नेगी, ब्रिटिश क्वीन हिम उज्वल।
जोफ्रेफ हिल सनबर्स्ट पीत, स्वर्णिम लेडी हेलिंडन,
ग्रेट मुगलरिचमंड; विकच ब्लैक प्रिंस नील लोहित तन।

फेब्ररी क्वीन, मारगेरेट मृदु, विलियम शीन चिर पाटल
बटन रोज, वहुलाल ताम्र, माखनी रंग के कोमल।

—ग्राम्या : सौन्दर्य-कला

या

सुभग रूज, लिपस्टिक, ब्रौस्टिक, पौडर से कर मुख-रंजित
अंगराग क्यूटेक्स अलक्तक से बन नख शिख शोभित;

—ग्राम्या : आधुनिका

अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग तो कवि ने सिर्फ 'ग्राम्या' में ही किया है, पर उन्होंने अंग्रेजी के साँचे में कहीं संस्कृत प्रत्यय लगाकर, कहीं स्वतंत्र रूप से कुछ सुन्दर ढंग गढ़े हैं, कहीं अंग्रेजी शब्दों से रूपांतरित और उनके आधार पर शब्द निर्मित किये हैं। इस प्रकार कवि ने अपनी सरलता और भाषा-कला-विज्ञता का एक साथ परिचय दिया है। पंत द्वारा हमें अंग्रेजी-भाषा-कोष से कई अच्छी प्रोक्तियाँ मिली हैं—

अंग्रेजी ढाँचे में कुछ शब्द

(क) बाल रजनी-सी अलक थी डोलती भ्रमित हो शशि के वदन के बीच में।
अचल रेखांकित कभी थी कर रही, प्रमुखता मुख की सुछवि के काव्य में।

—तीसरे चरण में 'रेखांकित' शब्द Underlined का अनुवाद है।

(ख) 'हे विधि ! फिर अनुवादित कर दो'

—'अनुवादित' Translated का अनुवाद है।

(ग) कान से मिले अजान-नयन सहज था सजा-सजीला तन।

—इसमें 'अजान' Innocent का रूपान्तर है।

(घ) सुप्ति की ये स्वप्निल मुस्कान।

—इसमें 'स्वप्निल मुस्कान' शब्द Dreamy Smile से बने हैं।

(ङ) तुमको पहना जगत् देख ले;—यह स्वर्गीय प्रकाश !

—Heavenly light और Divine light का अनुवाद 'स्वर्गीय प्रकाश' है।

(च) कहाँ आज वह पूर्ण पुरातन, वह सुवर्ण का काल ?

—'सुवर्ण का काल' Golden Age का छायानुवाद है।

इसी प्रकार पंत ने Golden touch और Silvery से 'सुनहले स्पर्श' और 'रूपहरे' शब्दों का निर्माण किया है। अंग्रेजी ढाँचे पर पंत के गढ़े हुए शब्द हैं—स्वप्निल, प्रि'ह्लाद, अनिर्वच सिङ्गार आदि।

देशज शब्द

पंत देशज शब्दों के प्रभाव एवं उसके मनोविज्ञान से पूर्णतया परिचित हैं और उनके प्रयोग में काफी सतर्क हैं। देशज शब्द हिंदी भाषा की आत्मा है। देशज शब्दों की सरसता, उपयोगिता एवं स्वाभाविकता को देखकर कवि ने उनका प्रयोग किया है। वे शब्द हैं—ऐंचीला, खैंच, खोंस, बगिया, छाजन, अबोध, अम्बियों, चित्तियों आदि। एक उदाहरण देखिये—

खैंच ऐंचीला भ्रू-सुरचाप

—इसमें 'खैंच ऐंचीला' अत्यन्त सुष्ठु एवं स्थानापन्न हैं।

वर्ण विन्यास

पंत वर्ण-विन्यास-कला में निपुण हैं; क्योंकि इससे काव्य में कोमलता, माधुर्य और रस छलक पड़ता है। वर्ण - विन्यास का तात्पर्य यह है कि काव्य-रचना में ऐसे शब्द हों जिनमें सुन्दर वर्णों का समावेश हो; यथा—

प्रणय की पतली अंगुलियाँ क्यों किसी
गान से विधि ने गढ़ीं ? जो हृदय की
याद आते ही विकल संगीत में
बदल देती हैं भुलाकर मुग्ध कर।

—ऐसी मधुर कोमल-काँत-पदावली की योजना ही वर्ण-विन्यास की कला है। पंत की भाषा में कोमल वर्णों की प्रधानता है।

संगीतमयी कोमल-कांत पदावली

सुवर्ण विन्यासवती भाषा कविता में संगीत भर देती है जिसके हेतु वह पाठकों के मुख पर सर्वदा नृत्य करती रहती है। अच्छे वर्णों की योजना और उन वर्णों के उच्चारण से मधुर संगीत निःसृत होता है। संगीतमयी कोमल-कान्त-पदावली का उदाहरण लीजिये—

शशि किरणों ने मोती भर-भर गूँथीं उड़ती सौरभ अलकें।
गूंजी मधु अधरों पर मँडरा इच्छाओं की मधुपावलियाँ ॥

—'इसमें सरलता है, सरसता है, मधुरता है, सुकुमारता है और विशदता है? यह ऐसा वातावरण उपस्थित कर देता है कि दृश्य सजीव होकर हमारे सामने नाचने लगता है। इसमें शशि की शान्तिदायक शीतल किरणें दृष्टिगोचर होती हैं, सौरभ का तृप्तिदायक आघ्राण भी है और कानों की सुखद गुंजन भी है।'

सुवर्ण-विन्यास से नाद-सौन्दर्य

पंत ने अपनी कविताओं में कुछ ऐसे वर्णात्मक शब्दों की योजना की है जिसके हेतु भावों की अभिव्यक्ति में कवि को काफी बल मिला है। कविता में शब्दों का बंध ऐसा तैयार किया गया है कि भावों का एक नादमय चित्र खड़ा हो जाता है। शब्दों से एक ऐसी झंकार निकलती है जिससे एक चित्र उपस्थित हो जाता है और साथ-ही-साथ एक गंभीर गर्जन भी सुनाई पड़ता है—

मृदु मंद-मंद मंथर-मंथर लघु तरणि हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही खोल पालों के पर।

—'इन पंक्तियों से ऐसा ज्ञात होता है कि जैसे तरणी के तैरने की ध्वनि सुन रहे हो; क्योंकि इसमें ऐसे ही वर्णात्मक शब्दों का संचय और संगुम्फन हुआ है। शब्दों के अंतरंग में पैठकर उनके कलरव सुननेवाले शब्द-शिल्पी पंत को भाषा का सूत्रधार कहना अतिशयोक्ति में नहीं गिना जा सकता।'

पंत द्वारा शब्द निर्माण

शब्द-निर्माण-कला में पंत अत्यन्त निपुण हैं और उनके समक्ष पूर्ववर्ती कवियों के शब्द पूँजी के रूप में थे। पंत ने उन्हें विकास-पथ पर ले जाने का कार्य सम्पन्न किया। उनके सामने द्विवेदीयुगीन कवियों का भाषा-सौष्ठव था जिसमें पंत ने कई प्रकार के नवीन परिवर्तन किये। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

पुलक	से	पुलकित
स्वप्न	से	स्वप्निल

रुचि	से	रुचिमान
गति	से	गतिमान
तरुण	से	तरुणतम
स्वर्ण	से	स्वर्णिम
—	—	स्वर्णिल
—	—	सुवर्णमय
स्वर्ग	से	स्वर्गीय
अलस	से	अलसित
अवसान	से	अवसित
प्रमुद	से	प्रमुदित
मधुर	से	मधुरिमा
इन्द्रधनुष	से	इन्द्रधनुषी
सौरभ	से	सौरभवाह
ऊर्मि	से	ऊर्मिल
फेन	से	फेनिल
दुराना	से	दुराव
ऐंचना	से	ऐंचीला
अपना	से	अपनाव
त्रिलोक	से	त्रिलोकजित्
मुकुल	से	मुकुलित
पुलक	से	पुलकावलि

—इस प्रकार के परिवर्तन पंत द्वारा कई स्थलों पर हुए हैं।

शब्दों की पहचान

छायावादी कवि अपनी कविताओं में ऐसे शब्दों को स्थान देता है जिससे भाव स्वतः स्फुट हो जायँ। शब्दार्थ मिलने से जो भाव व्यक्त होता हो उसका वातावरण शब्दों से ही प्रस्तुत हो जाय। ऐसा होना शब्दों की पहचान पर ही निर्भर है। कोषकार ने 'महावात' को 'प्रकम्पन' और 'वर्षा-सहित-वात' (वायु) को 'झंझावात' तक

का ही भेद किया और अन्यान्य शब्दों को एक ही पंक्ति में बैठा दिया। पंतजी ने शब्दों की मार्मिकता को इस प्रकार व्यक्त किया है—अनिल से एक प्रकार की कोमल शीतलता का अनुभव होता है, जैसे खस की टट्टी से छनकर आ रही हो। वायु में निर्मलता तो है ही, लचीलापन भी है। यह शब्द रबर के फीते की तरह खिंचकर फिर अपने स्थान पर आ जाता है, इत्यादि। वे ऐसे प्रयोग भी करते हैं—

सर् सर् मर् मर् झन् झन् सन् सन्
गाता कभी गरजता भीषण
वन-वन उपवन पवन प्रभंजन।

इसमें 'पवन' और 'प्रभंजन' के अनुरूप ही गाने और गरजने की बात कही गयी है।

आज जाने कैसी वातास छोड़ती सौरभ श्लथ उच्छ्वास।
प्रिये लालस सालसवातास जगा रोओं में सौ सौ अभिलाष॥

इस कविता का प्राण 'वातास' शब्द है। 'वातास' शब्द में जो मादकता है, रोम-रोम में वासनात्मक अभिलाषा जगाने की सामर्थ्य है और उसमें जो सालस गंभीरता है वह न तो हवा में, न तो वायु में और न पवन में है। वातास एक ऐसा वातावरण उपस्थित कर देता है जिससे प्रिय के मानस में बरबस लालसा उत्पन्न हो जाती है।'[1]

एक दूसरा उदाहरण देखिये—

'प्रात ही तो कहलायी मात
पयोधर बने उरोज उदार।'

—इसमें 'प्रातःकाल' नवजीवन का, नवशक्ति-संचार का समय है। यह शब्द यह द्योतन करता है कि नायिका के नवजीवन का आरंभ ही हुआ था, उसमें उल्लास भर ही रहा था, उसके आशा-कुसुम खिल ही रहे थे। यह भी सूचित होता है कि वह प्रथम-प्रथम पुत्रवती हुई थी। साथ ही, समय

१. काव्य में अप्रस्तुत योजना

की निकटता भी—अभी-अभी की बात भी। यह कवि का अपना शब्द है और ये अपने अर्थ भी। 'भोर' या अन्य शब्द में न तो यह सौन्दर्य है और न यह सामर्थ्य। 'पयोधर' शब्द भी ऐसा ही है। इसके स्थान पर 'क्षीरधर' या दुग्धधर' शब्द रखा जाय तो मोतियों की जगह कौड़ियाँ गूँथना होगा। 'पय' का अर्थ जीवन भी है और अमृत भी। शिशु को इसी की आवश्यकता है। दूध में जीवनी शक्ति नहीं तो वह लाभदायक नहीं। 'पय' इसको सूचित करता है। पयोधर का अर्थ मेघ भी होता है। उरोज का पयोधर बनना दूध की अधिकता सूचित करता है; दूध जैसे उफन पड़ता हो और गुप्तजी के 'आँचल' में है 'दूध' के लक्ष्यार्थ को अभिधेयार्थ बना रहा है। 'पयोधर' को स्तन कहते हैं और उरोज भी। यहाँ यह अर्थ ही पुनरुक्ति को पुनरुक्तवदाभास बना रहा है। उदार भी ऐसा ही शब्द है। अब क्या कोई सहृदय सहित शब्दार्थ को काव्य कहने में कभी अनुदार हो सकता है? साधारणतः अनेक शब्दों से अर्थ-प्रकाश किया जा सकता है; पर अनेक शब्दों के रहते हुए भी जो शब्द ठीक विवक्षित अर्थ को प्रकाशित करता है वही वाचक शब्द है। अर्थ वही है जो स्वयं सुन्दर हो और सहृदय का हृदयाह्लादक हो। रुद्रट भी कहते हैं कि काव्य में अनेक प्रकार के अर्थवान शब्द होते हैं। शब्द अनन्त है। एक शब्द के अनेक पर्यायवाची शब्द होते हैं, किन्तु सब एक-से नहीं होते। समानार्थी शब्दों में भी अर्थ की विभिन्नता होती है। प्रायः सब की प्रकृति भिन्न होती है। एक-एक शब्द के भिन्न-भिन्न चित्र अंकित होते हैं। उनसे भिन्न-भिन्न भावों की अभिव्यक्ति होती है। यही नहीं, उनसे एक प्रकार की ध्वनि निकलती है। जैसे, वायु, अनिल, समीर, प्रभंजन आदि। इनपर ध्यान रखने से भाषा और भाव का सामंजस्य होगा। उनकी एकतानता संभव होगी।'[१] यह तो कवि द्वारा शब्दों की पहचान पर निर्भर है। इस संबंध में पंत ने स्वयं कहा है कि 'प्रत्येक शब्द का स्वतंत्र हृत्स्पन्दन, स्वतंत्र अंगभंगी

---

१. पं० रामदहिन मिश्र

और स्वाभाविक साँसें हैं और यह भी कि कविता के लिए चित्र-भाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिए, जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण झलक पड़े।'

शब्द प्रयोग

कविता की भाषा में शब्दों का व्यवहार दो रूपों में हुआ करता है। एक रूप है समास-युक्त और दूसरा समासहीन। समास-युक्त भाषा संस्कृत-काव्य के लिए अत्यन्त उपयुक्त है; लेकिन हिन्दी-काव्य के लिए यह शैली हृदयग्राहिणी नहीं है। समासहीन भाषा से काव्य की स्वाभाविकता नहीं नष्ट हो पाती है। भावों को मूर्त्त आकार प्रदान करने के लिए पंत ने ऐसे शब्दों का प्रयोग किया है जो नव-निर्माण-स्वरूप ही हुए हैं। इस प्रकार के शब्द अत्यन्त सुन्दर, मार्मिक एवं हृदय में घर बना लेनेवाले सिद्ध होते हैं, जैसे —

(क) अरी शैलबाले (निर्झरी) नादान
(ख) विटपबालिका (चिड़िया) पुलकित गान,
(ग) धरती के ये बालक (किसान) हैं,
(घ) नयनों के शिशु आँसू) नादान।

शब्दों का अंगभंग

—सच पूछा जाय तो हम कहेंगे कि पंत को शब्द-निर्माण-कला में कमाल हासिल है, जिनकी समता हिन्दी का कोई कवि नहीं कर सकता। कहीं-कहीं पंत ने यति, लय, भाव और सुषमा के नाम पर शब्दों का अंगभंग किया है। इसे हम उनकी निरंकुशता कह सकते हैं। कुछ उदाहरण देखिये—

(क) तुम सुर नर-मुनि-इप्सित अप्सरि !
(ख) जग के ज्योतित आँगन में
(ग) नित बूड़-बूड़ रे भाविक
(घ) उमड़ पड़ा पावस परिप्रोत
(ङ) वह है वह नहीं अनिर्वच
(च) यौवनमयि नित्य नवीन

(छ) हृदय मेरा तेरा आक्रोड़

ज) कुसुमित सुभग सिंगार

इन संदर्भों में कवि ने हरसिंगार के स्थान पर 'सिंगार' रखना अच्छा समझा है, वास्तव में इस प्रकार के अंगभंग से अर्थबोध में कठिनता उत्पन्न होती है। यह स्वीकार किया जा सकता है कि खराद पर ढाले गये शब्द कहीं-कहीं भावोत्कर्षक सिद्ध हुये हैं, पर सभी स्थलों पर नहीं।

रसास्वाद में बाधा

पंत ने कुछ ऐसे शब्दों का निर्माण किया है और उनका प्रयोग कविता की रँगीली पंक्तियों में किया है, वस्तुतः वे निर्मित शब्द अर्थबोध में बाधा डालते हैं और साथ-ही-साथ रसास्वादन में कठिनाई होती है।

(अ) पावस के उड़ते फणिधर (बादल)

(आ) तम के सुन्दरतम रहस्य तारे)

(ग) इन्द्रजाल जननी (रात)

(घ) स्वर्ग के अग्रदूत (देवता) आदि।

भावानुरूप भाषा

भाषा भाव के अनुरूप होनी चाहिये। इसके अभाव में कविता आनन्द हीन हो जाती है। जहाँ भाव की व्यंजना होती है, वहाँ भाषा का सौन्दर्य भी अपेक्षित है। काव्य-भाषा भाव की अनुगामिनी तो है ही, मनोहारिणी भी है, यथा—

बिन्दु में थी तुम सिन्धु अनन्त एक सुर में समस्त संगीत।
एक कलिका में अखिल वसंत धरा पर थीं तुम स्वर्ग पुनीत।

—ये पंक्तियाँ पाठकों के मानस-पटल पर एक अमिट प्रभाव छोड़ जाती हैं। कभी - कभी भाषा ऐसी प्रयुक्त होती है कि वह भाव को ऊपर उठा देती है तथा भावों में तीव्रता ला देती है, देखिये—

सिखा दो ना हे मधुप-कुमारि! मुझे भी अपना मीठा गान
कुसुम के चुने कटोरों से करा दो ना कुछ-कुछ मधुपान।

—इसमें 'ना' के प्रयोग से गुंजार-सी मिठास पैदा हो गई है। सच तो

यह है कि पंत शब्द-चयन-कला में कुशल हैं; क्योंकि शब्दों के संबंध में उनका अध्ययन पर्याप्त है।[1]

पंतजी ने सभी प्रतिभाशालियों की भाँति कुछ शब्दों का विचित्र प्रयोग किया है। मनोज शब्द रूढ़ है जिसका अर्थ कामदेव ही है, परन्तु कवि ने 'मन' से ('शरीर' से विभिन्नता दिखाने के लिए) उत्पन्न, व्युत्पत्ति अर्थ में ही, उसका प्रयोग करते हुए बापू के लिए फिट कर दिया है—'तुम आत्मा के मन के मनोज'। 'अछूत' का प्रयोग भी ऐसा है— 'छू अमृत स्पर्श से हे अछूत !' एक-आध स्थान पर पंत ने किसी प्रचलित शब्द के अनुसार अपने शब्द बना लिये हैं 'बिन्दुओं की छनती छनकार।' संक्षेप में शब्द और अर्थ में एकता, चित्रोपमता एवं व्यंजकता लाने के लिए कवि ने सर्वत्र ही सफल प्रयत्न किया है।[2]

शब्द का विचित्र प्रयोग

पंत ने संस्कृत और हिंदी-कोष के ध्वन्यर्थ-व्यंजक (Onomatopoetic) शब्दों को खोज निकाला है जिसके फलस्वरूप उन्होंने अपनी कविताओं में

१, प्रत्येक शब्द एक संकेतमात्र, इस विश्व-व्यापी संगीत की अस्फुट झंकारमात्र है। जिस प्रकार समग्र पदार्थ एक दूसरे पर अवलम्बित हैं, ऋणानुबंध हैं, उसी प्रकार शब्द भी; ये सब एक ही विराट् परिवार के प्राणी हैं, इनका आपस का संबंध, सहानुभूति अनुराग-विराग जान लेना, कहाँ कब एक साड़ी का छोर उड़कर दूसरे का हृदय रोमांचित कर देता, कैसे एक की ईर्ष्या अथवा क्रोध, दूसरे का विनाश करता, कैसे फिर दूसरा बदला लेता ; कैसे ये भले लगते, बिछुड़ते; कैसे जन्मोत्सव मनाते तथा एक दूसरे की मृत्यु से शोकाकुल होते,—इनकी पारस्परिक प्रीति-मैत्री, शत्रुता तथा वैमनस्य का पता लगा लेना क्या आसान है? प्रत्येक शब्द एक-एक कविता है ; लक्ष और मलद्वीप की तरह कविता भी अपने बनानेवाले शब्दों की कविता को खा-खाकर बनती है।'—पंत, पल्लव की भूमिका, पृ० १८

२. डा० नगेन्द्र एम० ए०, डी० लिट०

स्तंभित, उत्ताल तरंग, गुंजन, प्रकम्पन, स्पंदन, अट्टहास, झूम-झूम, झर-झर, घर्घर नाद, झंकार, निःश्वास, मुखरित, कंपन, धूमिल, प्रशान्त, उच्छृंखल, रोर-हिलोर, उल्लास, चीत्कार, सन-सन, आह, टलमल, गर्जन, चीत्कार, गरजना, गुनगुन, क्रंदन, कलकल, छलछल आदि का प्रयोग किया है जिससे काव्य में संगीत की वृद्धि होती है—

ध्वन्यर्थ-व्यंजक शब्दों का प्रयोग

गरज, गगन के गान! गरज गंभीर स्वरों में,
भर अपना संदेश उरों में, औ' अधरों में!
बरस धरा में, बरस सरित गिरि, सर सागर में
हर मेरा संताप, पाप जग का क्षण भर में।

कविता के भाव से रस-भाव की उपलब्धि संगीत-धर्म और चित्र-धर्म के माध्यम से होती है। 'संगीत काव्य का रस है और चित्र रूप। ध्वनि प्राण है, चित्र शरीर। इस प्रकार काव्य दृश्य द्वारा हमें चित्रकला की ओर ले जाता है और छंद द्वारा संगीत के निकट। अभिव्यक्ति की पूर्णता के लिए दोनों आवश्यक हैं। छंद काव्य का संगीत है। संगीत में जो संयम ताल से आता है वही संयम कविता में छंद से आता है। अन्त्यानुप्रास तो छंद में, स्वाभाविक कथन में एक अनोखा सौन्दर्य पैदा कर देता है। पंत ने तो राग की छोटी-बड़ी नाड़ियों को अन्त्यानुप्रास के नाड़ी-चक्र में केन्द्रित बतलाया है।

भाषा का संगीत धर्म

तुम्हारे छूने में था प्राण, संग में पावन गंगा-स्नान;
तुम्हारी वाणी में कल्याणी त्रिवेणी की लहरों कान।

इसके शब्दालंकार अपनी झंकार से सुकुमार भाव को प्राणों में बैठा देता है और अनुप्रास कविता में नूतन प्राण फूँक देते हैं। भाव की भूषा से छन्द भी भूषित हो गया है। कविता स्वयं अपना भाव अपने शब्दों से व्यक्त कर रही है।'

पंत की भाषा की शक्ति चित्रांकन में है। उसकी भाषा कुछ शब्दों के योग से एक सजीव चित्र उपस्थित कर देने की क्षमता रखती है। पंत ने स्वयं

यह लिखा है कि कविता के लिए चित्रभाषा की आवश्यकता पड़ती है। उसके शब्द सस्वर होने चाहिये जो बोलते हों, सेब की तरह जिनके रस की मधुर लालिमा भीतर न समा सकने के कारण बाहर छलक पड़े, जो अपने भाव को अपनी ही ध्वनि में आंखों के सामने चित्रित कर सके, जो झंकार में चित्र और चित्र में झंकार हों; जिनका भाव-संगीत विद्युत-धारा की भाँति रोम-रोम में प्रवाहित हो सके।' चित्र कई प्रकार के होते हैं। एक उदाहरण लीजिये—

भाषा की चित्रण शक्ति

नीरव संध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम - प्रांत

—इसमें कवि ने 'नीरव संध्या' के द्वारा वातावरण की गंभीरता का चित्र अंकित किया है। इस स्थल पर हम कवि की भाषा में मूर्ति-विधायनी शक्ति पाते हैं। पंत की भाषा की सबसे बड़ी खूबी यह है कि उनका एक-एक शब्द एक मूर्त चित्र उपस्थित करने की शक्ति रखता है—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल !
अपलक अनन्त, नीरव भूतल !

—इसके सभी शब्द सार्थक हैं, उनकी स्वतंत्र सत्ता है और वे अपने अस्तित्व के अनुसार अपना गुण व्यक्त कर रहे हैं। एक शब्द-चित्र देखिये—

दिन की आभा दुलहिन बन आई निशि निभृत शयन पर
वह छवि की छुई-मुई-सी मृदु मधुर लाज से भार भर

—'दुलहिन और छुई-मुई दिन की आभा को अपना अर्थ-सौन्दर्य प्रदान कर उसको सचमुच दुलहिन ही बनाकर छोड़ देती है।'

नीचे हम रेखा-चित्र का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिसमें उच्छ्वास की अपरिमेयता, अनन्त एवं निस्सीमता का भव्य-चित्र उतर आया है—

खींच लो इसको कहीं क्या छोर है,
द्रौपदी का यह दुरंत दुकूल है।

म्लानमुखी लज्जावती नायिका का एक रूप-चित्र देखिये जिसमें प्रत्येक शब्द एक सजीव चित्र के समान जड़े हुए हैं—

अरे वह प्रथम मिलन अज्ञात !
विकम्पित उर मृदु, पुलकित गात
सशंकित ज्योत्स्ना-सी चुपचाप,
जड़ित पद नमित पलक दृग-पात;
पास जब आ न सकोगी प्राण !
मधुरता में सी भरी अजान
लाज की छुई - मुई - सी म्लान
प्रिये प्राणों की प्राण !

गत्यात्मक सौन्दर्य-चित्रण में भी पंत को कमाल हासिल है—

चमक-झमक-मय, मंत्र वशीकर छहर-छहर-मय विष सीकर।
स्वर्ग-सेतु-से इन्द्र - धनुष - धर, काम - रूप घनश्याम अमर।

—इसमें जो चित्र उपस्थित किया गया है, वह सिनेमा के चित्रों के समान नाचने लगता है।

अल्पगतिशील संध्या का एक चित्र देखिये—

ग्रीव तिर्यक्, चम्पक द्युति गात,
नयन मुकुलित, नतमुख जलजात,
देह-छवि छाया में दिन - रात,
कहाँ रहती तुम कौन ?

पंत का एक भाव-चित्र उदाहरणार्थ लीजिए—

किन कर्मों की जीवित छाया उस निद्रित विस्मृति के संग,
आँखमिचौनी खेल रही वह किन भावों का गूढ़ उमंग।

—इसमें कवि ने अमूर्त स्वप्न का मूर्त चित्र अंकित किया है जिसमें उमंग आँखमिचौनी खेल रही है।

चित्र-भाषा का एक और उदाहरण लीजिये जिसमें भारतमाता की मूर्ति खड़ी की गई है—

तीस कोटि संतान नग्न तन,
अर्ध - क्षुधित, शोषित, निरस्त्र जन,
मूढ़, असभ्य, अशिक्षित, निर्धन,

नत मस्तक
तरु-तल-निवासिनी
भारत माता
ग्राम-वासिनी ।

—इसमें प्रयुक्त शब्द एक-एक चित्र उपस्थित करते हैं जो पाठकों के अंतर को स्पर्श करते हैं और करुणा की मन्दाकिनी प्रवाहित करते हैं।

यहाँ पर यह संकेत कर देना आवश्यक है कि काव्य-भाषा को चित्रमय बनाने के लिए लक्षणाशक्ति (जिसमें प्रतीक-योजना भी है), मानवीकरण और विशेषण-विपर्यय का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है।

लक्षणाशक्ति

मुख्यार्थ की बाधा या व्याघात होने पर रूढ़ि या प्रयोजन को लेकर जिस शक्ति के द्वारा मुख्यार्थ से संबंध रखनेवाला अन्य अर्थ लक्षित हो उसे लक्षणा कहते हैं। एक उदाहरण लीजिये—

हाय मेरे सामने ही प्रणय का ग्रन्थिबंधन हो गया, वह नव कमल —
मधुप-सा मेरा हृदय लेकर किसी अन्य मानस का विभूषण हो गया।

—कवि का कथन है कि उसकी प्रणयिनी का परिणय दूसरे से हो गया है। इसमें 'नवकमल' शब्द प्रणयिनी के लिए आया है, जो आरोप्यमाण है, आरोप के विषय का कथन नहीं है। विषयी में विषय का अध्यवसान हो जाने के साध्यावसान है। गुण-धर्म से सादृश्य होने के कारण गौण है। ऐसे ही 'प्रणय' में प्रेमी-युगल का अध्यवसान है। दूसरा उदाहरण लीजिये—

वह मृदु मुकुलों के मुख में भरती मोती के चुंबन।
लहरों के चल करतल में चाँदी के चंचल उडुगन॥

—चाँदनी का मुकुलों पर पड़ना मोती के संसर्ग-सा स्वच्छ उद्भासित होता है। लहरों में उडुगण अपनी स्वच्छता से चाँदी के बने हुए मालूम होते हैं। यहाँ स्वच्छता, प्रशस्तता तथा उज्ज्वलता के साम्य पर ही लक्षणा टिकी हुई है। 'मानवीकरण' और विशेषण-विपर्यय पर अन्यत्र विचार किया जा चुका है।

पंत ने अपनी कविता-कामिनी को सजाने के लिए चित्रमय विशेषणों का संचय किया है। यह कविता को सुन्दर बनाने का अत्यन्त प्रिय साधन है। इनकी कविता में चित्रमय विशेषणों की संख्या पर्याप्त है—

चित्रमय विशेषण

तुमने यह कुसुम-विहग लिवास,
क्या अपने सुख से स्वयं बुना ?
वह स्वर्ण छिपा उर के भीतर
क्या कहती यही सुमन-चेतन ?

—इसमें दो विशेषण है, 'कुसुम-विहग' और 'सुमन-चेतन' जो अत्यन्त ही सार्थक हैं। इसी प्रकार पंत ने बादल को 'मेघदूत की सजल कल्पना,' मारुत को 'नभ की निस्सीम हिलोर,' निर्झर को 'मूक गिरिवर का मुखरित गान,' बापू को 'अस्थिशेष, मांसहीन' आदि कहा है। चित्रमय विशेषणों की सूची पंत की 'नक्षत्र'-शीर्षक कविता में देखने को मिलेगी। चित्रमय विशेषण ही शब्द-चित्रों के आधार हैं।

पंत की प्रवृत्ति मुहावरे तथा लोकोक्ति के प्रयोग की ओर नहीं है। संभवतः वे मुहावरों को बोल-चाल की वस्तु समझते हैं, किन्तु मुहावरे और लोकोक्ति का काव्य में बहुत महत्व है। स्मिथ साहब के शब्दों में 'मुहावरे भाषा के जीवन की स्फूर्ति हैं। ये उसे जीवन भर ही नहीं देते, वरन् सुन्दर भी बनाते हैं। मुहावरों के अभाव से वह अरुचिकर, भद्दी और अशक्त हो जाती है। इन्हें कविता की बहन समझना चाहिये, क्योंकि कविता की भाँति ये भी हमारे विचारों को जीवित संवेदना का रूप देते हैं।' पंत छायावादी कवि हैं, इसलिए इनके मुहावरों के मूल में अधिकतर लाक्षणिक वक्रता सन्निहित रहती है। भावों की मार्मिकता की अभिव्यक्ति सांकेतिकता के कारण मुहावरों के द्वारा अधिक होती है, लेकिन तथ्यों की सूक्ष्म व्यंजना इसके द्वारा नहीं हो सकती। पंत की भाषा में मुहावरेदारी और कहावतबाजी नहीं के बराबर है, किन्तु जहाँ-तहाँ जो भी प्रयोग दीखते हैं, वे सुन्दर बन पड़े हैं। कुछेक उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

मुहावरे और लोकोक्ति

(क) प्रभा के पलक भार, उर चीर।

(ख) आँखों से मत बिन्धवाओ।

(ग) इन नयनों को समझाओ,
इन्हें न लड़ना सिखलाओ।

(घ बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

(ङ) बात बात में, तूल तोम सा
ब्योम विटप से झटक, झकोर। (बादल)

(च) अरे, वे अपलक चार नयन आठ आँसू रोते निरुपाय।

(छ) भग्न उर पर भूधर-सा हाय! सुमुखि, धर देती है साकार!

(ज) वह छवि की छुई मुई-सी, मृदु मधुर लाज से मर-मर!

(झ) फेनिल मोती से मुँह भरने।

(ञ) आखों ही में घूमा करता वह उसकी आँखों का तारा।

(ट) अह आँखों में नाचा करती उजड़ गई जो सुख की खेती।

(ठ) साँप लोटते, फटती छाती।

(ड) यह सोच हृदय उठता पसीज।

(ढ) फटी बिंबाई से हैं एड़ी।

(ण) जमींदार पर फब्ती कसता।

(त) पिघल पड़ते हैं पाहन-दल। कुलिश भी हो जाता कोमल॥

(थ) कभी चौकड़ी भरते मृग-से। भू पर चरण नहीं धरते॥

(द) कभी हवा में महल बनाकर सेतु बाँधकर कभी अपार।

(ध) तारकों से पलकों पर कूद नींद हर लेते नव-नव भाव।

(न) प्रात का सोने का संसार जला देती संध्या की ज्वाल!

(प) गूँजते हैं सबके दिन चार सभी फिर हाहाकार!

(फ) गँवाने आए हैं अज्ञान गँवा कर पाते स्वीय स्वरूप!

(ब) सुख-दुख की खेल मिचौनी खोलो जीवन अपना मुख

(भ ये नाप रहे निज घर का मग।

(म) विदा हो गई साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर।

(य) यह अनोखी रीति है क्या प्रेम की,
जो अपांगों से अधिक है दीखता,
दूर होकर और बढ़ता है तथा
वारि पीकर पूछता है घर सदा।

—इसमें 'पानी पीकर पूछनी, नाहीं भलो विचार' का भावपूर्ण स्वरूप अभिव्यक्त हुआ है।

(र) बाल-रजनी-सी अलक थी डोलती
भ्रमित हो शशि के बदन के बीच में,
अचल रेखांकित कभी थी कर रही,
प्रमुखता मुख की सुछवि काव्य में।

—इसमें अंग्रेजी के मुहावरों का व्यंजनापूर्ण प्रयोग हुआ है।

(ल) किरणें स्वर्णों के रंग भरतीं!

(व) पिला-पिला जिसको नयनों की
तूने प्यास बढ़ाई है।

(श) फूटता नभ में स्वर्ण-विहान।

सूक्तियाँ पंत की कविताओं में मुहावरों की बंदिश नहीं मिलती है, लेकिन कुछ ऐसी सूक्तियाँ हैं जो काफी मर्मस्पर्शी हैं, यथा—

(क) मृतकों के हैं मृतक, जीवितों का है ईश्वर। [ताज]

(ख) पूर्ण तंत्र मानव, वह ईश्वर
मानव का विधि उसके भीतर। [चींटी]

(ग) मनुज प्रेम से जहाँ रह सके मानव ईश्वर। [दो लड़के]

(घ) चरण - कमल में अर्पण कर मन
रज-रंजित कर तन, ...

(ङ) नित्य कर्म-पथ पर तत्पर धर
निर्मल कर अंतर

(च) श्वास में छिपा हुआ उच्छ्वास !
और उच्छ्वासों ही में श्वास !

(छ) शैशव ही हैं एक स्नेह की वस्तु, सरल कमनीय।

(ज) हास में शैशव का संसार;

(झ) पल पल परिवर्तित प्रकृति - वेश।

(ञ) है लेन - देन ही जग - जीवन।

(ट) जग-जीवन में है सुख-दुख सुख-दुःख में है जग-जीवन

(ठ) वियोगी होगा पहला कवि आह से उपजा होगा गान;
उमड़ कर आँखों से चुपचाप बही होगी कविता अनजान !

(ड) खोलता इधर जन्म लोचन मूँदती, उधर मृत्यु क्षण, क्षण।

(ढ) बिना दुख के सब सुख निस्सार बिना आँसू के जीवन भार;

(ण) आज का दुख कल का आह्लाद और कल का सुख आजविषाद;

(त) जगत-जीवन का अर्थ विकास, मृत्यु, गति जीवन-क्रम का ह्रास।

(थ) निष्ठुर है जड़ प्रकृति, सहज भंगुर जीवित जन,
मानव को चाहिए यहाँ मनुजोचित साधन।

(द) सुख दुःख न कोई सका भूल।

(ध) विज्ञान ज्ञान का अन्वेषण।

(न) शाश्वत है गति, शाश्वत संगम।

(प) दुख - सुख की निशा-दिवा में सोता-जगताजग-जीवन।

(फ) तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन।

(ब) आकांक्षा का उच्छ्वसित वेग मानता नहीं बंधन, विवेक !

(भ) शाश्वत जीवन-नौका का विहार।

पंत शैलीकार हैं, उन्होंने शैली के अन्य साधनों का उपयोग किया है और वे हैं—आश्चर्य वाक्य (Epigrams), संतुलित वाक्य और प्रसंग-गर्भित संदर्भ। 'आश्चर्य वाक्य' के उदाहरण देखिये—

शैली-सौन्दर्य के अन्य साधन

(क) बिना दुःख के सब सुख निस्सार
बिना आँसू के जीवन भार। (नत्य जग)

(ख) जग पीड़ित है अति दुख से
जग पड़ित रे अति सुख से। (सुख-दुःख)

(ग) गवाँ कर पाते स्वीय स्वरूप। (नित्य जग)

(घ) तेरी मधुर मुक्ति ही बंधन। (प्रार्थना)

(ङ) जाता जीवन से जीवन। (गुंजन, पृ० १४)

'संतुलित वाक्य' का उदाहरण लीजिये—

(क) मूंदती नयन मृत्यु की रात, खोलती नव जीवन की प्रात।
(नित्य जग)

(ख) सागर की लहर-लहर में है हास स्वर्ण-किरणों का
सागर के अंतस्तल में, अवसाद अवाक कणों का!

(ग) तरल जलनिधि में हरित विलास,
शान्त अंबर में नील विकास। (नित्य जग)

प्रसंग-गर्भित अवतरण' देखिये—

(क) खींच लो इसको, कहीं क्या छोर है?
द्रौपदी का यह दुरन्त दुकूल है!

(ख) घूमता है सम्मुख वह रूप
सुदर्शन हुए सुदर्शन चक्र!

(ग) पटक रवि को बलि-सा पाताल
एक ही वामन पग में—
लपकता है तमिस्र तत्काल,
—धुएँ का विश्व विशाल। (आँसू से)

(घ) चमक-झमक मय मंत्र वशीकर
छहर-छहर मय विष सीकर,
स्वर्ग सेतु-से इन्द्रधनुषधर,
कामरूप घनश्याम अमर। (बादल)

(ङ) कहो, कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई ?
हाय ! तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि ! नल-सा निष्ठुर कोई !

(च) तुम पथ - श्रांता द्रुपद-सुता-सी
कौन छिपी हो अलि ! अज्ञात
तुहिन-अश्रुओं से निज गिनती
चौदह सुखद वर्ष दिन रात ?

(छ) सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर ;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के प्रिय जीवनधर ; (बादल)

(ज) दमयंती - सी कुमुद - कला के
रजत-करों में फिर अभिराम
स्वर्ण-हंस-से हम मृदु ध्वनि कर,
कहते प्रिय - संदेश ललाम । (बादल)

(झ) तुम नृशंस नृप-से जगती पर चढ़ अनियंत्रित ;
करते हो संसृति को उत्पीड़ित, पद-मर्दित ;

(ञ) लहरों के घूंघट से झुक-झुक
दशमी का शशि निज तिर्यक मुख
दिखलाता, मुग्धा-सा रुक-रुक । (नौका विहार)

(ट) सूर सिन्धु तुलसी के मानस,
मीरा के उल्लास अजान ।

(ठ) विश्व के अक्षय-वट की डाल । (गुंजन, पृ० ८३)

(ड) नाग - दन्त - नत इन्द्रधनुष - पुल
करती तुम नित पार । (गुंजन, पृ० ६५)

पंत की भाषा में सवाक्-चित्र के समान नाटकीयता भी मिलती है।

नाटकीयता

नाटकीयता की दृष्टि से 'नौका-विहार' और 'एक तारा'-शीर्षक कविता द्रष्टव्य है। प्रमाण-स्वरूप कुछ संदर्भों को देखिये—

सिकता की सस्मित सीपी पर मोती की ज्योत्सना रही विचर,
लो पालें चढ़ीं उठा लंगर।
मृदु मन्द-मन्द, मंथर-मंथर, लघु तरणि, हँसिनी-सी सुन्दर,
तिर रही, खोल पालों के पर।

—नौका-विहार

या

गुंजित अलि निर्जन अपार, मधुमय लगता घन-अंधकार
हल्का एकाकी व्यथा-भार!
जगमग जगमग नभ का आँगन, लद गया कुंद-कलियों से घन,
वह आत्मा और यह जग-दर्शन!

—एक तारा

पंत ने अंग्रेजी ढंग पर कहीं-कहीं शब्दों का संक्षिप्त प्रयोग किया है।

शब्दों का संक्षिप्त प्रयोग

इसके पीछे कवि की संगीत-सौंदर्य-प्रियता कार्य करती है और कहीं कहीं मात्रा की पूर्ति के निमित्त। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(क) प्रिय विषाद यह अपना
प्रिय प्रिय, आह्लाद रे अपना।

(ख) वह, वह नहीं अनिर्वच,
जग उसमें, वह जग में लय,

(ग) भर अपना संदेश उरों में, औ अधरों में;

(घ) प्रेम औ' आँसू के कन!
आह मेरा अक्षय धन,
अपरिमित सुन्दरता औ' मन!

यह तो विदित ही है कि काव्य के रस को उत्कृष्ट बनाने में गुण और रीति का बहुत बड़ा हाथ है। गुण वे ही हैं जो रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अचल है। माधुर्य, ओज और प्रसाद नामक तीन गुण हैं जो रसों में प्रतीत होते हैं। पंत की कविता में तीनों गुण पाये जाते हैं।

गुण

माधुर्य गुण :

बिन्दु में भी तुम सिन्धु अनन्त, एक सुर में समस्त संगीत
एक कलिका में अखिल वसंत धरा पर थीं तुम स्वर्ग पुनीत।

ओज गुण :

बजा लोहे के दंत कठोर नचाती हिंसा जिह्वा लोल;
भृकुटि के कुण्डल वक्र मरोर फुँहुकता अंध रोष फन खोल।
बहा नर शोणित मूसलधार रुण्ड - मुण्डों की कर बौछार
प्रलय घन सा घिर भीमाकार गरजता है दिगंत-संहार
छेड़ स्वर शस्त्रों की झंकार महाभारत गाता संसार।

प्रसाद गुण :

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि मुझे भी अपना मीठा गान
कुसुम के चुने कटोरों से करा दो ना कुछ - कुछ मधुपान।

यह तो ठीक है कि प्राचीन आचार्यों ने तीन गुण माने हैं, पर कुछ छायावादी कविताएँ मिलती हैं जिनमें इन तीनों गुणों का अभाव है, जैसे—

कँप - कँप हिलोर रह जाती रे मिलता नहीं किनारा।
बुद् - बुद् विलीन हो चुपके पा जाता आशय सारा।

शब्दार्थ-शरीर काव्य के आत्मभूत रसादि का उपकार करने—प्रभाव बढ़ानेवाली पदों की जो विशिष्ट रचना है, उसे 'रीति' कहते हैं। कॉलरिज ने इसी को उत्तम शब्दों की उत्तम रचना कहा है। उत्तम रीति वही है जिसमें भावों की अभिव्यक्ति के लिए चुने हुए शब्द हों। इसीलिए पेटर ने लिखा है कि जो तुम कहना चाहते हो; सरल, सीधे और ठीक तरह से, व्यर्थ बातों को छोड़कर कहो। रीति अनेक

गुण

हैं। मम्मट ने इसी रीति को वृत्ति की संज्ञा दी है। रीति या वृत्ति का आधुनिक नाम शैली है। विभिन्न रीति का उदाहरण देखिये—

वैदर्भी रीति या उपनागरिका वृत्ति :

जाओ, मिलो तुम सिन्धु से, अनिल, आलिंगन करो तुम गगन का,
चन्द्रिके, चूमो तरंगों के अधर, उडुगनो! जाओ पवन-वीणा बजा!
पर हृदय, तू सब भाँति कंगाल है।

गौड़ी रीति या परुषा वृत्ति :

गूँजे जय-ध्वनि से आसमान—सब मानव-मानव हैं समान
निज कौशल-मति-इच्छानुकूल, सब कर्म-निरत हों भेद भूल।
बन्धुत्व भाव ही विश्व-मूल सब एक राष्ट्र के उपादान।

पांचाली रीति या कोमल वृत्ति :

इस अभिमानी अंचल में फिर अंकित कर दो विधि अकलंक,
मेरा छीना बालापन फिर करुण लगा दो मेरे अंक।

व्याकरण के बंधन से मुक्ति

द्विवेदीयुगीन कविता व्याकरण के नियमों पर आधारित थी, पर पंत ने व्याकरण की मान्यताओं में परिवर्तन किया है। इस संबंध में कवि ने लिखा है कि 'मैंने अपनी रचनाओं में कारणवश, जहाँ-कहीं व्याकरण की लोहे की कड़ियाँ तोड़ी हैं, यहाँ उसके विषय में कुछ लिख देना उचित समझता हूँ। मुझे अर्थ के अनुसार ही शब्दों को स्त्रीलिंग-पुलिंग मानना अधिक उपयुक्त लगता है। जो शब्द केवल अकारान्त-इकारान्त के अनुसार ही पुंलिंग अथवा स्त्रीलिंग हो गए हैं, और जिनमें लिंग का अर्थ के साथ सामंजस्य नहीं मिलता, उन शब्दों का ठीक-ठीक चित्र ही आँखों के सामने नहीं उतरता और कविता में उनका प्रयोग करते समय कल्पना कुंठित-सी हो जाती है। वास्तव में जो शब्द स्वस्थ तथा परिपूर्ण क्षणों में बने हुए होते हैं उनमें भाव तथा स्वर का पूर्ण सामंजस्य मिलता है, और कविता में ऐसे ही शब्दों की आवश्यकता भी पड़ती है। मुझे तो ऐसा जान पड़ता है कि यदि संस्कृत का 'देवता' शब्द हिंदी में आकर पुंलिंग न हो गया होता तो स्वयं देवता ही हिन्दी कविता के

विरुद्ध हो गए होते। 'प्रभात' और प्रभात के पर्यायवाची शब्दों का चित्र मेरे सामने स्त्रीलिंग में ही आता है, चेष्टा करने पर भी मैं कविता में उनका प्रयोग पुंलिग में नहीं कर सकता। यथा—

"सौ - सौ साँसों में पत्रों की
उमड़ी हिम जल सस्मित भोर" के बदले
'.....उमड़ा हिम जल सस्मित भोर'—तथा
'रुधिर से फूट पड़ी रुचिमान
पल्लवों की यह सजल प्रभात' के बदले
रुधिर से फूट पड़ा रुचिमान
पल्लवों का यह सजल प्रभात'—

इसी प्रकार अन्य स्थानों में भी, 'प्रभात' आदि को पुंलिंग मान लेने पर मेरे सामने प्रभात का सारा जादू, स्वर्ण, श्री, सौरभ, सुकुमारता आदि नष्ट-भ्रष्ट हो जाते हैं, उनका चित्र ही नहीं उतरता। 'बूँद', 'कम्पन' आदि शब्दों को मैं उभय लिंगों में प्रयुक्त करता हूँ। जहाँ छोटी-सी बूँद हो वहाँ स्त्रीलिंग, जहाँ बड़ी हो वहाँ पुंलिंग; जहाँ हलकी-सी हृदय की कम्पन हो वहाँ 'स्त्रीलिंग' —जहाँ जोर-जोर से धड़कने का भाव हो वहाँ पुंलिंग।"[1] पंत ने व्याकरण की अपेक्षा भाव को अधिक महत्त्व दिया है। लिंग-विपर्यय का कुछ उदाहरण लीजिए—

(क) करुणार्द्र विश्व की गर्जन बरसाती नव - जीवन कण!
(ख) खिल उठती आँगन में अवदात कुंद कलियों की कोमल प्रात।
(ग) बालिका मेरी मनोरम मित्र थी।
(घ) अपने उर की सौरभ से।
(ङ) क्षुब्ध जल-शिखरों को जब बात सिन्धु में; मथकर फेनाकार।
(च) स्वर्ण सुख, श्री, सौरभ में भोर, विश्व को देती है जब बोर।
(छ) कहाँ नहीं है स्नेह? श्वास-सा सबके उर में

---

१. पल्लव का 'विज्ञापन', पृ० ख-ग

(ज) आयी सोने की नयी प्रात।

(झ) कब आयेगा मिलन प्रात उमड़ेगी सुख हिल्लोल।

(ञ) छिपी स्तर में एक पावक रक्त कण-कण चूम।

(ट) हा! मेरे बचपन से कितने बिखर गये जग के शृंगार
जिनकी अविकल दुर्बलता ही थी उसकी शोभालंकार;
जिनकी निर्भयता विभूति थी सहज सरलता शिष्टाचार
औ' जिनकी अबोध पावनता थी जग के मंगल की द्वार।

(ठ) खुले पलक फैली सुवर्ण छवि।

(ड) हृदय के सुरभित सांस।

(ढ) पल्लवों की यह सहज प्रभात।

(ण) धधकती है जलदों से ज्वाला।

इसमें 'शोभालंकार' और 'द्वार' का लिंग 'दुर्बलता' तथा 'पावनता' के अनुसार कवि ने रखा है।

सुतरां हम देखते हैं कि पंतजी ने डर, मोर, प्रात, गर्जन आदि का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है और श्वास, बात का पुंलिंग में। इस प्रकार के दोष च्युत-संस्कार कहे जाते हैं। इस दोष के अन्तर्गत वचन-दोष, सन्धि-दोष, समास-दोष और लिंग-दोष रहता है। इन सबका उदाहरण देखिये—

समास-दोष :

सुरभि से अस्थिर मरुताकाश।

—होना चाहिये 'मरुदाकाश'।

सन्धि-दोष :

क्यों प्राणोद्वेलित हैं चंचल।

—यहाँ प्राण और उद्वेलित का अलग-अलग रहना ही अनिवार्य है।

विभक्ति दोष :

(क) धधकती है जलदों से ज्वाल (में ज्वाल)

(ख) सजग शशक नभ को चरते (नभ में)

शब्द-दोष

अब हम पंत के काव्य से कुछ और शब्दगत दोष का उदाहरण प्रस्तुत करते हैं—

(१) अश्लील शब्द-दोष :

(क) धिक् मैथुन-आहार-यंत्र

(ख) मधुरता में मरी-सी अजान।

(ग) खींचती उबहनी वह, बरबस
चोली से उभर-उभर कसमस
खिचते संग युग रस-भरे कलश;—
जल छलकाती,
रस बरसाती,
बलखाती वह घर को जाती
सिर पर घट
उर पर धर पट

(२) अधिक पद शब्द-दोष :

(अ) स्थित निज स्वरूप में चिर नवीन

(आ) तुम अदृश्य अस्पृश्य अप्सरी
निज सुख में तल्लीन।

(३) कथितपद शब्द-दोष :

इस म्लान मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति की रेखा

(४) अस्थान पदता शब्द-दोष :

(क) मेरे जीवन की एक प्यास, होकर सिकता में एक बूँद।

(ख) तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन।

(५) क्रिया-दोष :

(क) झलका हास कुसुम अधरों पर हिल मोती का सा दाना।

(ख) खिलने लगा नवल किसलय वह

(ग) बरसाती अमृत-भरी दृष्टि
(घ) निश्वासों का पवन प्रचारो।

अर्थदोष

अर्थदोष-सम्बन्धी कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

किसने रे क्या-क्या चुने फूल
जग के छवि-उपवन से अकूल
इसमें कलि, किसलय, कुसुम शूल।

शैली की दृष्टि से पंत की कविताओं में अनेक प्रणालियों को पाते हैं—

शैली की दृष्टि से

कहीं मैं शैली, कहीं वर्णनात्मक, कहीं उद्बोधनात्मक और कहीं विचारात्मक आदि हैं। 'मैं-शैली' का उदाहरण 'गीति-काव्य और पंत'-शीर्षक निबन्ध में काफी हैं। वर्णनात्मक शैली का तात्पर्य्य है कथात्मक प्रसंगों और दृश्यों के वर्णन से। पंत की 'वे आँखें'-शीर्षक कविता इसी शैली में लिखी गई है। यह कविता 'ग्राम्या' नामक संग्रह में संकलित है जिसकी प्रथम पंक्ति है—'अन्धकार की गुहा-सरीखी उन आँखों से डरता है मन।' वर्णनात्मक शैली में 'ग्रंथि' की भी रचना हुई है। उद्बोधनात्मक शैली के अन्तर्गत पंत की 'भारतमाता' 'राष्ट्रगान' 'उद्बोधन'-शीर्षक कविताएँ है। विचारात्मक शैली में पंत की वे कवितायें हैं जिनमें विचारों का प्रतिपादन किया गया है। विचारात्मक-शैली में लिखित कविताओं का उदाहरण 'युगवाणी' और ग्राम्या' में पर्याप्त है। व्यंग्यात्मक शैली में भी पंत ने कविताएँ लिखी हैं, जैसे—

राम, राम
हे ग्राम्य देवता, यथा-नाम!
शिक्षक हो तुम, मैं शिष्य, तुम्हें सविनय प्रणाम
विजया, महुआ, ताड़ी गाँजा पी सुबह-शाम
तुम समाधिस्थ नित रहो, तुम्हें जग से न काम।
पंडित, पंडे, ओझा, मुखिया और साधु-संत
दिखलाते रहते तुम्हें स्वर्ग-अपवर्ग-पंथ

जो था, जो है, जो होगा—सब लिख गये ग्रंथ
विज्ञान ज्ञान से बड़े तुम्हारे मंत्र-तंत्र !

× × ×

राम, राम
हे ग्राम-देव, लो हृदय थाम,
अब जन-स्वातंत्र्य-युद्ध की जग में धूमधाम !
उद्यत-जनगण युग क्रान्ति के लिए बाँध लाम,
तुम रूढ़ि-रीति की खा अफीम, लो चिर विराम !

(ग्राम्या, ग्रामदेवता)

सिंहावलोकन

पंत हिन्दी के कोमल कवि हैं और छायावाद के उन्नायकों में हैं। उनकी कविता परिपूर्ण क्षणों की वाणी है जिसके हेतु उसमें भाव और भाषा का स्वरक्य है। पंत ने भाषा के क्षेत्र में भी अपनी कलात्मक अभिरुचि का प्रदर्शन किया है। अगर पंत को हम छायावादी कविता की भाषा का सूत्रधार कहें तो अत्युक्ति नहीं होगी। भाषा के सम्बन्ध में कवि की अपनी मान्यताएँ हैं जिसके फलस्वरूप उन्होंने हिन्दी कविता को अनेक नये शब्द दिये हैं। सच तो यह है कि पंत की भाषा में धीरे-धीरे विकास होता गया है जिसके कारण भाषा-वीणा में सुघरता, मधुरता, मूर्तिमत्ता, लाक्षणिकता संगीतात्मकता एवं क्लिष्टता आ गई है। कवि का भाषा पर व्यापक और विस्तृत अधिकार है। अतएव सर्वत्र खड़ी बोली के अत्यन्त शिष्ट और प्रौढ़ स्वरूप का दर्शन होता है। हाँ, कहीं-कहीं शब्द-बाहुल्य के कारण भाषा श्लथ हो गई है। एक शब्द में हम कह सकते हैं कि पंत की काव्य-भाषा सौन्दर्यपूर्ण एवं सुकुमार है जिसके पढ़ने से हृदय मधुर रस से सिक्त हो उठता है।

पंत की छन्द-योजना

'काव्य-रचना का प्रकार (अर्थात् छंद) प्रतिपाद्य विषय के अनुकूल होना चाहिए।[1]

कविता और छन्द

कविता और छन्द का घनिष्ठ संबंध है। कविता में छन्दों का उपयोग नाद-सौन्दर्य के लिए होता है; क्योंकि आदिकाल से ही कविता और संगीत के बीच संबंध बना रहा है। इसीलिए सुप्रसिद्ध आलोचक ग्रीनिंग लैम्बॉर्न ने दोनों के बीच अंतर नहीं माना है और स्पष्ट शब्दों में कहा है कि संगीत कविता का जनक एवं उसका एक आवश्यक अंग है।[2] एस० टी० कोलरिज ने कविता को विचार मानते हुए भी सूखा नहीं, नीरस नहीं अपितु संगीतमय होना बतलाया है।[3] सुतरां यह स्पष्ट है कि कविता का प्राण है भाव और उसका शरीर है छंद। शरीर के अभाव में प्राण की अवस्थिति हेतु ही कविता कर्ण-सुखद होती है और साथ-साथ वह भावोन्मेष भी करती है। कवि भावों के अभीप्सित प्रभाव के लिए, कर्णप्रिय बनाने के लिए छंदों का आश्रय ग्रहण करता है। यह अनुभव से सिद्ध है कि आल्हाकाण्ड की पंक्तियों के श्रवणमात्र से मनुष्य की भुजाओं में एक अजीबोगरीब जोश आ जाता है और मर्सिया से आँखें गीली हो उठती हैं! इसका मूल कारण है छंदों की संगीतात्मकता। छंदों में कही बातों

1 "Form of Composition...should be suitable to the subject-matter..." [W. Basil Worsfold; Judgement in Literature, Page 79]

2. "Poetry was born of music and is a form of music"—[E. A. Greening Lamborn]

3. "Musical Thought"—S. T. Coleridge.

का प्रभाव तीव्रतर होता है। इसीलिए कवि छंदों के साँचे में अपनी भावनाओं को ढालता है जिससे सरगम फूट पड़ते हैं। यही कारण है कि कविता की पंक्तियों में लय (Rhythm) का अस्तित्व रहता है। हिन्दी कविता भी एक प्रकार का लय पाता है जो एक शुभ लक्षण है। इतना ही नहीं कविता के अन्तस में एक विचित्र संगीत समाहित रहता है। इस संबंध में सी० हर्नहॉन की उक्ति द्रष्टव्य है : "कविता में एक प्रकार के संगीत का अस्तित्व पाया जाता है जो बाजों अथवा कंठ गीतों में नहीं पाया जाता। इस बात को कविगण भी—यदि वह संगीत का बिलकुल ही ज्ञाता न हों—स्वीकार कर लेंगे। कविता में भी एक प्रकार के संगीत का अस्तित्व पाया जाता है जो गानेवाले संगीत तथा बजाने वाले संगीत से भिन्न होता है। इस प्रकार का संगीत कवि के केवल शब्दों में ही पाया जाता है।"[४] अतः जो कवि शब्दों के संगीत को समझता है, वह अपनी कविता में प्राण फूँक देता है; जो इसके मर्म से अनभिज्ञ हैं, वे इसका प्रयोग कदापि नहीं करते।

छंद की प्राचीनता

छन्द का प्रचलन प्राचीन काल से है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त के नवें पद्य में स्पष्ट लिखा है कि छन्दों की उत्पत्ति स्वयं पुरुष (ईश्वर) से हुई है। तैत्तरीय संहिता (७,१,४) में उल्लिखित है कि सृष्टिकर्त्ता ने सृष्टि के प्रारंभ में ही छंदों को जन्म दिया था। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि छंदों का प्रयोग सम्भवतः ऋग्वेद से भी अत्यन्त प्राचीन है क्योंकि ऋग्वेद के छन्द छान्दस रचना की पर्याप्त विकसितावस्था के द्योतक हैं। चाहे जो भी हो, इतना तो स्वीकार करना ही पड़ता है कि प्रारंभ से लेकर अब तक छन्दों का प्रयोग निरन्तर हो रहा है। छन्द ज्ञान

4. There is other music in poetry than that which is vocal or instrumental. Poets, if not at all musicians, will acquiesce when I say that the music which is produced by instrumentality of words is different in kind ,is no less a degree true music than the music which is sung or played. [Six famous living poets :: C. Hernhon, P. 220]

का मुख्य अंग है। वेद-पाठ में छन्दों की बड़ी आवश्यकता पड़ती है। अतः आचार्य सायणाचार्य ने लिखा है कि जो बिना छन्द-ज्ञान के वेद-पाठ करता है, वह पाप का भागी है। वेद के छः मुख्य अंग हैं: छन्द, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष और निरुक्त। वेद पुरुष माना गया है और छन्द उसका चरण, निम्नलिखित श्लोक से स्पष्ट है ::

छन्दः पादौ तु वेदस्य, हस्तो कल्पोऽथ पठ्यते।
ज्योतिषामयनं चक्षुर्निरुक्तं श्रोत्रमुच्यते॥
शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य, मुखं व्याकरणम् स्मृतं।
तस्मात् सांगमधीत्यैव, ब्रह्मलोके महीयते॥

अतः यह विद्या का एक अनिवार्य अंग है और 'मुण्डक' नामक उपनिषद् के अनुसार यह अपराविद्या है। पिंगल नामक संस्कृत में छन्दों का एक विशेष ग्रंथ है जिसमें वैदिक और लौकिक दोनों प्रकार के छन्दों का वर्णन है। महर्षि पिंगल इस शास्त्र के आदि आचार्य माने जाते हैं। वृत्तरत्नाकर के रचयिता ने पिंगलाचार्य का नाम आदर के साथ लिया है :—

पिंगलादिभिराचार्यैं यदुक्तं लौकिकै द्विधा।
मात्रावर्णविभेदेन छन्दस्तदिह कथ्यते॥

छंद और उसका स्वरूप

'छन्द' शब्द का स्मरण करते ही 'बंधन' शब्द मानस-पटल पर नाचने लगता है। यह उसका कोशगत अर्थ है और काव्यशास्त्र के पारिभाषिक शब्द 'छंद' में भी उसका यही अर्थ गृहीत है। कुछ लोग इस बंधन को बाधा मानते हैं पर सच तो यह है कि यह कविता की गति को अवरुद्ध न कर एक व्यवस्था प्रदान करता है, इस संबंध में कवि पंत का मत ध्यातव्य है......"कविता हमारे प्राणों का संगीत है, छंद हृत्कम्पन; कविता का स्वभाव ही छंद में लयमान होना है। जिस प्रकार नदी के तट अपने बंधन से धारा की गति को सुरक्षित रखते हैं, जिनके बिना वह अपनी ही बंधनहीनता में प्रवाह खो बैठती है, उसी प्रकार छंद भी अपने नियंत्रण से राग को स्पन्दन-कम्पन तथा वेग प्रदान कर, निर्जीव शब्दों के रोड़ों में एक कोमल, सजल, कलरव भर उन्हें सजीव बना

देते हैं।"[५] वस्तुतः बंधन को कोई भी गले लगाना नहीं चाहता, सब उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। छंद ही कविता को गद्य से पृथक करनेवाला धर्म है, वह लय का बाधक नहीं प्रत्युत् साधक है। इससे कविता में चमक आ जाती है। सुतरां यह 'बंधन' सर पर चढ़ाने योग्य है। पं० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' ने छंद के 'बंधन' को 'कृत्रिम बंधन'[६] माना है किन्तु यह बंधन है नहीं। आज मुक्त छंद या स्वच्छन्द छंद का विशेष प्रयोग है, चारों ओर इसी की धारा प्रवाहित है। छायावादी कवियों ने इस प्रकार के अनेक प्रयोग किये हैं। कवि पंत ने भावों की तीव्रता को अभिव्यक्त करने के लिए छंदों की पंक्तियों की मात्राओं में कहीं कमी की है और कहीं वृद्धि। 'पल्लव' की भूमिका में इसका स्पष्ट उल्लेख है। डा० भोलानाथ के शब्दों में "निराला के द्वारा प्रचलित किया गया मुक्त छंद भी छंद संबंधी नवीन परिवर्तनों में माना जाता है। यह १९२६ ई० के काफी पहले से प्रारंभ हो गया था। इस युग में इसका प्रचार बड़ी तेजी से हुआ है। प्रगतिवादी कविताओं में से अधिकांश इसी मुक्त छंद में लिखी गयी है। प्रयोगवादी कविताओं में भी मुक्त छंद की ही प्रधानता मिलती है। मुक्त छंद का सफलतापूर्वक निर्वाह बहुत कम कवि कर पाये हैं। मुक्त छंद के लिखते समय लेखक के सामने तीन प्रकार की कठिनाइयाँ आती हैं। पहली कठिनाई यह है कि मुक्त छंद के लिए कोई बाहरी अनुशासन या बंधन नहीं है। अनुशासन जो कुछ है उसका आधार कलाप्रियता या अनुभूति है। अस्तु, असंतुलित अवस्था में भावावेश लेखक के मुक्त छन्द को—अर्थात् काव्य के बाहरी स्वरूप को भी—सामान्य कोटि का कर सकता है। दूसरी कठिनाई यह है कि मुक्त छन्द के विधान में सार्वांगीनता नहीं है। भाव लय—जिस पर मुक्त छन्द आधारित होता है—व्यक्ति की अपनी-अपनी भावानुभूति या संवेदनात्मकता के अनुसार भिन्न-भिन्न प्रकार का हो सकता है। तीसरी कठिनाई यह है कि मुक्त छन्द का सिद्धांत सब लोग नहीं जानते हैं। परम्परा

५. पल्लव (भूमिका), पाँचवां संस्करण, पृष्ठ २१।
६. जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धांत, पृष्ठ १३९।

छन्दबद्ध रचना को कविता और स्वरलय पर आधारित माधुर्य को संगीत कहती है। इस भिन्नता के कारण मुक्त छन्द का काव्यत्व और संगीत सर्वप्रिय एवं सर्वसुलभ नहीं हो पा रहा है। सामान्य जनता तो इसे बिलकुल ही नहीं समझती। सब जानते हैं कि मुक्त छन्द का प्रणयन सरल नहीं है किन्तु मुक्त छन्द का प्रचार इतनी तेजी से बढ़ रहा है कि आश्चर्य होता है।"[७] इस प्रकार की कविता का मूलाधार है लय, उदाहरणस्वरूप पंत रचित काव्य-पंक्तियाँ देखिये :—

	मात्रा	वर्ण
अचल पलकों में सुछवि उतार	१६	१३
पान करता हूँ रूप अपार	१६	११
पिघल पड़ते हैं प्राण	१२	६
उबल चलती है दृग जलधार	१६	१३

उपर्युक्त पंक्तियों में न तो मात्राओं की संख्या एक है और न वर्णों की। पर इस छन्द का आधार है लय, अतः यह लयात्मक छन्द कहा जाता है।

अनुक्रमणीकारों के अनुसार ऋग्वेद में सात प्रधान छन्दों का प्रयोग हुआ है [८]-गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुभ् और जगती। पर बाद में ये छन्द छन्दोजातियाँ बन गए। संस्कृत-काल में प्रस्तार के द्वारा छन्दों की संख्या लाखों तक पहुँच गयी। हिन्दी में यह विस्तार भानु कवि रचित 'छन्द-प्रभाकर' में देखा जा सकता है। हिन्दी में अधिकांश छन्द प्राकृत से

---

७. हिन्दी साहित्य (१९२६-१९४७ ई०), पृष्ठ ४१९। विशेष अध्ययन के लिए डा० श्रीकृष्णलाल लिखित "आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास" (पृष्ठ १२२ से १३६) पढ़ें।

८. "तस्मात् सप्त चतुरुत्तराणि छन्दांसि.........इति ह्याम्नातम्"। "गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहती पंक्तित्रिष्टुब्जगतीत्येतानि सप्त छन्दांसि। चतुर्विंशत्यक्षरा गायत्री। ततोऽपि चतुर्भिरक्षरैरधिकाष्टाविंशत्यक्षरोष्णिक्। एवमुत्तरोत्तराधिका अनुष्टुबादयोऽवगन्तव्याः' —सायण।

आये हैं। छन्दों की संख्या निश्चित नहीं है और सारा विस्तार-प्रस्तार खिलवाड़ मात्र है। प्रयोग में कुछ ही छन्द हैं और हिन्दी कवियों द्वारा वे ही अपनाये गए हैं।

कवि पंत की कविताओं के छन्द मात्रिक हैं, न कि वर्णिक। वर्णिक छन्द की ओर कवि की अभिरुचि नहीं है क्योंकि कविता का प्रकृत सौंदर्य इससे दब जाता है। 'पल्लव' की भूमिका में पंत ने लिखा है : "हिन्दी का संगीत केवल मात्रिक छन्दों ही में अपने स्वाभाविक विकास तथा स्वास्थ्य की सम्पूर्णता प्राप्त कर सकता है, उन्हीं के द्वारा उसमें सौन्दर्य की रक्षा की जा सकती है। वर्ण-वृत्तों की नहरों में उसकी धारा अपना चंचल नृत्य, अपनी नैसर्गिक मुखरता, कल-कल्-छल् छल् तथा अपने क्रीड़ा, कौतुक, कटाक्ष एक साथ ही खो बैठती, उसकी हास्य-दृप्त सरल मुख-मुद्रा गंभीर, मौन तथा अवस्था के अधिक प्रौढ़ हो जाती, उसका चंचल भृकुटि-भंग दिखावटी गरिमा से दब जाता है।" इस तरह हम देखते हैं कि पंत मात्रिक छन्दों में स्वतंत्रता का अनुभव करते हैं और उसे हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल मानते हैं। इनकी कविताओं पर जब हमारी दृष्टि केन्द्रित होती है तो देखते हैं कि प्रथम पंक्ति से अंतिम पंक्ति तक किसी एक ही शास्त्रोक्त छन्द का निर्वाह नहीं किया गया है प्रत्युत् कई छन्द मिलाकर नये छन्द का सृजन किया गया है जो कवि की निजी विशेषता है। इतना स्वीकार करना पड़ता है कि उनकी कविता की प्रत्येक पंक्ति हिन्दी छन्द-शास्त्र की परिधि में बद्ध है। प्रत्येक पंक्ति का कुछ-न-कुछ नाम छन्दशास्त्र के ग्रंथों में अवश्य मिल जाता है और "उसका मात्रा संबंधी नियम और लक्षण भी बताया जा सकता है। लेकिन इससे यह न समझना चाहिये कि पंत ने छन्द-शास्त्र के पन्ने उलट कर अथवा प्राचीन आचार्यों द्वारा बताए गए नियमों को ध्यान में रखकर अपनी रचनाओं की पंक्तियाँ लिखी हैं। पंतजी, ऐसा मालूम होता है, लिखते गए हैं—लिखते गए हैं। छन्द अपने आप हाथ जोड़े उनके भावों के पीछे-पीछे चले हैं—चलने को विवश हुए हैं। मैथिलीशरण गुप्त में हम देखते हैं कि भाव छन्द और तुक के पीछे चलते हैं। पंतजी में छन्द और तुक भाव का अनुगमन करते हैं।"

पंत की कविताओं के छन्द, काव्यशास्त्र के छन्द-विधान पर आधारित नहीं हैं प्रत्युत् उनमें कवि की स्वच्छन्द संगीत-भावना मुखरित है। उनकी समस्त कविताओं के छंदों का नामकरण काव्यशास्त्र के आलोक में संभव नहीं है। उनके छंद परम्परागत नहीं हैं फिर भी संगीतात्मक प्रवाह से गुंजित हैं। जहाँ निराला की छंद-योजना नाद-सौन्दर्य पर आधारित है, वहाँ पंत की छंद-योजना लय-सौन्दर्य पर आश्रित है तथा अँग्रेजी छंद-पद्धति से भी बिलकुल भिन्न है। एक उदाहरण लीजिये—

जयकरी छंद

	वर्णसंख्या	मात्राएँ
S I I I I S S S S I		
नील कमल सी है वे आँख	१०	१५
S S I I S I I S S I		
डूबे जिनके मधु में पाँख	१०	१५
I I S I I I I I I S S I		
मन में मन मधुकर के पाँख	१२	१५
S I I I I S S S S I		
नील जलज-सी हैं वे आँख	१०	१५

[गुंजन : गीत २२]

इस उदाहरण पर जब हमारी दृष्टि जाती है तो हम देखते हैं कि इसकी प्रत्येक पंक्ति में न तो वर्णों की संख्या ही समान है और न मात्राओं का क्रम ही; किन्तु प्रत्येक पंक्ति की मात्रा समान है। अस्तु, यह मात्रिक छंद में रचित कविता है और छन्दशास्त्र के अनुसार यह **"जयकरी छन्द"** है जिसके प्रत्येक चरण में पन्द्रह मात्रायें होती हैं एवं अन्त में एक गुरु और लघु वर्ण होता है। सुतरां, यह छन्द अँग्रेजी या संस्कृत पद्धति पर न होकर हिन्दी छन्दशास्त्र के अनुकूल है।

पंतजी के प्रिय छन्दों में पीयूषवर्षक, रूपमाला और सखी, प्लवंगम छंद हैं। ये करुण रस के लिए अत्यन्त उपयुक्त माने गए हैं।

पीयूषवर्षक छन्द

'ग्रन्थि' में पीयूषवर्षक छन्द का प्रयोग आरम्भ से अंत तक हुआ है। पीयूषवर्षक छन्द के पाद में १६ मात्राएँ होती हैं, १०-६ पर यति एवं अंत में लघु-गुरु रहता है। उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ देखिये—

कौन दोषी है यही तो न्याय है।
वह मधुप बिंधकर तड़पता है उधर।
दग्ध चातक है तरसता विश्व का।
नियम है यह, रो, अभागे हृदय रो। [ग्रन्थि]

कुछ लोग इसे 'ग्रन्थि छंद' की संज्ञा से अभिभूत करते हैं। एक और उदाहरण लीजिए :—

त्रिभुवन की भी तो श्री भर सकती नहीं
प्रेयसी के शून्य पावन स्थान को!
तेरे उज्ज्वल आँसू सुमनों में सदा
वास करेंगे, भग्न हृदय! उनकी व्यथा
अनिल पोंछेगी ; करुण उनकी कथा
मधुप बालिकाएँ गाएँगी सर्वदा!

[आँसू की बालिका]

यों तो छायावादी कविताओं में शृंगार छंद के अनेक उदाहरण प्राप्त हैं।

शृंगार छंद

पंत ने भी इस छंद को अपनी कविताओं में स्थान दिया है जिसकी प्रत्येक पंक्ति में सोलह मात्राएँ होती है तथा अंत में एक गुरु एवं एक लघु रहता है। शृंगार छंद के कुछ उदाहरण लीजिए—

(क) डोलने लगी मधुर मधु वात
हिला तृण व्रतति, कुंज, तरु पात,
डोलने लगी प्रिये! मृदु - वात
गुंज-मधु - गंध-धूलि - हिम - गात। [गुंजन-मधुवन]

(ख) गूढ़, नीरव, गंभीर, प्रसाद,
न गहने को तृण का आधार ;
बसाएगा कैसे संसार !
प्राण ! इनमें अपना संसार ! [गुंजन : गीत ४६]

(ग) शिथिल, स्वप्निल पंखड़ियाँ खोल
आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूँजता भूला भौंरा डोल
सुमुखि, उर के सुख से वाचाल ! [गुंजन : गीत २५]

(घ) करुण भौंहों में था आकाश,
हास में शैशव का संसार ;
तुम्हारी आँखों में कर वास
प्रेम ने पाया था आकार ! [आँसू की बालिका]

ङ) सुरपति के हम ही हैं अनुचर,
जगत्प्राण के भी सहचर ;
मेघदूत की सजल कल्पना,
चातक के चिर जीवन घर। [बादल]

(च) कनक छाया में जबकि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि - पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार। [मौन-निमंत्रण]

पंत रचित 'मौन निमंत्रण' शीर्षक कविता में शृंगार छन्द है पर प्रत्येक पद की प्रथम चार पंक्तियों का तुक अलग-अलग बैठता है किन्तु अंतिम दो पंक्तियों का तुक एक दूसरे से मिलता है। 'आँसू से' शीर्षक कविता में कहीं-कहीं शृंगार-छन्द है और कहीं शृंगार छन्द का परिवर्त्तित रूप प्रयुक्त हुआ है। "अनित्य जग" शीर्षक कविता में भी शृंगार-छंद मुखरित है। 'वायु के प्रति' शीर्षक कविता के छंद का आधार शृंगार छंद है पर किसी-किसी चरण में रूपांतर भी दीख पड़ता है।

पद्धरि छंद में चार चौकल होते हैं। अंत में जगण (।ऽ।) और यति

पद्धरि छंद आठ-आठ मात्राओं पर होती है। कुछ लोग अंत में जगण का होना अनिवार्य नहीं समझते। इसमें भी सोलह मात्राएँ होती हैं। पंतजी की कविताओं में भी इसके उदाहरण उपलब्ध हैं। कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जाते हैं :—

(क) कभी तो अब तक पावन प्रेम
नहीं कहलाया पापाचार,
हुई मुझको ही मदिरा आज,
हाय ! क्या गंगा-जल की धार !!
तुम्हारे छूने में था प्राण,
संग में पावन गंगा-स्नान,
तुम्हारी वाणी में कल्याणि,
त्रिवेणी की लहरों का गान !

(ख) पावस ऋतु थी, पर्वत प्रदेश ;
पल पल परिवर्तित प्रकृति देश।
मेखलाकार पर्वत अपार
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार - बार
नीचे जल में निज महाकार। [पर्वत प्रदेश में पावस]

(ग) मिट्टी का गहरा अन्धकार,
डूबा है उसमें एक बीज,—
वह खो न गया, मिट्टी न बना,
कोदों, सरसों से क्षुद्र चीज ! [सृष्टि]

(घ) द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र !
हे त्रस्त-ध्वस्त ! हे शुष्क शीर्ण !
हिम-ताप-पीत, मधुवात - भीत,
तुम वीत राग, जड़, पुराचीन !! [पतझर]

'पर्वत प्रदेश में पावस', 'उर की डाली' 'सृष्टि' आदि कविताओं में कहीं-कहीं कुछ रूपान्तर भी है। 'मानव' (सुन्दर है विहग, सुमन सुन्दर) शीर्षक कविता में भी कहीं-कहीं पद्धरि छंद आ गया है।

सखी छन्द

सखी छन्द में चौदह मात्राएँ होती हैं और अंत में तीन गुरु (ऽऽऽ) या एक लघु एवं दो गुरु (।ऽऽ) होते हैं। कुछ उदाहरण पंत की कविताओं से लीजिए—

(क) जग के उर्वर आँगन में
बरसो ज्योतिर्मय जीवन !
बरसो लघु-लघु तृण तरु पर
हे चिर अव्यय, चिर नूतन !
बरसो कुसुमों में मधु बन,
प्राणों में अमर प्रणय धन;
स्मिति स्वप्न अधर पलकों में
उर अंगों में सुख यौवन ! [प्रर्थना]

(ख) यह साँझ उषा का आँगन,
आलिंगन विरह - मिलन का;
चिर हास अश्रुमय आनन
रे इस मानव - जीवन का ! [सुख-दुःख]

(ग) नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शारद - हासिनि,
मृदु करतल पर शशि-मुख धर,
नीरव, अनिमिष, एकाकिनि ! [चाँदनी]

ऊपर जो भी उदाहरण दिए गए हैं उनमें मात्राएँ तो चौदह हैं पर अंत में ऽऽऽ या ।ऽऽ की बात को कवि ने नहीं माना है। इस स्थल पर कवि ने अपनी अभिरुचि प्रदर्शित की है।

सिंह छन्द में सोलह मात्राएँ होती हैं और चार चौकल। अंत में दो लघु और एक गुरु (।।ऽ) पड़ता है। इस छन्द का कुछ नमूना उपस्थित किया जाता है :—

सिंह छंद

(क) वे ढाल-ढाल कर उर अपने
हैं बरसा रहीं मधुर सपने
श्रम-जर्जर विधुर चराचर पर,
गा गीत स्नेह - वेदना सने ! [कलरव]

(क) अब आधा जल निश्चल, पीला,—
आधा जल चंचल औ' नीला
गीले तन पर मृदु सन्ध्यातप
सिमटा रेशम पट-सा ढीला। [गंगा]

छायावादी कवियों ने प्राचीन छन्दों का प्रचुर प्रयोग किया है परन्तु उनमें अपनी छाप छोड़ दी है। 'धोबियों का नृत्य' शीर्षक कविता सिंह छन्द में रचित अवश्य है परन्तु अंत में लघु रखा गया है गुरु नहीं। इस तरह का नियम-उल्लंघन कवि के द्वारा बहुत हो पाया है। सिंह छन्द का द्विगुणित रूप 'एक तारा', 'ग्राम श्री' आदि कविताओं में देखा जा सकता है। इस छन्द को **कामकला छन्द** कहते हैं।

सरसी छन्द के कुछेक उदाहरण ध्यातव्य हैं। 'गुंजन' की 'अप्सरा' शीर्षक कविता को लीजिए। इसकी सभी पंक्तियाँ छन्द-शास्त्र के 'सरसी छंद' के अनुकूल हैं। इस छन्द के प्रत्येक चरण में सताइस मात्राएँ होती हैं। यति १६-११ पर और अंत में गुरु-लघु (ऽ।) पड़ने चाहिए। यथा—

सरसी छंद

निखिल कल्पनामयि अयि अप्सरि !
अखिल विस्मयाकार !
अकथ, अलौकिक, अमर, अगोचर,
भावों की आधार !

गूढ़, निरर्थ, असंभव, अस्फुट
भेदों की शृंगार !
मोहिनि, कुहकिनि, छल-विभ्रममयि
चित्र-विचित्र अपार ! [अप्सरा]

हिन्दी छन्दशास्त्र में रोला छंद अत्यन्त प्रसिद्ध है और प्राचीन भी प्राचीन साहित्य में यह खूब प्रयुक्त हुआ है। "कुण्डलिया और छप्पय आदि में भी इसे बरता गया है, लक्षण आचार्यों ने यति और विशेष मात्रा के लघु गुरु के भेद से इसके अनेक नाम बताए हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि

रोला छंद

बहुधा कवियों ने इन सूक्ष्म भेदों को नहीं माना है। १२,१२ यति, ११वीं मात्रा लघु, ११वीं मात्रा गुरु आदि सब भेदों को वे रोला ही मानते हैं। हिन्दी लक्षणकारों में भिखारीदास ने २४ मात्राएँ ही इसका लक्षण किया है और कोई यति का नियंत्रण आदि इसपर नहीं लगाया। प्रयोग की दृष्टि से यही लक्षण अधिक चरितार्थ है।" रोला में चौबीस मात्राएँ होती हैं। यति ११, १३ पर पड़ती है। अंत में दो गुरु या दो लघु पड़ते हैं। यथा—

(क) हाय ! मृत्यु का ऐसा अमर, अपार्थिव पूजन ?
जब विषण्ण, निर्जीव पड़ा हो जग का जीवन !
संग सौध में हो शृंगार मरण का शोभन,
नग्न, क्षुधातुर, वास-विहीन रहें जीवित जन !
मानव ! ऐसी भी विरक्ति क्या जीवन के प्रति !
आत्मा का अपमान; प्रेम औ' छाया से रति ! [ताज]

(ख) दौड़ पार आँगन के फिर हो जाते ओझल,
वे नाटे छः सात साल के लड़के माँसल !
सुन्दर लगती नग्न देह, मोहती नयन-मन,
मानव के नाते उर में भरता अपनापन !
मानव के बालक हैं ये पासी के बच्चे,
रोम रोम मानव, साँचे में ढाले सच्चे। [दो लड़के]

सार छन्द के प्रत्येक पाद में २८ मात्राएँ होती हैं। यति प्राय: १६-१२ पर पड़ती है और अन्त में दो गुरु होने चाहिये। साहित्य में इस छंद का

सार छंद

काफी प्रयोग हुआ है। पंत की कुछ कविताएँ इसी छन्द में लिखी गई हैं। पंत के काव्य में भी सार छन्द का उपयोग देखिए—

(क) विदा हो गई साँझ, विनत मुख पर झीना आँचल धर
मेरे एकाकी आँगन में मौन मधुर स्मृतियाँ भर !
वह केसरी दुकूल अभी भी फहरा रहा क्षितिज पर,
नव असाढ़ के मेघों से घिर रहा बराबर अम्बर !
मैं बरामदे में लेटा, शय्या पर, पीड़ित अवयव,
मन का साथी बना बादलों का विषाद है नीरव ! [याद]

(ख) युग-युग की संस्कृतियों का चुन तुमने सार सनातन
नव संस्कृति का शिलान्यास करना चाहा भव शुभकर,
साम्राज्यों ने ठुकरा दिया युगों का वैभव पाहन
पदाघात से मोह मुक्त हो गया आज जन अंतर !

[महात्माजी के प्रति]

(ग) यहाँ नहीं है चहल पहल वैभव विस्मित जीवन की,
यहाँ डोलती वायु म्लान सौरभ मर्मर ले वन की।
आता मौन प्रभात अकेला सन्धया भरी उदासी,
यहाँ घूमती दोपहरी में स्वप्नों की छाया-सी !

[ग्राम चित्र]

कवि पंत ने ताटंक छंद का उपयोग भी किया है। ताटंक के पाद में

ताटंक छंद

१६ मात्राएँ होती हैं। यति १६, १४ पर पड़ती है और अन्त में तीन गुरु (मगण SSS) होने चाहिए। लेकिन पंत ने अन्त में गुरु अथवा मगण के नियम का पालन सर्वत्र नहीं किया है। कुछेक उदाहरण लीजिए :—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि !
तूने कैसे पहचाना ?
कहाँ, कहाँ हे बाल विहंगिनी !
पाया तूने यह गाना ? [प्रथम रश्मि]

वीर (आल्हा) छंद के पादों में ३१ मात्राएँ होती हैं। यति ८, ८

वीर छंद

१५ पर पड़ती है। अन्त में गुरु-लघु (ऽ।) पड़ते हैं। प्रसिद्ध आल्हा इसी में गाया जाता है, जगनिक ने इसका आम प्रयोग किया है। पंत की 'बाल प्रश्न' शीर्षक कविता की पंक्तियों को देखिए :—

मा ! अलमोड़े में आए थे
जब राजर्षि विवेकानन्द,
तब मग में मखमल बिछवाया,
दीपावलि की विपुल अमन्द;
बिना पाँवड़े पथ में क्या वे
जननि ! नहीं चल सकते हैं ?
दीपावलि क्यों की ? क्या वे मा !
मन्द दृष्टि कुछ रखते हैं ? [बाल-प्रश्न]

—उपर्युक्त पंक्तियों में वीर (या आल्हा) छंद है जिन्हें छापे की सुविधा के लिए कवि ने आठ पंक्तियों में तोड़ डाला है। पर इसके बाद की पंक्तियों में ताटंक छंद का संशोधित रूप मिलता है।

पंत रचित 'मोह' शीर्षक कविता में हाकली छन्द का उपयोग हुआ है

हाकली छंद

इस छन्द में १४ मात्राओं का पाद होता है। मात्राएँ इस प्रकार संजोयी जाती हैं कि चार-चार मात्रा का चौकल बनकर पूरे तीन चौकल हो जायँ और उनके आगे एक गुरु अक्षर हो (४ × ३ + २ = १४)। जैसे—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया
तोड़ प्रकृति से भी माया

परन्तु इन दो पंक्तियों के बाद जो तीसरी पंक्ति है वह ताटंक छन्द के लय में गठित है।

'नीरव तार', 'स्नेह', 'मछुए के गीत', 'सांध्य-वन्दना', 'नव दृष्टि', 'जीव-प्रसू', 'चींटी' शीर्षक कविताएँ ताल-वृत्त में रचित हैं।

ताल वृत्त

इनके प्रत्येक चरण में ताल मात्राओं की निश्चित संख्या रखी गई है। पंत इस कला में अत्यन्त निपुण हैं।

छायावादी कवि पाश्चात्य साहित्य से प्रभावित रहे हैं और छन्दों के क्षेत्र में भी इससे दूर नहीं रहे। अंग्रेजी साहित्य में सॉनेट (sonnet) छन्द का प्रयोग खूब हुआ और इसके लिखने वालों में मिल्टन, विलियम वर्डस्वर्थ आदि प्रसिद्ध हैं। इस छन्द में केवल चौदह पंक्तियाँ होती हैं और अंग्रेजी काव्यशास्त्र के अनुसार आठ और छः पंक्तियों के दो भागों में यह विभक्त रहता है। प्रथम आठ पंक्तियों के छन्द-अनुच्छेद को octave और द्वितीय छः पंक्तियों के छन्द-अनुच्छेद को sestette कहते हैं। इसकी लय-योजना ab ba abba cd cd cd अथवा ab ab cd cd ef ef gg पर आधारित होती हैं। कवि पंत ने भी एक चतुर्दशपदी (Sonnet) लिखी है परन्तु उसकी लय-योजना अंग्रेजी काव्य-शास्त्र के अनुकूल नहीं है। यथा—

चतुर्दशपदी

समरभूमि पर मानव शोणित से रंजित निर्भीक चरण धर,
अभिनन्दित हो दिग् घोषित तोपों के गर्जन से प्रलयंकर,
शुभागमन नव वर्ष कर रहा, हालाडोला पर चढ़ दुर्धर,
वृहद् विमानों के पंखों से बरसा कर विष-वह्नि निरन्तर!
इधर अड़ा साम्राज्यवाद, शत शत विनाश के ले आयोजन,
उधर प्रतिक्रिया रुद्ध शक्तियाँ क्रुद्ध दे रहीं युद्ध निमन्त्रण!
सत्य न्याय के बाने पहने, सत्व लुब्ध लड़ रहे राष्ट्रगण,
सिंधु तरंगों पर क्रय विक्रय स्पर्धा उठ गिर करती नर्तन!
धू - धू करती वाष्प-शक्ति, विद्यु त्-ध्वनि करती दीर्ण दिगन्तर
ध्वंस भ्रंश करते विस्फोटक धनिक सभ्यता के गढ़ जर्जर!

तुमुल वर्ग संघर्ष में निहित जनगण का भविष्य लोकोत्तर,
इन्द्रचाप पुल-सा नव वत्सर शोभित प्रलयप्रभ मेघों पर !
आओ हे दुर्धर्ष वर्ष ! लाओ विनाश के साथ नव सृजन,
विंश शताब्दी का महान विज्ञान ज्ञान ले, उत्तर यौवन !

[१६४०]

पंत ने छन्दशास्त्र के प्राचीन परम्परा में अपने-आपको बाँधे रखना स्वीकार नहीं किया। एक ही छन्द के चरणों की मात्रा घटा-बढ़ाकर वर्णित विषय के प्रभाव का विस्तार किया जा सकता है। इस परिवर्तन के मुख्यतया दो कारण हैं : बीच-बीच में छन्द की एकरसता को तोड़ना एवं भावाभिव्यक्ति की सुविधा। इस सम्बन्ध में कवि पंत ने 'पल्लव' की भूमिका में विस्तृत रूप से प्रकाश डाला है। कवि पंत ने स्वयं लिखा है कि "मुक्त-काव्य में ऐसे चरण, जिनकी गति भिन्न हो, —जैसे पीयूषवर्षण तथा रोला के चरण,—साथ-साथ अच्छे नहीं लगते ; राग का प्रभाव कुण्ठित हो जाता है ; गति बदलने के पूर्व लय को विराम दे देना चाहिए। 'पल्लव' में अधिकांश रचनाएँ इसी छन्द में हैं, जिनमें 'उच्छ्वास' 'आँसू' तथा 'परिवर्तन' विशेष बड़ी हैं। 'परिवर्तन' में जहाँ भावना का क्रिया-कम्पन तथा उत्थान-पतन अधिक है, जहाँ कल्पना उत्तेजित तथा प्रसारित रहती, वहाँ रोला आया है, अन्यत्र सोलह मात्रा का छंद। बीच-बीच में छंद की एकस्वरता तोड़ने तथा भावाभिव्यक्ति की सुविधा के अनुसार उसके चरण घटा-बढ़ा दिये गए हैं। यथा—

स्वच्छन्द-छन्द

विभव की विद्युत् - ज्वाल
चमक, छिप जाती है तत्काल।

—ऊपर के चरण में चार मात्राएँ घटाकर उसकी गति मन्द कर देने से नीचे के चरण का प्रभाव बढ़ जाता है। यदि ऊपर के चरण में चार मात्राएँ जोड़कर उसे 'विभव की चंचल विद्युत् ज्वाल'—इस प्रकार पढ़ा जाय, तो नीचे के चरण में विभव की क्षणिक छटा का चमककर छिप जाने

के भाव का स्वाभाविक स्फुरण मन्द पड़ जाता है। इसी प्रकार अन्यत्र भी भावानुसार छन्दों में काट-छाँट कर दी गई है।

'उच्छ्वास' और 'आँसू' में भी छंद इसी प्रकार बदले गये और आवश्यकतानुसार राग को विश्राम भी दे दिया गया है। यथा—

'शैशव ही है एक स्नेह की वस्तु सरल कमनीय'

के बाद—

'बालिका ही थी वह भी'

—इस चरण में वाणी को विश्राम मिल जाता, तब नया छन्द—

सरलपन ही था उसका मन
निरालापन था आभूषण

—इत्यादि आरंभ होता है। उसी प्रकार—

'सुमनदल चुन-चुन कर निशि-भोर
खोजता है अजान वह छोर'

—इस सोलह मात्रा के छन्द की गति को 'नवल कलिका थी वह' वाले चरण में विश्राम देकर, तब—

उसके उस सरलपने से
मैंने था हृदय सजाया

—यह चौदह मात्रा का छंद रखा है। इसकी गति पूर्ववर्ती छंद की गति से मंद है। जहाँ समगति के भिन्न-भिन्न छंद आये हैं वहाँ विराम देने की आवश्यकता नहीं समझी गई। इसके बाद प्रकृति-वर्णन है; उसमें निर्झरों का गिरना, दृश्यों का बदलना, पर्वत का सहसा बादलों के बीच ओझल हो जाना आदि, अद्भुत-रस का मिश्रण है। इसलिए वहाँ पूर्वोक्त शिथिल गतिवाले छंद के बाद तुरंत ही—

पावस ऋतु थी पर्वत-प्रदेश
पलपल परिवर्तित प्रकृति वेश

—यह क्षिप्रगामी छन्द मुझे अधिक उपयुक्त जान पड़ा। इस छन्द का सारा वेग—'वह सरला उस गिरि को कहती थी बादल घर'—

यह विस्तृत चरण रोक देता, और

'सरल शैशव की सुखद-सुधि-सी वही
बालिका मेरी मनोरम मित्र थी'

—इस सुख-दुख मिश्रित भावना को ग्रहण करने के लिए हृदय को तैयार कर देता है।

'आँसू' में कहीं-कहीं एक ही छन्द के चरणों में अधिक काट-छाँट हुई है, यथा—

देखता हूँ जब, उपवन
पियालों में फूलों के
प्रिये ! भर-भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को !
नवोढ़ा बाल - लहर
अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुककर
सरकती है सत्वर,
अकेली आकुलता-सी प्राण !
कहीं तब करती मृदु आघात,
सिहर उठता कृश - गात,
ठहर जाते हैं पग अज्ञात।

—इन चरणों में शोकाकुलता के कारण स्वर-भंग हो जाने का भय आया है, लय की गति रुकती जाती है, तुक भी पास-पास नहीं आये हैं। इसी प्रकार 'सिहर उठता कृश-गात' इस चरण की गति को कुंठित कर देने से अनुवर्ती चरण के पगों के अज्ञात ठहर जाने का भाव अपने-आप प्रकट हो जाता है। अन्यत्र भी—

पिघल पड़ते हैं प्राण
उबल चलती है दृग-जलधार

—"इन पंक्तियों में प्रथम चरण के बाद जो विराम मिलता, उससे प्राणों के पिघल पड़ने तथा द्वितीय चरण में आँसुओं के उबल चलने का भाव अधिक स्पष्ट हो जाता है।" ['पल्लव' की भूमिका, पृ० ३६-६८]। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस आकस्मिक तोड़ के कारण उस चरण में अधिक प्रभावशालिता आ गई है और कहीं-कहीं तो छन्दों की एकरसता मिटाने के लिए किसी चरण को छोटा एवं किसी को बड़ा कर दिया गया है। परन्तु इसके पीछे भावनाओं की रक्षा करना और उसकी सम्यक अभिव्यंजना करना ही मूल उद्देश्य रहा है। कवि की दृष्टि में छन्द भावाभिव्यक्ति के साधनमात्र है, साध्य नहीं। पंत की कविताओं में छन्दों की विशिष्ट योजना (Pattern) अवश्य मिलती है। यह सच है कि उनकी बहुत-सी कविताएँ छंदशास्त्र की परिधि के बाहर है फिर भी उनकी छंद-योजना अत्यन्त संयत एवं सुशृंखल है। वस्तुतः यह कवि की रचनात्मक प्रतिभा का बोधक है। कवि के नवीन छन्द-अनुच्छेद का एक उदाहरण पर्याप्त है :—

शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहरा कर
हो उठता चंचल, चंचल !
सोए वीणा के सुर
क्यों मधुर स्पर्श से मर् मर्
बज उठते प्रतिपल, प्रतिपल।
आशा के लघु अंकुर
किस सुख से फड़का कर पर
फैलाते नव दल पर दल !

पंत ने प्राचीन छन्दों को अपना कर उसपर अपनी चमक दी। उन्होंने जितने नवीन छंदों का आविष्कार किया शायद ही किसी छायावादी कवि ने किया है। उनके छंदों में एक प्रकार का स्वाभाविक लय होता है और वे

भावों की गति के अनुसार चलते हैं। अतः उनके छन्द स्वाभाविकता के साँचे में ढले हुए हैं। उनकी छन्द-योजना में संयम अधिक है। उसमें अनुक्रम का विशेष ध्यान रखा गया है। उनके छंद प्रगतिशील हैं, विकासोन्मुख हैं; क्योंकि उनकी छंद-योजना कवि की कल्पना, भावना एवं अनुभूतियों के उत्थान-पतन के अनुरूप संकुचित एवं प्रसारित होती रहती है।

पंत की कला

कला का विश्लेषण

कला का अर्थ है 'स्व को कलन करना।' कला वस्तुओं में या प्रमाताओं में स्व को—आत्मा को परिमित रूप में प्रगट करती है।'[१] कला से सुख की प्राप्ति होती है क्योंकि उसमें कलाकार की अनुभूति का स्वान्त सुख अन्तर्हित होता है। सौन्दर्यशास्त्र के प्रणेता क्रोचे ने प्रत्येक कला को एक अभिव्यक्ति माना है।[२] उसके कहने का तात्पर्य्य यह है कि कला में कलाकार की कल्पना अभिव्यक्त हो पाती है। सच तो यह है कि कला में अभिव्यक्ति की ही क्रीड़ा रहती है। अभिव्यक्ति-नैपुण्य ही कला है। काका कालेलकर का कथन है कि 'कला जब तटस्थता से रस के निदर्शन के लिए ही कोई अभिव्यक्ति करती है तभी वह कला कहलाने की अधिकारिणी है।' कला कलाकार की एक सृष्टि है, उसमें उसके सौन्दर्यानुभव का आनन्द अंकित रहता है जिससे पाठक या दर्शक के हृदय में भी उसी प्रकार का भाव अंकुरित हो सके। इसी सत्य को क्लाइव बेल ने कहा है—'कलाकृति या कलावस्तु का काम है दर्शकों के मन में विशिष्ट भावना को जागृत करना।'[३] महाकवि कालिदास ने भी कुछ इसी प्रकार की बात कही है—'रमणीय वस्तुओं को देखकर तथा मधुर शब्दों को सुनकर मन उत्कण्ठित हो उठता है।'[४] सुतरां, यह स्पष्ट होता है कि सौन्दर्य-सृष्टि ही

१. कलयति स्वरूपमावेशयति वस्तुनि वा तत्र-तत्र प्रमातरि कलनमेन कला। (शिवसूत्र विमर्शिनी)

2. All art is an expression.

3. The objects that provoke this emotion, we call works of art. (Clive Bell)

४. रम्याणि वीक्ष्य मधुरांश्च निशम्य शब्दान्। (शकुन्तला)

कलाकार का एकमात्र उद्देश्य है। कला में कलाकार के व्यक्तित्व की अभिव्यंजना रहती है। कलाकार की प्रवृत्ति के अनुरूप ही उसकी कलाकृति होती है, उसीसे कलाकार की पहचान होती है। इसीलिए कवीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है कि 'कला में मनुष्यों की भावनात्मक सत्ता का ही आविष्कार होता है।'[५] इन्हीं सब बातों को दृष्टिपथ में रखते हुए भवभूति ने भी वाणी को अपनी कला कहा है।'[६]

काव्य और कला

भारतीय दृष्टि से काव्य और कला दोनों दो भिन्न वस्तुएँ हैं, काव्य विद्या है तो कला उपविद्या। आचार्य भामह ने कला को काव्य का एक विषय माना है।[७] हमारे यहाँ कला शब्द का प्रयोग संगीत और शिल्प के अर्थ में किया जाता था।[८] शिल्प का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है, उसके अन्तर्गत चित्र आदि की गणना होती है। कला का दार्शनिक लक्ष्य भी है, वह है—'आत्मस्वरूप का साक्षात्कार तथा परमात्व-तत्व की ओर उन्मुख होना।' इसीलिए यह कहा भी गया है कि 'कला का जो भोगरूप है वह बंधन है और जो परमानन्द-प्राप्ति-कारक है वही कला यथार्थ कला है।'[९] कला मानव के अव्यवस्थित जीवन को स्थिरता प्रदान करती है और मायावी सौन्दर्य को शाश्वत बना देती है। इस सम्बन्ध में हेमिल्टन का कथन विशेष रूप से ध्यातव्य है, जिसका मूल भाव यह है कि 'शिल्पी सौन्दर्य-विलासी रूप-रचयिता है। जिस सत्य को उसने अंतर में अनुभूत किया है, उसको बाहर स्थिरता प्रदान करता है। उसकी व्यक्तिगत अनुभूति एकान्ततः व्यक्तिमूलक नहीं। वह एक ओर तो विशेष व्यक्ति है,

---

५. In art man reveals himself. (What is Art)

६. वन्देमहि च तांवाणीममृतामात्मनः कलाम् (उत्तर रामचरित)

७. न तच्छब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गमहो भार महान् कवेः॥ (काव्यालंकार)

८. नृत्य गीत प्रभृतयः कलाः कामार्थ-संश्रयाः। (काव्यालंकार)

९. विश्रान्तिर्यस्य सम्भोगे सा कला न कला मता।
लीयते परमानन्दे ययात्मा सा परा कला॥

दूसरी ओर निर्विशेष। वह विशेष को निर्विशेष बनाकर वस्तु रूप में ऐसा मूर्त स्वरूप दे देता है कि वह सर्व-जन-संवेद्य हो जाता है।[10] अतएव कलाकार का कार्य है 'हृदय के रस से स्थिर रूप-रचना और वही उसकी कला है।'

पाश्चात्य प्रभाव के कारण काव्य भी एक कला है। और कलाकृति के लिए कल्पना अनिवार्य है। कल्पना कलाकार की प्रतिमा का सर्वश्रेष्ठ वाहन है जिसके सहारे वह सान्त से अनन्त लोक में जाता है। यह कलाकार के मन का प्रकाश है जिसमें वह सत्य का दर्शन करता है। कल्पना के सहारे कलाकार हमारे समक्ष एक मूर्ति प्रस्तुत करता है। प्रसिद्ध अंग्रेजी समीक्षक मैथ्यू आर्नल्ड ने कहा है कि 'कल्पना ही कविता का सर्वस्व है; कल्पना को छोड़कर जो कुछ है वह भ्रममात्र है।' अरविन्द घोष की दृष्टि में कल्पना के दो भेद हैं—कर्मनिष्ठ कल्पना (Objective imagination) और विषयनिष्ठ कल्पना (Subjective imagination)। उन्होंने कहा है कि 'विषयनिष्ठ कल्पना शक्ति जीवन और जगत् की वाह्य अवस्थाओं को तीव्रता से प्रत्यक्ष कराती है। विषयनिष्ठ कल्पना शक्ति भावमय अनुभूतियों को उद्बुद्ध करनेवाली शक्ति को प्रबल रूप से प्रत्यक्ष कराती है।'[11] पं० रामदहिन मिश्र के शब्दों में, कल्पना की एक विशेषता यह है कि वह कुछ ऐसे सत्यों का स्वरूप भी निरूपित करती है जो प्रत्यक्ष नहीं; अपितु संभावित है। यथार्थ जगत् में जो प्रत्यक्ष है वह

कला, कल्पना और अनुभूति

---

10. An artist is one who through the imposition of form on his particular material creates for himself and potentially for others, a unified contemplative experience highly objective in character. (Poetry and Contemplation)

11. The objective imagination which visualises strongly the outward aspects of life and things; the subjective imagination which visualises strongly the mental and emotional impressions they have the power to start in the mind.

(The future poetry, style and substance)

उतना ही सब कुछ है पर कल्पना-प्रसूत भाव-जगत् में वह भी है, जो हो सकता है, जिसके होने की संभावना है। इसी कारण दृश्य-जगत् में भाव-जगत् का महत्त्व बढ़ जाता है। प्राच्य साहित्य की अपेक्षा पाश्चात्य साहित्य में कल्पना-शक्ति के विविध व्यापारों का सूक्ष्म निरीक्षणपूर्वक विचार किया गया है।' इसीलिए हम कह सकते हैं कि किसी भी कलाकार की कल्पना भ्रान्ति नहीं है प्रत्युत् प्रज्ञा है। उसकी कल्पना निराधार नहीं होती है। किसी ने सच लिखा है कि 'विज्ञान में जो बुद्धि है, दर्शन में जो दृष्टि है, वही कविता में कल्पना है।' कलाकार अपनी कल्पना को प्राणवती बनाने के लिए अनुभूति का आश्रय ग्रहण कर सकता है और इसी के द्वारा कल्पना सत्य का परिधान धारण करती है। कवीन्द्र रवीन्द्र ने इसे 'हृदय-वृत्ति का जारक रस' कहा है। वूचर ने इसे उत्पाद या निर्माण करना और क्रोचे ने प्रकृति का भावानुकूल अनुकरण (Idealizing imitation of nature) कहा है। अरस्तू ने कला को अनुकरण कहा है, परन्तु हम इसे मानने को तैयार नहीं हैं क्योंकि काव्य रचना में कवि को अनुभूति कल्पना और भावना द्वारा अनुरंजित होती है।' अतएव अनुकृति ही काव्य का सर्वस्व नहीं हो सकती, हाँ यह माना जा सकता है कि काव्य में अनुकरण का योग रहता है— 'छायामनुहरति कविः।' अनुकृति के सम्बन्ध में अरस्तू ने भी लिखा है कि 'अनुकरणकारी होने के कारण कवि तीन विषयों में से एक विषय का अनुकरण कर सकता है—वस्तु जैसी थी वा है; वस्तु जैसी होने लायक कही वा सोची गई है या वस्तु को जैसी होनी चाहिए।'[१२]

पंत की कला में सौन्दर्यानुभूति है परन्तु इसमें मांगलिक कामना है। वे एक सौन्दर्यजीवी कलाकार हैं। पंत की काव्य-प्रेरणा का आधार है प्रकृति निरीक्षण। उनकी प्रत्येक कविता प्रकृति-प्रेम की साक्षी है। प्रकृति के

12. The poet being an imitator...must of necessity imitat[e] one of the three objects—things as they were or are things a[s] they are said or thought to be or things as they ought to b[e] (The poetics).

अज्ञात आकर्षण ने कवि के भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर उनकी चेतना को तन्मय कर दिया करता और इसी के सहचर्य ने पंत को सौन्दर्य, स्वप्न और कल्पनाजीवी बनाया। उसीने अपने नीरव सम्मोहन का आश्चर्य उत्पन्न कर कवि को सौन्दर्य सृष्टि की प्रेरणा दी थी। कवि को अपनी भावनाओं की अभिव्यंजना में प्रकृति-निरीक्षण से अत्यधिक सहायता मिली है। प्राकृतिक चित्रणों को प्रायः उन्होने अपनी भावनाओं का सौन्दर्य मिलाकर उन्हें ऐन्द्रिक चित्रण बनाया है, कभी-कभी भावनाओं को ही प्राकृतिक सौन्दर्य का लिवास पहना दिया है।[13] प्रारंभ से ही पंत सौन्दर्य के अनन्य भक्त रहे हैं, यह तो उनकी कविताओं के अध्ययन से स्पष्ट हो उठता है। उनकी कविता के दो प्रधान आलंबन हैं—प्रकृति और नारी। उन्होंने प्रकृति के कोमल रूप को ही आत्मसात् किया है, न कि भीषण रूप को। 'परिवर्तन शीर्षक कविता अपवाद है। उनके 'प्राकृतिक-सौन्दर्य-काल' में सूक्ष्मता एवं माधुर्य है। पंत का प्रकृति-चित्र निम्नलिखित पंक्तियों में देखिये—

पंत की सौंदर्य-कला

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश, पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश,
मेखलाकार पर्वत अपार, अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा था बार-बार, नीचे, जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पला ताल, दर्पण सा फैला है विशाल।
गिरि का गौरव गाकर झर-झर मद से नस नस उत्तेजित कर,
मोती की लड़ियों से सुन्दर, झरते हैं झागभरे निर्झर।
गिरिवर के उर से उठ-उठकर, उच्चाकांक्षाओं से तरुवर,
हैं झाँक रहे नीरव नभ पर, अनिमेष अटल कुछ चिन्ता पर।
उड़ गया अचानक लो भूधर, फड़का अपार परदा के पर,
रव-शेष रह गए हैं निर्झर, है टूट पड़ा भू पर अंबर,

१३. गद्य-पद्य—सुमित्रानन्दन पंत, पृ० ४७।

धँस गए धरा में सभय ताल, उठ रहा धुँआ, जल गया ताल,
यों जलद-यान में विचर-विचर, था इन्द्र खेलता इन्द्रजाल ।

(पर्वत प्रदेश में पावस)

—इस काव्य संदर्भ में पर्वत, निर्न्दर, बादल, तुषार सभी अद्वितीय सौंदर्य पा गए हैं। इतना सजीव शब्द-चित्र हिन्दी कविता में अद्वितीय है। 'आँसू से' शीर्षक कविता में मनोहर प्रकृति वे अत्यन्त सुन्दर चित्र मिलते हैं। पर्वत पर बादलों का एक चित्र लीजिए—

द्विरद-द्वन्तों से चिर सुन्दर,
सुखद कर-सीकर से बढ़कर
भूति से शोभित बिखर-बिखर,
फैल फिर कटि के से परिकर,
बदल यों विविध वेश जलधर,
बनाते थे गिरि को गजवर ।

('आँसू' से)

—इसमें प्रकृति का चित्र और भी उभर आया है। इन पक्तियों की तुलना मेघदूत की पंक्तियों से कीजिए—

तस्याः पातु सर गज इव व्योम्नि पूर्वार्ध लध्वी
त्वचेदच्छ स्फटिक विशदं तर्क येस्तिर्यगम्नः

और

आषाढ़स्य प्रथम दिवसे, मेघमाश्लिष्ट सानुम्,
वप्र क्रीड़ा परिणत गज प्रेक्षणीयम्........।

निर्झरी का भी एक आकर्षक एवं प्रभावकारी चित्र देखिये—

झर मर कर पत्तों के पास, रण मण रोड़ों पर सायास,
हँस हँस सिकता से परिहास, करती हो अलि तुम झलमल !
दिखा भंगिमय भृकुटि विलास, उपलों पर बहुरंगी लास,
फैलाती हो फेनिल हास, फूलों के कूलों पर चल ।

(निर्झरी)

—इसमें कवि ने 'निर्झरी की लहर, फेन तथा उसके वक्ष पर तारकोज्वल नभ की छवि को शब्दों में काफी सजीवता से बाँधा' है। इसमें ध्वनि-चित्र अंकित है। पंत सृष्टि की प्रत्येक वस्तु में सौन्दर्य देखते हैं, उनकी दृष्टि में सभी चीजें सुन्दर है—

सुन्दर मृदु-मृदु रज का तन
चिर सुन्दर सुख-दुख का मन।
....
चिर सुन्दर जन्म-मरण रे
सुन्दर पुराण- नूतन रे
....
सुन्दर से नित सुन्दरतर
सुन्दर से सुन्दरतम
सुन्दर जीवन का क्रम रे
सुन्दर सुन्दर जग-जीवन।

हम कह सकते हैं कि पंत के 'सौन्दर्य-दर्शन-कला' में आशा, उल्लास एवं मादकता [१४] हैं जिसके कारण उनकी कला मोहक हो गई है।

पंत की कला में कल्पना-तत्व

यह हम बतला चुके हैं कि प्रकृति के साहचर्य ने ही पंत को कल्पना-जीवी बनाया है। कल्पना काव्य का एक आवश्यक अंग है। यह (कल्पना) एक बोधवृत्ति है जिसका कार्य है 'बिखरी रंग-रेखाओं के संश्लेषण द्वारा मानस-पट पर मूर्ति-निर्माण। कल्पना मूर्ति-विधायिका शक्ति है। उसका काम है संश्लेषण।' कल्पना के सम्बन्ध में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल का कथन है कि 'उसे भाव

---

१४. (क) देखता हूँ जब उपवन पियालों में फूलों के
प्रिय भर-भर अपना यौवन पिलाता है मधुकर को;
नवोढ़ा बाल लहर अचानक उपकूलों के
प्रसूनों के ढिग रुक कर, सरकती है सत्वर;
('आँसू' से)

(ख) चंचल पग दीप शिखा के धर, गृह, मग, वन में आया वसंत !
सुलगा फागुन का सूनापन सौन्दर्य - शिखाओं में अनन्त !

प्रेरित होना चाहिये। कविता में कल्पना-लेख भाव-संचार तभी कर सकती है जब वह ऐसे मन में उत्पन्न हुई हो जो भावोन्मेष से अभिभूत हो और भावोन्मेष के कारण ही जब उस विशिष्ट कल्पना-मूर्त्ति की उद्‌भावना हुई हो। जब तक कल्पना भाव की प्रेरणा से नहीं उद्‌भूत होगी वह पाठकों के हृदय में भाव जगाने में, अपने उद्देश्य में ही असमर्थ हो जायगी।' पंत की कविता का मुख्य उपकरण है कल्पना, इसीलिये उनमें "कल्पना का विपुल ऐश्वर्य है। यही इस कवि की खूबी है। जहाँ कहीं भी देखिये, कवि का हृदय उमड़ता नजर आता है। कितने ही स्थानों में कवि ने जिन उपमाओं का प्रयोग किया है उनसे पता चलता है कि कवि की कल्पना-शक्ति भी जाग्रत है। यदि वह आँखें खोलकर नहीं, तो अपनी मानसिक शक्ति द्वारा ही संसार की कतिपय वस्तुओं का पर्यवेक्षण करता है, जिससे उसके काव्य में एक नूतनता और रुचिरता आ जाती है। 'नौका विहार' का वर्णन करते हुए गंगा की लहरों की तुलना 'साड़ी की सिकुड़न' से करना कवि की जाग्रत अवस्था का द्योतक है। 'आँसू' में 'मेघों का मेमनों-से फुदकने में' एक नवीनता है। 'ग्रन्थि' में लाली का 'सेब की चिर सरसता-सुकुमारता' से सादृश्य दिखलाना कवि की सक्रिय चेतना के उदाहरण हैं। कवि ने जहाँ-जहाँ उपमा-उपमेयों में अपनी सूक्ष्मदर्शिनी कला का उपयोग किया है जो अन्यत्र कम देखने में आता है। साधारणतः किसी गुण के समझाने में किसी ठोस वास्तविक वस्तु का ही उपयोग किया जाता है, ताकि उस ठोस वस्तु के ज्ञान से उसके गुण का बोध हो। यथा—माखन-सा मृदुल, गुलाब-सा सुन्दर, समुद्र-सा गम्भीर, वायु-सा चंचल इत्यादि। पर कवि कभी-कभी उलटा ही रास्ता अख्तियार करता है। वह वास्तविक का बोध गुण से ही कराता है। छाया का वर्णन करते हुए वह लिखता है—

कभी लोभ - सी लंबी होकर,
कभी तृप्ति - सी होकर पीत।'

दूसरा भी देखिये

गिरिवर के डर से उठ - उठ कर
उच्चाकांक्षाओं - से तरुवर ।'

कल्पना-धनी 'शेली' (Shelley) भी ऐसा ही करता है। अतः यह प्रत्यक्ष है कि कवि ने अपनी कला द्वारा हिन्दी कविता में एक नये जीवन के संचार की चेष्टा की है।..........कवि में सौंदर्य की एक बुभुक्षा-सी है। वह संसार में सौंदर्य के सिवा कुछ और नहीं देखना चाहता। इसी बुभुक्षा के कारण उसकी कल्पना में एक गतिशीलता आ जाती है जो उसके काव्य की प्राण है। वह 'शेली'-सा किसी वस्तु के चतुर्दिक सौन्दर्य का जाल बुनता रहता है और इस जाल का क्रमशः निर्माण देखने की वस्तु है। परन्तु 'शेली' अतृप्त रह जाता है। जाल बुनते-बुनते उसे उस जाल से अरुचि हो जाती है, क्योंकि वह जाल उसके अनन्त आदर्श की पूर्ति नहीं करता। पंतजी के काव्यों में 'कीट्स' के काव्यों के सदृश्य एक तृप्ति है—एक पूर्णता है। उन्हें जाल बुनकर संतोष होता है और वह फिर दूसरा जाल बुनने के लिए तत्पर हो जाते हैं। इसी तृप्ति के कारण उनमें शान्ति है, उद्विग्नता बहुत कम है।...... उनकी सौन्दर्यानुभूति बड़ी गम्भीर और बृहत् है। यह सिर्फ चक्षुरिन्द्रिय से सम्बन्ध नहीं रखती, इसका सम्बन्ध हृदय से है, और स्थान-स्थान पर तो हृदय तथा आत्मा का एकीकरण हो गया है। जहाँ-जहाँ ऐसा हुआ है वहाँ-वहाँ कविता शीर्षासीन हो उठी है। किन्तु उनकी कला के साथ-साथ उनके विचार को भी विकासोन्मुख देखकर यह संभावना दीख पड़ती है कि वह कहीं आगे चलकर अधिक विचार-प्रवण और विवेचनशील न हो जायँ। इसमें एक भय होता है, क्योंकि विवेक की बुद्धि के साथ-साथ मनुष्य में भावुकता और कल्पना की हीनता हो जाती है; फलस्वरूप कवि वस्तुतः कवि न रहकर सिर्फ एक विचारशील व्यक्ति रह जाता है, जैसा 'वर्ड्सवर्थ' को हुआ। युवा 'वर्ड्सवर्थ' एक उदात्त और श्रेष्ठ कवि था; पर अधेड़ और बूढ़ा 'वर्ड्सवर्थ' अविरल रूप से कविता करते रहने पर भी कवि न रहकर सिर्फ एक निम्न-श्रेणी का विचारक रह गया। उच्च और पैनी कल्पना के साथ-साथ हृदय और आत्मा के संयोग से

उत्कृष्ट कविता की सृष्टि होती है। पंतजी में कल्पना-शक्ति के साथ हृदय और आत्मा का योग भी है। इनका संयोग भी कहीं-कहीं हुआ है। पर जब इनका संयोग उनके जीवन का एक स्थिर उपादान हो जायगा, तब उनका स्थान हिन्दी-काव्य-संसार में और भी ऊँचा हो उठेगा—तब वह अर्वाचीन और प्राचीन न रहकर सर्वकालीन हो जायँगे।"[१५] पंत की बादल, घंटा, एकतारा, नौका-विहार, चाँदनी आदि कविताओं में कल्पना की ऊँची उड़ान देखने को मिलती है। उनकी कविताओं में कल्पना अनुभूति-शून्य होकर नहीं उतरी है, बल्कि उनमें अनुभूति का सामंजस्य है जिसके कारण कविता में प्रभविष्णुता बढ़ गई है। उदाहरण-स्वरूप कुछ पंक्तियाँ लीजिये—

मिला लालिमा में संध्या की
छिपा एक निर्मल संसार,
नयनों में निस्सीम व्योम औ',
उरोरुहों में सुरसरि-धार! (अनंग)

—इस प्रकार की कविता में 'बापू के प्रति' भी है। कुछ स्थलों पर कल्पना आलम्बन तथा उद्दीपन का स्वरूप सामने रखने का प्रयास करती है वहाँ पर वह भावोद्रेक तथा रसबोध में सहायक बनती है। एक ओर पंत की कल्पना चाँदनी को एक रुग्ण बाला का रूप प्रदान करती है[१६] तो दूसरी ओर चाँदनी की सात्विक कोमल छवि आशा एवं उल्लास से तरंगित है।[१७] एक स्थल पर कवि ने उद्दीपन की सामाग्री एकत्र करने के लिए कल्पना का उपयोग अत्यन्त सुन्दर ढंग से किया है, यथा—

---

१५. सुमित्रानन्दन पंत—प्रिंसिपल विश्वमोहन कुमार सिन्हा
[हिमालय, अंक-१२]

१६. पीली पड़, निर्बल, कोमल, कृश-देह-लता कुम्हलाई;
विवसना, लाज में लिपटी, साँसों में शून्य समाई।

१७. नीले नभ के शतदल पर वह बैठी शारद हासिनि,
मृदु करतल पर शशि मुख धर नीरव, अनिमिष एकाकिनि।

शिथिल, स्वप्निल पंखड़ियाँ खोल
आज अपलक कलिकाएँ बाल,
गूँजता भूला भौंरा डोल,
सुमुखि! उर के सुख से वाचाल।

पंत की 'सूक्ष्म ग्राहिणी नुकीली कल्पना' के कुछ उदाहरण और देखिए—

(क) मृदु-उर्मिल-सरसी में सुकुमार,
अधोमुख - अरुण - सरोज ।

(ख) सशंकित ज्योत्स्ना - सी चुपचाप,
जड़ित पद, नमित-पलक, दृगपात ।

—इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत की कल्पना-शक्ति अत्यन्त विरल है।

पंत की स्वप्निल कला

पंत की कविताओं के अध्ययन के सिलसिले में हम देखते हैं कि उन्होंने 'स्वप्न' शब्द एवं उसके विशेषण 'स्वप्निल' शब्द का प्रयोग अनेक बार किया है जिस प्रकार महादेवी वर्मा ने 'मूक', 'सुनसान', 'रुदन' आदि शब्दों का प्रयोग किया है। इस प्रकार के शब्दों के प्रयोग से कवि की मनोवृत्ति का पता चलता है। पंत के काव्य में 'स्वप्न' शब्द किसी-न-किसी वेश में अवश्य आता है, कुछ बानगी लीजिए—

(१) स्वप्न आते उड़-उड़कर पास,
इन्हीं में छिपा कहीं अनजान ;
मिला कवि को निज गान! (गुंजन)

(२) सोई थी तू स्वप्न-नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर,.......
विचर रहे थे स्वप्न-अवनि में
तम ने था मण्डप ताना; (प्रथम रश्मि)

(३) विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान। (मौन-निमंत्रण)

(४) समस्या स्वप्न : गूढ़ संसार,
पूर्ति जिसकी उस पार। (नित्य जग)

(५) स्मिति स्वप्न अधर पलकों में
उर अंगों में सुख यौवन ! (प्रार्थना)

(६) न जाने मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन ! (मौन-निमंत्रण)

(७) तन्द्रिल पलकों में, निशि के शशि !
सुखद-स्वप्न बन कर विचरो, हे ! (सांध्य वंदना)

(८) मृदु-मृदु स्वप्नों से भर अंचल, नवनील-नील, कोमल-कोमल
छाया तरु वन में तम श्यामल। (एकतारा)

(९) वन स्वप्न - जड़ित नत चितवन
छू लेती अग जग का मन,.......
जग के अस्फुट स्वप्नों का
वह हार गूँथती प्रतिपल
वह स्वप्निल शयन - मुकुल-सी
हैं मुँदे दिवस के द्युति - दल। (चाँदनी)

(१०) भावी के बहुस्वप्न, भाव बहुव्यथित कर रहे अंतर ! (याद)

(११) रामराज्य का स्वप्न तुम्हारा हुआ न यों ही निष्फल !
(महात्माजी के प्रति)

इस सम्बन्ध में प्रिंसिपल विश्वमोहन कुमार सिन्हा (सम्प्रति सस्दय, लोक सेवा आयोग) ने लिखा है कि 'यों तो साधारणतः साहित्य में 'स्वप्न' का स्थान प्रायः निश्चित-सा हो गया है। स्वप्न सत्य हो या असत्य, पर इससे मनुष्य की मानसिक प्रवृत्ति पर प्रकाश अवश्य पड़ता है। जीवन में इसका एक मुख्य स्थान होने के कारण साहित्य में इसका आधिपत्य होना स्वाभाविक ही है। इसलिए 'स्वप्न-सुन्दर', 'स्वप्न-कोमल', 'स्वप्न-सा क्षणिक' इत्यादि शब्द साहित्य में बहुलता से आते हैं। कभी-कभी, जब किसी साहित्यिक की प्रेरणा थक जाती है और उसे कोई दूसरा चित्र नहीं मिलता, तब वह शीघ्रता से स्वप्न का आयोजन कर डालता है, और भाव कैसा ही क्यों न हो, 'स्वप्न' के प्रयोग से सुगमतापूर्वक काम चला लेता है। पर यदि

कोई कवि स्वप्न का बार-बार व्यवहार करता है तो इसलिए नहीं कि उसके पास चित्रों या उपमा-उपमेयों का अभाव है—इसलिए नहीं कि वह अपनी उड़ती कल्पना को स्वप्न' पर ठहरा कर उसे क्षण भर के लिए अवकाश देता है, बल्कि इसलिए कि स्वप्न-जन्य भाव उसे बार-बार प्रेरित करते हैं और उनके प्रयोग में उसे एक प्रकार की शान्ति मिलती है। अतएव, इससे स्पष्ट मालूम पड़ता है कि कवि के लिए 'स्वप्न' एक रूपक या चित्र ही नहीं कवि की उसमें निश्चित आस्था है—'स्वप्न' पर कवि का आधिपत्य है और वह (स्वप्न) उसकी सारी विचार-समष्टि को अनुप्राणित और संचालित करता है। और इस स्वप्न के आधिपत्य से मनुष्य की जीवन-पद्धति भी कुछ साफ झलकने लगती है। जो स्वप्न का हामी है वह या तो सौ फी सदी आदर्शवादी है या वह दृश्य जगत् से हटकर एक दूरवर्ती स्वप्न-प्रदेश में ही जीवन की घड़ियाँ काटना चाहता है। वह संसार से डरता नहीं, पर संसार से उसे एक अरुचि-सी हो जाती है। उसे जागरूक रहकर संसार की वस्तुओं से लाभ उठाने की इच्छा नहीं होती, वह तो स्वप्न-संसार या कल्पना-संसार में ही रहकर सुख का उपभोग करता है। पंत जी सौ फी सदी आदर्शवादी हैं, यह कहना सर्वथा सत्य न होगा, पर उन्हें स्वप्न-संसार में ही विश्राम मिलता है, यह प्राय: निश्चित-सा है। एक स्थान पर वह स्वयं कहते हैं—**कहाँ नश्वर जगती में शान्ति! सृष्टि का तात्पर्य अशान्ति! जगत अविरत जीवन-संग्राम, स्वप्न है यहाँ विराम।'** सुतरां, पंतजी के काव्य के समझने के लिए हमें स्वप्न के अवगुण्ठन ही से उन्हें देखना होगा। जिस प्रकार स्वप्न में चित्र धारावाहिक रूप से आते और मिटते हैं, जिस प्रकार स्वप्न भी जाग्रत जीवन के एक वितान-सा (Extension) है—जिसमें जागृति और सुषुप्ति के अंशों का विशद् सम्मिश्रण होता है, जिस प्रकार स्वप्न आंशिक रूप से हमारी अन्तर्निहित आकांक्षाओं का स्वरूप है, उसी प्रकार पंतजी में भी काल्पनिक चित्र तरंगों से आते और मिटते हैं तथा उनके काव्य में जागृति और सुषुप्ति के उपादान स्पष्ट रूप से वर्तमान हैं–उनमें एक कोमलता और वर्ण-विपुलता (Colourfulness)

है जो स्वप्न के सहज गुण हैं।'[१८] इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत का स्वप्न कल्पना का बोधक है और उसका प्रयोग कोमलता, सुन्दरता, क्षण-भंगुरता आदि के अर्थों में हुआ है। सुतरां, पंत की कला स्वप्निल है।

पंत की स्वप्निल कला पर विचार करते हुए श्री विश्वमोहन कुमार सिंह ने बतलाया है कि 'इसी प्रकार, दूसरा भाव जो कवि को प्रेरित करता है वह शिशुता का है। स्वप्न के सदृशय शिशु-कल्पना भी कवि की विचारधारा को प्रभावान्वित करती है। कई स्वतंत्र काव्यों के अलावा रह-रह कर शिशु भावनाएँ अनेकानेक रूप में कवि के सामने आती है; पर शिशु का भोलापन, उसकी सरल रहस्यमयी शोभा और उसका अविकल कल्पना-संसार, सब मिलकर, कवि को अत्यन्त मुग्ध किये देते हैं। वह तो शिशु के इन गुणों पर यौवन को भी निछावर करने को तैयार है। शिशु की मृदुल शुचिता ने कवि को अनजान में ही कवि बना दिया है—

पंत की कला में शिशुता

'आज शिशु के कवि को अनजान,
मिल गया अपना गान।
खोल कलियों ने उर का द्वार,
दे दिया उसको छवि का देश;
आज कवि के चिर चंचल प्राण,
पा गये अपना गान।'

इससे स्पष्ट है कि कवि के लिए शिशुता केवल एक काव्य-वस्तु ही नहीं एक आन्तरिक प्रेरणा भी है। वह उसे इतनी प्रिय है कि वह उसी में अपनी आत्मा की छाया देखता है। कवि यद्यपि प्रेम का कवि है तथापि यौवन की तुलना में वह शिशुता को ही अधिक पसन्द करता है। इस शिशुता की आकांक्षा उसमें इतनी ही तीव्र हो उठती है कि वह दिल खोल कर कह उठता है —

१८. हिमालय, अंक १२, पृष्ठ ४४।

'चित्रकार ! क्या करुणा कर फिर,
मेरा भोला बालापन ;
मेरे यौवन के अंचल में,
चित्रित कर दोगे पावन ?'

शिशुता के चले जाने की कवि को बहुत ग्लानि है—

यौवन के मादक हाथों ने,
उस कलिका को खोल अजान
छीन लिया हा ओस बिन्दु-सा,
मेरा मधुमय तुतला गान !'

भला ग्लानि क्यों न हो ? बचपन के अज्ञान या मुस्कान में वह पवित्रता है जो कहीं मिल नहीं सकती। संभवत: इसी भाव की पवित्रता ने कवि की भाषा को भी अत्यन्त सुकुमार और परिमार्जित कर दिया है। तनिक आगामी अंतिम पंक्तियों के पुरजोर मुहावरे पर विचार कीजिए—

अहो कल्पनामय ! फिर रच दो, वह मेरा निर्भय अज्ञान ;
मेरे अधरों पर वह मा के—दूध-सी धुली मृदु मुस्कान।'

कवि इस बचपन पर इतना मुग्ध है कि वह उसकी भौतिक स्थिति को भूल जाता है और वह शिशु को सृष्टि की एक रहस्यमयी वस्तु समझने लगता है। वह एक शिशु की छवि देख आश्चर्य करने लगता है—

'कौन तुम गूढ़ गहन, अज्ञात ! अहे निरुपम नवजात।

यदि ऐसी बात है तो कवि क्यों न व्याकुल हो कह उठे—

'मेरे यौनन के प्याले में फिर वह बालापन भर दो।'

तात्पर्य यह कि कवि की मानसिक प्रवृत्ति शुचिता और सरलता की ओर अधिक है। इससे उसके दृष्टिकोण का भी पता चलता है। जो कवि शिशु की शोभा या अबोधता का भक्त है, उसके लिए जीवन-संग्राम में प्रविष्ट होकर जीवन को सफल बनाने की चेष्टा प्रायः असह्य-सी होगी—वह तो स्वभावतः कला और सरलता की छाया में बैठ जीवन की ऊष्मा में लोगों को लड़ते-भिड़ते देखने में ही अपने को कृतकार्य समझेगा। अतएव कवि की

स्वप्न-शिशु-संबंधी भावनाओं की प्रचुरता से कवि के मानसिक आधार का सूत्र मिलता है। इस प्रकार, स्वप्न और शिशुता—इन दो भावनाओं के, कवि की विचार-पद्धति के, आधार होने के कारण उसके काव्यों में शान्त रस की प्रधानता उचित ही नहीं, स्वाभाविक भी है।'

पंतजी स्वभाव से सुन्दर के कवि हैं, उनके तन-मन में सुन्दर का आवास है। उनका अन्तःकरण सौन्दर्यवादी है। एक ओर कवि को प्रकृति ने आकृष्ट किया है तो दूसरी ओर 'निखिल छवि की छवि' नारी-रूप ने। इन दोनों में प्रकृति को प्रथम स्थान प्राप्त है। परन्तु ज्योंही उनकी दृष्टि प्रकृति पर केन्द्रित होती है तो उनके नयनों में 'विश्व-सुखमा का संसार' लिए नारी छा जाती है। पंत ने तो यह स्वयं स्वीकार किया है कि प्रकृति को मैंने अपने से अलग, सजीव सत्ता रखनेवाली, नारी के रूप में देखा है।

पंत की नारी-कला

उस फैली हरियाली में,
कौन अकेली खेल रही, मा,
वह अपनी वय वाली में—

पंक्तियाँ मेरी इस धारणा की पोषक हैं। कभी जब मैंने प्रकृति से तादात्म्य का अनुभव किया है तब मैंने अपने को भी नारी रूप में अंकित किया है। मेरी प्रारम्भिक रचनाओं में इस प्रकार के हिप्नोटिज्म के अनेक उदाहरण मिलेंगे।'[२०] पंत की दृष्टि में शरत् की चाँदनी एक लाजवंती छुई-मुई-सी दुलहिन के सदृश अपने आप में गड़ी-सी जा रही है—

दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि-निभृत शयन पर,
वह छवि की छुई-मुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर-मर। (चाँदनी)

---

१९. वही, पृष्ठ ४५-४६।

२०. पर्यालोचन (आधुनिक कवि, भाग २), पृष्ठ ३।

पंतजी की प्रकृति नारीमयी है और नारी प्रकृतिमयी। इसकी पुष्टि के लिए उनकी निम्नांकित पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

इन्दु पर, उस इन्द्रमुख पर साथ ही
थे पड़े मेरे नयन। (ग्रन्थि से)

पंत आकाश में अंकित इन्द्रधनुष को देखते हैं तो उन्हें किसी के रेशमी घूँघट का ध्यान हो जाता है—

देखता हूँ, जब इन्द्रधनुष पतला
इन्द्रधनुषी हलका।
रेशमी घूंघट बादल का
खोलती है कुमुद - कला;
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे करता तब अन्तर्धान। ('आँसू' से)

जिस प्रकार पंत ने 'चाँदनी' को दुलहिन के रूप में देखा है उसी प्रकार तन्वि गंगा को एक ऋषि कन्या के रूप में।[२१] उनकी नारी-कला को हम शब्दों के प्रयोग में देखते हैं, उन्होंने अनेक पुलिंग शब्दों का प्रयोग स्त्रीलिंग में किया है। यही उनकी कोमल प्रवृत्ति का बोधक है।

पंत की कविता में कोरी कल्पना नहीं है प्रत्युत् उसमें अनुभूति का सामंजस्य है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में 'कल्पना का विपुल ऐश्वर्य है', पर बाद की रचनाओं में अनुभूति-वेष्ठित कल्पना मिलती है। यह उनकी कला के क्रमशः विकास के स्पष्ट चिह्न हैं। 'काल की गति-वृद्धि ने उनकी कला पर भी अपनी छाप डाल दी है।' सन् १९२० की लिखी 'छाया' शीर्षक कविता में कोमल अनुभूति है परन्तु सन् १९१८ की लिखी 'छाया' कविता शिक्षाप्रद है। पंत के प्रणय-गीतों की रचना में कल्पना और अनुभूति का सुन्दर संयोग पाया जाता है। कल्पना और अनुभूति पंत के प्रेम-गीतों के अनिवार्य उपकरण

पंत की अनुभूति-वेष्ठित कला।

२१. तापस-बाला गंगा निर्मल। (नौका-विहार)

हैं, यही कारण है कि 'परिवर्तन' आदि कविताओं में वियोग का सुन्दर विकास हुआ है, यथा—

(क) अखिल यौवन के रंग-उभार;
हड्डियों के हिलते कंकाल;
कचों के चिकने काले व्याल
केंचुली, कांस, सियार;
गूंजते हैं सबके दिन चार;
सभी फिर हाहाकार!

(ख) प्रात ही तो कहलाई मात,
पयोधर बने उरोज उदार,
मधुर उर-इच्छा को अज्ञात
प्रथम ही मिला मृदुल आकार,
छिन गया हाय! गोद का बाल
गड़ी है बिना बाल की नाल!

इस प्रकार हम देखते हैं कि पंत की कला को उसके अनुकूल एक अनुभूति मिल गई।

पंत की दृष्टि में कला जीवन की अनुवर्त्तिनी भी है और अधिष्ठात्री भी। युग के परिवर्त्तन-काल में कला जीवन की अनुगामिनी रहती है और 'विकास के युग में जीवन कला का अनुगामी होता है'। पंत एक सजग कलाकार हैं, उनकी कला विकासोन्मुख है। एक शब्द में, उनकी कला में शिवम् और सुन्दरम् की उपस्थिति है। आज उनकी कला मांगलिक है और कला का मांगलिक रूप वरेण्य है। इत्यतत: उनकी कला अर्वाचीन और प्राचीन न होकर सर्वकालीन हो जायगी—ऐसा विश्वास है।

उपसंहार

हिन्दी साहित्य में पंत का स्थान

छायावादी कवियों में सर्वप्रथम यदि किसी को लोकप्रसिद्धि एवं लोकप्रियता प्राप्त हुई तो सुकुमार भावप्रवण कवि पंत को। तत्कालीन समीक्षकों ने

पृष्ठभूमि

छायावाद के किसी भी कवि को महत्ता प्रदान नहीं की। यदि किसी को कवि होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ तो सुमित्रानन्दन पंत को ही। तत्कालीन वयोवृद्ध सुप्रसिद्ध आलोचक पं० शुकदेव बिहारी मिश्र ने तो यहाँ तक कह डाला कि "मैं हिन्दी में केवल नवरत्नों को ही महाकवि मानता आया हूँ, किन्तु 'पल्लव' को पढ़कर मुझे तो ऐसा ज्ञात होता है कि यह बालक भी महाकवि है।" महाकवि पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' के शब्दों में—"आज उसी की प्रतिभा के रूप-रंग-मधु-गंध और भावोच्छ्वास की प्रशंसा से प्रतिमुख मुखर है। वह कौन है?—श्री सुमित्रानंदन पंत।"[1] यों तो पंत अपने विद्यार्थी-जीवन से ही कविता के छंदों की सृष्टि कर रहे थे पर यथार्थ रूप से हिन्दी-साहित्य-मंच पर उनका प्रादुर्भाव उस समय (सन् १९१७-१८) हुआ जब द्विवेदी-युग अपनी चरम-सीमा पर पहुँच चुका था। 'द्विवेदी-युग में जबकि व्रजभाषा और खड़ीबोली का वाद-विवाद चल रहा था, उस युग के नवयुवक कवि खड़ीबोली के प्रोत्साहन के लिए संलग्न थे, उस समय १८-१९ वर्ष का एक किशोर कवि अपने ही हृदय के नीरव एकांत में, आप-ही-आप अपनी सौन्दर्य-कल्पना के अनुरूप, खड़ीबोली को रूप-रंग देकर उसके अन्तरतम में मधुगंध भर रहा था; अपने ही क्रीड़ा-कौतूहल, हास-विलास एवं स्नेह-पुलक से उसे एक जीवन दे रहा था। वही किशोर कवि आज अपनी कल्पनाओं और भावनाओं के साथ ही तरुण होकर शत-शत

---

१. पंत और पल्लव—निराला।

भावुक हृदय नवयुवकों के स्नेहाकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बन गया है।'[२] द्विवेदी युग के अंतिम पहर में कुछ ऐसे कवि उदित हुए, जो अंग्रेजी कविता के प्रति अभिरुचि रखते थे, जिन्हें द्विवेदीयुगीन इतिवृत्तात्मक कविताएँ रुचिकर प्रतीत न हुईं। आचार्य द्विवेदी ने 'सरस्वती' पर सवार हो शब्द-वाणों से शृंगार-क्रोड़ में पली कविता को मार भगाया जिसके फलस्वरूप कविता की कोमलता एवं सरसता नष्ट हो गई। इसी युग में काव्य की नवीन प्रवृत्तियाँ जन्म ग्रहण करने लग गईं थीं। इन नयी प्रवृत्तियों के प्रस्फुटित होते ही इतिवृत्तात्मक कविता की भाषा, भाव एवं शैली का तीव्रतर विरोध हुआ। इस विरोध-अवधि में पंत अंग्रेजी के रोमांटिक कवियों—कीट्स, शेली, वर्डस्वर्थ, टेनीसन आदि—की कविताओं का रसास्वादन कर रहे थे। वह इन कवियों की स्वच्छन्द प्रवृत्तियों से अत्यधिक प्रभावित हुआ क्योंकि 'इन कवियों ने मशीन युग का सौंदर्यबोध और मध्यवर्गीय संस्कृति का जीवन-स्वप्न दिया है।' सुतरां, पाश्चात्य कवियों की कविताओं के समक्ष तत्कालीन हिन्दी कविता प्राणहीन एवं तुच्छ प्रतीत हुई। यह बात उनके हृदय में घर कर गई। कवि को अपने पूर्ववर्ती कवियों की कविताओं में न भाव-सौन्दर्य मिला, न शब्द-सौन्दर्य और न अभिव्यंजना-पद्धति में ही कोई नवीनता दीख पड़ी। यह सत्य है कि तत्कालीन हिन्दी काव्य में न भावों की गहराई थी और न हृदय की सच्ची अनुभूति ही। बहुतेरे कवियों की वृत्ति बहिर्मुखी थी। वे बाह्य-संसार के कवि थे, अन्तस् के नहीं, उनकी कविताओं में प्रकृति की मनुहार न थी और न था कोई नया भाव। इन बातों की पुष्टि 'पल्लव' की लम्बी भूमिका से स्पष्ट हो उठती है।

नवीन धारा के प्रवर्त्तक

छायावाद के उन्नायकों में पंत का व्यक्तित्व अत्यन्त प्रभावशाली है। मौलिकता उनके व्यक्तित्व की अपनी विशेषता है। प्रत्येक वस्तु के प्रति उनका अपना दृष्टिकोण है। पंत हिन्दी साहित्य की नई धारा के एक जागरूक एवं युगप्रवर्त्तक कवि हैं। शुरू से ही वे परम्परानुमोदित पथ के राहगीर न रहे प्रत्युत् उन्होंने अपना मार्ग स्वयं बनाया और उसी को प्रशस्त करते चले।

२. हमारे साहित्य निर्माता, पृ० १६६।

पाश्चात्य एवं बंगला साहित्य के अध्ययन ने उनके भीतर 'एक विशेष प्रकार की चेतनात्मक क्रांति भर दी।' इस प्रकार कवि ने काव्य के रूप एवं तत्व में परिवर्तन ला छोड़ा। इसीलिए पंत की कविता से हिन्दी में एक नये युग के प्रादुर्भाव की सूचना मिलती है। अपनी प्रतिभा एवं उर्वर कल्पना के साहचर्य से कवि ने छायावाद को सजाया और सँवारा। अंग्रेजी ढंग पर उन्होंने अमूर्त भावनाओं का मानवीकरण किया और नये उपमानों से कविता का शृंगार किया। अपनी भावनाओं के अनुरूप ही कवि ने शब्दों का चयन किया, अपनी भाषा का संस्कार किया। यही कारण है कि अंग्रेजी साहित्य से परिचित पाठकों के बीच उनकी कविता अत्यन्त ही लोकप्रिय हुई। स्वभाव से गंभीर एवं प्रकृति से स्वच्छंद होने के कारण ही इनकी कविता में स्वच्छन्दता का पुट देखने को मिलता है। छायावाद में प्रकृति चेतन मानी गई और प्रकृति को चेतना प्रदान करने का श्रेय पंत को प्राप्त है। 'विषय-प्रतिपादन के लिए उत्तम पुरुष प्रधान शैली का प्रयोग निश्चित रूप में तत्कालीन परिस्थितियों में पाश्चात्य साहित्य की देन है तथा विषय के प्रतिपादन में प्रकृति का आलंबन रूप हिन्दी साहित्य को ही नहीं वरन् आधुनिक सम्पूर्ण साहित्य को वर्डसवर्थ की अपनी देन है। दुःखवादी विचारधारा ही प्रसाद के हाथों से परिष्कृत हुई है, दर्शन निराला के हाथों में निखरा है तथा प्रकृति की भूमि में दुःख तथा दर्शन दोनों की गलबाँहीं करते हुए पंत साहित्य-क्षेत्र में आते हैं और यहीं इस नवीन साहित्यिक चेतना का परिष्करण होता है। इस प्रकार पंत पूर्ण छायावादी काव्यधारा के प्रतीक एवं प्रवर्त्तक हैं।'[३]

पंत की 'वीणा' की कविताओं को पढ़कर रूढ़िग्रस्त आलोचकों का मिजाज गर्म हो उठा, उनके गले नहीं उतरी। 'वीणा' पर टिप्पणी करते हुए पं० पद्मसिंह शर्मा ने कहा था : "कविता-वल्ली को प्रतिभा के वारि से सींच कर 'पल्लव' निकालिये, खुशी से उसकी छाया में बैठकर 'वीणा' बजाइये; पर काव्य-कानन के कल्पवृक्षों की जड़ पर कुमति कुठार न चलाइए। यह अत्याचार असह्य है। आपको इसकी गंध नहीं भाती, शिकायत

३. फूलचन्द पांडेय।

नहीं, अपनी पसन्द अपनी रुचि—कीजै कहा करता से न चारों—पर इनकी महक के मतवाले मधुप भी हैं, उन वृक्षों पर न सही, इन पर दया कीजिए—'पल्लव' के नोकीले और जहरीले कांटे इनके दिल में न चुभाइये, 'वीणा' में सोहनी स्वर छोड़िए, 'मारू राग न बजाइए'। "आचार्य द्विवेदी और शुक्लजी को इन छायावादी कवियों की कल्पना रुचिकर प्रतीत न हुई। इस नवीन काव्यधारा को इन आलोचकों ने पागल-प्रलाप समझा। इन कवियों ने मूर्त्त के लिए अमूर्त्त उपमान को प्रस्तुत किया जिसे देखकर इन आलोचकों की नाक-भौं चढ़ गई। छायावादी कवियों को प्यार के स्थान पर तिरस्कार मिला, वे शब्द-बाणों के माध्यम से अपमानित किये गए। इतना विरोध होने पर भी पंत अटल रहे और उन दुर्वासाओं को मुँहतोड़ उत्तर भी दिया। पंत ने 'वीणा' की भूमिका में इन आलोचकों को 'रणकुशल कठफोर' की संज्ञा से विभूषित किया—"संत हंसों की तो वैसे भी चिन्ता नहीं रहती ; हाँ, वारि-विकार के प्रेमियों के कठोर आघात से बचने के लिए एक बार मैंने सोचा था कि इस भूमिका में अत्यन्त विनीत तथा शिष्ट शब्दों की चाटुकारिता का रोचक जाल फैलाकर उनकी रणकुशल कठफोर की-सी ठोंठ बाँध दूँ। किन्तु 'निज कवित्त केहि लाग न नीका' वाली किंवदन्ती की याद आते ही मेरे अभिमानी कवि ने निर्ममता का कवच पहनकर, मुझे, उसकी लम्बी चोंच के लिए 'शोखा' तैयार करने से हठात् रोक दिया।' यह वह समय था जबकि साहित्य-क्षेत्र में संकीर्ण विचारों की प्रधानता थी और नवीनता के प्रति दुराग्रह। तत्कालीन कवियों में अंधगुरुभक्ति थी। वे 'भींगी पलकों का लगना' और झलका हास कुसुम अधरों में' देखकर घबड़ाए। पंत को परम्परा-पोषित कवियों का दल मिला और समीक्षकों में 'संकीर्ण विचारों से परिभूत समाज।' बंधन-मुक्त कवि पंत संकीर्णता के भार को सह न सका जिसके फलस्वरूप उसके हृदय में अंधविश्वासों के प्रति प्रतिक्रिया का भाव जाग्रत हुआ। उसे साहित्यिक जीवन के पहले प्रभात में विरोधों और संघर्षों का सामना करना पड़ा। अतः आत्मविश्वासी कवि पंत अपने चिरपोषित विचारों एवं विश्वासों को लेकर 'वीणा' के माध्यम से आए। 'वीणा' की सरस कविताओं ने साहित्य के

सूखे कगारों को रस-प्लावित कर दिया और नवीन भावभूमि का शिलान्यास हुआ। इस प्रकार 'वीणा' से ही नये काव्य-जीवन (छायावाद) का समारंभ होता है और पंत नई धारा के प्रवर्त्तक माने जाते हैं।

काव्य-कला के परिष्कारक का रूप

छायावाद की कला को पंत ने प्राणान्वित किया। यों तो इसका आरंभ 'झरना' से होता है और यही छायावादी काव्य-परम्परा का मूल स्रोत है, पर पंत ने उसका परिष्करण किया। उन्होंने कला के बाह्य रूप को ही नहीं सँवारा प्रत्युत् उसकी आत्मा को सचेतन बनाया। डा० नगेन्द्र ने ठीक ही कहा है; "कलाकार के रूप में पंतजी पर जो कुछ कहा जाए थोड़ा ही है।....उनकी रंगीन कला इतनी कोमल है कि विश्लेषण करते ही वह तितली के पंखों की तरह बिखर जाती है और आलोचकों को अपनी कृति पर पश्चाताप करने की ही अधिक संभावना रहती है।" पंत की सबसे बड़ी कलागत विशेषता है खड़ीबोली को कोमलता की देन। उनकी कोमल-कांत भाषा की मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हुए श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी ने लिखा है कि पंत ने खड़ीबोली के खुरदरे रूप को काव्योपयोगी बना डाला और उनके हाथ में 'खड़ी बोली इतनी मधुर और कोमल हो गई कि यदि आज व्रजभाषा जीवित होती तो उसे खड़ीबोली से ईर्ष्या होती।' पंत ने 'पल्लव' के 'प्रवेश' में खड़ीबोली का जोरदार समर्थन करते हुए कहा कि 'अब व्रजभाषा और खड़ी बोली के बीच जीवन-संग्राम का युग वीत गया। हिन्दी ने अब तुतलाना छोड़ दिया, वह 'पेय' को 'प्रिय' कहने लगी है। उसका किशोर कंठ फूट गया, अस्फुट अंग कटछट गए...मुझे तो उस तीन चार सौ वर्षों की वृद्धा (व्रजभाषा) के शब्द बिल्कुल रक्तमांस-हीन लगते हैं, जैसे भारती की वीणा की झंकारें बीमार पड़ गयी हों, उसके उपवन के लहलहे फूल मुर्झा गये हों...।...खड़ीबोली आगे की स्वर्णाशा है, उसकी बालकला में भावी की लोकोज्ज्वल पूर्णिमा छिपी है। वह भविष्याकाश की स्वर्गगंगा है। यह समस्त भारत की हृत्कम्पन है।" अतः पंत के हाथों में आकर खड़ी बोली काव्य-भाषा बन गयी। आचार्य द्विवेदी गद्य और पद्य दोनों में खड़ीबोली को प्रतिष्ठापित करना चाहते थे

और कुछ अंशो में उन्हें सफलता भी मिली ; पर उस युग की भाषा में कर्कशता थी, सरसता नाम की चीज उसे नसीब नहीं। स्वभाब से कोमल कवि के हृदय को द्विवेदीयुगीन भाषा आकृष्ट न कर सकी। अतः पंत ने सबसे पहले उसे सरसता प्रदान की और बाद में वह स्वयं सजीव हो उठी। इतना ही नहीं, उस नीरस भाषा को नाद-सौन्दर्य से मण्डित कर संगीतमय बना दिया। जो कोमलता जयदेव की पदावली में है, वह पंत की कविता में आकर सिमट गई। उनकी कविता में जो शब्द प्रयुक्त हुए हैं, वे चिंतन एवं साधना के परिचायक हैं। कवि को शब्द की अन्तरात्मा का पूर्ण ज्ञान है और वे पर्याय-वाची शब्दों के भेद से सुपरिचित हैं। भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिन शब्दों का संचयन किया गया है, वे शक्तिमय हैं। अत: उनका शब्द-चयन उपयुक्त एवं शब्द-स्थापन मार्मिक हैं। अतएव उनकी भाषा में चित्रमयता का गुण समाहित हो उठा है। पंत की कविताओं में जो अलंकार या छंद आये हैं, वे भावों को गति प्रदान करने के लिए। इससे उनकी कविता में एक प्रकार की स्पर्शशीलता आ गयी है। इस दृष्टि से उनकी प्रतिभा अप्रतिभ है।

पंत की कविता की पहली एवं सबसे बड़ी विषयगत विशेषता है— प्रकृति-चित्रण। उन्हें कविता करने की आदि प्रेरणा अलमोड़ा की प्रकृति से मिली है। कवि ने इसे 'प्रकृति का रम्य शृंगार-गृह' कहा है। पंत के पहले प्रकृति का स्वतंत्र अस्तित्व नहीं था और प्रकृति सदैव उद्दीपन रूप में ही अंकित रहती थी, पर पंत ने रूढ़िवद्ध दृष्टिकोण में परिवर्तन ला रख छोड़ा। कवि की प्रवृति

प्रकृति का अनन्य गायक

सजीव है, चेतन है, वह मानव के समान सुख दुख का अनुभव करती है, उसमें जीवन है। वह उद्दीपन नहीं प्रत्युत् सजीव आलंबन है। उन्होंने प्रकृति को अपने व्यक्तित्व में समाहित कर लिया है। उनकी कविताओं में प्रकृति सदैव लास्य करती रहती है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में शायद् ही कोई ऐसा कवि होगा जिसने प्रकृति की आराधना में अपने आप को विलीन कर लिया हो। प्रकृति-सौन्दर्य के समक्ष कवि ने अन्य सौन्दर्य-सामग्री को हेय माना है। प्रकृति

का सम्मोहन उनकी प्रत्येक कृति में दृष्टिगत होती है। आरंभ में कवि प्रेम और प्रकृति के आकर्षण-द्वन्द्व में फंसा था जिसे कवि ने निम्नांकित पंक्तियों में व्यक्त किया है —

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?
भूल अभी से इस जग को !

पर कवि का यह द्वन्द्व क्षणिक था और तत्पश्चात् उसका प्रकृति-प्रेम अजर-अमर बन गया। प्रकृति के सुन्दर रूप ने ही कवि को विशेष रूप से आकृष्ट किया है, उसकी प्रकृति वर्डसवर्थ के समान कोमल- मृदुल, शान्त, सुन्दर एवं मोहक है। कवि की प्रकृति में कोमलता के साथ-साथ वर्ण-विपुलता भी है। वस्तुतः पंत की लेखनी से जो कविता निःसृत हुई है, उसमें प्रकृति को सिर्फ कोमल, सजीव एवं सामासिक रूप नहीं है प्रत्युत संश्लिष्ट भी हैं।

सांस्कृतिक चिंतक

आरंभ में कवि भावुक था पर अवस्था-वृद्धि के साथ-साथ उसमें चिंतन की भावना घर कर गई। वह जीवन की प्रत्येक वस्तु को एक अपनी दृष्टि से देखने लगा। उसने स्वामी विवेकानंद और स्वामी रामतीर्थ के वेदांत-दर्शन का आलोड़न किया जिससे उसके रागतत्व में परिवर्तन हुआ। उसका जो प्रवाह था, वह बदल गया। कवि की निजी भावनाओं के संसार में कुछ समय के लिए नैराश्य की बदली छा गई। कवि के शब्दों में—"मनुष्य के जीवन के अनुभवों का इतिहास बड़ा ही करुण प्रमाणित हुआ। जन्म के मधुर रूप में मृत्यु दिखाई देने लगी, वसंत के कुसुमित आवरण के भीतर पतझर का अस्थिपंजर !

'खोलता इधर जन्म लोचन,
मूंदती उधर मृत्यु क्षण-क्षण !'
'वही मधुऋतु की गुंजित डाल
झुकी थी जो यौवन के भार,
अकिंचनता में निज तत्काल
सिहर उठती,—जीवन है भार !

मेरी जीव दृष्टि का मोह एक प्रकार के छूटने लगा और सहज जीवन व्यतीत करने की भावना में एक तरह का धक्का लगा। इस क्षणभंगुरता के 'बुदबुदों के व्याकुल संसार' में परिवर्तन ही एक मात्र चिरंतन सत्ता जान पड़ने लगी। मेरे हृदय की समस्त आशाऽकांक्षाएँ और सुख-स्वप्न अपने भीतर और बाहर किसी महान् चिरतंन वास्तविकता का अंग बन जाने के लिये, लहरों की तरह, अज्ञात प्रयास की आकुलता में, ऊब डूब करने लगे। किन्तु दर्शन का अध्ययन विश्लेषण की पैनी धार से जहाँ जीवन के नाम रूप गुण के छिलके उतार कर मन को शून्य की परिधि में भटकाता है वहाँ वह छिलके में फल के रस की तरह व्याप्त एक ऐसे सूक्ष्म संश्लेषणात्मक सत्य के आलोक से भी हृदय को स्पर्श करता है कि उसकी सर्वातिशयता चित्र को अलौकिक आनंद से मुग्ध और विस्मित कर देती है। भारतीय दर्शन ने मेरे मन को अस्थिर कर दिया।

'जग के उर्वर आंगन में बरसो ज्योतिर्मय जीवन,
बरसो लघु तृण तरु पर हे चिर अव्यय चिर नूतन !' —

इसी सविशेष की कल्पना के सहारे, जिसने 'ज्योत्स्ना' को और 'गुंजन' की 'अप्सरा' को जन्म दिया है, मैं पल्लव से गुंजन में अपने को सुन्दरम् से शिवम् की भूमि पर पदार्पण करते हुए पाता हूँ। गुंजन में मेरी बर्हिमुखी प्रकृति, सुख-दुख में समत्व स्थापित कर अन्तमुंखी बनने का प्रयत्न करती है; साथ ही गुंजन और ज्योत्स्ना में मेरी कल्पना अधिक सूक्ष्म एवं भावात्मक हो गई है। गुंजन के भाषा संगीत में एक सुघरता, मधुरता और श्लक्ष्णता आ गई है जो 'पल्लव' में नहीं मिलती। गुंजन के संगीत में एकता है, पल्लव के स्वरों में बहुलता। पल्लव की भाषा दृश्य जगत के रूपरंग की कल्पना से मांसल और पल्लवित है, गुंजन की भाषा, भाव और कल्पना के सूक्ष्म सौन्दर्य से गुंफित। ज्योत्स्ना का वातावरण भी सूक्ष्म की कल्पना से ओतप्रोत है, उसका सांस्कृतिक समन्वय सर्वातिशयता (ट्रेन्सेन्डेन्टलिज्म) के आलोक (दर्शन) को विकीर्ण करता है।" इस कथन से यह साफ जाहिर है कि गुंजन से ही कवि के भावों में तीव्रता आ गई और वह जीवन, जगत

और विश्व का चिंतक बन बैठा। पर 'युगान्त' ने तो उसकी कोमल भावना के पर्यवसान की सूचना दे दी। कवि की चिंतन प्रवृत्ति बढ़ गयी और वह अपनी जीवनधारा के साथ-साथ काव्यधारा से भी परिवर्तित दृष्टिगत होने लगा। तत्पश्चात् पंत की लेखनी से जो काव्यवृतियाँ आईं जैसे स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, उत्तरा, अतिमा और वाणी, उनमें कवि एक नवीन संस्कृति का प्रचारक बन गया। इन रचनाओं में कवि का अरविन्द दर्शन बोल उठा जिसकी पृष्ठभूमि 'ज्योत्स्ना' ही है। युगवाणी में कवि का दृष्टिकोण एकांगी था पर परवर्ती रचनाओं में भारतीय दृष्टिकोण संरक्षित है। सच पूछा जाय तो हमारा विचार है कि इन रचनाओं में पंत कवि नहीं हैं, प्रत्युत् सांस्कृतिकचेता ही अधिक हैं।

पंत की काव्यचेतना में उनकी नवीन अभिव्यंजना-पद्धति का विशेष महत्व है। यह उनकी मौलिक उद्भावना है। द्विवेदी युगीन कविता नीरस, शुष्क, गद्यवत एवं इतिवृतात्मक थी, भाषा एक साँचे में ढली होती थी, पर छायावादी कवि किसी प्रकार का बंधन नहीं चाहते थे। वे अपनी भावनाओं के अनुरूप भाषा चाहते थे। अतः उन्हें नई शैली, नूतन अभिव्यंजना-पद्धति की आवश्यकता आ पड़ी। इन कवियों में पंत अग्रगण्य हैं। अतः इनकी अभिव्यंजना प्रणाली पूर्ववर्ती शैलियों से बिलकुल भिन्न है। कवि ने अंग्रेजी की अभिव्यंजना-प्रणाली को अपनाकर हिन्दी के सामने एक नवीन काव्य शैली को जन्म दिया। पंत की कविता की नवीन विशिष्टता है—नवीन लाक्षणिकता, प्रतीक-योजना, सूक्ष्म उपमान, मानवीकरण एवं साम्य-योजना। कवि रूढ़िग्रस्त उपमानों से संतुष्ट न होकर नवीन उद्भावना में प्रवृत्त हुआ। इस प्रकार की नवीन शैली को देखकर अनेक आलोचक की बुद्धि किंकर्त्तव्यविमूढ़-सी हो उठी। इसलिए लोगों ने छायावाद को काव्यशैली या पद्धति विशेष मान लेने में बिलकुल भूल की। पंत की इस नवीन शैली में कवि का सूक्ष्म पर्यवेक्षण। अनुभूति की गंभीरता एवं हृदय की सरसता दृष्टिगत होती है और इसीलिए कवि ने प्रभावपूर्ण प्रतीकों का सृजन किया। उनके प्रतीक प्रकृति

नूतन काव्यशैली का स्रष्टा

के क्षेत्र से चुने हुए हैं जो हृदयगत भावों की अभिव्यक्ति में समर्थ हैं। इसके अतिरिक्त उनकी कविता में ध्वन्यात्मकता एवं संगीतात्मकता भी मिलती है जिसके कारण उनकी कविता पाठकों का हृदय अपनी ओर आकृष्ट-कर लेती है। सच तो यह है कि यदि पंत ऐसा कवि पाश्चात्य देश में पैदा होता तो उसके नाम पर एक युग खड़ा हो जाता और महाकवि की संज्ञा से विभूषित किया जाता।

आधुनिक युग 'वादों' से आक्रान्त रहा है। यह युग ही ऐसा है कि 'वाद' तुरत ही अपना करवट बदलने लगता है क्योंकि समाज के भीतर कोई दृढ़ धारणा नहीं है। वह पल में तोला है तो पल में माशा। कोई स्थिर विचार नहीं है। 'वाद' की धारा कोशी नदी के समान पल-पल परिवर्तित है।

दो युगों के प्रतीक

इसकी धारा में ठहराव नहीं है। इसके पीछे राजनीतिक परिस्थितियों का बहुत जबरदस्त हाथ है। सन् १९१८-१९ के आसपास छायावाद अंगड़ाई ले रहा था और सन् १९२४-२५ के बीच रहस्यवाद की धारा फूट पड़ी और सन् १९३६ आते ही प्रगतिवाद हुंकारी भरने लगा। सन् १९४७ में आजादी मिली, युग-प्रभात होने का स्वप्न दिखायी पड़ने लगा। राजनीति-अंचल का गाँधीवाद और मार्क्सवाद अपनी विशिष्टाताओं के कारण युग की आधारभूमि बन गया।

तत्कालीन हिन्दी कवियों में पंत ही एक ऐसे कवि हैं जो प्रत्येक पल सजग रहे हैं। इनकी प्रवृत्ति सदैव विकासमूलक रही है। उन्होंने ही सामयिक युग की समस्त प्रवृत्तियों का आलोड़न किया। प्रगतिवाद के पहले प्रसाद की वाणी विलीन हो गई, निराला का उन्माद में परिणत हो गया, महादेवी ने विरहाग्नि में जला डाला, डा० रामकुमार वर्मा ने एकाकी स्वर को प्रधानता देने का प्रयास किया और निशा-निमंत्रण का बच्चन आनन्द का राग अलापने लगा, किन्तु पंत ही एक ऐसे कवि हैं जिनकी वाणी में रस है, लालित्य है, माधुर्य है, कल्पना है, सौन्दर्य है और कला की साधना भी। इसीलिए डाक्टर केसरी नारायण शुक्ल ने ठीक ही लिखा है कि 'पंत के व्यक्तित्व में हमें हिन्दी-काव्य के दो युगों का पथ-प्रदर्शन मिलता है। वे छायावाद

के उन्नायकों में भी हैं और प्रगतिवाद का संचालन भी उनके द्वारा हुआ है। उनकी रचनाओं के अध्ययन से उनके व्यक्तित्व के विकास का परिचय तो मिला ही है, उसके साथ-साथ युग परिवर्तन का आभास भी मिल जाता है। किस प्रकार छायावाद का पर्यवसान प्रगतिवाद में हुआ—इसकी पूरी-पूरी कथा पंत की रचनाओं में मिलती है। 'पल्लव' से 'युगवाणी' की प्रगति में छायावाद की प्रगतिवाद में परिणति की सूचना मिलती है·····इस प्रकार पंत की रचनाएँ छायावाद और प्रगतिवाद की प्रतीक बन जाती हैं।"

इस विवेचन-विश्लेषण के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पंत युग की समस्त साहित्यिक धाराओं से पूर्णतया परिचित हैं और इसके कायम रखने में सक्रिय सहयोग दिया है और तीनों (छायावाद, रहस्यवाद और प्रगतिवाद) में पंत का स्थान अतिशय महत्वपूर्ण है। छायावाद युग में पंत का कवि प्रकृति को लेकर अमर है तो 'ग्राम्या' के साथ प्रगतिवादी पंत सजीव है।

उपसंहार

किन्तु आज का कवि तीनों परम्पराओं से विलग होकर एक नवीन संस्कृति के काल्पनिक निर्माण में संलग्न है। आज का पंत छायावद-प्रगतिवाद की मोह-ममता को त्याग कर दोनों का सामंजस्य स्थापित करना चाहता है। वह एक प्रगतिशील कवि है, प्रगतिवादी नहीं। उसके व्यक्तित्व में तत्कालीन युग प्रवृत्तियाँ आकर समाहित हो गई हैं और काव्यकृत्तियों में गुंजित हैं। वस्तुतः पंत का जीवन ही नवयुग का सम्पूर्ण साहित्य है। इस प्रकार पंत एक कवि हैं, विचारक हैं, चिंतक हैं, सांस्कृतिक एवं भविष्यचेता हैं। युग-युग के साथ चिर प्रगतिशील कवि पंत हिन्दी की अमर विभूति हैं। अतः हिन्दी कतियों में उनका शीर्ष स्थान है।

आलोचकों की दृष्टि में पंत

[१] पंत के व्यक्तित्व में हमें हिन्दी-काव्य के दो युगों का पथ-प्रदर्शन मिलता है। वे छायावाद के उन्नायकों में भी हैं और प्रगतिवाद का संचालन भी उनके द्वारा हुआ है। उनकी रचनाओं के अध्ययन से उनके व्यक्तित्व के विकास का परिचय तो मिलता ही है, उसके साथ-साथ युग-परिवर्तन का आभास भी मिल जाता है। किस प्रकार छायावाद का पर्यवसान प्रगतिवाद में हुआ—इसकी पूरी-पूरी कथा पंत की रचनाओं में मिलती है। 'पल्लव' से युगवाणी की प्रगति में छायावाद की प्रगतिवाद में परिणति की सूचना मिलती है।

डा० केसरी नारायण शुक्ल

'पल्लव' में पंत का छायावादी रूप बिखरा हुआ है। 'पल्लव' में कवि का व्यक्तित्व अत्यन्त उत्कर्ष पर है। कल्पना का स्वच्छन्द रूप यत्र-तत्र बिखरा हुआ है और रहस्यवाद के अत्यन्त मधुर और रुचिर संकेत भरे पड़े हैं। प्रकृति के बीच कवि सौन्दर्य की खोज में व्यस्त है। 'गुंजन' में भी सौन्दर्य की भावना अक्षुण्ण है, किन्तु कवि 'मानव' को सृष्टि की सौंदर्य की मूर्त्ति मानने लगता है। इतना ही नहीं, प्रकृति को भी सौंदर्य और शृंगार की भावना मनुष्य से प्राप्त हुई। मनुष्य से ही कलियों ने मुसकाना सीखा है, फिर भी मनुष्य सुखी नहीं है। उसने देश, जाति और वर्ग की दीवाल उठाकर अपने को विभाजित कर दिया है। दुःख, दरिद्रता और द्वेष से वह पीड़ित है। कवि इसके उद्धार के लिए वर्तमान व्यवस्था का नाश और नव समाज और संस्कृति का निर्माण चाहता है। कवि को नवीन-संस्कृति के उदय का विश्वास भी है। 'युगान्त' में पुरातन युग के अंत की सूचना मिलती है। कवि कह उठता है कि 'द्रुत झरो जगत् के जीर्ण पत्र' और 'जीर्ण शीर्ष हो नष्ट पुरातन'।

नवीन व्यवस्था की स्पष्ट सूचना 'युगवाणी' में मिलती है। कवि साम्यवाद का आवाहन कर रहा है। सामूहिक नियंत्रण पर विशेष आग्रह है। इसके साथ-साथ कवि गांधीवाद और अहिंसा को भी चाहता है। व्यक्ति के विकास के लिये सत्य और अहिंसा आवश्यक है और समाज के लिए साम्यवाद। कवि इन दोनों का सामंजस्य चाहता है। वह राजनीतिक दासता, सामाजिक अंधविश्वास और आर्थिक शोषण के विरुद्ध अपनी आवाज उठाता है। कला के मानदंड की भावना भी बदल जाती है। उसके मूल्यांकन की माप जनहित बन जाती है। 'पल्लव' का स्वच्छन्दतावादी और सौन्दर्यवादी कवि 'युगवाणी' में उपयोगितावादी बन जाता है। इस प्रकार पंत की रचनाए छायावाद तथा प्रगतिवाद की प्रतीक बन जाती हैं।'

[२] कवि श्री सुमित्रानन्दन पंत मौलिक रूप से एक सौन्दर्यवादी कवि हैं। समय-समय पर उनका सौन्दर्यवादी दृष्टिकोण बदलता अवश्य रहा है, किन्तु कवि की मौलिक दृष्टि कभी नहीं बदली।....... 'वीणा' में प्रकाशित पंतजी की अधिकांश कविताएँ और 'पल्लव' में छपनेवाली वीणाकालीन कविताएँ गीतांजलि की शैली से प्रभावित थीं। यदि छायावाद सार्थक शब्द है, तो यह कहना अनुचित नहीं होगा कि पंतजी की उपयुक्त रचनाएँ ही सबसे अधिक छायावादी हैं। पंतजी ने इन्हें अपना 'दुधमुँहाँ प्रयास' कहा है, किन्तु इनका बाल-सुलभ भोलापन और तुतलापन इतनी स्वाभाविकता लिये हुये नहीं है, जितना कि प्रथम दृष्टि में आभासित होता है। इनका स्वर कुछ बनावट लिये हुये भी है। इस अप्रत्याशित के कारण पंतजी का सौन्दर्यबोध उतना मौलिक नहीं रहा, जितना आरम्भ के विद्रोह में था। फिर भी 'वीणा' की कई-एक झंकार आज भी हमारे कानों में गूँजती है और हिंदी-काव्य-संगीत के प्रेमियों द्वारा सदैव सादर-सप्रेम संगृहीत की जायगी। 'वीणा' की झंकारों में कई कोमल स्वर है और कदाचित् उस कोमलता का पूर्णतः आभास देने के लिये ही कवि ने किसी

नरेन्द्र शर्मा

१. आधुनिक काव्यधारा का सांस्कृतिक स्रोत, पृ० २०१-३

बालिका के मुख से उन कौतूहल-पूर्ण कविताओं को कहलाया है। कहा तो यह भी जाता है कि उस काल में पंतजी ने अपनी कुछ रचनाएँ 'नन्दिनी' नाम से भी लिखी थीं। और इसी नाम से वह उन कविताओं को 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशनार्थ भेजा करते थे। नारी-स्वर के प्रति पंतजी का यह आकर्षण धीरे-धीरे नारी-रूप के प्रति भी बढ़ता गया। बहुधा हम उस वस्तु के सदृश बन जाना चाहते हैं, जिस वस्तु के प्रति हमें अनुराग हो। सम्भव है, इसी मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त के अनुसार नवयुवक पंत ने भी नारी-तत्त्व के प्रति अपना मनोगत आकर्षण प्रकट किया हो।.........वास्तविक सत्य यह है कि नारी का द्वन्द्वरूप पंतजी को आकर्षित नहीं करता रहा। कामिनी की कमनीयता के ही उपासक रहे हैं पंतजी, उसके काम-तत्त्व के नहीं। कारण, कि पंतजी सौंदर्यवादी हैं, भोग्यवादी नहीं। पंतजी का सौन्दर्यवाद ही, उनके प्रारम्भिक रचना-काल में, उन्हें व्याकरण की कड़ियाँ तोड़ने के लिये बाध्य करता रहा है। शब्दों के लिंग-भेद का ज्ञान भी वह इसी कारण भुलाते रहे हैं—'प्रभात' को पुंलिंग से स्त्रीलिंग और 'बूँद' को स्त्रीलिंग से पुंलिंग बना देना उनके लिए स्वाभाविक काव्य-क्रिया रही है। 'मरुताकाश' और 'मरुदाकाश' के भेद को उन्होंने शब्द-सौन्दर्य के आधार पर अनदेखा कर दिया है।[२]

[३] दोनों द्विवेदी-युग के तृतीय उत्थान के जागरूक कलाकार है। दोनों खड़ी बोली हिंदी के पोषक और संस्कृति-गर्भित भाषा के पक्षपाती हैं। दोनों को काव्य की प्रेरणा प्रकृति से मिली है और दोनों का उसके सौन्दर्य के प्रति अटल अनुराग है। इसलिए दोनों शृंगारी, रहस्यवादी और दार्शनिक कवि हैं। दोनों आस्तिक हैं। दोनों को मानव-जीवन और उसके उच्चादर्शों से प्रेम है। दोनों आशावादी हैं और विश्व-बन्धुत्व में विश्वास करते हैं। आधुनिक युग की सामाजिक एवं राजनैतिक चेतनाओं से दोनों भली-भाँति परिचित हैं और उनसे प्रभावित भी हैं। दोनों में समन्वय की भावना भी पायी जाती है। दोनों साहित्य-कला

राजेन्द्र सिंह गौड़

---

२. आलोचना (त्रैमासिक), अंक १ पृ० ३९-६

के अच्छे पारखी और अध्ययनशील हैं। वंग-साहित्य और संस्कृत-साहित्य से दोनों को प्रेम है, दोनों सहृदय और भावुक हैं। पर इतनी समानता होते हुए भी दोनों की अन्तश्चेतना में, दोनों की अभिव्यक्ति में, दोनों की शैली में महान् अन्तर है। इस अन्तर के दो ही मुख्य कारण हैं—एक तो जीवन-परिस्थितियों की प्रतिकूलता और दूसरे अध्ययन की विविधता। पंत के जीवन में पलायन-प्रवृत्ति है। जीवन के संघर्षों से वह बचते रहे हैं। प्रकृति-सुन्दरी की सुषमाभरी गोद से नीचे उतरकर उन्होंने जीवन की कठोर भूमि पर पैर रखने का साहस नहीं किया है। इसलिए मानव-हृदय का वह अन्तर्द्वन्द्व उनकी रचनाओं में नहीं है जो प्रसाद की रचनाओं में पाया जाता है। प्रसाद का जीवन संघर्षमय है। उनकी कविता जीवन के संघर्ष में पनपी और पुष्पित हुई है। पंत की कविता जीवन-प्रहर्ष में ग्राह्य हुई है। प्रसाद की रचनाओं में पाने खाने का हर्ष-विषाद है, सांसारिक आवेग-प्रवेग है। इसलिए लौकिक जीवन के लिए विदग्धकर हो सके हैं। पंत की रचनाएँ जीवन के उल्लास को लेकर ही चली हैं। वह इतने सुकुमार रहे हैं कि वह सुख-सुषमा को भी कल्पना-जगत् में ही ग्रहण कर सके हैं। इसलिए वह उसका अतिक्रमण कर उसकी चरम-सीमा पर भी चले गए हैं। जितना ही वह आगे गए हैं उतना ही पीछे लौट पड़े हैं। जिस वास्तविकता से विरत होकर वह कभी कल्पनाशील हुए थे, लौटकर उसी वास्तविकता की कल्पनाहीन कुरूपता पर असंतोषी भी हो गए हैं। प्रसाद आरंभ से ही मानव-जीवन के विकास की ओर अग्रसर हैं।[२]

[४] 'श्री सुमित्रानन्दन पंत हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद के सूत्रपातकर्ताओं में से हैं। छायावाद की ओर से प्रगतिवादी आंदोलन की ओर इनके मुड़ जाने से नवयुवक कवियों पर बहुत प्रभाव पड़ा और वे भी उस ओर प्रवृत्त हुए। मार्क्सवाद की ओर पंतजी का झुकाव सामूहिक हित की दृष्टि से है। व्यक्तिगत रूप से गाँधीवाद से भी ये प्रभावित प्रतीत होते हैं और भारतीय आत्मवाद का भी इनपर गहरा रंग

विजय शंकर मल्ल

२. आधुनिक कवियों की काव्य-साधना, पृ० २६४

है। मार्क्सवादी आत्मा की सत्ता नहीं मानते। पदार्थ को ही सब कुछ समझते हैं; पर पंतजी पदार्थ को ही सब-कुछ नहीं स्वीकार करते और संकीर्ण भौतिकवादियों से असहमति प्रकट करते हैं। 'जहाँ आत्मदर्शन अनादि से समासीन' है उस स्वर्ग की प्राप्ति के लिए ये भौतिकवाद को साधनमात्र मानते हैं। स्पष्ट है कि मार्क्स के भौतिकवाद की ओर इनका झुकाव वर्तमान विषमता के उन्मूलन की आशा से ही है। इस प्रकार ये आत्मा और जगत् का सामंजस्य ही घटित करना चाहते हैं। भौतिकता की जो उपेक्षा हुई है उसका परिहारमात्र इनका आशय प्रतीत होता है, कुछ उसकी प्रभुता स्थापित करना नहीं। पंतजी प्रगतिवाद के भीतर भी आकर अपना सौन्दर्यवादी रूप बनाये हुए हैं। इधर जो उनमें सबसे बड़ा परिवर्तन हुआ है, वह है यथार्थोन्मुखता। कल्पना के लोक से उतरकर यथार्थ जगत् के वैषम्य और उसकी पीड़ा का अनुभव करने के साथ ही निम्नवर्गीय जन-जीवन के नाना-विध चित्र आँकने का प्रयास इन्होंने किया है। यद्यपि 'युगवाणी' की अधिक रचनाएँ सिद्धांत-प्रतिपादक ही हैं; पर आगे की अन्य रचनाओं में जन-जीवन के हर्ष-विषाद और सुख-दुःख के मार्मिक रूप कवि ने उपस्थित किए हैं। जो वास्तविकता है उसको उसी रूप में देखने का प्रयत्न किया है। अबतक प्रायः कवियों ने भारतमाता को भावुकतामयी दृष्टि से ही देखा था, अधिकतर उसके प्राकृतिक सौन्दर्य पर जाकर उनकी दृष्टि टिक रहती थी; पर पंतजी ने उसका दुःख-दर्द और अज्ञान से भरा ग्रामीण रूप भी दिखाया।

भौतिकता की उपेक्षा न होनी चाहिये; वास्तविक जगत् के कठोर सत्यों से पलायन अनिष्टकर है—यह सब तो कहा; पर साम्यवाद की स्थापना के लिए कोई निश्चित योजना प्रस्तुत करने का प्रयास इन्होंने नहीं किया और न वर्ग-संघर्ष आदि उपायावलंबनों का ही उपदेश दिया। यह सब उनके कवि-रूप के सर्वथा अनुकूल हुआ है। 'ग्राम्या' में यद्यपि इनकी बौद्धिक दृष्टि भी है, पर विषाद की कंटकाकीर्ण भूमि से भी इन्होंने बड़े कौशल से सौंदर्य-पुष्पों का चयन करके सामने रखा है। इससे इनका कविरूप भी बना रह गया है और भावी की सुखाशयता भी झलक जाती है।

'युगवाणी की रचनाओं में जो गद्यात्मक शुष्कता आ गई है उसका कारण विचार-प्रतिपादन की प्रधानता ही है। इसलिए इन रचनाओं को 'गद्य-गीत' कहा गया है। पर आगे की कृतियों में मूर्तिविधायिनी कल्पना के प्रसाद से भावसंपदा की न्यूनता पर सहसा दृष्टि नहीं जा पाती। विभावपक्ष का सजीव चित्रणमात्र भी काव्यानन्द प्रदान करता ही है। प्रगतिवादी रास्ता पकड़ने के बाद पंतजी ने निम्नवर्गीय जीवन को ही अपना क्षेत्र चुना है, पर प्रकृति-प्रेम इनका अब भी बना हुआ है। वर्तमान जीवन के भीतर वैषम्य और विषाद के कारण आकुलता भी इधर की रचनाओं में बढ़ी दिखाई देती है। पर शैली की दृष्टि से पहले की अपेक्षा कोई विशेष परिवर्तन नहीं लक्षित होता। सिद्धांत रूप से सरलता और सीधापन लाने की आकांक्षा प्रकट करने पर भी स्वयं अपनी रचनाओं में ये इस दृष्टि से कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं ला सके। इनकी कुछ विचार-प्रधान प्रगतिवादी रचनाओं पर विचार करने से ऐसा लगता है कि कवि के मन में किसी विशेष राजनीतिक मत और काव्यानुरूप भावमयता का द्वन्द्व चल रहा है और उसका कवि रूप अपने प्रकाशन के लिए बार-बार जोर मार रहा है।[४]

ओम प्रकाश अग्रवाल

(५) पंतजी में जीवन है, जीवन में काव्य और काव्य में प्रकृति सृष्टि के सौंदर्य में उनकी आत्मा का चिरन्तन तारतम्य मिल गया है। इसी कारण उनका काव्य प्रकृति की ओर विश्व-व्यापक सत्ता की चरम अभिव्यक्ति करता है। रहस्यवाद में प्रकृति के द्वारा ही अज्ञात की अनन्त सौन्दर्य-विभूति के दर्शन होते हैं। फूल में, पत्ती में, किरण में, नक्षत्र में—सभी कहीं कवि उसका अनन्त अनुभव करता है और इसका स्वाभाविक अनुभव कर सके हैं सुकुमार पंतजी। सैद्धान्तिक रहस्यवाद की उनमें छाया तक नहीं, किन्तु रहस्यमय अनन्त की अनुभूति सर्वत्र है। उनका रहस्यवाद प्रकृति के पीछे-पीछे चलता है। वे रहस्यवाद के स्वाभाविक कवि हैं। कल्पना की ऊँची उड़ान और अनुभूति की गहराई से

---

४. हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद, पृ० १४५-४७।

यह प्रकृति-जन्य सौन्दर्य उनके काव्य को उल्लास से भर देता है। उनकी कविता के विषय में उन्हीं की पंक्तियाँ कितनी उपयुक्त हैं। उसमें—

क्रीड़ा, कौतूहल, कोमलता, मोद, मधुरिमा, हास, विलास
लीला, विस्मय, अस्फुटता, भय, स्नेह, पुलक, सुख, सरल-हुलास !

आदि सभी गुणों की प्रचुरता है। इससे वे ही स्वच्छन्दतावाद (Romanticism) के सच्चे कवि हैं। पंतजी को प्रकृति में ही प्रेमानुभूति होती है। उसके सौन्दर्य से उनके हृदय का तार-तार प्रकम्पित हो जाता है। प्रकृति का प्राण उनका ही जीवन-सा ज्ञात होता है। मानव-भावनाओं का प्रकृति से तादात्म्य करने में वे एक सफल कलाकार हैं। पंतजी मुख्यतया सौन्दर्योपासक कवि हैं।'[५]

---

५. हिन्दी गीतिकाव्य, पृ० १७३-४।

पंत-काव्य की कुछ सूक्तियाँ

प्रकृति : :

(क)
छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले ! तेरे बाल-जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन ?

(ख)
गिरि का गौरव गाकर झर-झर
मद से नस - नस उत्तेजित कर
मोती की लड़ियों से सुन्दर
झरते हैं झाग भरे निर्झर !

(ग)
निराकार तम मानो सहसा
ज्योति - पुंज में हो साकार
बदल गया द्रुत जगत जाल में
धर कर नाम रूप नाना !
खुले पलक फैली सुवर्ण छवि
जगी सुरभि, डोले मधुबाल
स्पन्दन, कम्पन औ' नवजीवन
सीखा जग ने अपनाना !

(घ)
सिखा दो ना, अयि मधुप कुमारि,
मुझे भी अपने मीठे गान !
कुसुम के चुने कटोरों से !
करा दो ना, कुछ-कुछ मधुपान !

(ङ) सिकता की सस्मित सीपी पर, मोती की ज्योत्स्ना रही विचर
लो, पालें चढ़ीं, उठा लंगर !
मृदु मंद, मंद, मंथर, मंथर, लघु तरणि, हंसिनी-सी सुन्दर
तिर रही, खोल पालों के पर !

(च) पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों की भारी झर् - झर् ;
झिंगुरों की झीनी झंकार
वनों की गुरु गंभीर घहर;
बिन्दुओं की छनती छनकार,
दादुरों के वे दुहरे स्वर,
शैल पावस के प्रश्नोत्तर !
हृदय हरते थे विविध प्रकार

(छ) दिन की आभा दुलहिन बन
आई निशि - निभृत शयन पर
वह छवि की छुई - मुई-सी
मृदु मधुर लाज से मर -मर
वह एक बूँद जीवन की
नभ के विशाल करतल पर
डूबे असीम सुषमा में
सब ओर छोर के अंतर !

सुख-दुःख : :

(क) बड़ों में दुर्बलता है शाप !
नहीं चल सकते गिरिवर राह,
न रुक सकता है सौरभवाह !
तरल हो उठता उदधि अथाह,
सूर का दुख देता है दाह !

देख हाय ! यह, उर से रहरह निकल रही है आह,
व्यथा का रुकता नहीं प्रवाह !

(ख) वेदना ! कैसा करुण उद्‌गार है
वेदना ही है अखिल ब्रह्माण्ड यह
तुहिन में, तृण में, उपल में, लहर में
तारकों में व्योम में है वेदना !
वेदना ही के सुरीले हाथ से
है बना यह विश्व, इसका परम पद
वेदना ही का मनोहर रूप है,
वेदना ही का स्वतंत्र विनोद है।

(ग) आज वेदने ! आ तुमको भी
गा - गा कर जीवन दे दूँ—
हृदय खोल के रो-रो कर !

(घ) दुख इस मानव आत्मा का
रे नित का मधुमय भोजन
दुख के तम को खा-खा कर
भरती प्रकाश से वह मन !

(ङ) बिना दुख के सब सुख निस्सार
बिना आँसू के जीवन - भार !

(च) वियोगी होगा पहला कवि
आह से उपजा होगा गान
उमड़ कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान !

(छ) सुख-दुख के मधुर मिलन से
यह जीवन हो परिपूरन !
फिर घन में ओझल हो शशि
फिर शशि से ओझल हो घन !

(ज) आँसू की आँखों से मिल
भर ही आते हैं लोचन
हँसमुख ही से जीवन का
पर हो सकता अभिवादन।

(झ) अस्थिर है जग का सुख दुख
जीवन ही नित्य चिरतन!
सुख-दुख से ऊपर मन का
जीवन ही रे अवलंबन!

मुक्ति और बन्धन : :

(क) है सहज मुक्ति का मधु क्षण,
पर कठिन मुक्ति का बन्धन।

(ख) तेरी मधुर-मुक्ति ही बन्धन।
गंधहीन तू गंधयुक्त बन,
निज अरूप में भर स्वरूप, मन।
मूर्तिमान बन, निर्धन।
गल रे गल निष्ठुर मन।

(ग) हे जग जीवन के कर्णधार! चिर जन्म-मरण के आर-पार
शाश्वत जीवन नौका विहार
मैं भूल गया अस्तित्व ज्ञान, जीवन का यह शाश्वत प्रमाण
करता मुझको अमरत्व-दान।

नारी (सौन्दर्य-चित्रण) : :

(क) शशिमुख पर घूँघट डाले, अंचल में दीप छिपाए
जीवन की गोधूली में, कौतूहल से तुम आए।

(ख तुम्हारे छूने में था प्राण
संग में पावन गंगा-स्नान
तुम्हारी वाणी में कल्याणि!

त्रिवेणी की लहरों का गान !
अपरिचित चितवन में था प्रात,
सुधामय साँसों में उपचार ;
तुम्हारी छाया में आधार
सुखद चेष्टाओं में आभार !
उषा का था उर में आवास
मुकुल का मुख में मृदुल विकास ;
चाँदनी का स्वभाव में भास
विचारों में बच्चों के श्वास।

(ग) देह में पुलक, उरों में भार
भ्रुवों में भंग, दृगों में प्राण,
अधर में अमृत, हृदय में प्यार,
गिरा में लाज, प्रणय में मान !

(घ) सुभग रूज, लिपस्टिक, प्रौस्टिक, पौडर से कर मुख रंजित
अंगराग, क्यूटेक्स, अलक्तक से बन नखशिख शोभित
नारी की सौंदर्य - मधुरिमा औ, महिमा से मंडित
तुम नारी उर की विभूति से, हृदय सत्य से वंचित।

नश्वरता : :

(क अखिल यौवन के रंग
हड्डियों के हिलते कंकाल ;
कचों के चिकने, काले व्याल
केंचुली, काँस, सिवार :
गूंजते हैं सबके दिन चार,
सभी फिर हा-हा कार।

(ख) एक सौ वर्ष नगर, उपवन
एक सौ वर्ष विजन, वन ;

यही तो है असार संसार,
सृजन, सिंचन, संहार।

राष्ट्र-संबंधी : :

(क) भारतमाता ग्रामवासिनी
खेतों में फैला है श्यामल,
धूल भरा मैला-सा आँचल,
गंगा-यमुना में आँसू-जल,
मिट्टी की प्रतिमा उदासिनी।

(ख) यह तो मानव लोक नहीं रे, यह है नरक अपरिचित
यह भारत का ग्राम, सभ्यता, संस्कृति से निर्वासित!
अकथनीय क्षुद्रता, विवशता भरी यहाँ के जग में!
गृह-गृह में है कलह, खेत में कलह, कलह है जग में!

जग-जीवन : :

(क) मैं सृष्टि एक रच रहा नवल, भावी मानव के हित भीतर
सौन्दर्य, स्नेह, उल्लास मुझे; मिल सका नहीं जग में बाहर

(ख) तोड़ युगों के स्वर्ण-पाश अब मुक्त हो रहा मानव,
जन मानवता की भव-संस्कृति आज हो रही निर्मित!

(ग) जग-जीवन में है सुख-दुःख
सुख-दुःख में है जग जीवन
हैं बँधे विछोह मिलन दो
देकर चिर स्नेहालिंगन!

(घ) जग जीवन में उल्लास मुझे
नव आशा नव अभिलाष मुझे
चाहिए विश्व को नव जीवन
मैं इच्छा से उन्मन उन्मन!

(ङ) जीवन की लहर-लहर से
हँस खेल खेल रे नाविक
जीवन के अंतस्तल में
नित बूड़-बूड़ रे नाविक !

(च) अस्थिर है जग का सुख दुःख
जीवन ही नित्य चिरन्तन !

(छ सुख-दुःख के पुलिन डुबा कर
लहाराता जीवन - सागर !

उद्बोधन : :

(क) बढ़ो अभय विश्वास चरण धर।
सोचो वृथा न भव - भय - कातर,
ज्वाला के विश्वास के चरण, जीवन-मरण समुद्र-संतरण,
सुख-दुख की लहरों के शिर पर, पग धर पार करो भव-सागर
बढ़ो-बढ़ो विश्वास चरण धर !!

(ख) ओ धरती के आर्त तप्त जन
कहता यों कातर मन
मत खोओ विश्वास हृदय का
मत खोओ अपनापन !

प्रेम : :

(क) और, भोले प्रेम ! क्या तुम हो बने
वेदना के विकल हाथों से ? जहाँ
झूमते गज से विचरते हो, वहीं
आह है; उन्माद है, उत्ताप है !
पर नहीं, तुम चपल हो, अज्ञात हो,
हृदय है, मस्तिष्क रखते हो नहीं,
बस, बिना सोचे, हृदय को छीनकर
सौंप देते हो अपरिचित हाथ में !

(ख) अनिल-सा लोक लोक में
हर्ष में, और शोक में
कहाँ नहीं है प्रेम ? साँस-सा सबके उर में !

(ग) रसिक वाचक ! कामनाओं के चपल
समुत्सुक, व्याकुल पगों से प्रेम की
कृपण वीथी में विचर कर, कुशल से
कौन लौटा है हृदय को साथ ला ?

(घ) प्रणय की पतली अँगुलियाँ क्या किसी
गान से विधि ने गढ़ीं ? जो हृदय को—
याद आते ही, विकल संगीत में
बदल देती हैं भुलाकर, मुग्धकर !

रहस्यात्मकता :

(क) देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधुमास
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास,
न जाने सौरभ के मिस कौन
सन्देशा मुझे भेजता मौन !

(ख) शान्त सरोवर का उर
किस इच्छा से लहराकर
हो उठता चंचल, चंचल !

(ग) तुम इस स्वर की छाया हो
मैं उनके पद की छाया !

(घ) सजनि ! कभी क्या सोचा तूने
तरुओं के तम में चुपचाप,
दीप शलभ दीपों को चमका
करते जो मृदु मौनालाप ?

अलि, किस स्वप्नों की भाषा में
इंगित करते तरु के पात
कहाँ प्रात को छिपती प्रतिदिन,
वह तारक स्वप्नों की रात ?

नारी : :

(क तुम्हारे रोम-रोम से नारि !
मुझे है स्नेह अपार ;
तुम्हारा मृदु उर ही सुकुमारि !
मुझे है स्वर्गागार !!
तुम्हीं हो स्पृहा, अश्रु औ हास,
सृष्टि के उर की साँस
तुम्हीं इच्छाओं की अवसान,
तुम्हीं स्वर्गिक आभास ;
तुम्हारी सेवा में अनजान,
हृदय है मेरा अन्तर्धान !
देवि ! माँ ! सहचरि ! प्राण !!

(ख) तुम सब कुछ हो, फूल, लहर, तितली, विहगी मार्जारी
आधुनिके ! तुम नहीं अगर कुछ नहीं सिर्फ तुम नारी ।

(ग) योनि नही है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित ।
उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित ।

(घ) यदि स्वर्ग कहीं है पृथ्वी पर, तो वह नारी उर के भीतर
दल पर दल खोल हृदय के स्तर,
जब बिठलाती प्रसन्न होकर
वह अमर प्रणय के शतदल पर ।

(ङ) यदि कहीं नरक है इस भू पर, तो वह भी नारी के अंदर
वासनावर्त में डाल प्रखर,

वह अंध गर्त में चिर दुस्तर
नर को ढकेल-सकती सत्वर ॥

संयोग श्रृंगार-वर्णन : :

(क) छनती थी ज्योत्स्ना शशि-मुख पर
मैं करता था मुख - सुधा-पान
कूकी थी कोकिल, हिले मुकुल
भर गये गंध से लुब्ध प्राण !
तुमने अधरों पर धरे अधर,
मैंने कोमल वपु भरा गोद,
था आत्म समर्पण सरल, मधुर,
मिल गए सहज मारुतामोद !

वियोग श्रृंगार-वर्णन : :

(क) कौन यह बिछुड़े दिलों की दुर्दशा
पोंछ सकता है? दृगों की बाढ़ में
विकल, बिखरे, बुदबुदों की बूड़ती
मौन आहें हाय! कौन समझ सका!
शून्य जीवन के अकेले पृष्ठ पर
विरह! आह, कराहते इस शब्द को
किस कुलिश की तीक्ष्ण चुभती नोंक से
निठुर विधि ने अश्रुओं से है लिखा!

(ख) देखता हूँ जब पतला
इन्द्रधनुषी हलका,
रेशमी घूँघट बादल का,
खोलती है कुमुद कला,
तुम्हारे ही मुख का तो ध्यान
मुझे तब करता अन्तर्धान
न जाने तुमसे मेरे प्राण
चाहते क्या आदान !

सहायक साहित्य

[क] हिन्दी

१. सुमित्रानन्दन पंत—डा० नगेन्द्र।
२. ,, —डा० रामरतन भटनागर।
३. ,, —प्रो० विश्वम्भर मानव।
४. ,, —श्रीमती शचीरानी गुर्टू।
५. पंत का काव्य और युग—श्री यशदेव 'शल्य'।
६. ज्योति-विहग—श्री शान्तिप्रिय द्विवेदी।
७. पंत : आधुनिक कवि—श्री फूलचन्द पाण्डेय।
८. सुमित्रानन्दन पंत और उनका प्रतिनिधि काव्य--डा० शिवनंदन प्रसाद।
९. पंतजी का गुंजन—डा० शिवनंदन प्रसाद।
१०. काव्यालोचन के सिद्धान—डा० शिवनन्दन प्रसाद।
११. पंत आधुनिक कवि—प्रो० केसरी कुमार।
१२. सु० न० पंत और उनका आधुनिक कवि—श्री तारकनाथ वाली।
१३. गद्य-पद्य—श्री सुमित्रानन्दन पंत।
१४. पंत और पल्लव—श्री निराला।
१५. प्रबन्ध-प्रतिमा—श्री निराला।
१६. हिन्दी साहित्य:बीसवीं शताब्दी—पं० नंददुलारे वाजपेयी।
१७. छायावाद युग—डा० शंभुनाथ सिंह।
१८. प्रगतिवाद—श्री शिवदान सिंह चौहान।
१९. आधुनिक काव्यधारा—डा० केसरी नारायण शुक्ल।
२०. काव्य में अभिव्यंजनावाद—श्री लक्ष्मीनारायण सिंह 'सुधांशु'।

२१. आधुनिक हिन्दी साहित्य का विकास—डा० श्रीकृष्ण लाल।

२२. काव्यदर्पण—पं० रामदहिन मिश्र।

२३. काव्य में अप्रस्तुत योजना—पं० रामदहिन मिश्र।

२४. काव्य में प्रगतिवाद—श्री विजयशंकर मल्ल।

२५. हिन्दी कविता में प्रकृति-चित्रण—डा० किरण कुमारी गुप्ता।

२६. हिन्दी साहित्य में प्रकृति-चित्रण—डा० रामेश्वरलाल खंडेलवाल।

[ख] पत्र-पत्रिकायें

१. साहित्य-संदेश। २. सरस्वती संवाद। ३. हिमालय। ४. प्रतीक। ५. आलोचना। ६. विशाल भारत। ७. वीणा। ८. नया साहित्य। ९. हंस (कविता अंक)।

सम्मतियाँ

श्री कृष्ण कुमार सिन्हा की 'आधुनिक कवि पंत' नामक पुस्तक देखकर प्रसन्नता हुई। इस पुस्तक में पंतजी के वैशिष्ट्य का उद्‌घाटन लेखक ने सफलतापूर्वक किया है एवं उन काव्यस्रोतों के अन्वेषण का प्रयास किया है जिन्होंने पंतजी को प्रेरणा दी थी और उनके काव्य को सजाया-सँवारा है। पंतजी पर जो कुछ अभी तक लिखा गया है, वह पर्याप्त नहीं ; पंतजी अनेकानेक ग्रन्थों के अधिकारी हैं, अतः कृष्ण कुमारजी का यह प्रयास अकारण नहीं। पंतजी के सम्बन्ध में आलोचकों के विभिन्न मत हैं, उनका संकलन-विवेचन कर लेखक ने इस ग्रंथ को सहज ही उपादेय बना दिया है। आशा है, पंत के अध्ययन में यह ग्रन्थ निश्चय ही सहायक सिद्ध होगा।

हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय

—रामखेलावन पाण्डेय
एम० ए०, डी० लिट्०

आधुनिक काव्यधारा में कवि सुमित्रानन्दन पंत का एक विशिष्ट स्थान है। वे उन कवियों में हैं जिन्होंने हिन्दी कविता को एक नई गति और दिशा प्रदान की है। आलोचक कृष्ण कुमारजी ने पंत की जीवनी पर सम्यक प्रकाश डालते हुए उनके आधारभूत विचारों का विश्लेषण किया है।.......पंत से सम्बन्धित समस्त ज्ञातव्य बातों का समावेश अत्यन्त विस्तार के साथ इस आलोचनात्मक पुस्तक में हुआ है। आशा है पंत के काव्य-वन में प्रवेश करने के लिए इस पुस्तक से यथेष्ट सहायता मिलेगी।

अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग
बिड़ला कालेज, पिलानी
राजस्थान विश्वविद्यालय

कन्हैया लाल सहल
एम० ए०, पी एच० डी०

आपका पत्र और पुस्तक 'आधुनिक कवि पंत' मिली। आपने काफी श्रम किया है। पंत पर पुस्तकें बहुत सी हैं, किन्तु इस रोचक पद्धति और सरल, सुन्दर शैली में लिखी हुई सामग्री कम है। पंत के कृतित्व का सर्वांगीण परिचय तो है ही, अन्य उपयोगी सामाजिक विषयों पर भी काफी लिखा है। इस ग्रन्थ पर मेरी बधाई स्वीकार करें। निश्चय ही आप हिन्दी को बहुत कुछ दे रहे हैं।

७/२३ दरियागंज
दिल्ली

—शचीरानी गुर्टू
एम० ए० (हिन्दी-अंग्रेजी)
सुप्रसिद्ध हिन्दी लेखिका

पुस्तक अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक है। साहित्य के विद्यार्थियों के लिए इसकी उपादेयता असंदिग्ध है।

हिन्दी विभाग
पटना विश्वविद्यालय

—शिवनन्दन प्रसाद
एम० ए०, डी० लिट्०

श्री कृष्ण कुमार सिन्हा हिन्दी के एक मनस्वी विद्वान् और एक मजे आलोचक हैं। 'आधुनिक कवि पंत' पंतजी पर एक अच्छी आलोचनात्मक पुस्तक है। आद्यन्त मैं इस पुस्तक को पढ़ गया और मैंने उसे पंत-साहित्य के पाठकों के लिए अत्यन्त उपयोगी और ज्ञानवर्द्धक पाया। लेखक ने पंतजी के प्रायः सभी आलोचकों के विचारों को उद्धृत करते हुए अपने अमूल्य विचारों को भी निर्भीकतापूर्वक प्रस्तुत किया है। इससे लेखक के गम्भीर अध्ययन और मौलिक आलोचनात्मक प्रतिभा का यथेष्ट परिचय प्राप्त होता है। मुझे विश्वास है कि यह पुस्तक पंतजी के सम्बन्ध में पाठकों को चिन्तन की अभिनव सामग्रियाँ उपस्थित करेगी। लेखक का प्रयास स्तुत्य है।

हिन्दी विभाग
गया कालेज, गया

—विश्वनाथ प्रसाद

'आधुनिक कवि पंत' श्री सिन्हाजी के निरन्तर परिश्रम और अध्ययन का फल है। इसमें पंत-काव्य का विशद और सम्पूर्ण विवेचन उपस्थित किया गया है। पंत-साहित्य के जिज्ञासुओं के लिए पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है।... पुस्तक सब प्रकार से संग्रहणीय है और इसके लिए लेखक हिन्दी जगत की बधाई का पात्र है।

अध्यक्ष, हिन्दी-संस्कृत विभाग
गया कालेज, गया

—जगदीश नारायण दीक्षित
(सम्प्रति प्रिंसिपल)

प्रस्तुत पुस्तक में कुल २३ अध्याय हैं जिनमें से २० तो लेखक के 'आलोचनात्मक दृष्टिकाण के परिचायक हैं तथा शेष तीन उसकी संकलन-पटुता के द्योतक। लेखक के आलोचनात्मक अध्यायों में से प्रथम तीन अध्याओं में—जिनके शीर्षक हैं, 'सुमित्रानंदन पंत', 'वर्तमान हिन्दी काव्य की रूपरेखा', 'पंत पर बाह्य प्रभाव' क्रमशः पंतजी की जीवनी, रीतिकाल तथा उसके बाद के काव्यगत वादों तथा पंतजी को प्रभावित करनेवाले देशी-विदेशी साहित्यिक वातावरण पर प्रकाश डाला गया है।......जहाँ तक आलोचनात्मक अध्यायों का प्रश्न है उनमें लेखक ने पंतजी के काव्य का लगभग सभी दृष्टियों से मूल्यांकन करने का प्रयास किया है। उक्त अध्यायों की गहराई में उतरने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि लेखक का मुख्य उद्देश्य 'विषय को अधिक बोधगम्य तथा सुश्रृंखल' बनाना रहा है।.........

समवेत रूप से देखने पर लेखक के परिश्रम तथा उसकी चिन्तनशीलता को सराहे बिना नहीं रहा जा सकता। पुस्तक में यथास्थान यथोचित उदाहरण उद्धृत हैं। साथ ही विषय-विवेचन भी स्पष्ट तथा सूक्ष्म है। सबसे बड़ी बात यह है कि लेखक ने प्रस्तुत रचना में पंतजी के काव्य के अन्तरंग तथा बहिरंग दोनों पर सम्यक् रूप से प्रकाश डालने का प्रयास किया है और इसलिए पुस्तक पठनीय तथा संग्रहणीय है।

हिन्दी साहित्य सम्मेलन
प्रयाग

—सम्मेलन-पत्रिका,
चैत शुक्ल प्रतिपदा, सम्वत्, २०११

इस पुस्तक में पंत के जीवन-वृत्त के साथ उनकी कविता का क्रम विकास और उनके मानस पटल पर पड़े हुए प्रभावों का सुन्दर विवेचन है। पंतजी के काव्य को समझने के लिए जितने आवश्यक उपकरण हैं, जैसे—छायावाद, गीतिकाव्य, प्रतीकवाद, रससिद्धान्त, भूमिका रूप से उनका विवेचना हुआ है और साथ ही पंतजी की रचनाओं से उनके उदाहरण भी दिए गए हैं।...... लेखक ने छायावाद और रहस्यवाद की व्याख्या में विभिन्न आचार्यों का मत देकर तत्संबंधी विचारों में स्पष्टता लाने का प्रयत्न किया है। पंतजी के सौन्दर्य-बोध के सम्बन्ध में लिखते हुए लेखक महोदय हमारा ध्यान इस ओर आकर्षित करते हैं कि पंत का सौन्दर्य रूप-सौन्दर्य नहीं, बल्कि भावात्मक है। इस भावात्मक-सौन्दर्य के भी दो रूप दिये हैं—एक व्यापक और दूसरा व्यक्तिगत। व्यापक सौन्दर्य अध्यात्म की ओर ले जाता है। हम इतना ही कह सकते हैं कि पंतजी का सौन्दर्य भावात्मक अवश्य है, किन्तु वे रूपात्मक सौन्दर्य के भी अच्छे पारखी और चित्रकार हैं। उनकी सौन्दर्य-भावना ग्राम्या में भी उनके साथ रही है,। यह पुस्तक पंतजी के काव्य के रसास्वादन में सहायक होगी।

४, महात्मा गाँधी रोड, आगरा } —साहित्य-संदेश, नवम्बर, १९५४

प्रस्तुत वृहत्काय पुस्तक में लेखक ने बड़े परिश्रमपूर्वक हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ कवि सुमित्रानंदन पंत के काव्य, उनकी विचारधारा, विभिन्न वादों का उनपर प्रभाव, पंत की प्रतीक-योजना, छंद आदि विभिन्न तत्वों की विस्तार से व्याख्या की है। साथ ही रहस्यवाद, छायावाद एवं स्वयं पंत के काव्य पर प्रकट किए विभिन्न आलोचकों के विचार भी दिए गए हैं। आशा है पंतजी के काव्य के सम्यक अध्ययन के लिए यह पुस्तक उपयोगी सिद्ध होगी।

सुभाष रोड, कलकत्ता } —नया समाज, जून, १९५५

प्रस्तुत पुस्तक में लेखक के यथेष्ट परिश्रम और अध्ययन की छाप सर्वत्र दीखती है। कवि पंत के जन्म, उनकी शिक्षा-दीक्षा आदि का परिचय देते हुए किन बाह्य प्रभावों से पंत प्रभावित हुए, उनकी भावधारा और काव्यधारा का विकास कैसे हुआ, उनका जीवन-दर्शन क्या है—आदि पर लेखक ने जो प्रकाश डाला है, वह पंत-प्रेमी पाठकों के लिए बहुत उपयोगी है।

इंडियन प्रेस, प्रयाग

—'सरस्वती'
जून, १९५४